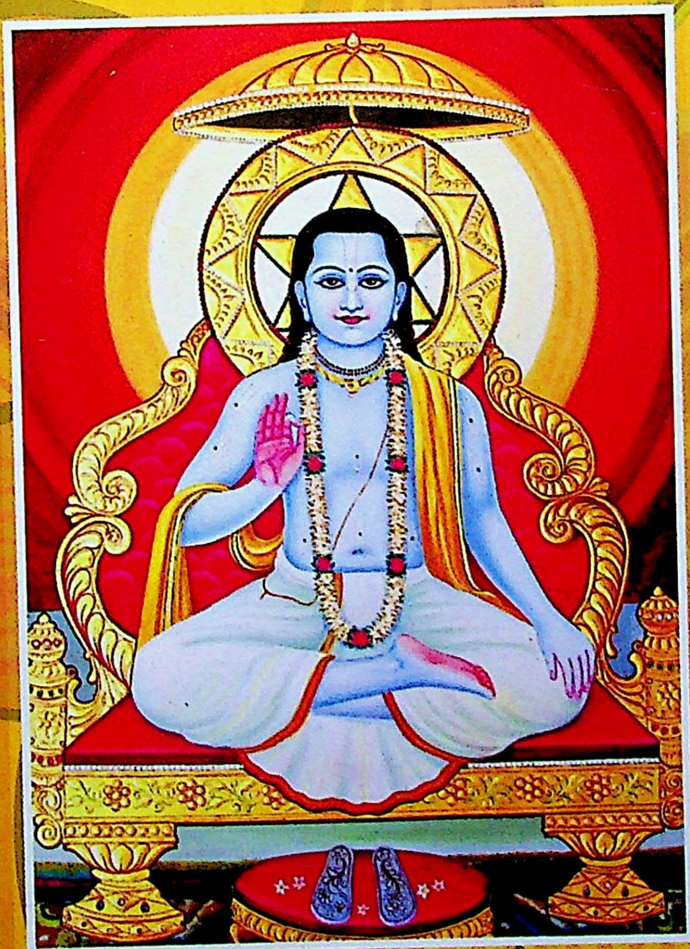
।। श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते ।।



।। श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ।।

हिन्दी के भक्ति साहित्य में राजस्थानी निम्बार्क संत कवियों का योगदान



डॉ. ललित कुमार शर्मा

हिन्दी के भक्ति साहित्य में राजस्थानी निम्बार्क सन्त कवियों का योगदान

डॉ. ललित कुमार शर्मा
एम.ए. (हिन्दी-साहित्य), एल-एल.बी.
पी-एच.डी. (निम्बार्क साहित्य)

संरक्षक
अनन्त श्री विभूषित अखिल भारतीय निम्बार्कपीठाधीश्वर
जगद्गुरु श्री राधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी महाराज'
निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद), पुष्कर क्षेत्र, अजमेर (राजस्थान)

प्रकाशक :
अखिल भारतवर्षीय निम्बार्कपीठ शिक्षा समिति,
निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद), अजमेर

प्रथम संस्करण : 2011

न्यौछावर : 200 रुपये

टाइप सैटिंग
विशाल कम्प्यूटर्स, जयपुर

मुद्रक :
कम्प्यूटर क्राफ्ट, जयपुर

अवलोकनीयम्

खण्ड (ब) कृतित्व : सामान्यानुशीलन

दूरभाष : ०१४६७-२२७८२१
फैक्स : २२७१२१



मिति..........

श्रीमन्निखिलमहीमण्डलाचार्य, चक्रचूड़ामणि, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, द्वैताद्वैतप्रवर्तक, यतिपतिदिनेश,
राजराजेन्द्रसमभ्यर्चितचरणकमल, भगवन्निम्बार्काचार्यपीठविराजित, अनन्तानन्त श्रीविभूषित

जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री "श्रीजी" महाराज

अ. भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, श्रीनिम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) पुष्कर क्षेत्र, किशनगढ़, जि.-अजमेर (राज.) - ३०५८१५

क्रमांक............ दिनांक...............

शुभाशीर्वादात्मक-मङ्गलकामना

मानव जीवन की सार्थकता श्रीसर्वेश्वर राधामाधव भगवान् की पावन मंगलमयी उपासना में है। उपासना क्रम में सत्साहित्य अनुशीलन नितान्त आवश्यक है और इसका परिबोध 'शोध-प्रबन्धों' के परिज्ञान करने पर स्वतः प्रकट होता है। इसी सन्दर्भ में विद्वद्वर डॉ. **श्रीललितकुमारजी शर्मा** (एम.ए., एल.एल.बी., पी-एच.डी.) ग्राम तेवड़ी जिला-जयपुर, राजस्थान निवासी ने **'हिन्दी के भक्ति साहित्य में राजस्थानीय निम्बार्क सन्त कवियों का योगदान'** नामक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया है।

वस्तुतः इस शोध प्रबन्ध से हिन्दी साहित्य में श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की एवं श्रीनिम्बार्कीय आचार्य, सन्त, कवियों के महत्त्वपूर्ण परिचय का सम्यक् ज्ञान होगा। डॉ. श्रीललितकुमारजी शर्मा का यह महनीय प्रयास परम प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। आपके अग्रज-भ्राता डॉ. श्रीपरमानन्दजी शर्मा (व्याख्याता, हिन्दी, एम.ए., एम.फिल्, पी-एच.डी., साहित्याचार्य) ने भी कतिपय वर्षों पूर्व 'शोध प्रबन्ध' का प्रस्तुतीकरण किया था, जिससे जिज्ञासु भगवद्जनों को परम लाभ हुआ। इसी प्रकार इस शोध प्रबन्ध से सभी श्रद्धालुजनों को निम्बार्क-सम्प्रदाय के एवं अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के सुभग स्वरूप का भी साङ्गोपाङ्ग परिज्ञान होना स्वाभाविक है।

डॉ. श्रीललितकुमारजी शर्मा के इस 'शोध प्रबन्ध' की अनेक विद्वज्जनों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। हम सर्वनियन्ता श्रीसर्वेश्वर भगवान् से उनके सर्वविध श्रेय वृद्धि के लिए पुनः-पुनः अभ्यर्थना करते हैं।

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य

(श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य)

महामहिम राष्ट्रपति सम्मानित मनीषी
प्रो. (डॉ.) प्रभाकर शास्त्री
एम.ए., पी-एच.डी., डी.लिट्.
साहित्य-धर्मशास्त्राचार्य
अध्यक्ष-अखिल भारतीय संस्कृत परिषद् (राजस्थान)
उपाध्यक्ष-सांस्कृतिक ज्ञान निर्झर संस्थान, जयपुर
कार्याध्यक्ष-राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन

फोन : 0141-2314919
चलभाष : 9829790033
निदेशक
अनुसन्धान-विभाग
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत
विश्वविद्यालय, मदाऊ (भांकरोटा) जयपुर-302026
(राज.)

मतल्लिका

विद्वद्वरेण्य पं. श्री मोहनलाल जी शास्त्री के सुपुत्र डॉ. **ललितकुमार शर्मा** ने हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से शोधनिर्देशक, हिन्दी प्रवक्ता, बाबा भगवानदास राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चिमनपुरा, शाहपुरा, राजस्थान डॉ. बाबूलाल महावर के सन्निध्य में **'हिन्दी के भक्ति साहित्य में राजस्थानीय निम्बार्क सन्त कवियों का योगदान'** पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर सन् 2008 में पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की, दतर्थ वे बधाई के पात्र हैं। उनका यह अनुपम शोध प्रबन्ध अखिल भारतीय आचार्य निम्बार्क पीठ, सलेमाबाद (किशनगढ़) राजस्थान द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। यह इस महत्त्वपूर्ण शोध प्रबन्ध के गौरव को अभिव्यक्त करता है। अनन्त श्रीविभूषित, प्रातःस्मरणीय, श्रद्धेय आचार्य प्रवर **श्री राधासर्वेश्वर शरण देवाचार्य** जी के शुभाशीर्वाद से संवलित यह शोध प्रबन्ध भगवत्स्वरूप आचार्य श्री परशुराम देवाचार्य जी, श्री हरिव्यास देवाचार्य जी प्रभृति के यशस्वी जीवन चरित को इसमें गुम्फित किया गया है।

आठ अध्यायों में विवेचित शोध प्रबन्ध के प्रथमाध्याय में शोध प्रविधि के अनुरूप 'निम्बार्क दर्शन' से परिचित कराने के उद्देश्य से डॉ. शर्मा ने उसका परिचय, प्रमुख सिद्धान्त, उपासना तत्त्व, स्वरूपनिर्णय, समय समीक्षा एवं तत्कालीन सामाजिक व साहित्यिक परिस्थितियों का आकलन प्रस्तुत करना अत्यावश्यक माना है। साथ ही द्वितीय अध्याय में निम्बार्क सम्प्रदाय एवं पीठाचार्य परम्परा के साहित्यिक अवदान को विवेचित करना विस्मृत नहीं किया है। इससे अखिल भारतीय जगद्गुरु निम्बार्काचार्य पीठ का सर्वाङ्गीण परिचयात्मक स्वरूप हस्तामलकवत् स्पष्ट हो गया है।

शोध विषय के स्पष्टीकरण हेतु वैष्णव भक्ति, धर्म-दर्शन एवं सम्प्रदाय चतुष्टय की चर्चा अपरिहार्य होने से **तृतीय अध्याय** की अवतारणा की गई है। **चतुर्थ अध्याय**

में मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन एवं निम्बार्क सम्प्रदाय के योगदान पर सामाजिक, साहित्यिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण करना अनिवार्य समझ गया है।

ऐसे तो श्री निम्बार्क सम्प्रदाय (द्वैताद्वैत वैष्णव) मतावलम्बी होने से दक्षिण भारतीय मूंगीपैठण स्थान से सम्बद्ध होने के कारण दक्षिण भारतीय परम्पराओं से अधिक संपृक्त रहा है, परन्तु **आचार्य श्री परशुराम देवाचार्य** जी ने इसे विशुद्ध रूप से राजस्थानी बना दिया। डॉ. ललित कुमार शर्मा ने शोध प्रबन्ध के **पञ्चमाध्याय** से राजस्थान में निम्बार्क सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में आचार्य कवि परशुरामदेव जी एवं अन्यान्य निम्बार्कीय प्रतिनिधि हिन्दी कवियों का इतिवृत्त प्रस्तुत किया है। इनमें आदि वाणीकार **श्री भट्ट देवाचार्यजी, श्री हरिव्यास देवाचार्य जी, स्वामी श्री हरिदास जी, श्री बिहारिनी देवजी, श्री रसिक देवजी, श्री ललितकिशोरीदेवजी, श्री रसिक गोविन्द शरण देवजी, श्री घनानन्द जी, भक्त कवि नागरीदास जी, कवयित्री महारानी बांकावतीजी, बाई सुन्दरी कुंवरी जी, बाईजी श्री छत्रकुंवरी जी, श्रीमती बनीठनीजी, आचार्य श्री परशुराम देवाचार्यजी की परम्परा के आचार्यों में भक्त कवि श्री वृन्दावनदेवाचार्यजी, श्री गोविन्ददेवाचार्यजी, श्री गोविन्दशरणदेवाचार्य** जी प्रभृति भक्त कवियों का सादर स्मरण करना नहीं भूले हैं।

'परशुराम सागर' के यशस्वी लेखक आचार्य श्री परशुराम देवाचार्य जी महाराज का संपूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व को लोकार्पित करने के दृष्टिकोण से **षष्ठ अध्याय** की सर्जना की गई है।

आचार्य महाकवि श्री परशुरामा देवाचार्य जी प्रणीत हिन्दी कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए डॉ. ललित कुमार शर्मा ने सर्वप्रथम समालोचना के सामान्य रूप पर चर्चा कर श्री परशुरामदेवजी की काव्यचेतना की आधारभूमि पर विचार-विमर्श कर आचार्य श्री के साधनापक्ष पर चिन्तन किया है तथा निम्बार्कीय दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। 'परशुराम सागर' के प्रतिपाद्य विषय पर विस्तार से समीक्षा कर काव्यगत वैशिष्ट्य को लोकार्पित किया है। श्री परशुराम देव जी की समन्वय भावना उनके काव्य की विशेषता रही है।

'राजस्थानीय निम्बार्क सम्प्रदाय के सन्त कवियों के योगदान' के सन्दर्भ में जब तक निम्बार्क पीठाधीश्वर प्रात:स्मरणीय आचार्य श्रद्धेय श्री राधासर्वेश्वरशरण देवाचार्य जी के पुनीत नाम का संस्मरण न कर लिया जाय, तब तक यह शोध परिपूर्ण नहीं माना जा सकता। निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रति पूर्णत: समर्पित पितामह स्वर्गीय श्री **हरिनारायणशास्त्री जी, पिताश्री मोहनलाल जी शास्त्री**, मेरे प्रिय शिष्य **डॉ. परमानन्द जी शर्मा** एवं श्रद्धालु स्वयं ललित कुमार जी शर्मा सपरिवार सलेमाबादस्थ आचार्य श्रीजी महाराज के प्रति श्रद्धावनत हैं।

डॉ. ललितकुमार शर्मा ने श्रीजी महाराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की सम्पूर्ण साधना को दो अध्यायों में गुम्फित कर उनके प्रति अपने हृदुद्गारों को अभिव्यक्त किया है। उनकी रचनायें चाहे संस्कृत भाषा में गुम्फित रही हों, या हिन्दी भाषा में, सभी का सोल्लास मूल्यांकन कर यह प्रमाणित कर दिया है कि वे वास्तव में राष्ट्र सन्त हैं, महाकवि तो हैं ही।

मैंने अनेकों सन्तों, महात्माओं के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त किया है, परन्तु मेरी यह व्यक्तिगत भावना है, मान्यता है। मैं प्रात:स्मरणीय निम्बार्क पीठाधीश्वर अनन्त श्री विभूषित श्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्य जी को साक्षात् सगुण ईश्वर के रूप में स्वीकारता हूँ। जो गुण या स्वरूप सगुण ईश्वर का हो सकता है, वह सभी आचार्य श्री में विद्यमान हैं। ऐसे सच्चरित्र, सारस्वत स्वरूप, सर्वगुण सम्पन्न, षोडश कलावतार भगवान् श्रीकृष्ण के समान इस कलियुग में प्रकट हुये। श्रीमद्भगवद्गीता में निरूपित वचनानुसार–

''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानमर्धस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे।।''

निम्बार्क पीठाधीश्वर आचार्य श्री श्रीजी महाराज के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। उनके अहैतुकी कृपा कटाक्ष के लिए हम सभी लालायित हैं। जिस प्रकार डॉ. ललित कुमार शर्मा के वंशानुगत परिवार पर उनकी असीम कृपा है, शुभाशीर्वाद प्राप्त है, अकिंचन मैं भी उनकी कृपा का आकांक्षी हूँ। उनके चरणों में नतमस्तक मैं उनके शुभाशीर्वाद की कामना करता हूँ। साथ ही बारम्बार शतश: सहस्रश: प्रणामाञ्जलि अर्पित कर रहा हूँ।

चरणचञ्चरीक:

(प्रो. डॉ. प्रभाकर शास्त्री)
254, शास्त्री सदन,
खूंटेटा मार्ग,
किशनपोल बाजार,
जयपुर (राज.) 302001

शोध प्रबन्ध की मौलिकता

विद्या मनुष्य की अन्तर्दृष्टि है, अन्तर्दृष्टि से ही विवेक उत्पन्न होता है, विवेकशील पुरुष मौलिक चिन्तन से, मौलिक कृति से समाज को नयी दिशा या प्रेरणा प्रदान करते हैं। वर्तमान में शोध प्रबन्ध लिखने-लिखाने, पढ़ने-पढ़ाने की परम्परा अक्षुण्ण बनती जा रही है। जो व्यक्ति व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदि शास्त्रीय सैद्धान्तिक विषयों का परम्परागत अध्ययन कर उन विषयों पर अपनी प्रतिभाप्रकर्ष से शोध कार्य सम्पादित करें यह स्वाभाविक है। किन्तु जो महानुभाव कानूनीक्षेत्र में वकालाती व्यवसाय में सतत संलग्न हों फिर भी समय निकाल कर साहित्यिक विषयों का गम्भीर स्वाध्याय के साथ उसमें शोधप्रबन्ध का आलेख करें तो परमविस्मय एवं नितान्त गौरव का विषय है। जयपुरमण्डलान्तर्गत बैराठ के समीप तेवड़ी ग्राम वास्तव्य अधिवक्ता श्री ललितकुमारजी शर्मा ने यह कार्य कर दिखाया है। भिन्न व्यवसाय होने पर भी यह साहित्यिक प्रेम एवं उसमें गम्भीर अध्ययन रुचि आपको अपने दादा, पिता, अग्रज से विरासत में प्राप्त हुई है। आपके पितामह संस्कृत हिन्दी के प्रकाण्ड पण्डित स्वनामधन्य स्व. श्री हरिनारायण जी शास्त्री साहित्याचार्य कुशल अध्यापक एवं आशु कवि थे। राजकीय सेवा से अवकाश प्राप्त होने पर अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ द्वारा संचालित संस्कृत महाविद्यालय में सन् 1981 से 1992 तक व्याख्याता पद पर रहकर संस्कृत साहित्य का अध्यापन कराया था। आपके वैदुष्य से पीठ परिकर एवं विद्यालय परिवार लाभान्वित रहा। इसी प्रकार श्री ललितजी के अग्रज डॉ. श्री परमानन्दजी शर्मा भी उक्त महाविद्यालय में व्याख्याता पद पर रहकर तीन वर्ष तक शास्त्रीपर्यन्त कक्षाओं में छात्रों को हिन्दी-संस्कृत विषयों का सफल अध्यापन कराया। इसी अवधि में आपने जगद्गुरुश्री श्रीजी महाराज के व्यक्तित्व-कृतित्व पर सम्प्रदाय के सिद्धान्तानुकूल शोधप्रबन्ध की रचना कर अपनी मौलिकता के साथ अनुपम साहित्य सेवा प्रस्तुत की है। श्री परमानन्दजी ने पूज्य महाराज श्री द्वारा प्रणीत संस्कृत ग्रंथों पर विशेष चिन्तन किया है। इसीसे प्रेरणा प्राप्त कर श्री ललितजी ने महाराजश्री की हिन्दी रचनाओं पर अपनी चिन्तनधारा को प्रवाहित किया।

उस समय पूज्य आचार्य श्री 'राधामाधव रसविलास' नामक हिन्दी महाकाव्य की रचना कर रहे थे। महाकाव्य पूर्ण होने पर श्री ललितजी ने इसीको केन्द्र में रखकर अपना शोधग्रन्थ लिखना प्रारम्भ किया जो लगभग 350 पृष्ठों में यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ

पूर्ण हुआ है। उसका प्रारूप लेकर दि. 1:6.2011 को आप आचार्यपीठ आये, महाराजश्री को अवलोकन कराया। आपश्री ने आवश्यक निर्देशन के साथ ग्रन्थ प्रकाशन की अनुमति प्रदान की। इसी क्रम में मुझे भी ग्रन्थ को देखने का अवसर मिला। शोधप्रबन्ध में श्री ललितजी की मौलिक्ता एवं चिन्तनशीलता को देखकर कुछ लिखने का मानस बना।

सुदर्शन चक्रावतार आद्यानम्बार्काचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त स्वाभाविक द्वैताद्वैत किंवा स्वाभाविक भेदाभेद है। विभिन्न सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का परिशीलन करने पर ही द्वैताद्वैत/भेदाभेद का रहस्य समझ में आता है। सभी आचार्यों ने प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र) पर अपने-अपने अनुभव तथा दृष्टिकोण से तत्कालीन जनमानस, सामाजिक गतिविधियों को ध्यान में रखकर शास्त्र प्रणयन, भाष्य रचनाएँ की है।

जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीश्रीजीमहाराज द्वैताद्वैत प्रस्थान के मान्य आचार्य हैं। आपश्री की रचनाएँचाहे संस्कृत में हों चाहे हिन्दी में हों, सभी सिद्धान्तपरक, उपासनापरक एवं सदाचारपरक हैं। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के पूर्वाचार्य प्रवर एवं मनीषी विद्वज्जनों में प्रभूतरूप में शास्त्र रचना कर सदाचार-उपासना-सिद्धान्त का दिग्दर्शन कराया है।

1. सदाचार

सदाचार में प्रात: ब्रह्म मुहूर्त से लेकर रात्रि शयन पर्यन्त की दिनचर्या सनातन वैदिक पद्धति के अनुसार निर्दिष्ट की गयी है। योग्यताक्रम में त्रैवर्णिक द्विजातियों के लिए वैदिक तान्त्रिक उभयविध विधियों का निर्देश है। स्त्री शूद्रादिजनों के लिए पौराणिक तान्त्रिक विधियों का निर्देश है। शौच-स्नान-सन्ध्या-पूजन-दान-भोजन-शयनादि सभी क्रियाएँ सदाचार के अन्तर्गत हैं जो नारदपञ्चरात्र, गौतमीयतन्त्र, क्रमदीपिका प्रभृति आगम शास्त्रों में वर्णित रीति से सम्पादित की जानी चाहिए।

2. उपासना

निम्बार्क सम्प्रदाय में उपासना वृन्दावन नित्य निकुञ्जबिहारी श्रीराधाकृष्ण युगलस्वरूप की माधुर्य रूपा है। नित्य सहचरी वृन्द सेवित श्रीराधाकृष्ण युगलरूप में ही पूर्ण ब्रह्म हैं। राधाकृष्ण क्या हैं? दो होते हुए भी एक और एक होते हुए भी दो ऐसा वैलक्षण्य स्वरूप है। आचार्य कहते हैं–

जयति जयति राधाकृष्णयुग्मं वरिष्ठं व्रत सुकृतनिदानं यत्सदैतिस्यमूलम्।।
विरल सुजनगम्यं सच्चिदानन्दरूपं व्रजमलयविहारं नित्यवृन्दावनस्थम्।।

अर्थात् परमवरिष्ठ श्रीराधाकृष्णयुगलस्वरूप सर्वोत्कर्ष से अपने दिव्यधाम नित्य वृन्दावन में सदा अवस्थित हैं। जो निखिल व्रतदान यज्ञ जप-अनुष्ठान के निदान और

समस्त इतिहास पुराणादिशास्त्रों के मूल स्रोत हैं, जिस सच्चिदानन्दस्वरूप युग्मतत्व को विरले ही सज्जन महानुभाव अपरोक्ष साक्षात्कार कर पाते हैं, व्रजमण्डल में गोचरणादि के व्याज से सदा विहार करने वाले श्री राधाकृष्ण युगल की सदा जय हो। इस युगल उपासना में भी स्वाभाविक भेदाभेद हैं। ब्रह्मलीन और ब्रह्मजगत् की तरह स्वतन्त्र परतन्त्र सत्ता के रूप में इनका भेदाभेद नहीं है, किन्तु दोनों स्वतन्त्र सत्ता हैं फिर भी नार्याकृतिनराकृति मात्र से भेद है। उपनिषद् में भी ''येयं राधा यश्चकृष्णोरसाब्धि'' कहकर दोनों का एक ही विशेषण ''रसाब्धि'' दिया गया है। इस प्रकार उपासना का भेदाभेद सिद्धान्त के भेदाभेद से भिन्न है।

3. सिद्धान्त

''भोक्ताभोग्यं प्रेरितारंच मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्मस्ये तत्'' इस श्रुति वचन के अनुसार चित् अचित् ईश्वर रूप पदार्थत्रय के स्वरूप गुण लक्षण और सम्बन्ध का बोध सुखपूर्वक हो एतदर्थ भगवान् श्री व्यास देव ने शारीरकमीमांसासूत्र (ब्रह्मसूत्र) का निर्माण किया। जिनमें ''अथा तो ब्रह्म जिज्ञासा, जन्माद्यस्थयत:, शास्त्रयोनित्वात्, तत्तुसमन्वयात्'' यह सर्ववेदान्त सारभूत चतु:सूत्री है, इसका ही विस्तार समन्वय-अविरोध-साध्य-फलाध्यायरूप सूत्रसमूह है। साधनाध्याय में वर्णित 'उभयव्यप-देशात्त्वाहिकुण्डलवत्' 'प्रकाशाश्रयवद् वा तेजस्त्वात्' ये दो सूत्र क्रमश: ब्रह्मजगत् और ब्रह्मजीव के स्वाभाविक भेदाभेद (द्वैताद्वैत) का सम्यक् रूप से बोध कराते हैं। श्रुतियों में भेदपरक और अभेदपरक उभयविध वचन उपलब्ध होते हैं, दोनों मुख्य हैं, उनमें बाध्यबाधक भाव नहीं है।

मूर्त अमूर्त आदि समस्त कार्य रूप जगत् (अचिद्वर्ग) स्वरूप से ब्रह्मभिन्न दीखने पर उससे अभिन्न ही रहता है क्योंकि भेदबोधक और अभेदबोधक वाक्यों का परस्पर बाध्य बाधक भाव न होने से मुख्य व्यवहार देखा गया है। इसमें दृष्टान्त दिया गया 'अहिकुण्डलवत्, अर्थात् जैसे कुण्डलोपादानभूत रज्जु के आकार में सर्प, उपादान निमित्त दोनों कारण हैं। उसी प्रकार अहिस्थानीय सर्वशक्तिसमन्वित ब्रह्म जगत् के प्रति उपादान और निमित्त दोनों कारण है। अहिस्थानीय ब्रह्मकारण, कुण्डलस्थानीय विश्वप्रपञ्च कार्य है। अत: स्वभावत: भिन्नाभिन्न सिद्ध है।

जिस प्रकार अचिद् वर्ग का ब्रह्म के साथ भेदाभेद है उसी प्रकार जीव-ब्रह्म का सम्बन्ध भी स्वाभाविक भेदाभेद है। इसके लिए दूसरा सूत्र 'प्रकाशाश्रयवद् वा तेजस्त्वात्' उद्धृत किया गयाहै। प्रकाश-सूर्य अग्नि आदि की प्रभा और आश्रय सूर्यबिम्ब, अग्निपुञ्जादि। क्योंकि दोनों तेजोरूप हैं। जैसे अंशरूप जीवनज्ञानस्वरूप है तो अंशीरूप ब्रह्म स्वत: ज्ञानस्वरूप है ही। इस प्रकार जीवब्रह्म में अणु-वृहद्, अंश-

अंशी रूप से स्वरूपत: भिन्नता भी है ज्ञानस्वरूपत्वेन दोनों अभिन्न भी है। ब्रह्माधीन स्थिति प्रवृत्ति होने से स्वाभाविक रूप में भेदाभेद सिद्ध होता है।

श्रीललितजी ने उपर्युक्त सिद्धान्त उपासनादि का अपनी चिन्तन धारा में सम्यक् रूप से स्पष्ट करने का प्रयास किया है जो स्तुत्य है। 'राधामाधवरसविलास' के काव्यलक्षणों, प्रयोजनों, गुणदोषों, शक्ति लक्षण व्यञ्जनाओं, रसोत्पत्ति के विभावादि कारणों, शब्दार्थालङ्कारों का यत्र-तत्र उद्धरणों द्वारा स्पष्ट किया है। इस प्रकार राजस्थान में निम्बार्कदर्शन के समन्वयात्मक दृष्टिकोण को जिन सन्त कवियों ने अपनी साहित्य सृजना से परिबृंहित किया है उनमें अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री श्रीजी महाराज कानाम इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों से समुल्लेखनीय है। ऐसा ग्रन्थकार का सद्भाव अनुकरणीय एवं आदर्शपूर्ण है। प्रस्तुत शोधप्रबन्ध मौलिकता से समन्वित परम उपादेय होगा, ऐसी भगवान् श्रीहरि से अभ्यर्थना करते हुए लेखनी को विराम देता हूँ।

शुभमिति
जेष्ठ शु. 1 गुरुवार, सं. 2068
दिनांक 2.6.2011

विद्वद्विधेय:
वासुदेवशरणउपाध्याय
निम्बार्कभूषण, व्या. सा. वेदान्ताचार्य
प्राचार्य,
श्री सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय
निम्बार्क तीर्थ-सलेमाबाद
जिला- अजमेर (राजस्थान)

Pt. Mohan Shastry 'Prabhakar'

M.A. (English Litt., Skt. Litt & Pol. Sc.)
Sahityacharya, Sahitya-Ratna
P.G. Diploma in Astrology
M.Ed. (Specialization in Eng. Litt.)
Chairman of Shastry Jyotish Sansthan
Matsyanchal (Teori) Viratnagar
Distt. Jaipur (Rajasthan)

Sentiments of Inspiration

It is a matter of pleasure and pride that my younger son Dr. Lalit Kumar Sharma 'Advocate' has successfuly completed the thesis and awarded the degree of Ph.D. in Hindi-Literature (Nimbark-Hindi-Sahitya) Title of the thesis is -

''हिन्दी के भक्ति साहित्य में राजस्थानी निम्बार्क सन्त कवियों का योगदान''
(Literary Contribution of the Nimbarkiya Hindi Poets of Rajasthan-territory)

The Style and the diction chosen by Dr. L.K. Sharma 'Advocate' for their research work is original in nature and phenomena. I have no manner of doubt that with the research-work in Nimbark Sahitya and Philosophy. Its accessories and introduction forming a knowledge able backdrop to the scripture and delineating it's significance, the research-work well be received by a large clientele of inquistive readers, devotees and also scholars in India and abroad with wide accleum and a sense of gratitued to the scholer Dr. Lalit Kumar Sharma 'Advocate' richly-deserves.

It is renaissence of arts, philosophycal approches, Indian culture and civilization. With great homeage to reverend his holiness Ananta Shri Vibhushit, Nimbark-Peethadhishwar Jagat GuruShri Radhna Sarweshwar Sharan Dewacharya Ji Maharaj. Shri Shriji Maharaj Shri Nimbarkacharya-peeth, Nimbarktirth (Salemabad), Ajmer.

Charan-Raj-Chancharik
Pt. Mohan Shastry 'Prabhakar'
Shastri Sadanam
V/P Teori, Teh-Viratnagar
Distt. Jaipur (Raj) 303003
Mob. 9928417094

।। श्री सर्वेश्वरो विजयते।।

सुरभित-भाव-प्रसूनाञ्जलि:

प्राक्तनकाल में आचार्यों ने आर्यावर्त्त के सांस्कृतिक परिवेश को रचा था। समत्व, ममत्व, भातृत्व एवं सहिष्णुता का अलख जगाया था, जो हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद की ऋचाओं के सौम्य-कलेवर में समाविष्ट है–

ॐ संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

देवाभागं यथापूर्वे संजनाना उपासते।। (ऋग्वेदस्थ संज्ञान सूक्तात्)

संकल्प शक्ति विवेचना-शक्ति एवं आत्मानुशासन शक्ति-त्रय समान हों, जिसमें बल, ज्ञान एवं धैर्यावलम्बन लेकर अनुसंधित्सु दैदीप्यमान् दिव्यज्ञान राशि के आलोक से अखिल जगति तल को आलोकित करने में अपना विलक्षण अवदान देकर भारत को भव गुरु एवं गौरवशाली बना सकें। यथा द्रष्टव्य है—

भव गुरु गौरवशाली देश:, पूज्यतमो न हि संशय लेश:।।

अनन्तानन्त श्री समलंकृत निम्बार्कपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्री राधासर्वेश्वरशरण देवाचार्य 'श्रीश्रीजी' महाराज ने वर्णित दिव्य-भावों का क्रियान्वयन एवं समन्वय कर इस भारत देश को संगठित करने में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया है। आचार्य-कर्म की सात्विकता, व्यापकता एवं विलक्षणता इसी में विद्यमान है, कि आचार्यवर्य लोकजीवन को मंगलमय एवं सत्यान्वेषण की दिशा दे सकें। ऐसे भाव हृतपटल पर स्वर्णाक्षरों में अंकित होकर झंकृत होने लगें–'माता भूमि:, पुत्रोऽहं पृथिव्या:।' मुझे महती हार्दिक प्रसन्नता है, कि हमारे पूज्य आचार्य श्रीचरण साहित्यिक साधना को लोकमंगल की पुनीताकांक्षा से अभिभूत होकर अनवरत सत्साहित्य प्रणयन कर रहे हैं जो हमारे राष्ट्र एवं सनातन संस्कृति के लिए शुभसंकेत है। राष्ट्र भक्ति के लोकतांत्रिक मूल्यों एवं शाश्वत सांस्कृतिक आदर्शों को जीवन्त करने का जो सहज सरस उपक्रम काव्य के माध्यम से श्री श्रीचरणों ने किया है, वह कमनीय, विलक्षण एवं विचक्षण नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का सुपरिणाम है।

पूज्यपाद पद्मों की अहैतुकी कृपा के फलस्वरूप मुझ चरणरज किंकर को 'श्रीश्रीजी' महाराज द्वारा प्रणीत संस्कृत एवं स्तोत्र साहित्य पर अनुसंधान कार्य करने का गौरव भारत के लब्धप्रतिष्ठ शोध मनीषी श्रीयुत डॉ. प्रभाकर शास्त्री के निर्देशन में संप्राप्त हुआ जो मेरे पुण्यों का सुफल है। मेरे पूज्यपाद गोलोकवासी पितामह श्रीयुत हरिनारायणजी शास्त्री की दिव्य प्रेरणा ने मुझे भगवद् स्वरूप श्री श्री चरणों का सानिध्य प्रदान किया जिससे मुझे आचार्यवर्य के तत्त्वावधान में संचालित श्री सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) में गीर्वाण-वाणी एवं भगवत्सेवा-शुश्रूषा का अवसर मिला।

मेरे सहोदर अनुज डॉ. ललित कुमार शर्मा जो राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर में अधिवक्ता के व्यस्ततम व्यवसाय में संलग्न हैं। उनको मैंने श्रीचरणों द्वारा प्रणीत हिन्दी कृतियों पर अनुसंधान कार्य करने के लिए प्रेरित किया। यह प्रेरणा उनकी अन्त:शक्ति बन गई। डॉ. ललित कुमार शर्मा ने अपनी तत्त्वान्वेषी बुद्धि से सत्यान्वेषण के साथ अनुसंधान कार्य निर्धारित समयान्तराल में निष्पादित किया, जो उनके व्यस्ततम व्यवसाय

संचालन के साथ दुरूह था। यह शोध कार्य प्रणयन श्री सर्वेश्वर प्रभु कीअहैतुकी कृपा का ही परिणाम है। भगवद्स्वरूप महाराज श्री के दिव्य अमृतमयी आशीर्वादस्वरूप गुरु पूर्णिमा महोत्सव पर इस ग्रन्थ रत्न का प्रकाशन एवं सम्पादन सम्पन्न हुआ।

यह मेरी अन्त:स्थगत विनम्र धारणा है, कि जब तक ज्ञान आध्यात्मोन्मुख, नैतिकता एवं कलात्मकता के धरातल पर समुत्पन्न न हो तब तक वह देश, समाज, सभ्यता एवं संस्कृति के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। पाश्चात्य विचारकों ने भी ऐसा मुक्त कण्ठ से स्वीकारा है–

''Physical efficiency and intellectual alertness are dangerous if spirictual illiteracy prevails.''

आध्यात्मिक ज्ञान के अभाव में शारीरिक कुशलता एवं बौद्धिक सतर्कता भी निष्फल हो सकती है।

इस ग्रन्थ वारिधि में आध्यात्मिक ज्ञान, अनवरत श्रमशीलता एवं बौद्धिक सतर्कता की अनुपम त्रिवेणी का अभूतपूर्व संगम है, जो श्रीचरणों के दिव्य धर्मोपदेश के बीजवपन का ही पल्लवन एवं पुष्पीकरण है।

मेरी श्री सर्वेश्वर प्रभु से यही अभ्यर्थना है, कि यह शोध-ग्रन्थ-रत्न श्री चरणों का सानिध्य प्राप्त कर, साम्प्रदादिक श्रद्धा एवं निष्ठा का राष्ट्रव्यापी प्रचार-प्रसार करने में नितान्त परमोपयोगी होगा। एवं प्रकारेण अन्त: स्थगत मन: पूत भाव-कुसमाञ्जलि सादर सभक्ति समर्पित है–

श्रीराधापद पूर्व है, सर्वेश्वरमय नाम।
पूज्यपाद गुरुदेव को शतशतबार प्रणाम।।
शत शत बार प्रणाम, चित्त में महिमा गाऊँ।
पाद-पद्म रज मुहुर्मुहु: मैं शीश लगाऊँ।।
किंकर 'परमानन्द' अनुग्रह नव नित पाऊँ।
सुरभित-सरसिज चरण-युगल में, शीश नवाऊँ।।

चरणरज चञ्चरीक :
निम्बार्कभूषण डॉ. परमानन्द शर्मा
एम.ए. (संस्कृत साहित्य, हिन्दी साहित्य)
एम.फिल (संस्कृत साहित्य, हिन्दी साहित्य)
साहित्याचार्य:, शिक्षाशास्त्री
पी-एच.डी. (निम्बार्क संस्कृत साहित्य)
व्याख्याता (R.E.S.)
सम्पर्क सूत्र - शास्त्रि-सदनम्
वार्ड नं. 6, श्रीजगदम्बा कॉलोनी
मत्स्यांचल (तेवड़ी) मार्ग,
विराट नगर, जयपुर (राजस्थान)
चलभाष - 9928417094

हृदयोद्गार

भारत की अनन्त और असीम महिमा हैं, जिस आर्यावर्त्त की परम पावन-पुनीत-रम्य धरा पर स्वयं सर्वेश्वर श्री हरि नाना स्वरूपों में अवतरित होते हैं, यहाँ की कमनीय प्राकृतिक सुषमा समलंकृत सौम्य-पावन-पवित्र रज में देवगण भी बाल-क्रीड़ा करना अपना परम अहोभाग्य मानते हैं। भारत की पावन धरती का गुणगान देवगण भी मुक्त कण्ठ से करते हैं।

अगणित ऋषि-मुनि, तपस्वी, योगी-यति, संन्यासी, विरागी महात्मा-जन इस धरती की मंगलमय क्रोड में तपः साधना करते रहे हैं। इस सुभग वसुधा पर आध्यात्मिक चेतना का मनोहर दर्शन सदा सर्वदा विद्यमान है। आध्यात्म-चेतना के अखण्ड प्रकाश पुंज देवस्वरूप श्री 'श्रीजी' महाराज हैं, जिनके दिव्य अन्तःकरण से उनकी पुनीत वाणी निस्सृत हो पुण्य सलिला सुर सरिता (गंगा) की भाँति प्रवहमान है, जिसमें भावुक भक्त एवं सहृदय पाठक/श्रोता अवगाहन कर कृतकृत्य हो जाते हैं। ऐसे विलक्षण मनीषियों की दिव्यातिदिव्य वाणी स्वरूपा गंगा-यमुना-सरस्वती प्रभृति पुण्य सरस सलिला सरिताओं के संगम स्वरूप महासिन्धु में अनवरत गौते लगाकर शोधार्थियों द्वारा अनन्त ज्ञान-विज्ञान मणिरत्नों का अखण्ड संचयन किया जा रहा है, यह स्पृहणीय व उपादेयात्मक कार्य है। इसी प्रकार के शोध कार्य का निष्पादन मेरे पति **श्री डॉ. ललित शर्मा, एडवोकेट** ने किया है। जिस अखण्ड कार्य की पूर्णाहुति स्वरूप यह शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो रहा है, यह मेरे लिए गौरवपूर्ण है। मैं सर्वेश्वर प्रभु श्री हरि से यही अभ्यर्थना करती हूँ, कि श्री 'श्रीजी महाराज' को दीर्घायु प्राप्त होवे जिससे ऐसे अनेक शोध-ग्रन्थ रत्नों का प्रकाशन व लोकार्पण हो सके।

पुनश्चः श्री चरणों में सादर सभक्ति मुहुर्मुहुः दण्डवत् नमन।

निवेदिका

श्रीमती सन्तोष शर्मा
एम.ए. (आंग्ल साहित्य, हिन्दी साहित्य)
बी.एड., शिक्षिका (R.E.S.)

आत्मनिवेदनम्

भारत की अनन्त और असीम महिमा है, जिस भारत की परम-पावन-पुनीत-रम्य धरा पर स्वयं सर्वेश्वर श्रीहरि नाना स्वरूपों में अवतीर्ण होते हैं। यहाँ की पावन-पवित्र रज में देवगण भी बाल-क्रीड़ा करना अपना अहोभाग्य मानते हैं। भारत की पावन धरती का गुणगान देवगण भी मुक्त कण्ठ से करते हैं—

गायन्ति देवा: किल गीतकानि,
धन्यास्तु ये भारत भूमि-भागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्ग भूते,
भवन्ति भूय: पुरुषा: सुरत्वात्।।

(विष्णुपुराण, अंश 2, अध्याय 3, श्लोक 24)

अगणित ऋषि-मुनि, तपस्वी, योगी-यति, संन्यासी, विरागी महात्मा-जन इसकी मंगलमयी क्रोड में तप: साधना करते रहे हैं।

गंगा-यमुना-सरस्वती प्रभृति पुण्य सरस सलिला सरिताएँ जहाँ पर कल-कल निनाद से प्रवहमान होती हुई, मानव के पापों का क्षय करती हैं। जिस सुभग-वसुधा पर आध्यात्मिक चेतना का मनोहर दर्शन सदा-सर्वदा विद्यमान है, वस्तुत: ऐसे भारत वर्ष का गुणगान व्रजेश्वर श्रीसर्वेश्वर प्रभु का ही स्तवन है—

जय जय बोलो भारत वसुधा।
शस्य श्यामला गंग जल विमला, कोटि चन्द्र सम शीतल अतुला।।
गोरस सरिता सुरगण गीता, विलसत अनुपम निर्मल प्रभुता।
'शरण' सदा राधा सर्वेश्वर, पुनि पुनि बोलो जय जय वसुधा।।

(वर्तमान निम्बार्काचार्य प्रणीत 'भारत कल्पतरु' से)

आर्यावर्त्त (भारत) की अपनी प्राचीन भाषा सुर-भारती, गीर्वाण-वाणी संस्कृत है, जिसका अपरमित माहात्म्य है। यह देववाणी न केवल भारत की भाषाओं की ही जननी है, अपितु समस्त विश्व-भाषाओं का मूल-स्रोत है। इस भारती में अनन्त ज्ञान-विज्ञान निहित है। आध्यात्मज्ञान की तो यह महासिन्धु रूप है, ऐसी दिव्यातिदिव्य वाणी का स्वाध्याय परमपुण्य रूप है। यथा द्रष्टव्य है—

श्रुति-स्मृति ज्ञान विधान धारिणीं,
समग्र भूमौ सुख शान्ति वाहिनीम्।

सुधामयीं तां मनुजाऽघ हारिणीं,
भजे सदाऽहं हृदि देव भारतीम्।।
समग्र-भाषा जननीमधीश्वरीं,
प्रजाकरीं मुक्तिकरीं महेश्वरीम्
रसाल रूपां रसदान तत्परां,
भजे सदाऽहं हृदि देवभारतीम्।।



(भारत-भारती वैभवम्, श्लोक सं. 50-15)

मैकाले के मानस-पुत्रों द्वारा सुरभारती-संस्कृत को 'मृत-भाषा' का दर्जा दिया गया है परन्तु उनका इस प्रकार का वक्तव्य सत्य से कोसों दूर, दुर्भावना से ग्रसित, कपोल-कल्पित विचार है। जिस संस्कृत का अक्षय साहित्य-भण्डार हो, जिस वाङ्मय में 'ऋग्वेद' जैसा विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ हो, 'महाभारत' जैसा 'ज्ञान का विश्वकोष' हो, जिस सुरभारती की उपासना अनवरत सत्साहित्यकार कर रहे हों, जिसके ज्ञान-वारिधी में अनुसंधित्सु-वृन्द बार-बार गौते लगाकर अमूल्य उपादेय दैदीप्यमान ज्ञान रत्नों का अनुसंधान-पूर्वक संचय कर रहे हों, वह सुरभारती संस्कृत 'मृतभाषा' कैसे हो सकती है? उसकी प्रमुख सहचरी हिन्दी भाषा उपेक्षित क्यों कर हो सकती है? संस्कृत को 'मृत भाषा' कहना पाश्चात्य चकाचौंध से चुंधियाये हुए कुछेक अज्ञों का अनर्गल प्रलाप है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के गौरवान्ति पद पर वास्तविक रूप में समलंकृत न होने देना। उसके साथ अपनों द्वारा किया गया घोर अन्याय है। इसी से कुण्ठित हिन्दी मर्मान्तिक आतुरवाणी में विलाप कर रही है – **'हिन्दी पूछहिं कातर वाणी, चेरी छाँडि कब होएहुँ रानी?'**

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से देखें, तो संस्कृत एवं उससे उद्भूत हिन्दी भाषा वैज्ञानिक भाषा हैं। जिनमें ध्वनियों का वर्गीकरण वैज्ञानिक क्रमानुसार है। संस्कृत भाषा भारतीय भाषाओं का ही नहीं अपितु समस्त विश्व-भाषाओं का मूलस्रोत रही है। इसकी प्रमुख सहचरी राष्ट्रभाषा हिन्दी है। हिन्दी 'भाषा-विज्ञान' के खराद बिन्दुओं पर पूर्णत: खरी उतरती है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संस्कृत एवं हिन्दी का सम्बन्ध चोली-दामन का सा साथ है। यथा–**'संस्कृत के बिना हिन्दी मूल-विहीन है तथा हिन्दी के बिना संस्कृत फल-विहीन है।'** हिन्दी-साहित्य की काव्य विकास यात्रा को चार कालों में विभाजित किया गया है। वि.सं. 1375 से वि.सं. 1700 तक के समयान्तराल को समीक्षक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'भक्तिकाल' नाम से अभिहित किया है। भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग कहा जाता है। इस सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य के लब्ध प्रविष्ठ समालोचक डॉ. श्याम सुन्दरदास के विचार इस प्रकार है – ''जिस युग में सन्त कवि कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, भक्तिमती कवयित्री मीराँ ... प्रभृति कवियों की पुनीत वाणी उनके दिव्य अन्त:करण से निकलकर देश के कौने-

कौने में फैल गई थी। हिन्दी के इस समयान्तराल को भक्ति काल नाम से व्यहृत किया जाता है; जो हिन्दी साहित्य का स्वर्ण-युग था।''

इस स्वर्ण युग की काव्य-निधि के अक्षय भण्डार में निम्बार्कीय प्रतिनिधि हिन्दी कवियों का महनीय अवदान रहा है। राजस्थान में निम्बार्क सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में महाकवि परशुराम देव एवं उनके द्वारे के कवियों का हिन्दी के भक्ति साहित्य में अभूत-पूर्व योगदान रहा है; जो स्पृहणीय व श्लाघनीय है।

मैंने अपने शोध प्रबन्ध '**हिन्दी के भक्ति साहित्य में राजस्थानी निम्बार्क सन्त कवियों का योगदान**' के प्रथम अध्यायान्तर्गत निम्बार्क-दर्शन का परिचय, प्रमुख सिद्धान्त, उपासना तत्त्व, स्वरूप-निरुपण, द्वैताद्वैत-दार्शनिक-सिद्धान्त विवेचन, समन्वयात्मक दृष्टिकोण, निम्बार्कीय उपासना की वैज्ञानिक-दृष्टि तथा युगलरसोपासना का साङ्गोपाङ्ग परिवर्णन किया है।

द्वितीय अध्याय में निम्बार्क-सम्प्रदाय की पीठाचार्य-परम्परा एवं आचार्य-परम्परा के द्वारा प्रदत्त साहित्यिक अवदान का सुसंगत वर्णन प्रस्तुत करते हुए, अखिल भारतीय निम्बार्काचार्य पीठ, निम्बार्क तीर्थ (सलेमाबाद) का पौराणिक महत्त्व एवं नामकरण का औचित्य प्रतिपादित किया है।

शोध प्रबन्ध के तृतीय-अध्यायान्तर्गत वैष्णव-भक्ति के उद्‌भव एवं विकास का प्रतिपादन करते हुए मध्ययुगीन वैष्णव-भक्ति के औचित्य पर प्रकाश डाला है। साथ ही सनातन धर्म-दर्शन का विवेचन करते हुए, द्वैताद्वैत दार्शनिक-सिद्धान्त का प्रख्यापन किया है; जिस दार्शनिक विचारधारा में अन्य साम्प्रदायिक-दार्शनिक विचारधाराओं का समन्वयात्मक-समावेश है।

अनुसंधान-प्रबन्ध के चतुर्थ-अध्याय में मध्ययुगीन भक्ति-आन्दोलन को दृष्टिगत रखते हुए पौराणिक वैष्णव-धर्म, दक्षिणी की भक्ति धारा, बौद्ध धर्म का प्रभाव, नाथों का योग मार्ग, सूफीमत का प्रभाव एवं सामाजिक, साहित्यिक व राजनैतिक-परिस्थितियों का अंकन प्रस्तुत किया गया है।

उक्त प्रबन्ध के पाँचवें अध्याय में राजस्थान में निम्बार्क-सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में आचार्य महाकवि परशुराम देव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मूल्यांकन करते हुए निम्बार्कीय प्रतिनिधि हिन्दी-कवियों के साहित्यिक-अवदान का प्रतिपादन किया है। साथ ही 'परशुराम द्वारे' के कवियों की काव्य-साधना का विवेचन प्रस्तुत है।

शोध के छठे अध्याय में श्री परशुराम देव द्वारा प्रणीत 'परशुराम सागर' का समालोचनात्मक अध्ययन एवं कवि के काव्य सौष्ठव को दृष्टिगत रख भावपक्षीय व कलापक्षीय विशेषताओं का सांगोपांग परिवर्णन प्रस्तुत किया गया है।

वर्णित शोध-प्रबन्ध के सप्तम-अध्यायान्तर्गत वर्तमान आचार्य वर्य श्री राधा सर्वेश्वर शरण देवाचार्य जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व उल्लिखित करते हुए, उनके कार्यक्षेत्र व उपलब्धियों पर सांगोपांग प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। साथ ही आप श्री के द्वारा विरचित संस्कृत व हिन्दी कृतियों का नामोल्लेख, वर्गीकरण एवं प्रतिपाद्य विषय का प्रख्यापन किया गया है।

शोध-प्रबन्ध के अष्टम-अध्याय में वर्तमान आचार्य वर्य की हिन्दी कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए, उनके द्वारा प्रणीत राधामाधव रस-विलास (महाकाव्य) का काव्यशास्त्रीय दृष्टि से समालोचनात्मक अध्ययन सांगोपांग रूप में प्रतिपादित किया गया है। साथ ही आचार्य श्री के सहृदय कवि रूप का मूल्यांकन करते हुए उनकी समन्वयात्मक विचारधारा की अजस्र निर्मल धारा का शुभ्र-दर्शन प्रस्तुत हुआ है एवं प्रकारेण अष्टाध्यायत्मक रूप में शोध-प्रबन्ध का समापन हुआ है, जो गुरुजनों के शुभाशीर्वाद का मधुर कृपाफल है।

यदि प्रस्तावित विषय का आमूल चूल अवान्तर समग्र विवरण प्रस्तुत किया जाता तो शोध-प्रबन्ध का आकार बहुत अधिक वृहद् हो जाता, जिससे शोध सीमाओं का उल्लंघन होता अत: यहाँ केवल मूल विषय एवं सम्बद्ध कवियों का विवेचन संभव हो सका है, एतदर्थ मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

मनुस्मृतिकार महर्षि मनु ने लिखा है कि—

यं मातापितरौ क्लेशं, सहेते संभवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या, कर्तुं वर्षशतैरपि।।

अर्थात् मनुष्य को जन्म देने में माता-पिता जिस क्लेश की अनुभूति करते हैं, उस अवर्णनीय क्लेश की निष्कृति मानव सैकड़ों वर्षों तक उनकी सेवा-शुश्रूषा करके भी नहीं कर सकता, वस्तुत: यह कथन भारतीय संस्कृति का आदर्श है।

मैं अपने परमादरणीय पूज्य पिता **श्री पं. मोहन शास्त्री 'प्रभाकर'** एवं वन्दनीयचरणा पूज्या **माताश्री गीता शर्मा शास्त्री** का आभार यदि अभिव्यक्त करूँ तो वह केवल औपचारिकता ही होगी, क्योंकि मेरा सम्पूर्ण जीवन आज जिस रूप में विद्यमान है, वह सब कुछ उन्हीं की अनुपम देन है। मैं उनके प्रति विनय भाव से नतमस्तक तो हूँ ही पर सदा-सर्वदा अपने भावी जीवन में भी उनके आशीर्वाद का आकांक्षी रहूँगा। साथ ही मैं अपने प्रात: वन्दनीय, पूज्यपाद, पण्डित-प्रवर, सन्मार्ग-प्रेरक, गोलोकवासी पितामह **श्रीयुत पं. हरिनारायण जी शास्त्री** को भी इस अवसर पर विस्मृत नहीं कर सकता, जो न केवल मेरे पितामह थे वरन् जीवन के सच्चे पथ-प्रदर्शक थे। हिन्दी भाषा एवं साहित्य के अध्ययनानुशीलन के प्रति तो उन्होंने मुझे प्रवृत्त किया ही साथ ही साक्षात् भगवद्स्वरूप अनन्तश्रीविभूषित प्रात: स्मरणीय

निम्बार्कपीठाधीश्वर वर्तमान जगद्गुरु श्री 'श्रीजी' महाराज के पुनीत पाद-पद्मों में आश्रय पाने का इस चरणरजकिंकर को मार्ग-प्रशस्त किया।

स्नातकोत्तर (हिन्दी-साहित्य) परीक्षा समुत्तीर्ण करने के उपरान्त मेरे मन में शोध-कार्य करने की जिज्ञासा हुई, मैं इसे न केवल इस जन्म के अपितु जन्मान्तरों के उपलब्ध पुण्यों को भी कारण मानता हूँ कि अपनी रुचि एवं मनः कामनानुरूप **'हिन्दी के भक्ति-साहित्य में राजस्थानी निम्बार्क सन्त-कवियों का योगदान'** विषय पर शोध-कार्य करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ, जिसकी पूर्णहुति के रूप में अपनी अकिंचन बुद्धि-विलास स्वरूप यह शोध-प्रबन्ध परीक्षणार्थ राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर को प्रस्तुत किया एवं शोधोपाधि (पी-एच.डी.) प्राप्त की।

यह एक दैवीय-संयोग ही मानता हूँ, कि मैं जिस विषय पर शोध कार्य करने के लिए किंचित् विचलित था, उसे सही दिशा प्रदान करने के लिए संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं अधिष्ठाता (कला संकाय) विद्वद्वरेण्य, महामहिम राष्ट्रपति सम्मानित, प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय गुरुदेव **श्रीयुत डॉ. प्रभाकर शास्त्री** जो सम्पूर्ण भारत वर्ष में शोध के अधिकारी-विद्वान् तो माने ही जाते हैं, साथ ही परम्परा-प्राप्त भारतीय संस्कृति के मूल धर्मशास्त्र विषय के विशिष्ट विद्वान् भी है। आप संस्कृत वाङ्मय एवं हिन्दी साहित्य दोनों के विलक्षण मनीषी हैं। आपकी ऊर्जस्वित प्रेरणा से मैं वर्णित विषय पर अनुसंधान कार्य करने हेतु समुद्यत हुआ। इसे मूर्त रूप प्रदान करने के लिए परम सम्माननीय श्रद्धेय गुरुवर **श्रीमान् डॉ. बाबू लाल महावर** प्रवक्ता (हिन्दी) बाबा भगवान् दास राजकीय महाविद्यालय, चिमनपुरा, शाहपुरा (जयपुर) की अनुमति एवं दिशा निर्देशन के फलस्वरूप इस शोध कार्य की रूपरेखा बनी और उसके अनुरूप यह शोध प्रबन्ध परिपूर्ण हो सका।

इस शोधकार्य की पूर्णता में श्रीसर्वेश्वर प्रभु की अन्तः प्रेरणा, अपने पूज्यपाद पितामह, वन्दनीय माता-पिता, प्रातः स्मरणीय गुरुदेव अनन्त श्री विभूषित निम्बार्कपीठाधीश्वर वर्तमान जगद्गुरु श्री 'श्रीजी' महाराज का जो शुभाशीर्वाद, कृपा सानिध्य एवं सहयोग प्राप्त हुआ है उससे मैं सम्भवतः इस जन्म में तो उऋण नहीं हो सकता। मैं सभी प्रातः स्मरणीय पूजास्पदों की चरण-वन्दना करते हुए उनके प्रति न केवल आभारी हूँ, अपितु समर्पित हूँ।

हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में कार्यरत समस्त गुरुजनों को मैं सादर सभक्ति नमन करता हूँ कि उनका मुझे मंगलमय आशीर्वाद प्राप्त होता रहा है। उन्होंने मुझे जो मार्गदर्शन प्रदान किया है उसके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। इसी प्रसंग में, मैं मेरे सहोदर डॉ. परमानन्द शर्मा, व्याख्याता (हिन्दी), श्री नारायण प्रसाद शर्मा,

व्याख्याता (आंग्ल-साहित्य), श्री रघुवीर प्रसाद शर्मा (प्रधानाध्यापक), श्री बालासहाय शर्मा (प्रधानाध्यापक), सुहृदवर्य श्री श्रीराम यादव (कॉन्टेक्टर), निम्बार्कपीठस्थ समस्त परिकर एवं अन्य सभी शुभ-चिन्तक, बन्धु-बान्धव के प्रति आभार ज्ञापित करना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने ज्ञान संवर्धन के साथ अन्य सभी आवश्यक सुविधाएं समुपलब्ध कराने में अखण्ड सहयोग किया।

इसी क्रम में अनुजा श्रीमती कादम्बिनी शास्त्री एम. ए. (त्रय), बहनोई श्रीमान् डॉ. संजय शर्मा, सहोदर डॉ. परमानन्द शर्मा, भातृजाया श्रीमती अनुराधा शास्त्री, अग्रज पं. मनु कुमार शास्त्री, अनुज हनुमान शर्मा ज्योतिषाचार्य (गणित), धर्मपत्नी श्रीमती सौम्या (सन्तोष) शर्मा, पुलकित पलकें : अनुकृति, प्रणय, पीयूष, मयंक, अन्य सभी सुहृदवर्य एवं सहयोगी-वृन्द को भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

अन्त में, मैं विशाल कम्प्यूटर्स को साधुवाद देता हूँ, जिन्होंने निर्धारित समयान्तराल में शोध-प्रबन्ध को शुद्ध रूप में टंकित करने का प्रयास किया है।

यह भगवान् करुणावरुणालय श्री सर्वेश्वर प्रभु की अहैतुकी कृपा का ही सुपरिणाम है, कि अखिल भारतवर्षीय निम्बार्कपीठ, निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) की शिक्षा समिति ने इस महनीय 'ग्रन्थ-रत्न' के प्रकाशन की स्वीकृति प्रदान कर अनुगृहीत किया। मैं सभी संपृक्त अधिकारीवर्ग के प्रति सादर नतमस्तक हूँ जिनके अनुग्रह से यह 'ग्रन्थ-रत्न' लोकार्पित हो रहा है।

इस ग्रन्थ के सच्चे अधिकारी अनन्तानन्त श्रीविभूषित प्रात:स्मरणीय पूज्यपाद जगद्गुरु श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य जी श्री 'श्रीजी महाराज' ही हैं, जिनके पुण्य-प्रताप से इस महनीय ग्रन्थ का प्रणयन एवं प्रकाशन हो सका है। 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द! तुभ्यमेव समर्पये।' की मन:पूत भावना को हृदयंगम कर इस 'ग्रन्थ रत्न' को श्रीचरणों में सादर सभक्ति समर्पित करता हूँ। अस्तु।

दिनाङ्क :

विनयावनत:

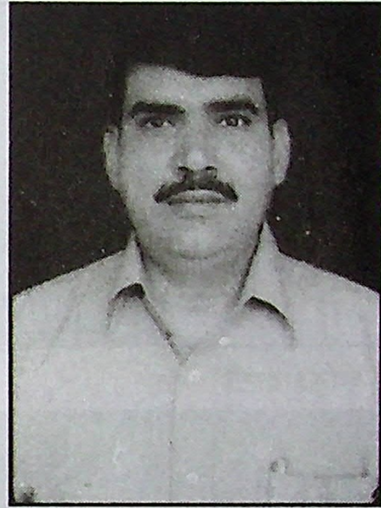
चरणरजचञ्चरीक

डॉ. ललित कुमार शर्मा
एम. ए. (हिन्दी-साहित्य)
एल-एल.बी., पी-एच.डी.

शोध अध्येता (सपत्नीक)



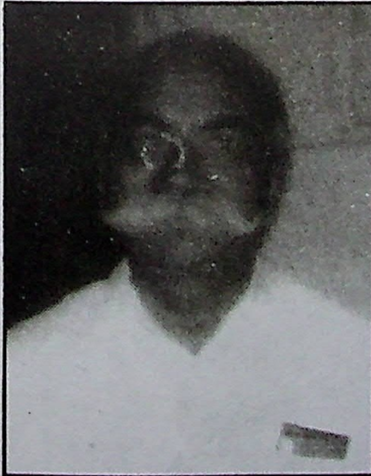
श्रीमती सौम्या (सन्तोष) शर्मा
M.A. (Eng. Lit., Hindi Lit.),
B.Ed., R.E.S.



डॉ. ललित शर्मा, अभिभाषक
M.A. (Hindi Lit.), M.Phil.,
LL.B., Ph.D. (निम्बार्क साहित्य)

शोध अध्येता के परिजन-वृन्द

पितामहश्री



श्रीयुत पं. हरिनारायण शास्त्री
(महामहिम राज्यपाल द्वारा पुरस्कृत
प्राध्यापक एवं लब्ध स्वर्णपदकी)

ज्येष्ठ तात श्री (ताऊजी)



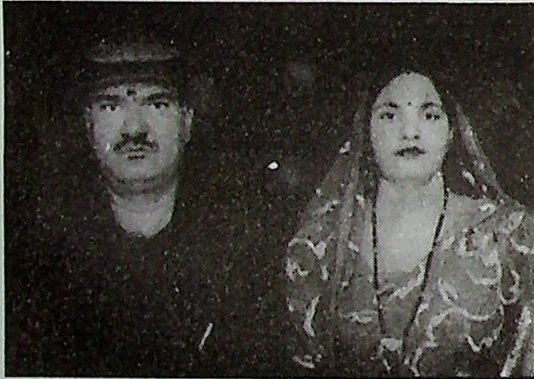
पं. महावीर जोशी
(कर्मकाण्ड विशारद)

माता-पिताश्री



श्रीमती गीता शर्मा
एवं
पं. मोहन शास्त्री 'प्रभाकर'
निदेशक, शास्त्री ज्योतिष संस्थान,
मत्स्यांचल (तेवड़ी), विराटनगर

भ्राता-भ्रातृजायाश्री



श्रीमती अनुराधा शर्मा
एवं
डॉ. परमानन्द शर्मा
एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी.
व्याख्याता (R.E.S.)

श्वश्रु (सास)



श्रीमती उषा शर्मा

श्वसुर (ससुर)



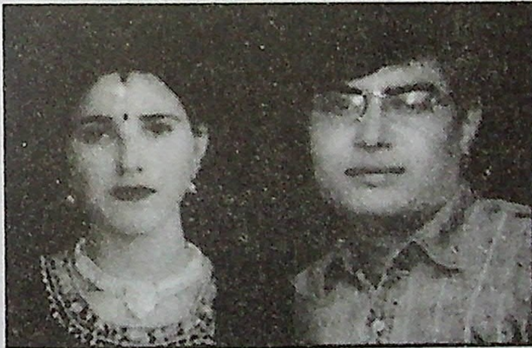
श्री रघुवीर प्रसाद शर्मा
प्रधानाध्यापक (R.E.S.)

पूज्यपाद गुरुवर एवं गुरुमाता श्री



श्रीमती आभा शास्त्री
एवं
राष्ट्रपति सम्मानित मनीषी
डॉ. प्रभाकर शास्त्री
डी.लिट्., से.नि. प्रोफेसर एवं
अधिष्ठाता, कला संकाय
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर

अनुज युगल



श्रीमती सुनीता शर्मा
एवं
पं. हनुमान शास्त्री
ज्योतिषाचार्य (गणित)

बहन-बहनोई



डॉ. संजय शर्मा
एम.ए. (लोक प्रशासन), अनुसंधित्सु



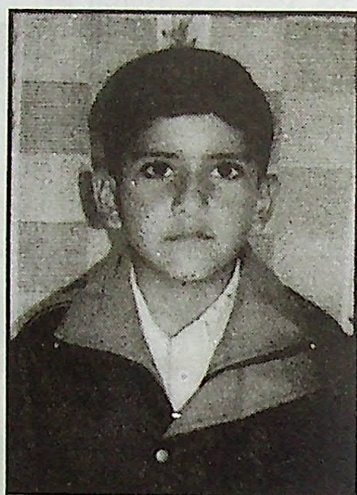
श्रीमती कादम्बिनी शर्मा
एम.ए., (हिन्दी, संस्कृत), बी.एड.

अग्रज

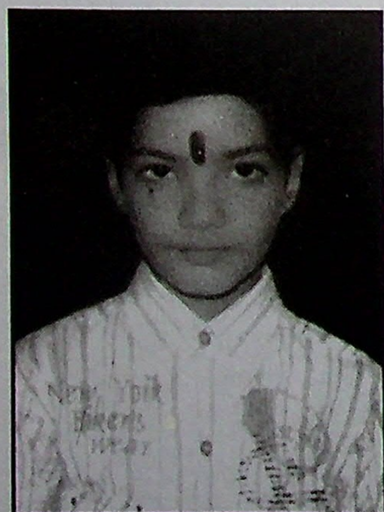


पं. मनु शास्त्री
कर्मकाण्ड विशारद्

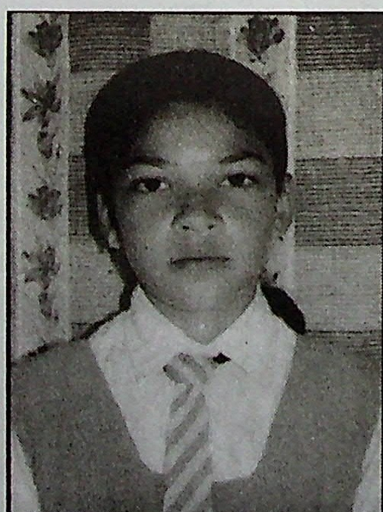
निहारती पलकें :



प्रणय



पीयूष



अनुकृति

प्रथम-अध्याय

निम्बार्क-दर्शन : परिचय, प्रमुख सिद्धान्त, उपासना तत्त्व, स्वरूप-निरूपण, समय-समीक्षा एवं तत्कालीन सामाजिक व साहित्यिक परिस्थितियों का आकलन

1. निम्बार्क-दर्शन : परिचय एवं प्रमुख सिद्धान्त

सामान्य परिचय

'दर्शन' शब्द के लिए अंग्रेजी में व्यवहृत 'फिलोसॉफी' शब्द का विकास यूनानी भाषा के 'फिलॉसफस' से हुआ है, जिसका अर्थ विद्या का प्रेम होता है। अत: दर्शन की परिभाषा करते हुए प्लेटो ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रिपब्लिक' में लिखा है—"वह, जिसे प्रत्येक प्रकार के ज्ञान में रुचि है और जो सीखने के लिए जिज्ञासु है तथा कभी भी सन्तुष्ट नहीं होता, सही रूप में 'दार्शनिक' कहा जाता है।[1] दर्शन की इस परिभाषा में उसे सब प्रकार के ज्ञान की जिज्ञासा और कभी न बुझने वाली ज्ञान की प्यास कहा गया है। दूसरे शब्दों में, 'दार्शनिक' आजीवन सत्य की खोज में लगा रहता है, क्योंकि उसे सत्य से प्यार होता है। वैज्ञानिक को भी सत्य की खोज रहती है, किन्तु वह सत्य विशेष क्षेत्र का सत्य होता है, जबकि दार्शनिक की खोज सम्पूर्ण सत्य की खोज है। प्लेटो के शब्दों में वह 'सत्य' के किसी अंश का नहीं, बल्कि समय का प्रेमी है।[2]

वेंकटराव एम.ए. का कहना है—'दर्शन एक विचारक अथवा दृष्टिकोण है, जिससे व्यवस्थित समग्र रूप में विश्व-दर्शन किया जाता है, जिसमें मानव, प्रकृति तथा ईश्वर अथवा अन्तिम वास्तविकता का समुचित स्थान रहता है।'[3]

---

1. Plato Republic, Book V, p. 252
2. Plato, ibid.
3. Rao Venkata M.A., Philosophy in India II, Astrological Magazine, RAman Publications, Benglore - 20 June, 1964 P. 505-506.

दर्शन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। समस्त ज्ञान-विज्ञान का उसमें समाहार हो जाता है। स्वामी करपात्री जी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **'मार्क्सवाद और रामराज्य'** में लिखा है, 'दृष्यते वास्तु यायात्म्यं जनेन इति दर्शनम्'। दूसरे शब्दों में प्रमाण द्वारा आत्मा परमात्मा का ज्ञान जिससे होता है, उसका नाम 'दर्शन-शास्त्र' है।[1] इस प्रकार दार्शनिक सम्पूर्ण जीवन पर दृष्टि रखता है। जब ग्लाउकन ने सुकरात से यह पूछा कि 'सच्चे दार्शनिक कौन है?' तो सुकरात ने उत्तर दिया, "वह, जो कि सत्य की झाँकी के प्रेमी हैं।"[2] दार्शनिक का यह ज्ञान सार्वभौम होने के साथ-साथ शाश्वत भी होता है। इस सम्बन्ध में बृहदारण्यकोपनिषद् का वह प्रसंग उल्लेखनीय है, जब याज्ञवल्क्य की इच्छा सन्यास लेने की हुई और उन्होंने अपनी दोनों स्त्रियों को सम्पत्ति बाँटने का प्रस्ताव किया तो कात्यायनी के मुख से तो कुछ नहीं निकला, क्योंकि वह प्रेय: कामिनी थी, उस धन में ही उसका सारा सुख निहित था, किन्तु मैत्रेयी थी श्रेय: कामिनी। अत: उसने सम्पत्ति को अस्वीकार करते हुए अमरत्व प्रदान करने वाले शाश्वत ज्ञान की शिक्षा देने की इच्छा व्यक्त की, "जिससे मैं अमर नहीं हो सकतीं उसे लेकर मैं क्या करूँगी? मुझे तो वह बात बताइए जिससे मैं अमर हो सकूँ।"[3]

इस प्रकार दार्शनिक दृष्टिकोण में आश्चर्य की भावना, सन्देह, समीक्षा, चिन्तन और उदारता एवं सत्य की जिज्ञासा निहित है। जॉन ड्यूबी के अनुसार "जब कभी दर्शन को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया गया है तो वह सदैव अवधारित हुआ है कि यह प्राप्त किये जाने वाले उस ज्ञान का महत्त्वांकन करता है, जो कि जीवन के आचार को प्रभावित करता है।[4]

वेदार्थ को समझने के लिए वेदांगों के बाद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान उपांगों का है, जिन्हें प्राय: दर्शनशास्त्र के नाम से जाना जाता है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा तथा उत्तर मीमांसा नाम से अभिहित इन 6 दर्शनों के प्रणेता क्रमश: गौतम, कणाद, कपिल, पतञ्जलि, जैमिनि तथा बादरायण व्यास हैं। पूर्व मीमांसा को प्राय: मीमांसा तथा उत्तरमीमांसा को वेदान्त दर्शन, ब्रह्मसूत्र तथा शारीरिक सूत्र के नाम से भी जाना जाता है।

निम्बार्क-दर्शन के प्रवर्तक सुदर्शन चक्रावतार **भगवन्निबार्काचार्य** हैं। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो द्वैताद्वैत दर्शन प्रणाली अन्य सभी दर्शनों से अधिक

---

1. प्रकृतिरूपादानकारणं चकारान्निमित्त-कारणं च परमात्मैव।' (निम्बार्कभाष्य 1/4/23)
2. Plato, Republic, Book VI, P. 485
3. 'बृहदारण्यकोपनिषद् शा.भा. (4,5, 1,2,3,4,5) गीता प्रेस, गोरखपुर पृ. 1128,1131.
4. Prof. John-Dewey - Democracy and Education, New York Macmillan Co., p. 378.

व्यापक होने के कारण ब्रह्म, जीव, प्रकृति, माया, सृष्टि एवं प्रलय, चेतन तथा अचेतन तत्त्वों की सन्तोषप्रद व्याख्या प्रस्तुत करने में अधिक उपयुक्त है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि **एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतो मुखम्'** एकत्वेन अभेद रूप से, पृथक्त्वेन भेद रूप से अनेक महर्षि विश्व रूप से मेरी उपासना करते हैं। **'क्षेत्रां चापि मा विद्धि'** जीवन मेरे से अभिन्न है, शब्द से भिन्न भी है। यही भेदाभेद है।श्रीशंकराचार्य जी ने अभेद पक्ष को प्रमुख माना है और माध्वाचार्य ने भेद पक्ष को। श्रीनिम्बार्काचार्य का भेदाभेद सिद्धान्त दोनों की विचारधारा की अपूर्णता को पूरा करने वाला है। अत: समन्वयवादी दर्शन है।

निम्बार्क-दर्शन : प्रमुख दार्शनिक-सिद्धान्त एवं उपासना तत्त्व

1. श्रीनिम्बार्क सिद्धान्त में तत्त्वत्रय (ब्रह्म, जीव और प्रकृति ये तीनों तत्त्व) अनादि और अनन्त माने गये हैं, ब्रह्म स्वतन्त्र है, जीव और प्रकृति, सदा सर्वदा ब्रह्म के आधीन हैं, किसी भी अवस्था में स्वतन्त्र नहीं।
2. बद्ध (संसारी) बद्ध मुक्त (भगवद्-भक्ति द्वारा मुक्ति प्राप्त) एवं नित्य मुक्त (जो कभी भी माया के बन्धन में नहीं फँसे) जीवों के ये संक्षिप्त रूप से तीन भेद हैं।
3. समस्त चराचर जगत् ब्रह्म का अंश एवं परा-परात्मिका प्रकृति (शक्ति) होने के कारण सत्य है। इसलिए किसी भी प्राणी को दु:ख पहुँचाना, या उसके साथ विद्वेष, ईश्वर को ही दु:ख पहुँचाना एवं उस के साथ ही विद्वेष करना है। जड़ वस्तुओं का भी दुरुपयोग करना निषिद्ध है। शास्त्र की आज्ञानुसार अचेतन तत्त्व में भी समादरणीय भाव रखना आवश्यक है।
4. स्वाभाविक भेदाभेद (द्वैताद्वैत/भिन्नाभिन्न) सिद्धान्त का भी यही रहस्य है, अर्थात् जीव रूप से चराचरात्मक विश्व-ब्रह्म से भिन्न है, किन्तु उसका अंश एवं शक्ति होने के कारण स्वभावत: अपृथक् सिद्ध अभिन्न भी है। यही स्वाभाविक भेदाभेद है।
5. जब जगत् के किसी भी अंश को मिथ्या मानना भूल है, तब प्रकृति और उसक कार्य रूप बन्धनादि भी मिथ्या कैसे कहे जा सकते हैं। हाँ, सच्चे बन्धन की निवृत्ति होती है।
6. बन्धननिवृत्ति एवं भगवद्भावापत्ति रूप मुक्ति भगवत् कृपा से ही होती है।
7. श्रुति, स्मृति आदि शास्त्र और आचार्य वाक्यों के किसी भी अंश में अप्रामाण्य नहीं है। तात्पर्यानुसार इनके बलाबल की व्यवस्था गम्भीरतापूर्वक आचार्यों ने की है। उस पर आरूढ़ रहना चाहिये।

8. जीव प्रतिबिम्ब नहीं, न प्राकृतिक, जगत मिथ्या ही है। अतएव सर्वथा ब्रह्म से भिन्न भी नहीं। श्रीनिम्बार्क के सिद्धान्तानुसार **तत्त्वमस्यादि** महावाक्यों का यही तात्पर्य है। केवल परिणामी होने के कारण मिथ्या और विनश्वर आदि शब्दों से जगत् का निर्देश किया गया है। अल्पज्ञ, अल्पशक्ति-जीव और परिणामीशील होने के कारण जड़ तत्त्व य दोनों तत्त्व रस एक कूटस्थ ब्रह्म के सर्वथा अभिन्न भी नहीं हो सकते। अतएव, भेद और अभेद दोनों ही स्वाभाविक हैं।

9. श्रीनिम्बार्काचार्य के वास्तविक भेदाभेद सिद्धान्त के अनुसार—(i) उपास्य (ईश्वर), (ii) उपासक (जीव), (iii) कृपाफल, (iv) भक्तिरस, (v) विरोधी तत्त्व (प्रकृति और प्रकृति के कार्यादि) ये पाँचों वस्तु जानने के योग्य हैं। इन सबके ज्ञात को ही **पूर्णब्रह्मविद** कहा जाता है।

उपासना तत्त्व

(1) दार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार विश्व और विश्वम्भर के स्वरूप को जानकर 'उपासक' विश्व की हित-कामना के साथ विश्वम्भर श्रीसर्वेश्वर की उपासना करें। उस उपासना के पञ्चविध अनुष्ठान ये हैं—

(क) अभिगमन, (ख) उपादान, (ग) इज्या, (घ) अध्ययन, एवं (ङ) योग।

विवरण—(क) श्रीगुरुदेव के आश्रित होकर भगवत् शरणागत होना (वैष्णवी दीक्षा पञ्च संस्कारपूर्वक भगवान् के मन्त्रों की प्राप्ति करना)।

(ख) भगवान् की पूजा-सेवा की साज-सामग्रियों का संचय करना।

(ग) (i) प्रातः (मङ्गला),. (ii) पूर्वाह्न (शृंगार), (iii) मध्याह्न (राजभोगादि), (iv) उत्तराह्न और सायं, (उत्थापन सायं सेवादि), (v) रात्रि (शयन भोगादि) ये पञ्चकाल सेवायें हैं।

(घ) वेद, उपनिषद्, भागवत, गीता, रामायणादि का अध्ययन कर उनका मनन करना।

(ङ) भगवान् की शयन पर्यन्त सेवा करके, उपासक स्वयं शयन करते समय मन, बुद्धि, चित्त और समस्त इन्द्रियों की वृत्तियों को एवं आत्मा-आत्मीय सर्वस्व को भगवान् के अर्पण करे, यही योग है।

(2) उपर्युक्त पञ्चकालानुष्ठान के ही अन्तर्गत-श्रवण कीर्तनादि नवधा भक्ति का समावेश हो जाता है।

(3) इन्द्रादि समस्त देव और श्रीनृसिंहादि समस्त अवतारों का अंगी मानकर **श्रीराधासर्वेश्वर भगवान्** की अनन्य आराधना करनी चाहिये।

(4) उपासना में प्रथम अंग (अभिगमन) के अन्तर्गत, 'ताप:' अधिकारनुसार शंख चक्रादि की तप्त या शीतलमुद्रा, (छाप) धारण करना।

गोपीचन्दनादि के ललाटादि स्थानों में ऊर्ध्व पुण्ड्र (तिलक) तुलसी की कण्ठी एवं माला तथा भगवत् सम्बन्धी नाम और मन्त्र, उसके न्यासध्यानादि अनुष्ठानों के विधानों को गुरुदेव से प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

(5) भगवान् की भाँति ही मन्त्रोपदेष्टा गुरुदेव पूजनीय हैं। उपर्युक्त उपासना में भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य ने पुरुषों की भाँति सधवा-विधवा सभी पतिव्रता स्त्रियों का अधिकार भी निश्चित किया है। अतएव इस उपासना में सभी वर्ण और सभी आश्रमों के आबाल-वृद्ध सभी नर-नारियों का अधिकारानुसार पूर्ण अधिकार है।

2. निम्बार्क सम्प्रदाय : आविर्भाव एवं समय-समीक्षा

आधुनिक विद्वान् निम्बार्क सम्प्रदाय को अन्य वैष्णव सम्प्रदायों से प्राचीन स्वीकार करते हैं। परन्तु प्राचीन शोध-शास्त्रियों ने खोज-सामग्री के अभाव में अपने निजी अनुमानों द्वारा निम्बार्क के समय को इतना उलझा दिया है कि इस सम्बन्ध में अब तक कोई निश्चित धारण नहीं बन सकी है। निम्बार्काचार्य के प्रादुर्भाव, स्थित एवं तिरोभाव के विषय में विद्वान्ों की निम्न धारणायें बनी हुई हैं—

(1) निम्बार्क सम्प्रदायाचार्य एवं लेखक निम्बार्काचार्य को द्वापर के अन्त तथा कलियुग के प्रारंभ में मानते हैं। इस आधार पर निम्बार्क का आविर्भाव काल 5000 वर्ष पूर्व माना जाता है। सम्प्रदायानुसार वि. 2027 वाँ वर्ष निम्बार्क का 5065 वाँ वर्ष है।

(2) डॉ. भंडारकर आदि आधुनिक इतिहासकारों ने निम्बार्क को ईसा की बारहवीं शताब्दी में माना है।

(3) ग्रियर्सन, ग्राउस तथा मोनियार विलियम्स ने निम्बार्काचार्य तथा उनके सम्प्रदाय को अन्य वैष्णव-सम्प्रदायों तथा उनके प्रवर्तकाचार्यों से प्राचीन माना है। कतिपय तटस्थ विद्वान् निम्बार्क-भाष्य को ईसा की पांचवीं-छठी शताब्दी की रचना बताते हुये निम्बार्क की विद्यमानता इस समय मानते हैं।

डॉ. भंडारकर का आधुनिक मत और उसकी आलोचना

भारतीय उपासना सम्प्रदायों की ऐतिहासिक खोज करते हुए, डॉ. भंडाकर ने निम्बार्काचार्य का समय ईसा की 12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में माना है।[1] आपने प्रारंभ में सम्प्रदाय की ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में निम्बार्क-समयनिरूपण में असमर्थता प्रकट कर दी है। तदनन्तर आप मध्वाचार्य और निम्बार्काचार्य की पीढ़ियों की तुलना

---

1. वैष्णविज्म एण्ड शेविज्म – डॉ. आर.जी. भंडारकर।

द्वारा उनका समय निश्चित कर देते हैं उन्होंने निम्बार्क-परम्परा की दो सूचियों को लेकर इस समय का अनुमान किया है। उक्त सूचियों में से निम्बार्क-सम्प्रदाय की पहली परम्परा-सूची सन् 1882-83 ई. के खोज-विवरण पृ. 208 में अंकित कर दी गई जिसमें निम्बार्क की 37 पीढ़ियों का विवरण है तथा दूसरी सन् 1884-87 ई. के हस्तलेख संग्रह नं. 709 में अंकित की गई जिसमें 45 आचार्यों का नामोल्लेख किया गया है। इन दोनों परम्परा सूचियों के मिलान से प्रकट होता है कि दोनों में निम्बार्क से हरिव्यासदेव तक की 32 पीढ़ियाँ ज्यों की त्यों और समान हैं; तथा उनमें हरिव्यासदेव तक की 32 पीढ़ियाँ ज्यों की त्यों और समान हैं; तथा उनमें हरिव्यासदेव के पश्चात् दो परम्पराएँ चल पड़ी है। श्री हरिव्यासदेव के पश्चात् अन्य दामोदर गोस्वामी नामक शिष्य 1750 ई. में विद्यमान था जिसे निम्बार्क की 33वीं पीढ़ी में स्थान मिला है। इस समय यदि इस दामोदर गोस्वामी का आयुमान 15 वर्ष भी मान लिया जाय तो सन् 1765 ई. में निम्बार्क की 33 पीढ़ियाँ समाप्त होती हैं। इधर मध्वाचार्य का सन् 1276 हुई थीं। दोनों की तुलना द्वारा निम्बार्काचार्य के पश्चात् उनकी कथित 33 पीढ़ियाँ 600 वर्ष में पूर्ण हुई मान ली जाएँ तो निम्बार्काचार्य दामोदर गोस्वामी से 600 वर्ष पूर्व हुये थे। अस्तु निम्बार्काचार्य का समय सन् 1765 ई. से 603 वर्ष पूर्व सन् 1162 ई. में निश्चित हो जाता है।[1]

डॉ. भंडारकर के इस मत से प्रभावित होकर राजेन्द्रघोष[2], अक्षयकुमार दत्त[3], जाह्नवी चरण[4], स्वामी प्रज्ञानन्द सरस्वती[5], पुलिनबिहार भट्टाचार्य[6], सुशीलकुमार डे[7], पंडित विन्ध्येश्वरीप्रसाद[8], डॉ. रमा चौधरी[9], आदि लेखकों ने अपने ग्रंथों में निम्बार्क का समय 11वीं, शताब्दी से 14वीं शताब्दी तक निश्चत करने का प्रयास किया है। इन अर्वाचीन लेखकों ने भंडारकर द्वारा निश्चित की हुई तिथि को लक्ष्मण रेखा माना है और उन्हीं की भाँति विभिन्न अनुमान लगाकर थोड़े हेर फेर के साथ यही समय निर्धारित किया है।

---

1. वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म – डॉ. आर.जी. भंडारकर पृष्ठ 87-93।
2. वेदान्तदर्शनेर इतिहास – राजेन्द्रघोष
3. भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय – अक्षयकुमार दत्त
4. संस्कृत साहित्येर इतिहास – जाह्नवीचरण भौमिक
5. वैष्णवदर्शनेर इतिहास – स्वामी प्रज्ञानन्द सरस्वती
6. श्री निम्बार्काचार्य और तांहार धर्म मत – पुलिनबिहारी भट्टाचार्य
7. जयदेव और गीतगोविन्देर आलोचना – सुशीलकुमार डे
8. निम्बार्कभाष्य की भूमिका – पं. बिन्ध्येश्वरी प्रसाद
9. निम्बार्क भाष्य का आंग्ल – अनुवाद – डॉ. रमा चौधरी

स्वामी प्रज्ञानन्द ने 'वैष्णवदर्शनेर इतिहास' में निम्बार्काचार्य को शंकराचार्य से परवर्ती घोषित किया है तथा उनके भाष्य को साधारण सी रचना माना है। उनके अनुसार शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खण्डन निम्बार्क-भाष्य की क्षीणता से न हो सका था। अत: देवाचार्य ने अद्वैतवाद के खण्डन का प्रयास किया। निम्बार्क-भाष्य से शंकर मत का खण्डन न होने से तो निम्बार्क शंकर के पूर्ववर्ती निश्चित होते हैं। निम्बार्क-सम्प्रदाय-परम्परा के आचार्य श्री पुरुषोत्तम निम्बार्काचार्य से तीसरी पीढ़ी में माने जाते हैं।[1] उनके द्वारा रचित वेदान्तरत्न मंजूषा के अद्वैतवाद का प्रबल खण्डन हुआ है। कथित देवाचार्य पुरुषोत्तमाचार्य के पश्चात् 7वीं पीढ़ी में आते हैं। इस प्रकार देवाचार्य से बहुत पूर्व ही निम्बार्क-सम्प्रदाय के उपर्युक्त ग्रंथ में अद्वैत-मत का प्रबल खण्डन हुआ है। संभव है स्वामीजी को देवाचार्य जी से पूर्ववर्ती निम्बार्कीय आचार्यों के ग्रन्थों को देखने का अवसर न मिला हो। निम्बार्क एवं उनके पट्टशिष्य श्रीनिवासाचार्य निस्संदेह शकराचार्य से पूर्ववर्ती थे, यदि परवर्ती होते तो वे भी अपने ग्रन्थों में अद्वैतवाद का खण्डन अवश्य करते।

राजेन्द्र घोष ने 'वेदान्तदर्शनेर इतिहास' तथा अन्य निबन्धों में निम्बार्क के समय का अनुमान किया है। 'शंकर और रामानुज' निबन्ध में अपने यह उल्लेख किया है कि अनन्तराम वेदान्त-केशरी के अनुसार देवाचार्य का समय 1112 युगरुदेन्दु है। जो इनके मतानुसार वि.सं. न होकर शकाब्द है और इस प्रकार 1190 ई. में देवाचार्य की विद्यमानता होनी चाहिए। ईसा की 10वीं शताब्दी में भट्ट भास्कर विद्यमान थे। अत: निम्बार्कचार्य भट्ट भास्कर तथा देवाचार्य के मध्य 11वीं शताब्दी में ही हुए होंगे। शिवम्[2] नामक पत्र के 'अद्वैतवादी आत्मरक्षा' निबन्ध में आपने निम्बार्क-भाष्य को 10वीं शताब्दी की रचना बतालाया है। वेदान्त दर्शनेर इतिहास में आपने अन्य स्थान पर[3] निम्बार्क को सूर्य का अवतार बताया है। द्वैताद्वैत सिद्धान्त का सर्वदर्शन-संग्रह में उल्लेख न होने से निम्बार्क को विद्यारण्य से परवर्ती होने की भी कल्पना आपने की है परन्तु अपन पुन: 11वीं शताब्दी को ही निम्बार्क का ठीक समय घोषित कर देते हैं।[4] इस प्रकार घोष स्वयं निम्बार्क काल के सम्बन्ध में एकमत नहीं है। निम्बार्क सुदर्शनावतार माने जाते हैं। देवाचार्य निम्बार्क की 12वीं पीढ़ी के परवर्ती आचार्य हैं, यदि उनका समय 1190 ई. मान लिया जाय तो भी निम्बार्क का समय बहुत पीछे चला जाता है। शांकरभाष्य में अनेक स्थानों पर द्वैताद्वैत भेदाभेद की आलोचना की गई

---

1. आचार्य परंपरा सूची
2. पृ. 377, बगाब्द 1345।
3. पृ. 375।
4. आचार्य परम्परा सूची, पृ. 388-89

है और यदि निम्बार्क-भाष्य में अद्वैतवाद का खण्डन नहीं मिलता तो फिर निम्बार्क भाष्य को शंकर के अद्वैतवादी भाष्य से पूर्व का माना जाना चाहिए। निम्बार्क के परवर्ती संप्रदाचार्य श्रीपुरुषोत्तम ने सर्व-प्रथम 'वेदान्तरत्नमंजूषा' में अद्वैतवाद का खंडन किया है। अत: पुरुषोत्तमाचार्य ही शंकराचार्य से परवर्ती निम्बार्क-सम्प्रदायाचार्य थे और इस आधार पन इनका समय नवम-दशम शताब्दी के आसपास का था। निम्बार्क पुरुषोत्तमाचार्य से तीन पीढ़ी पूर्व हुए थे इस प्रकार भी निम्बार्क का समय 7वीं-8वीं शताब्दी के मध्य में निश्चित होता है। निम्बार्क भाष्य को दशम शताब्दी का मानना निराधार प्रतीत होता है।

पुलिनबिहारी भट्टाचार्य ने भी 'श्रीनिम्बाकाचार्य और तांहार धर्ममत' ग्रंथ में निम्बार्क का समय 11वीं शताब्दी में निश्चित किया है। इस संबन्ध में इन्होंने पूर्ववर्ती ऐतिहासकों का ही अनुसरण किया है। भंडारकर वाले मत को पुष्ट करने के लिए इन्होंने दो विचित्र कल्पनायें की हैं। आपके अनुसार मुसलमानों के आक्रमण से त्रस्त हिन्दू जनता जब आर्त पुकार की और कातर स्वर में शक्ति का आह्वान किया तो भारत में शक्तिवाद का आविर्भाव हुआ। निम्बार्क ने इसी शक्तिवाद का अपने भाष्य में खण्डन किया है।[1] अत: निम्बार्क का समय 11वीं शताब्दी मानना ही ठीक है।[2] इसी प्रकार भट्टाचार्य की दूसरी कल्पना है कि कनेडी ने राधा का आविर्भाव 11वीं शताब्दी में माना है। अस्तु राधिकोपासक सम्प्रदाचार्य श्री निम्बार्क का आविर्भाव काल यही माना जाना चाएिह।[3]

श्री भट्टाचार्य के निम्बार्क-समय संबंधी ये दोनों हेतु निरर्थक हैं। प्राचीन मूर्तियां भारतीय शक्तिवाद को ईसा के पूर्व का सिद्ध कर रही हैं। आधुनिक विद्वान् देवी भागवत को ईसा की छठी शताब्दी की रचना मानते हैं। भारत का शक्तिवाद तो राधावाद से अत्यन्त प्राचीन है। शिव-शक्ति उपासना, विष्णु-लक्ष्मी उपासना से भी प्राचीन मानी जाती है। 'राधा' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 'गाथा-सप्तशती' में उपलब्ध होता है। पंचतंत्र, वेणीसंहार, ध्वन्यालोक, नलचंपू आदि ग्रंथ भारतीय राधावाद को ईसा की पंचम शताब्दी से दशम शताब्दी तक सिद्ध करने वाले ठोस प्रमाण है। पद्म-मत्स्य-ब्रह्मवैवर्त आदि राधा विषयक पुराणों का रचनाकाल यद्यपि सुनिश्चित नहीं तथापित इतना तो मानना ही पड़ेगा कि इनकी रचना भी ईसा की दशम शताब्दी से पूर्व हुई थी। पहाड़पुर, बादामों आदि शिलालेखों मूर्तियों के आधार पर राधाकृष्ण की

---

1. ब्र.सू.अ. 2 पा. 2 सू. 42 का भाष्य
2. निम्बार्काचार्य और तांहार धर्ममत-पुलिन बिहारी भट्टाचार्य पृ. 52
3. निम्बार्काचार्य और तांहार धर्ममत, पृ. 109

युगल-भक्ति का प्रचलन ईसा की छठी-सातवीं सदी तक माना है। इस प्रकार भट्टाचार्य का दूसरा हेतु भी निरर्थक सिद्ध होता है।

श्रीअक्षयकुमार दत्त एवं श्री जाह्नवीचरण ने भी भंडारकर के मत का आशय लिया है। पं. विन्ध्येश्वरी प्रसाद ने निम्बार्क-भाष्य की भूमिका में भविष्यपुराणोक्त श्लोक 'विष्णुस्वामी प्रथमतो निम्बादित्यो द्वितीयत:। मध्वाचार्यस्तृतीयस्तु तुर्यो रामानुज: स्मृत:।'[1] के आधार पर निम्बार्क को मध्वाचार्य से परवर्ती माना है। मेरुतुंगाचार्य कृत प्रबन्धचिन्तामणि में गुर्जराधिपति कुमार पाल की विद्यमानता वि.सं. 1199 में बताई गई है तथा सम्प्रदाय-प्रदीप में मध्वाचार्य को कुमारपाल के समकालीन माना गया है। अत: निम्बार्क वि.सं. 1199 से पूर्व हुए थे, परन्तु भविष्यपुराणोक्त इस श्लोक के इस विवरण को ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा सत्य नहीं कहा जा सकता। इस अधार पर निम्बार्क मध्वाचार्य से पूर्व और विष्णुस्वामी के पश्चात् हुए थे। पर जब तक विष्णुस्वामी का समय सुनिश्चित नहीं हो जाता तब तक उनके आविर्भावकाल का अनुमान असंगत प्रतीत होता है। वल्लभमत के सम्प्रदाय-प्रदीप में वल्लभाचार्य और विष्णुस्वामी के बीच 700 आचार्यों का होना कथित है। इस प्रकार विष्णुस्वामी का समय अत्यन्त प्राचीन सिद्ध होता है। इसी आधार पर विष्णुस्वामी और मध्वाचार्य के बीच सैकड़ों वर्षों का अन्तर होना भी संभावित है। निम्बार्कचार्य को विष्णु स्वामी के पश्चात् तथा मध्वाचार्य से पूर्व किस समय बताया जाय, इसका ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता। हां, यदि विष्णुस्वामी का समय सुनिश्चित हो तो फिर उनके और मध्वाचार्य के समयान्तर को ध्यान में रखकर ठीक मध्य में निम्बार्काचार्य का समय मान लेना तुलनात्मक दृष्टि से मान्य हो सकता है। उक्त श्लोक के आधार पर रामानुजाचार्य को भी मध्वाचार्य से परवर्ती मानना होगा, जो ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा अमान्य है। आधुनिक विद्वान्ों ने श्री रामानुज को मध्य, विष्णु स्वामी, वल्लभ आदि वैष्णवाचार्यों से पूर्ववर्ती माना है। रामानुज चोलराजा कुल्लोठुंग प्रथम (1095 ई.) के समकालीन थे। 1137 ई. में इनका तिरोधान माना जाता है। मध्वाचार्य का समय 1199 से 1303 ई. तक का माना जाता है। इन तिथियों में कुछ मतभेद हो सकता है परन्तु इतना तो सभी स्वीकार करते हैं कि रामानुज मध्वाचार्य से पूर्ववर्ती थे। अत: स्पष्ट है कि भविष्यपुराणोक्त उपुर्यक्त श्लोक की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। संभव है इस श्लोक को किसी ने माध्व-सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा हेतु अर्वाचीन काल में गढ़कर भविष्य पुराण में जोड़ दिया है।

संस्कृत कॉलेज बनारस के विद्वान् प्रोफेसर गोपाल शास्त्री ने निम्बार्क के 'श्रीकृष्णस्वतराज' ग्रंथ की श्रुत्यन्त कल्पवल्ली' टीका का संपादन करते हुये उक्त

---

1. भविष्यपुराण – भगवद्भक्त महात्म्य, अ. 21

ग्रंथ की भूमिका में श्री निम्बार्क को गुर्जराधिप कुमारपाल के समकालिक बताया है। उनके अनुसार कुमारपाल के राज्याभिषेक (संवत् 1200 वि.) के समय कोई इस सम्प्रदाय के आचार्य उत्सव में सम्मिलित हुये थे परन्तु वे आचार्य क्या स्वयं आद्य निम्बार्क थे? ऐसा कोई प्रमाण उन्होंने प्रस्तुत नहीं किया है। उन्होंने यह अनुमान जनश्रुति पर आधारित बताया है।

डॉ. मोनियर विलियम्स ने गीत गोविन्दकार जयदेव को निम्बार्क का शिष्य बतालये हुये 12वीं शताब्दी का मान लिया है।[1] इसी प्रकार डॉ. सुशील कुमार डे ने 'जयदेव और गीत गोविन्देर आलोचना' में दोनों को उनकी रागमूलक उपासना पद्धति के आधार पर समकालीन घोषित किया है। निम्बार्काचार्य की 16 वीं पीढ़ी के आचार्य श्री देवाचार्य के पश्चात् उनके दो शिष्य श्री सुन्दर भट्टाचार्य और ब्रजभूषणदेवाचार्य की दो शाखायें चली हैं। जयदेव ब्रजभूषणदेवाचार्य द्वारा प्रवर्तित शाखा में निम्बार्क से 49वें आचार्य गिने जाते हैं।[2] आधुनिकतम विचारधारा के अनुसार गीत गोविन्दकार जयदेव बंगाधिपति लक्ष्मणसेन के समकालीन थे। इस प्रकार उनका समय 12वीं शताब्दी का निश्चित होता है। निम्बार्काचार्य-पीठ सलेमाबाद के ठाकुर राधामधव जयदेव के उपास्य माने जाते हैं। रागमूलक उपासना का आधार भी दोनों को समकालीन सिद्ध करने का ठोस प्रमाण नहीं कहा जा सकता। आधुनिक विचारधारा के अनुसार चाहे जयदेव कई हुये हों; तथा किसी भी समय हुये हों परन्तु गीतगोविन्दकार जयदेव निश्चित रूप से निम्बार्क से परवर्ती हैं। उनके गीतगोविन्द का 'राधावाद' निम्बार्क से अर्वाचीन है। उनके राधाकृष्ण का वर्णित स्वरूप राधाकृष्ण की उपासना के विकास कला का सूचक है। जब गीतागोविन्द की रचना हुई तब भारत में राधाकृष्ण की युगलोपासना का व्यापक प्रचार-प्रसार हो गया था। निम्बार्ककृत दशश्लोकी गीतगोविन्द से अपेक्षाकृत प्राचीन रचना है क्योंकि उसमें वर्णित निम्बार्कीय राधाकृष्ण-युगलोपासना तत्व अत्यन्त सूक्ष्म और अल्पकाय है। निम्बार्क ने दश सूत्रो द्वारा राधाकृष्ण की युगलोपासना का प्रवर्तन किया है; जिसका पाँचवा श्लोक युगलोपासना में राधातत्व की प्रमुखता प्रकट करता है तथा इसी से राधिकाप्रधान सहचरी-सेवा का सूत्रपात हुआ है। निम्बार्ककृत दशश्लोकी और जयदेवकृत गीतगोविन्द की तुलना करने पर उनकी रचनाकाल में बहुत बड़ा अन्तर ही प्रतीत नहीं होता वरन् यह भी स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है कि दशश्लोकी राधिकोपासना का आदि ग्रंथ है तथा गीत गोविन्द उसकी परिपूर्णवस्था में ग्रथित हुआ है अस्तु इस आधार पर निम्बार्क जयदेव से पूर्ववर्ती ही सिद्ध होते हैं।

---

1. ब्राह्मणिज्म एण्ड हिन्दूइज्म पृ. 146
2. द्रष्टव्य – आचार्य परम्परा ग्रंथ।

डॉ. रमा बोस ने अपने निम्बार्क-भाष्य के आंग्ल-अनुवाद में निम्बार्क काल पर विचार करते हुए उनको तेरहवीं शताब्दी के पश्चात् या वल्लभाचार्य से परवर्ती मानने की भूल की है।[1] उन्हें अपने शोध-काल में 'सविशेषनिर्विशेष श्रीकृष्ण स्तवराज' और 'मध्वमुखमर्दन' नामक ग्रंथ उपलब्ध हुए जिनको उन्होंने भ्रमवश निम्बार्क कृत मानकर उन को तेरहवीं शताब्दी से पश्चात् का मान लेने की भूल की है। प्रतीत होता है वे भी डॉ. भण्डारकर के मत में प्रभावित हैं। डॉ. ओफ्रेक्ट के 'केटलॉग ऑफ केटलाग्ज' ग्रन्थ से भारी भ्रम हुआ है।[2] जिसमें निम्बार्ककृत इन आठ ग्रंथों की सूची दी गई है (1) श्रीकृष्ण स्तवराज (2) गुरु परम्परा (3) दशश्लोकी एवं सिद्धान्तरत्न (4) मध्वमुखमर्दन (5) वेदांत तत्व बोध (6) वेदान्त पारिजात (7) वेदांतसिद्धान्तप्रदीप (8) स्वधर्माध्वबोध। इसी 'मध्यमुखमर्दन ग्रंथ के आधार पर उन्होंने निम्बार्क को मध्वाचार्य से भी परवर्ती घोषित किया है; डॉ. राजेन्द्रलाल मिश्र के किसी अप्रामाणिक लेख का उद्धरण देते हुए वे उनका समय वल्लभाचार्य से भी आगे ले गये हैं जो नितांत असंगत है।

इसी प्रकार की अशोधित-अप्रामाणिक ग्रंथ-सूचियों से अन्य लेखकों को भी भ्रांतियाँ हुई हैं। श्री रामदास गौड़ निम्बार्क कृत केवल एक ग्रन्थ 'वेदांत पारिजात-सौरभ' उपलब्ध बताते हुए भी 'कृष्णस्तवराज, गुरु-परम्पर, व्रेदांत-तत्वबोध, वेदांत-सिद्धांत-प्रदीप, स्वधर्माध्वबोध, ऐतिह्य तत्व-सिद्धान्त आदि कई ग्रन्थ उनके मानते हैं।[3]

वस्तुत: निम्बार्क कृत आठ ग्रंथ हैं (1) वेदान्त पारिजात सौरभ (2) दशश्लोकी (3) श्रीकृष्णस्तवराज (4) मंत्ररहस्य षोडशी (5) प्रपन्न कल्पवल्ली (6) गीता वाक्यार्थ (7) प्रपत्ति चिन्तामणि (8) सदाचार प्रकाश। डॉ. रमा बौस व गौड़ के उक्त ग्रंथों में से वेदान्त-तत्त्वबोध अनन्तराम कृत, वेदान्त सिद्धान्त-चन्द्र-प्रदीप शुकसुधीकृत तथा स्वधर्माध्वबोध रामकृत रचनाएं हैं, गुरु परम्परा ऐतिह्यतत्त्व सिद्धांत आदि ग्रंथ निम्बार्क कृत नहीं है। उनके हमारे द्वारा उल्लखित ग्रंथों का परवर्ती टीका-ग्रंथों में नामोल्लेख हुआ है। यदि ग्रंथ 'मध्वमुखमर्दन' वास्तव में निम्बार्क कृत ही हो तो निम्बार्क मध्य से परवर्ती हैं। रमाबोस के इस कथन से स्पष्ट है कि वे स्वयं समय-निर्धारण के इस मूलाधार के प्रति संदिग्ध हैं। यह ग्रंथ न तो उपलब्ध है और न निम्बार्क कृत। सम्प्रदाय के समूचे साहित्य, इतिहास एवं टीका ग्रन्थों में इस ग्रंथ का नाम कहीं

---

1. निम्बार्ककृत परिजातसौरभ का आंग्ल-अनुवाद भाग 3 पृ. 14 'डेट आफ निम्बार्क' – रायल ऐशियाटिक सोसाइटी बंगाल द्वारा प्रकाशित।
2. भाग 1 पृ. 428।
3. हिंदुत्व – श्रीरामदास गौड़ पृ. 671।

नहीं आया है। अत: इस सम्प्रदाय का ग्रंथ नहीं है। अस्तु कथति ग्रंथाधार पर निम्बार्क से परवर्ती नहीं माने जा सकते।

वे बल्लभाचार्य के समकालीन भी नहीं माने जा सकते। बल्लभ का आविर्भाव वि.सं. 1535 माना जाता है। निम्बार्कीय संत चतुर-चिंतामणि जो ब्रजभूमि में नागा जी के नाम से विख्यात हैं बल्लभ के समकालीन थे। नागा जी की अवस्था उस समय 40 वर्ष के लगभग थी और बल्लभ ने उन्हें वरदान दिया था कि वे 200 वर्ष तक जीवित रहेंगे और बल्लभ के नाती श्री गोकुलनाथ से उनका समागम होगा। इस कथन का उल्लेख गोकुलनाथ ने स्वयं अपने ग्रंथ में किया है।[1] बल्लभ और नागाजी के इस समागम की पुष्टि बल्लभ सम्प्रदाय के अन्य ग्रंथ 'बल्लभ कल्पद्रुम' से भी होती है।[2] आचार्य परम्परानुसार श्री नागाजी ब्रजभूषणदेवाचार्य जी द्वारा प्रवर्तित निम्बार्कीय शाखा के 29वें आचार्य माने जाते हैं।[3] इस प्रकार निम्बार्क नागाजी से 25 पीढ़ी पूर्व वर्तमान थे। वि.सं. 1515 के लगभग निम्बार्काचार्य-परम्परा के 36वें आचार्य श्री परशुरामदेव वर्तमान अ.भा. निम्बार्क-पीठ सलेमाबाद (राजस्थान) की स्थापना कर चुके थे। अस्तु निम्बार्क बल्लभ से अत्यन्त प्राचीन हैं।

डॉ. भण्डारकर के मत की आलोचना

निम्बार्क-समय को सन् 1162 ई. में निश्चित करने वाले डॉ. भण्डारकर यह अनुसंधान करने से पूर्व उनका ठीक-ठीक समय ज्ञात कर लेना असंभव एवं असाध्य बतलाते हैं। उनका तुलनात्मक अनुसंधान भी यथातथ्य स्वीकार नहीं किया जा सकता। मध्वाचार्य की 33 पीढ़ियों का अनुमान 600 वर्ष रहा हो परन्तु निम्बार्क की भी परवर्ती कालीन 33 पीढ़ियां 600 वर्षों में पूर्ण हो गई हो—यह कैसे माना जा सकता है? उनके परवर्ती कई आचार्यों का आयुमान 150-200 वर्षों का निश्चत होता है। नैष्ठिक ब्रह्मचारियों का दीर्घायु होना संभव ही है। डॉ. भंडारकर ने जिन परम्परासूचियों के आधार पर तुलनात्मक अनुसंधान प्रस्तुत किया है, वे सूचियाँ भी अप्रामाणिक एवं अधूरी हैं।

---

1. वन-यात्रा-बैठकन के चरित-गोकुलनाथकृत। यदुवंशीय गोवर्धनदास लक्ष्मीदास द्वारा संपादित। प्रकाशक-एन.डी.महता कं मुंबई। तत्व-विवेचक छापाखाना-वि.सं. 1959 में मुद्रित/प्राप्ति स्थान-पं. लक्ष्मीनारायण मुलछी बुकसेलर-कालवादेवी।
2. महाप्रभुजी एक मास यहां रहे, एक दिवस निम्बार्क सम्प्रदाय के चतुरा नागा हजार साधु की जमात के साथ आये और जमात के लिए खीर का भोजन मांगा। आचार्य ने 5 सेर दूध की खीर से सबको तृप्त किया। आचार्य ने कहा-नागा तुम दीर्घजीवी होंगे, अभी 40 वर्ष के हो। 110 वर्ष और जीओगे। बल्लभकल्पद्रुम विटप सातयो-अंकुर बीसयो। कोकिलावन की बैठक-शुद्धाद्वैत संसद कार्यालय, अहमदाबाद।
3. द्रष्टव्य-आचार्य परम्परा-सूची ग्रंथ।

(1) हरिव्यासदेवाचार्य निम्बार्क-परम्परा के 32वें नहीं 35वें आचार्य थे।[1] 12 शिष्य थे जिन्होंने अपने-अपने नामों के आधार पर विभिन्न द्वारों की स्थापना की थी जिनमें आठ अब तक विद्यमान बतलाये जाते हैं। उन सबने हरिव्यास के पट्टशिष्य परशुरामदेव को जगद्गुरु निम्बार्काचार्य माना था और तभी से अब तक परशुरामपुरी सलेमाबाद को इस सम्प्रदाय का प्रमुख पीठासन माना जाता रहा है। परशुरामदेव की विद्यमानता वि.सं. 1515 के पश्चात् सिद्ध करना निराधार है।

(2) यहाँ हरिव्यासदेव के पश्चात् इस सम्प्रदाय को दो शाखाओं में विभक्त हुआ बतलाया गया है। हरिव्यासदेव के 12 शिष्यों ने अपने-अपने विभिन्न द्वारे स्थापित किये थे लेकिन इन द्वारों से निम्बार्क-सम्प्रदाय की कोई भिन्न शाखा का प्रवर्तन हुआ हो, ऐसा नहीं। हरिव्यास के सभी शिष्य श्री परशुरामदेव को जगद्गुरु मानते थे। निम्बार्क सम्प्रदाय की दो शाखाएँ देवाचार्य के पश्चात् प्रवर्तित हुई थीं। देवाचार्य इस सम्प्रदाय के 16वें आचार्य थे जो निम्बार्काचार्य के पश्चात 12वीं पीढी के परवर्ती आचार्य माने जाते हैं।[2] इनके प्रधान दो शिष्य श्री सुन्दर भट्टाचार्य तथा श्रीब्रजभूषण-देवाचार्य ही इस सम्प्रदाय की दो शाखाओं को चलाने वाले थे। श्रीसुन्दरभट्टाचार्य को देवाचार्य का निम्बार्क पद्मासन प्राप्त हुआ था; तथा ब्रजभूषणदेवाचार्य ने सम्प्रदाय के अंतर्गत ही एक दूसरी शाखा का प्रवर्तन किया था। तभी से आज तक ये दो शाखाएँ ज्यों की त्यों चल रही हैं। अस्तु डॉ. भण्डारकर द्वार इंगित देव के पश्चात् निम्बार्क सम्प्रदाय की दो शाखाएँ होना सर्वथा अमान्य है।

(3) डॉ. भण्डारकर ने हरिव्यास के एक शिष्य दामोदर गोस्वामी की विद्यमानता सन् 1750 ई. बताई है; परन्तु हरिव्यास के इस नामके कोई भी शिष्य नहीं थे। हरिव्यास के प्रधान 12 शिष्य थे, स्वयंभूरामदेव, उद्धवघमंडदेव, बोहितदेव, लपरागोपाल, मदनगोपाल, परशुरामदेव, ऋषिकेशदेव, मुकुन्ददेव, गोपालदेव, बाहुलदेव, माधवदेव तथा केशवदेव। इन्हीं शिष्यों के उल्लेख परंपरा-पत्रों में तथा ध्यालबालकृत भक्तमाल टीका ग्रंथ में प्राप्त होता है[3], हरिव्यास के कथित शिष्य दामोदर दास गोस्वामी नाम किसी भी ग्रंथ अथवा परम्परा सूचियों में नहीं मिलता।

डॉ. भण्डारकर को जो परम्परा सूचियाँ मिली हैं–वे निस्संदेह अपूर्ण तथा कपोल-कल्पित हैं। पुष्कर के परशुरामद्वारे के परशुरामदेव के समाधि-स्थल पर जो मंदिर-निर्माण सम्बन्धी शिलालेख मिला है उसमें परशुरामदेव के हरिवंशदास, पूरणोदास, स्वामी दामोदरदास, शेषदास, मथुरादास आदि शिष्यों का नामोंल्लेख हुआ

---

1. द्रष्टव्य-आचार्य परम्परा सूची ग्रन्थ।
2. द्रष्टव्य-आचार्य परम्परा सूची ग्रंथ।
3. हरिव्यासदेवाचार्य-प्रस्तुत ग्रंथ।

है यहाँ शिलालेख वि.सं. 1689 का है।[1] भंडारकर द्वारा कथित दामोदर गोस्वामी की विद्यमानता सन् 1750 में मानी गई है। संभव है कि इस शिलालेख में उल्लिखित दामोदर स्वामी ही 1750 वि.सं. तक विद्यमान रहे हो पर उनका समय सन् 1750 ई. न होकर वि.सं. 1750 रहा हो परन्तु यह दामोदर स्वामी हरिव्यास देव के शिष्य न होकर परशुरामदेव के प्रमुख शिष्यों में से थे। पर उनके पट्टशिष्य नहीं थे। सं. 1689 में उनके पट्टशिष्य हरिवंशदेव निम्बार्काचार्य बन चुके थे। अस्तु सं. 1689 में विद्यमान दामोदर गोस्वामी हरिवशं देवाचार्य के भी शिष्य माने जाने चाहिए। उन्होंने परशुरामदेवाचार्य से दीक्षा प्राप्त की थी। इस प्रकार सं. 1689 में हरिवंशदेव के समय वे परशुराम परम्परानुयायी निम्बार्कीय संत के रूप में हरिवंशदेवाचार्य के पुनीत शरण में विराजते थे। संभव है डॉ.भण्डारकर द्वारा उल्लिखित परम्परा सूचियों में ये ही दामोदरदास गोस्वामी हरिव्यासदेव के शिष्य के नाम से अंकित कर दिये गये हों। खोज रिपोर्ट्स ने इस प्रकार की कई भ्रांतियां निम्बार्क सम्प्रदाय के इतिहास में उपस्थित कर दी हैं। हरिव्यास और हरिवंश में गहरा नाम-साम्य है। संभव है खोज विवरण में इसी कारण दामोदर दास गोस्वामी जो वस्तुत: हरिवंशदेव के समकालीन थे उन्हें हरिव्यास के शिष्य के नाम से अंकित कर दिया हो। अत: दामोदर दास गोस्वामी वि.सं. 1750 तक विद्यमान थे परन्तु वे हरिव्यास के शिष्य न होकर परशुरामदेव के दीक्षित शिष्य तथा हरिवंशदेव के समकालीन निम्बार्कीय संत थे।

डॉ. भण्डारकर का अनुसंधान दक्षिण-भारत में प्राप्त दो-गुरु-परंपराओं पर आधारित है जिनमें हरिव्यासदेव के शिष्य दामोदर गोस्वामी माने गये हैं।[2] परन्तु समस्त भारतवर्ष में व्याप्त किसी भी परम्परा में हरिव्यासदेव के किसी शिष्य का नाम दामोदर गोस्वामी नहीं मिलता। सन् 1750 ई. अर्थात् वि.सं. 1807 में हरिव्यास देवजी की परंपरा में छठी पीढ़ी के परवर्ती आचार्य गोविन्दशरण देवजी आचार्यपीठ सलेमाबाद की गद्दी पर विराजमान थे, सलेमाबाद में उपलब्ध पट्टों से इस तथ्य की पुष्टि होती है। अत: दामोदर गोस्वामी हरिव्यासदेव के शिष्य नहीं थे और उनकी विद्यमानता भी सन् 1750ई. में नहीं थी। दामोदरदास स्वामी तो उपर्युक्त शिलालेख में वर्णित व्यक्ति हैं जिनकी विद्यमानता गुरु परंपरा सूचियों में गलती से वि.सं. 1750 के स्थान पर सन् 1750 ई. लिख दी गई है और इसी अशुद्धि से डॉ. भण्डारकर द्वारा भारी भूल हुई है। वस्तुत: दामोदरदास निम्बार्काचार्य के पश्चात् 37वीं पीढ़ी में आचार्य हरिवंशदेव के समकालीन वि.सं. 1689 से 1750 वि. तक विद्यमान परशुराम-परंपरानुयायी निम्बार्कीय संत थे। अस्तु इसमें संदेह नहीं कि दामोदर गोस्वामी की

---

1. द्रष्टव्य-शिलालेख विवरण 'परशुरामदेवाचार्य' प्रस्तुत ग्रंथ
2. वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म – पृ. 88।

कल्पना पर आधारित डॉ. भण्डाकर द्वारा निर्धारित निम्बार्क-समय का यह निर्णय अधूरा ही है।[1] उनका यह तर्क सारहीन है तथा वे स्वयं भी अपनी इस काल-गणना से असंतुष्ट हैं।[2]

(4) हरिव्यासदेव के शिष्य श्रीपरशुरामदेव वि.सं. 1515 में निबार्काचार्य पीठ सलेमाबाद में आ विराजे थे। 1525 वि. के लगभग हरिव्यासदेव का देहावसान हो गया था। सं. 1689 से पूर्व परशुरामदेव भूतल से स्वर्ग सिधार चुके थे। परशुरामदेव के पट्टशिष्य आचार्य हरिवंशदेव और उनके समकालीन दामोदरदास गोस्वामी सं. 1689 में विद्यमान थे–इस प्रकार निम्बार्क सम्प्रदाय की 35वीं पीढ़ी से 37वीं तक का प्रामाणिक इतिहास मिल जाता है। हरिव्यासदेव के गुरु श्रीभट्टदेवाचार्य जो निम्बार्क की 34वीं पीढ़ी में आते हैं उनका समय भी प्रस्तुत विवरण के आधार पर सं. 1515 वि. से बहुत पूर्व का होना चाहिए। युगलशतक के आधार पर उनका रचनाकाल सं. 1352 ही है। नागरी प्रचारिणी के खोज विवरणों के आधार पर अनेक विद्वान् इसे संदिग्ध मानते हैं। श्री भट्टदेव का समय 'राग' 'राम' की भ्रांति को लेकर 1352 वि. के स्थान 1652 वि. नहीं माना जा सकता क्योंकि सं. 1689 तक तो निस्संदेह श्रीभट्टदेव के पश्चात् उनकी दो पीढ़ियां समाप्त हो चुकी थीं। अत: निम्बार्काचार्य की 34वीं पीढ़ी के आचार्य श्रीभट्टदेव वि.सं. 1352 में विद्यमान थे। परम्परागत जनश्रुति के आधार पर इन्होंने वृहद्काय युगलशतक की रचना को पूर्ण कर अपने गुरुदेव केशवकाश्मीरि के अर्पित किया था। कहते हैं कि केशवकाश्मीरि ने युगलशतक को यमुना के भेंट कर दिया था, जिससे युगलशतक के कई सहस्त्र पद तो प्रवाहित हो गये और जो शेष रहे वे ही आज युगलशतक के नाम से प्रख्यात हैं। इस प्रकार वि.सं. 1352 में निम्बार्काचार्य की 33वीं पीढ़ी के आचार्य श्री केशवकाश्मीरि भी विद्यमान थे। अब यदि हम डॉ. भण्डारकर का अनुसरण करें तो मध्वाचार्य की 33 पीढ़ियों के आयुमान की भांति निम्बार्क की परवर्ती 33 पीढ़ियां भी संवत् 1352 वि. में 600 वर्ष पूर्ण कर चुकी थी। इस तुलनात्मक अनुसन्धान से निम्बार्क उनकी 33वीं पीढ़ी के आचार्य श्री केशवकाश्मीरि से 600 वर्ष पूर्व अर्थात् 752 वि.सं. के लगभग विद्यमान माने जाने चाहिए।

यदि हम डॉ. भण्डारकर द्वारा उल्लिखित परम्परा सूचियों के आधार पर ही हरिव्यासदेव को निम्बार्क की 32वीं पीढ़ी में भी मान लें तो भी निम्बार्क की विद्यमानता 915 वि.सं. के लगभग माननी पड़ेगी क्योंकि प्रस्तुत शोध के अनुसार हरिव्यासदेव सं. 1525 वि. तक स्वर्गसिधार चुके थे और उनके पट्टशिष्य परशुरामदेव सं. 1515

---

1. वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म, पृ. 88
2. वही, पृ. 88

वि. में ही आसन ग्रहण कर निम्बार्क तीर्थ में आ विराजे थे। अस्तु निम्बार्क-काल सम्बन्धी डॉ. भण्डारकर तथा अन्य उल्लिखित शोध-लेखकों के मत अब कोरे अनुमान प्रतीत होते हैं। आधुनिक अन्वेषकों के समक्ष अब विस्तृत ऐतिहासिक सामग्री है; अत: वे इस प्राचीन धारण को प्रामाणिक नहीं मानते।[1]

शंकराचार्य से पूर्ववर्ती-निम्बार्क-सम्प्रदाय के विद्वान् निम्बार्काचार्य को रामानुज, मध्व, बल्लभादि सभी वैष्णवाचार्यों से प्राचीनतम तथा शंकराचार्य से पूर्ववर्ती एवं महर्षि श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास के समकालीन मानते हैं। ग्रियर्सन, मोनियर-विलियम्स, ग्राउस हण्टर आदि पाश्चात्य लेखकों ने भी निम्बार्काचार्य को अन्य वैष्णवाचार्यों से प्राचीन माना है। डॉ. भण्डारकर आदि ऐतिहासिकों के उल्लेखों पर विचार करते हुये हमने भी निम्बार्काचार्य की प्राचीनता पुष्ट की है। इतना तो निश्चित है कि निम्बार्काचार्य सभी वैष्णवाचार्यों से प्राचीन हैं – आगे इस कथन की पुष्टि ऐतिहासिक-प्रमाणों द्वारा की गई हैं। यहाँ हमें निम्बार्काचार्य को शंकराचार्य से पूर्ववर्ती मानने वाली निम्न विचारधाराओं पर संक्षिप्त रूप से विचार करना अपेक्षणीय है।

1. भविष्यपुराणों के एकादशी-व्रत-निर्णय में निम्बार्क-मत को उद्धृत किया गया है, जहां निम्बार्क को विशेष सम्मान देने हेतु 'भगवान्' शब्द से अभिहित किया गया है।

'निम्बार्को भगवान् येषां वाञ्छितार्थफलप्रद:।
उदयव्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरूपोषणे।।'

2. निम्बार्ककृत भाष्य 'वेदान्त-पारिजात-सौरभ- अत्यन्त लघु, संक्षिप्त एवं खंडन-मंडन से परे होने से वह अद्वैतवाद तथा विभिन्न वैष्णववादों से प्राचीन प्रतीत होता है।

3. शंकराचार्य ने अपने भाष्यों में निम्बार्काचार्य के द्वैताद्वैत दर्शन की आलोचना की है। इसके विपरीत निम्बार्काचार्य तथा उनके पट्ट-शिष्य श्रीनिवासाचार्य के भाष्यों में शंकरमत का खंडन तो दूर रहा उल्लेख तक नहीं मिलता।

4. आदि वैष्णव-धर्म के आचार्य श्री निम्बार्क ही थे।

---

1. डॉ. भण्डारकर ने गुरु परम्परा की छानबीन करके इनका समय सन् 1162 ई. के आसपास माना है और नवीन विद्वानों की दृष्टि में यही इनका प्राचीनतम काल है परन्तु केवल गुरु परम्परा के आधार पर काल निर्णय करना बिना अन्य सहायक तथा पोषक सामग्री के नितान्त भ्रामक है। गुरु परम्परा बीच-बीच में छिन्नभिन्न हुआ करती है; अत: ठीक-ठीक पीढ़ियों का पता नहीं चलता। आचार्य योगाभ्यासी होने से विशेष दीर्घ जीवी होते थे। फलत: इसी आधार पर हम किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सकते (भागवत सम्प्रदाय पृ. 316 बलदेव उपाध्याय)

(1) भविष्य पुराणोक्त श्लोक को अनेक विद्वान् प्रक्षिप्त मानते हैं। उनका कथन है कि सम्प्रदायाचार्यों ने अपने मत की प्राचीनता एवं पौराणिकता सिद्ध करने हेतु उनमें कुछ उल्लेखनीय अंकों को मिलाकर घटा-बढ़ी कर दी है। निम्बार्काचार्य का जीवन चरित्र लिखने वाले पूर्ववर्ती विद्वान्ों ने वामन, भविष्य, स्कन्ध आदि पुराणों का आधार भी लिया है। इन पुराणों की कई प्रतियों में निम्बार्क संबन्धी प्रचलित पौराणिक उल्लेख प्राप्त नहीं होते। यह विश्वास किया जा सकता है कि मध्यकालीन 16-17वीं सदी के सम्प्रदायाचार्यों ने ऐसा किया हो परन्तु उपर्युक्त भविष्य पुराणीय श्लोक मौलिक एवं प्राचीनतम प्रतीत होता है क्योंकि निम्बार्क सम्प्रदायियों के अतिरिक्त अन्य धर्मशास्त्रियों ने भी अपने ग्रंथों में इसका उल्लेख किया है। विक्रम की 13वीं शताब्दी के अन्य धर्म-शास्त्री हेमाद्रि ने अपने 'चतुवर्ग चिंतामणि' नामक ग्रंथ के 'मात्स्योक्त-मुक्ति-सप्तमी-व्रत' प्रसंग में वेधनिर्णयात्मक इस भविष्य-पुराणीय श्लोक को उद्धत कर भ्रांति का निराकरण कर दिया है—

'निम्बार्को भगवान् येषां वांछितार्थ प्रदायकः।
उदय-व्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरूपोषण।।'

वर्तमान काल के भविष्य पुराणों में प्रायः यह श्लोक नहीं मिलता है परन्तु इस श्लोक को भविष्य पुराणीय मानना ही पड़ेगा। हेमाद्रि से पूर्ववर्ती भविष्य पुराणों में इस श्लोक की परम्परा रही है। उनसे पूर्ववर्ती भट्टोजी दीक्षित तथा कमलाकर भट्ट ने अपने ग्रंथों में प्रस्तुत श्लोक को भविष्यपुराणीय घोषित किया है।[1]

अस्तु हेमाद्रि पूर्व लगभग 9-10वीं शताब्दी तक यह श्लोक भविष्य-पुराणीय अवश्य रहा है। अवान्तरकालीन भविष्य पुराणों में तो ऐसी अनेक कथायें एवं घटनाएं उल्लिखित्त कर दी गई हैं जिनको देखकर आधुनिक विद्वान् भविष्य-पुराण की रचना आधुनिकतम मानने लगे हैं। वर्तमान काल तक आते 2 तो भविष्य पुराण में कई आश्चर्यजनक एवं असम्बद्ध घटनाओं का भी उल्लेख कर दिया गया है। उदाहरणार्थ शंकराचार्य, रामनुज आदि के समक्ष अकबरादि मुगल बादशाओं को ला खड़ा किया है। इसी प्रकार यह भी संभव है कि दीर्घ परम्परा वाले प्राचीन भविष्य पुराणीय कथनकों का परिवर्तन एवं अमूल निष्कासन कर दिया गया हो। अतः प्रस्तुत श्लोक मूलतः भविष्यपुराणीय ही है जो निम्बार्काचार्य की लगभग 7वीं शताब्दी में अत्यन्त प्रसिद्धि हो जाने का महत्त्वपूर्ण साक्ष्य है।

(2) निम्बार्ककृत भाष्य 'वेदान्तपरिजातसौरभ' अत्यन्त सूक्ष्म है। यहाँ अद्वैतवाद एवं अन्य वैष्णव-दर्शनों का खण्डन नहीं हुआ है। केवल सूख्म आचार्यों में द्वैताद्वैत-

---

1. वैष्णवधर्म-सुरद्रुममंजरी, श्री संकर्षणशरणदेव, पृ. 124-30

दर्शन का प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्मसूत्र पर अन्य आचार्यों ने जो व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं उनमें अन्यान्य मतमतान्तरों का खंडन एवं उल्लेख होने से तत्सम्बन्धित दर्शनाचार्यों का काल-ज्ञान भी सुलभ हो जाता है परन्तु निम्बार्क का भाष्य अत्यन्त सूक्ष्म होने तथा उसमें कहीं-कहीं मत-मतान्तरों के अत्यन्त अस्पष्ट[1] संकेत मिलने से उनके आधार पर निम्बार्क काल सम्बन्धी असंदिग्ध अनुमान लगाना असंभव प्रतीत होता है।

निम्बार्क विरचित इस सूक्ष्म भाष्य में बौद्ध-दार्शनिक 'वसुबन्धु' के अस्तित्ववादी मत का उल्लेख हुआ है[2], वसुबन्धु बौद्ध पांचवीं शताब्दी के दार्शनिक माने जाते हैं। निम्बार्क के शिष्य श्रीनिवासजी ने अपनी टीका में छठी शताब्दी के बौद्ध-दार्शनिक विप्रभिक्षु (धर्मकीर्ति) का उद्धरण दिया है। निम्बार्क के सूक्ष्म भाष्य के केवल बौद्ध-जैन मत की आलोचना[3] हुई है, इसी आधार पर सम्प्रदायी विद्वान् निम्बार्क की विद्यमानता वि. की छठी शताब्दी के अन्त में मानते हैं तथा उन्हें शंकराचार्य से पूर्ववर्ती घोषित करते हैं। इसमें शंकराचार्य के मायावाद एवं अद्वैतवाद का खण्डन नहीं हुआ है। उत्प्रत्यधिकरण वाले सूत्र[4] में निम्बार्क ने 'शक्तिकारणवाद' का खंडन किया है। यदि वे अद्वैताचार्य शंकर से परवर्ती होते तो शंकरोक्त 'व्यूहवाद-खंडन' का भी प्रतिवाद करते। इसके विपरीत शंकराचार्य ने अपने भाष्य में निम्बार्क के द्वैताद्वैत

---

1. Nimbark wrote a short commentary on the Brahman Sutra called Vedanta Parijat Saurabha. This commentary is very condensed and its peculiarity is that unlike most of the commenteries it contains no attempt at refuting rival schools of thought at expounding at length the theory of the author himself. (page 8-Works of Nimbark, Vedanta Kaustubha of Shri Navas by Rama Bose M.A.D.Phil)
2. सुगतमतं निराकरोति। विज्ञानमात्र-अस्तित्ववादी (वसुबन्धु) अभिमत:। विनष्टो देहपरिमाण। जेनमतवाद: ब्र.सू. 2-2-18 से 36।
3. (अ) भारतेर साधना मा. पत्रिका का बंगला सन् 1340 आग्रहायण मास तथा श्री भारती बंगला मासिक पत्रिका अंक 5, 6, 8 से 11 (श्री विग्जाकान्त घोष) युगलशतक भूमिका पृष्ठ 27-28 सं. ब्रजवल्लभशरणजी।
   (ब) निम्बार्क विक्रान्ति (134-35) के अनुसार निम्बार्क ने अपने आश्रम में आये हुये जैन अथवा दण्डी संन्यासियों को रात्रि में अपना सूर्य के समान प्रभा वाला सुदर्शन स्वरूप दिखलाकर भोजन कराया था और इसी से निम्बार्क नाम से प्रख्यात हुये। इस घटना से प्रतीत होता है कि निम्बार्क के समय समाज में उग्र जैनवाद प्रचलित था और जैन साधु वैष्णव भक्तों के चमत्कार की परीक्षा लेते होंगे।
4. ब्र.सू.अ. 2 पा. 2 सू. 42।

दर्शन की आलोचना की है। अत: निम्बार्काचार्य की भाष्य रचना शंकर के अद्वैतमत एवं वैष्णवाचार्यों के विभिन्न दर्शनों से पूर्व की है।

निम्बार्काचार्य के पूर्व जो दर्शन भेदाभेद के नाम से प्रचलित था उसे निम्बार्क ने अपनी विशिष्ट दार्शनिकता से पुष्ट कर द्वैताद्वैत के नाम से प्रवर्तित किया था। निम्बार्क के समय बौद्ध-दर्शन ही उनके विपक्षी रूप में विद्यमान था जिसका उन्होंने खंडन किया। वे अपने समय के प्रमुख दार्शनिक थे, यदि उनकी भाष्य रचना के समय शंकराचार्य का भक्ति विरोधी उग्र-अद्वैतवाद सामने खड़ा हुआ होता तो वे उसकी भी कड़ी आलोचना करने में न चूकते। संभव है उनके समय में शंकर से पूर्ववर्ती कोई अन्य अद्वैताचार्य रहे हों, परन्तु शंकराचार्य का विशिष्ट अद्वैत-दर्शन जिसने बौद्ध-दर्शन को भारत से उखाड़ने के साथ ही वैष्णव-भक्ति का मार्ग भी अवरुद्ध कर दिया था, वह तो निश्चित रूप से निम्बार्काचार्य से परवर्ती काल का अद्वैत दर्शन ही था। अत: विद्वान् निम्बार्क-भाष्य को प्राचीनतम मानते हैं।[1]

(3) निम्बार्काचार्य ने अपने भाष्य में शंकर मत का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है, इसके विपरीत अपने भाष्य में उनके शंकर-दर्शन द्वैताद्वैत से प्रभावित हैं। एकाधिक स्थलों पर शंकर ने अद्वैत-दर्शन के प्रतिपादनार्थ निम्बार्क एवं उनके शिष्य श्रीनिवासकृत भाष्यों का अनुगमन भी किया है। शंकर ने यहाँ द्वैताद्वैत दर्शन को भेदाभेद के नाम से भी अभिहित किया है जिससे कतिपय विद्वानों की यह भ्रांत-धारणा भी बन गई है कि निम्बार्कीय द्वैताद्वैत और भेदाभेद दर्शन सर्वथा भिन्न है और चूँकि शंकर ने भेदाभेद की ही मुख्यत: आलोचना की है, अत: निम्बार्क का द्वैताद्वैत शंकर से परतर्वी काल का है। यह भ्रान्त धारण है। वस्तुत: द्वैताद्वैत और भेदाभेद दर्शन में अभिन्नता है। शंकराचार्य के समय द्वैताद्वैत शब्द का भी प्रयोग किया है। शंकराचार्य ने जहां भेदाभेद की आलोचना की है। वहां उनका सम्बन्ध द्वैताद्वेत से भी है। शंकराचार्य ने भेदाभेद की ही अधिक आलोचना इसलिए की थी उनके समकालीन भेदाभेदवादी प्रमुखाचार्य भी भट्टभास्कर विद्यमान थे।[2] शंकर ने प्रमुख रूप से भट्टभास्कर के भेदाभेद का प्रतिपाद किया।

निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रकांड पंडित श्री ब्रजवल्लभशरण ने शांकरभाष्य के अनेक उद्धरण प्रस्तुत कर उससे निम्बार्क भाष्य की प्राचीनता सिद्ध की है।[3] उनके अनुसार शांकर-भाष्य में भेदाभेद की आलोचना विस्तृत रूप से हुई है तथा द्वैताद्वेत का एकाधिक स्थलों पर ही नामोल्लेख हुआ है।

---

1. भागवत सम्प्रदाय पृ. 316 श्री बलदेव उपाध्याय।
2. वेदान्त दर्शनेर इतिहास-राजेन्द्रघोष।
3. युगल शतक की भूमिका।

भेदाभेद और द्वैताद्वैत मत एक ही है। निम्बार्काचार्य और उनके परवर्ती शिष्याचार्य श्री निवास ने भी अनेक स्थानों पर भेदाभेद का नामोल्लेख किया है।

शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में विषय प्रतिपादनार्थ भेदाभेद शब्द को प्रयुक्त किया है और उसी विषय को बृहदारण्यक भाष्य में द्वैताद्वैत शब्द से उल्लिखित किया है। अस्तु निम्बार्क तथा शंकर दोनों ही भेदाभेद व द्वैताद्वैत में समानता स्थापित करते हैं।

भेदाभेदवादी भट्टभास्कर शंकर के समसामयिक माने जाते हैं, जिन्होंने शंकर मत के खडनार्थ ब्रह्मसूत्र पर विस्तृत भाष्य लिखा था। उन्होंने भाष्य के प्रारम्भ में ही इस उद्देश्य की अभिव्यक्ति कर दी है। आपने कहीं-कहीं भाष्य में निम्बार्क के शिष्य श्रीनिवास कृत वेदान्त कौस्तुभ भाष्य के प्रसंगों को अक्षरश: उद्धृत कर दिया है। ब्र.सू. 2/3/31 नित्योपलब्ध्यनु. की आलोचना करते हुए श्री निवासाचार्य ने लिखा है– चेतनभूतात्मविभुत्ववादिमते दोषकथार्थ सूत्रमिदम्।[1] भास्कराचार्य ने इस सूत्र को चेतन आत्मा को विभु मानने वाले बौद्धाचार्यों के खंडनार्थ बतलाया है। आपने इसी पंक्ति को अक्षरश: उद्धृत कर उसकी आलोचना की है – ''यत्युक्तरात्मविभुत्ववादिनां दोषकथनार्थ सूत्रमिति-व्याख्यातं तदयुक्तम्।[2]

इस उद्धरण से श्रीनिवासाचार्य भट्टभास्कराचार्य से पूर्ववर्ती प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त भट्टाभस्कराचार्य ने ब्र.सू. 1-2-15 के भाष्य में एक विशेष सूत्र की चर्चा करते हुए निम्बार्क की ओर अस्पष्ट संकेत किया है। भाष्य के अंत में 'अत्रावसरे अतएव च तद्ब्रह्मेति सूत्रमन्ये पठन्ति तत्पुनर्गतार्थमित्यन्यैर्नाभिधीयते' पंक्ति द्वारा निम्बार्क की सूत्र-पाठ परम्परा का अनुसरण किया गया है क्योंकि यदि भट्टभास्कर बोधायनादि वृत्तिकार को अपना लक्ष्य बनाते तो रामानुजाचार्य की भांति 'अतएव च स ब्रह्म' सूत्र-पाठ का निर्देश उद्धृत कर देते। अस्तु सम्प्रदायी विद्वान् पं. ब्रजवल्लभशरणजी के अनुसार इस सूत्र-पाठ परम्परा तथा भाष्यों के अन्तस्साक्ष्य के आधार पर निम्बार्क एवं उनके शिष्य आचार्य श्रीनिवास भट्टभास्कर तथा शंकर से पूर्ववर्ती प्रतीत होते हैं।

शंकराचार्य और भट्टभास्कर दोनों ही निम्बार्क से परवर्ती हैं। शंकराचार्य ने बृहदारण्यकोपनिषद् 5-1-1 के भाष्य में ब्र.सू. 2-1-14; 2-3-43 आदि के भाष्य में द्वैताद्वैत-भेदाभेद की समालोचना प्रस्तुत की है। जो ब्र.सू. 2-1-13, 2-3-41, 3-2-20 आदि के श्रीनिवासकृत भाष्य की ससंदर्भ समालोचना के रूप में प्रकट हुई है। एक बात और उल्लेखनीय है कि यदि निम्बार्क और श्रीनिवास, शंकर तथा भट्टभास्कर से

---

1. ब.सू. 2-3-31, वेदान्त कौस्तुभ अवतरणिका।
2. ब.सू. 2-3-32 पर भट्ट भास्कर भाष्य।

पूर्ववर्ती नहीं होते तो ब्र.सू. 2-2-42 के भाष्य रूप में शंकर एवं भास्कर द्वारा किये नारद-पांचरात्र-मत के खंडन का प्रतिवाद अवश्य करते क्योंकि अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की भांति निम्बार्क-मत में भी नारद-पांचरात्र को महनीय स्थान प्राप्त है।

इस प्रकार निम्बार्क भाष्य में किसी मत का खण्डन न होना, शंकर-भास्कर भाष्यों में निम्बार्क-दर्शन की आलोचना होना तथा शंकर-भाष्य में श्रीनिवासकृत भाष्य के अक्षरश: उद्धरण उपलब्ध होना आदि तथ्य निम्बार्क और श्रीनिवास को शंकराचार्य एवं भास्कराचार्य से पूर्ववर्ती सिद्ध कर देते हैं। निम्बार्काचार्य का भाष्य शंकर-भाष्य से पूर्व जैन-बौद्ध-दर्शन से वैदिक-धर्म के रक्षणार्थ रचा गया था।

अन्य वैष्णवाचार्यों से प्राचीन–श्रीनिम्बार्क एवं उनका द्वैताद्वैतिक सम्प्रदाय अन्य वैष्णवाचार्यों एवं उनके द्वारा प्रवर्तित विभिन्न सम्प्रदायों से प्राचीन है। रामानुज, माध्व, वल्लभ प्रभति आचार्यों ने शंकराचार्य के अद्वैतवाद से मोर्चा लेने हेतु अपने परम्परागत सम्प्रदायों में विशिष्ट-दर्शनों की स्थापना की थी। विशिष्टाद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैतादि सभी वैष्णव-दर्शन शंकराचार्य के अद्वैतवाद से अर्वाचीन हैं क्योंकि इनके प्रवर्तकाचार्यों ने अपने भाष्यों में शंकर भाष्य की स्पष्ट आलोचना की है। निम्बार्क भाष्य में शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का उल्लेख तक नहीं हुआ है। निम्बार्क के पश्चात्-पुरुषोत्तमाचार्य ने अद्वैतवाद का खण्डन किया है। अत: निम्बार्क अद्वैतवाद के विरोधी आचार्य रामानुज, मध्व, वल्लभ से पूर्ववर्ती हैं।

हमने उपुर्यक्त लेख में निम्बार्क को शंकराचार्य से भी पूर्ववर्ती सिद्ध किया है, अत: निम्बार्क स्वत: ही इन आचार्यों से पूर्ववर्ती सिद्ध हो जाते हैं परन्तु यहाँ निम्बार्क को अन्य वैष्णवाचार्यों से अर्वाचीन बताने वाली भ्रान्त धारणाओं का पृथक् निराकरण आवश्यक प्रतीत होता है।

(1) निम्बार्काचार्य एवं उनके दर्शन का उल्लेख विद्यारण्य सायण, माधव ने शंकरदिग्विजय, सर्व-दर्शन-संग्रह आदि ग्रंथों में नहीं किया, इस कारण निम्बार्काचार्य को अन्य वैष्णवाचार्यों से अर्वाचीन नहीं माना जा सकता। सायणमाधव निम्बार्क-दर्शन से अनभिज्ञ नहीं थे वरन् उन्होंने जानबूझकर उक्त ग्रंथों में निम्बार्क-दर्शन का उल्लेख नहीं किया था। माधव-सायणाचार्य के समकालीन दिग्विजयी निम्बार्काचार्य श्री केशवकाश्मीरि विद्यमान थे जिनकी प्रतिभा से तत्कालीन सभी दर्शनाचार्य प्रभावित थे, अत: यह संभव है कि सायणमाधव निम्बार्कानुयायी न होने से उनके समसामयिक प्रतिभाशाली जगद्विजयी निम्बार्काचार्य केशवकाश्मीरि के प्रति स्वभाविक स्पर्द्धा एवं द्वेष की भावना रखते हों अथवा ये उनसे भयभीत रहे हों जिससे उन्होंने निम्बार्क मत की आलोचना नहीं की हो। यदि माधव निम्बार्क दर्शन की आलोचना करते तो उन्हें केशव-काश्मीरि द्वारा कड़ा विरोध मिलता जिससे उनकी अभिलषित कीर्ति असंभव

हो जाती। सायणमाधव के निम्बार्क के द्वैताद्वैत का ही उल्लेख नहीं किया हो ऐसी ही बात नहीं वरन् उन्होंने तो द्वैताद्वैत की आदि परम्परा भेदाभेद की भी उपेक्षा की है। यदि वे निम्बार्क-दर्शन से अनभिज्ञ होते और निष्पक्ष तथा निर्भीक होकर सर्वदर्शन संग्रह करते तो शंकराचार्य के समकालीन भट्टभास्कराचार्य के भेदाभेद का तो कुछ उल्लेख अवश्य करते, भेदाभेद से तो वे सुपरिचित थे ही क्योंकि उनके प्रमेय विवरण-संग्रह-टीका-ग्रन्थ में इसकी आलोचना हुई है। अत: प्रतीत होता है कि सायणमाधव ने जानबूझकर द्वैताद्वैत और भेदाभेद की उपेक्षा की है। वस्तुत: वे निम्बार्क-दर्शन से भली-भाँति परिचित थे। भला यह कैसे माना जा सकता है कि शंकराचार्य के भाष्यों में इनकी स्पष्ट रूप से आलोचना हुई हो और परवर्ती ग्रंथकार सायणमाधव उससे अनभिज्ञ रहे हों?

यह भी कोई हेतु नहीं कि 'सर्व-दर्शन-संग्रह' में निम्बार्क दर्शन को संगृहीत न किया जिससे वह उससे अर्वाचीन है। आज भी हेमचन्द्र चौधरी कृत वैष्णव सम्प्रदायेर इतिहास जैसे ग्रंथों में निम्बार्क का उल्लेख नहीं किया गया है तो क्या निम्बार्क को 19वीं 20वीं शताब्दी का मान लिया जाय? अस्तु निम्बार्क एवं उनका दर्शन सायणमाधव से पूर्व का है।

(2) बल्लभाचार्य के समकालीन तो श्री परशुरामदेवाचार्य थे जो निम्बार्क परम्परा की 36वीं पीढ़ी में अवतरित हुए थे। इनके अतिरिक्त निम्बार्क के द्वितीय शखा के 29वें आचार्य चतुरचिंतामणि 'नागाजी' भी बल्लभाचार्य के समकालीन थे। आचार्य वल्लभ से जिनकी भेंट होने का उल्लेख किया जा चुका है। निम्बार्क की 33वीं पीढ़ी के आचार्य श्री केशवकाश्मीरि से लेकर श्री परशुराम देवाचार्य तक का ऐतिहासिक विवरण प्रमाणिक रूप में प्राप्त हो रहा है। केशव काश्मीरि का आविर्भाव 1250 वि.सं. के आसपास का है। यदि वर्तमान समय में निम्बार्क सम्प्रदाय द्वारा प्रचलित एवं मान्यता प्राप्त सूचियों में थोड़ा बहुत हेर फेर भी मान लिया जाय तो भी निम्बार्काचार्य केशवकाश्मीरि से पूर्व 25वीं पीढ़ी में तो हुये ही होंगे। 25 पीढ़ियों का जीवनकाल यदि 500 वर्ष भी रहा हो तो भी निम्बार्क की विद्यमानता विक्रम की सातवीं शताब्दी में निश्चित होती है। इस प्रकार शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य आदि सभी आचार्य निम्बार्क से परवर्ती सिद्ध होते हैं।

(3) निम्बार्क समप्रदाय अत्यन्त प्राचीन है जिसकी परम्परा में भारत के धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों को प्रभावित करने वाले अनेक आचार्य प्रकट हुये हैं। निम्बार्काचार्य के पश्चात् पुरुषोत्तमाचार्य, देवाचार्य, केशवकाश्मीरि, श्रीभट्ट, हरिव्यासदेव, परशुरामदेव आदि इस दृष्टि से भारत के प्राचीन इतिहास में अत्यन्त विश्रुत रहे हैं। सम्प्रदाय-परम्परानुसार निम्बार्क-पट्टासीन आचार्य के नाम से पूर्व निम्बार्काचार्य लिखा जाता रहा है, अस्तु इन आचार्यों को कई प्राचीन लेखकों,

टीकाकारों ने केवल निम्बार्काचार्य कहकर सम्बोधित किया है जिस से अर्वाचीन इतिहास-लेखकों को निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रवर्तक एवं आद्याचार्य निम्बार्क का जीवन वृत्त लिखने में कई भ्रान्तियाँ हुई हैं। कई अर्वाचीन कथायें भी उनके साथ जोड़ दी गई हैं। डॉ. भण्डारकर आदि ऐतिहासिकों ने निम्बार्काचार्य को रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य के आसपास बतलाया है। संभव है केशवकाश्मीरि जिन्होंने तीन बार जगद्विजयी होने वाले का यश प्राप्त किया था तथा जिन्हें सम्प्रदाय के विद्वान् 300 वर्ष तक जीवित रहने वाले महायोगी मानते हैं। वे ही इन आचार्यों के समसामयिक रहे हैं। इस संक्राति काल में केशवकाश्मीरि केवल निम्बार्काचार्य के नाम से जगद्विख्यात हो गये थे। अत: प्रकट होता है कि इन्हीं आचार्य के नाम से अनेक भ्रांतियाँ हो गई हैं।

(4) निम्बार्काचार्य के दशश्लोकी ग्रन्थ से प्रकट होता है कि सम्प्रदाय में द्वैताद्वैत दर्शन की प्रतिष्ठा करने वाले निम्बार्क वैष्णव-भक्ति के क्षेत्र में राधा कृष्ण की युगलभक्ति के प्रवर्तक भी थे। दशश्लोकी के पाँचवें श्लोक के अनुसार उन्होंने युगलभक्ति में राधिकोपासना की प्रधानता स्थापित की थी।[1] कृष्ण की उपासना का प्रचलन ईसा से पूर्व ही हो गया था। नानाघाट, वेसनगर के प्रस्तरलेखों के कृष्णोपासना का समय ईसा से पूर्व 200 वर्ष का निश्चित होता है। पाणिनि सूत्रों के अनुसार वासुदेव-कृष्ण की उपासना तो ईसा पूर्व 700 वर्ष की सिद्ध होती है। परन्तु इस समय तक कृष्णभक्ति में राधाभक्ति का समावेश नहीं हुआ था। राधाकृष्ण की युगलोपासना ईसा से पूर्व की सिद्ध नहीं होती परन्तु इतना निश्चित ही है कि इसका प्रचलन शंकराचार्य से पूर्व हो गया था। संस्कृत-साहित्य के ग्रंथ गाहा-सतसई (गाथा सप्तसती) पंचतंत्र, हर्षचरित, वेणी-संहार आदि के आधार पर राधा का कृष्ण के साथ अस्तित्व ईसा की प्रथम शताब्दी से सातवीं शताब्दी तक निरन्तर प्रकट होता है। पद्म, ब्रह्मवैवर्त आदि राधाविषयक पुराण भी उसे लगभग इसी समय का प्रमाणित करते हैं। दक्षिण के आलवारों में राधा-भावना ईसा की 5वीं 6ठी शताब्दी में पूर्णतया विकसित और परिपुष्ट हो चुकी थी। परियालवार की पोष्यपुत्री 'आण्डाल' राधाभाव कीप्रतीक बन गई थी। रामचन्द्र शुक्ल ने 'आण्डाल' समय 773 ई. माना है।[2] राधा की भक्ति में आमीरों का महत्वपूर्ण योग रहा है। महाभारत के मौशलपर्व में अमीरों का उल्लेख मिलता है। मथुरा, सौराष्ट्र, काठियावाड़ के आभीर सम्बन्धी शिलालेख इस जाति को ईसा की प्रथम शताब्दी तक भारत में पूर्णरूप से बस जाने का प्रमाण दे रहे हैं। इनकी बालदेवी राधा का संयोग युगल भक्ति के क्षेत्र में शंकराचार्य से पूर्व हो गया था। पहाड़पुर

---

1. अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानानुरूप सौभगाम्।
सखि सहस्रैपरिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।। (दश श्लोकी)
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 178

की खुदाई में मिली युगलमूर्ति में कृष्णलीला का विस्तार देखा जाता है जो ईसा की सातवीं शताब्दी में राधाकृष्ण की मधुर-भक्ति का प्राचीन प्रमाण है।

वैष्णव-धर्म का उदय तो ईसा से अत्यन्त प्राचीन है। पांचरात्र, भागवत, सात्वत आदि वैष्णव धर्म के प्राचीन सम्प्रदाय ईसा से पूर्व सातवीं शताब्दी तक विस्तृति प्राप्त कर चुके थे। ईसा पूर्व 300 वर्ष से लेकर ईसा की पाँचवी शताब्दी तक आन्ध्र, चालुक्य, पल्लव, क्षत्रप, गुप्त, त्रैकूटवंशीय राजाओं के समय वैष्णवधर्म खूब फूलाफूला था। शकर-दिग्विजय ग्रंथ के अनुसार शंकराचार्य को पांचरात्र और भागवत दोनों धर्मों से शास्त्रार्थ करना पड़ा था। इन सम्प्रदायों में राधा कृष्ण भक्ति का प्रचलन रहा होगा।

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन, आत्रेय, औडुलौमि, आश्मरथ्य, भर्तृहरि, पतञ्जलि आदि अनेक वेदान्ताचार्य एवं वैष्णव-धर्म के प्रबल प्रचारक हुए हैं। विचारणीय यह है, कि राधाकृष्ण की भक्ति का सूत्रपात करने वाले कौन थे? व्यासकृत सारे पुराण मूलरूप में विद्यमान हों, यह माना नहीं जा सकता। राधाविषयक पुराण (ब्रह्मवैवर्त-पद्मादि) इसी मध्ययुग में बने अथवा हेर-फेर करके पुनः लिखे गये यह अनेक विद्वान् मानते हैं। भागवत पुराण प्राचीन है परन्तु उसमें राधा-भाव अस्पष्ट रूप से प्रकट हुआ है। अतः प्रतीत होता है कि राधाकृष्ण की युगलभक्ति के प्रवर्तक व्यास के पश्चात् ही हुए थे और वे थे, निम्बार्काचार्य जिन्होंने पौराणिक कृष्णा के साथ राधा को उनकी अर्धांगिनीरूप शक्तिरूपा-आह्लादिनी के रूप में प्रतिष्ठित किया था तथा श्री राधा की सहचरि उपासना का सूत्रपात किया था। आचार्य, जयदेव, वल्लभ, चैतन्य, हितहरिवंश, हिरिदासादि सभी शंकर से अर्वाचीन है तो फिर यह मानना ही पड़ेगा कि निम्बार्काचार्य ने ही युगल-तत्त्व में श्रीराधा को प्रमुख माना था। निम्बार्क का दर्शन श्री शांकर की आलोचना का विषय बना था, यदि शंकर भी राधाकृष्ण उपासक होते तो निश्चित ही है, कि वे राधावादी युगलोपासना की चर्चा अपने ग्रन्थों में करते। दशश्लोकी के राधावाद के आधार पर यही कहा जायगा कि निम्बार्क शंकराचार्य से पूर्व ईसा की छठी-सातवीं शताब्दी में आविर्भूत हुए थे।

ऐतिहासिक प्रमाण

आचार्य निम्बार्क दक्षिण भारत के निवासी थे तथा आपका जन्म आंध्र प्रदेश में वैदूर्य पत्तन (पैठन) के समीपस्थ अरुणाश्रम में हुआ था। पैठन मुस्लिम युग से पूर्व दक्षिण काशी के नाम से प्रख्यात रहा था। इस पावन नगर में अनेक सन्त-विद्वान् एवं दार्शनिक उक्त समय निवास करते थे। इतिहासकार चापकेर का मत है, कि निम्बार्काचार्य भी यहां अल्पकाल पर्यन्त रहे थे। ब्रज आने से पूर्व उनका जीवन मान्यखेट (मालखेट) नगर से भी सम्बन्धित रहा था, सम्प्रदायियों में ऐसी जनश्रुतियाँ

भी प्रचलित हैं। लगभग आठवीं शताब्दी में दन्तिदुर्ग नामक राष्ट्रकूट शासक ने चालुक्य वंशी श्री शैल राजा को पराजित कर कांची, कौशल, कलिंग, मालवा, टंक आदि भूभागों में राष्ट्रकूट साम्राज्य की स्थापना की थी, इसी के समय मान्यखेट का अभ्युदय हुआ।[1] इस राजवंश के साहसतुंग नामक नरेश के दरबार में सुमन्तभद्र नामक दार्शनिक राजपंडित थे जिनके दर्शन का उल्लेख शंकरभाष्य में हुआ है।[2] इतिहासकार स्मिथ ने दन्तिदुर्ग का समय 753 ई. माना है,[3] साहसतुंग भी लगभग इसी समय विद्यमान थे।[4] अतः संभव है कि इन राजाओं के यहाँ निम्बार्क को भी स्थान मिला हो। दक्षिण भारत के इन नगरों को मुस्लिम आक्रमणों ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था जिससे यहाँ का ऐतिह्य लुप्त हो गया है अन्यथा इस सम्बन्ध में निम्बार्क का नाम आन्ध्र-मालवादि प्रदेश में अत्यन्त प्रख्यात हो चुका था, जिसकी पुष्टि परवर्तीकाल में निम्बार्क नाम पर बने विद्य-भवन में होती है। दक्षिण में हैदराबाद राज्य में आदिलाबाद से 3 कोस दूर वि.सं. 1116 से 1154 के लगभग एक 'अग्रहार' था जिसमें मालवा के परमारवंशीय सामन्त की पत्नी से 'निम्बादित्य-प्रासाद' बनवाया था, ध्वंसावशेषों में तत्सम्बन्धी शिलालेख मिला है।[5] इसी स्थान में पैठन और मान्यखेट वर्तमान थे। इनके अभ्युदय काल में इनके राजाओं से निम्बार्क का सम्पर्क रहा है तथा उनके शासन काल में निम्बार्क दार्शनिक संत के रूप में प्रख्यात रहे थे। तभी वि. की ग्यारहवीं शताब्दी में प्रासाद उनकी विश्रुति में बनाया गया था। उक्त शिलालेख में उदयादित्य, भोज आदि के नामाल्लेख से कथित प्रासाद का निर्माण काल भी 11वीं शताब्दी प्रकट होता है।

इतना निश्चित है कि शंकराचार्य वि. की 7वीं 8वीं शताब्दी में हुये थे और उनसे पूर्ववर्ती निम्बार्क का समय लगभग वि. की छठी सातवीं शताब्दी ही होना चाहिए।

आचार्य श्री परशुरामदेव ने वि. सं. 1515 के लगभग वर्तमान निम्बार्कपीठ सलेमाबाद (राजस्थान) की स्थापना की थी जिसकी पुष्टि खेजड़ला के पट्टों से होती है।[6] इसी समय के लगभग उनके गुरु तथा निम्बार्क की 35वीं पीढ़ी के आचार्य हरिव्यासदेव का स्वर्गवास हो चुका था। 34वीं पीढ़ी के आचार्य श्री भट्ट की विद्यमानता वि.सं. 1352 में सिद्ध होती है जिसकी पुष्टि युगलशतक के निम्न के दोहे से होती है—

---

1. प्राचीन भारत का इतिहास – डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, पृ. 427 व 601
2. भारतीय दर्शन — डॉ. उमेश मिश्र, पृ. 350
3. दी अरली हिस्ट्री ऑव इण्डिया, पृ. 427
4. भारतीय दर्शन — डॉ. उमेश मिश्र, 50350
5. ॐ नमः सूर्याय। अकालेऽपि ... निम्बादित्य प्रासाद .... ।।19।।
6. द्रष्टव्य—परशुरामदेवाचार्य सम्बन्धी विवरण ग्रंथ।

नयन बान पुनि राम शशि गनो अंक गतिवाम।
युगलशतक पूरन भयो संवत् अति अभिराम।।[1]

उक्त दोहे के सम्बन्ध में नागरी प्रचारिणी के खोज विवरणों के आधार पर 'राम' के स्थान में 'राग' पाठ होने की धारणा चाहे कितनी ही प्रबल हो गई हो परन्तु युगलशतक की रचना श्री भट्ट ने निश्चित रूप से वि.सं. 1352 में ही पूर्ण की थी। उसका रचनाकाल वि.सं. 1652 कदापि नहीं माना जा सकता।[2] तब तक तो श्रीभट्ट के शिष्यानुशिष्य श्री परशुरामदेव का भी देहावसान हो चुका था। 29वें आचार्य श्री नागाजी जो वल्लभाचार्य के समकालीन थे, वे भी उस समय विद्यमान थे। फिर युगलशतक के रचनाकर श्री भट्ट की विद्यमानता वि.सं. 1652 में कैसे मानी जा सकती है। अत: वि.सं. 1352 में श्री भट्ट ने युगलशतक की रचना पूर्ण कर उनके श्रद्धेय गुरु श्री केशवकाश्मीरि को भेंट की थी। जिसको यमुना में प्रवाहित करने की जनश्रुति आज भी प्रचलित है। केशवकाश्मीरि निम्बार्क की 33वीं पीढ़ी के आचार्य थे। नाभादास जी के अनुसार इन्होंने तीन बार जगद्विजयी बनने का यश प्राप्त किया था तथा मुस्लिम अत्याचारों का भी दमन किया था। आधुनिक अन्वेषक इनका समय 1250 वि. मानते हैं जो मुस्लिम अत्याचारों का भीषणयुग होने से युक्ति संगत प्रतीत होता है। 1352 वि. में यदि इनकी आयु उक्त समय 100 वर्ष भी मानी जाय तो इनका आविर्भाव सं. 1250 वि. में होना प्रामाणिक ही है।

निम्बार्क-सम्प्रदाय की आचार्य परम्परा के अनुसार निम्बार्क चौथे आचार्य माने जाते हैं और इस प्रकार निम्बार्काचार्य और केशवकाश्मीरि के बीच 29 पीढ़ियों का अन्तर है। यदि प्रत्येक पीढ़ी का आयु मान 25 वर्ष भी मान लिया जाय तो भी निम्बार्क की विद्यमानता शंकराचार्य के पूर्व सिद्ध होती है। अद्वैतवाद का खंडन आचार्य पुरुषोत्तम ने किया था जो निम्बार्क से तीसरी पीढ़ी में हुए थे। अत: शंकराचार्य के समकालीन आचार्य पुरुषोत्तम से लगभग 150 वर्ष पूर्व निम्बार्काचार्य हुये थे। अस्तु इस गणना से निम्बार्क का आविर्भाव काल वि. की छठी-सातवीं शताब्दी में निश्चित होता है।

3. निम्बार्क सम्प्रदाय : स्वरूप-निरूपण, द्वैताद्वैत दार्शनिक-सिद्धान्त एवं उपासना-प्रणाली

ब्रह्म का सान्निध्य ही जीवात्मा का उद्देश्य है। इसका उपाय शरणागति के सिवाय अन्य नहीं। भगवान् की शरण में जाने के पूर्व प्राणी का प्रथम गुरु की शरण में जाना

---

1. श्री भट्टदेवाचार्य प्रणीत युगल शतक।
2. द्रष्टव्य : श्री भट्ट देवाचार्य सम्बन्धी विवरण ग्रन्थ।

जरूरी है। गुरु के निर्देशानुसारही प्राणी भगवद् अधिमुख होता है। शिष्य के लिए गुरु का उपदेश उपासना के रूप में होता है। उपासना एक रूप से भगवत्प्रेम का साधन है। अतएव भगवान् की पूजा के रूप में उपासना निम्बार्क सम्प्रदाय का एक महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है। **'उपासनीयं नितरां जनैः सदा प्रहाणयेऽज्ञान तमोऽनुवृत्तये।'** अर्थात अज्ञान रूपी अन्धकार से मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्राणियों को भगवान् की उपासना अवश्यमेव करनी चाहिए।

पंचरात्र-विधि में भी उपासना अति आवश्यक बतलायी गई है। निम्बार्क सम्प्रदाय उपासना प्रधान है, इस सम्प्रदाय का प्रत्येक वैष्णवानुरागी गुरु सेवा, भगवन्नाम जप, भगवत्पूजा और भगवत् स्वरूप-चिन्तन का ही अनुष्ठान करता है। भगवान् श्री निम्बार्क की अपूर्व देन यह सुमधुर उपासना प्रणाली है, जिसके सम्पूर्ण विधि-विधान इस सम्प्रदाय में प्रचलित हैं। उपासना का सर्वाधिक महत्त्व इसी सम्प्रदाय में मिलता है।

उपासना का स्वरूप

उपासना एवं पूजा में आन्तर्-बाह्य भावना का अन्तर है। यह भावना दो प्रकार से की जाती है—(i) स्वस्वरूप एवं उपास्य के स्वरूप का चिन्तन। (ii) उपास्यदेव की सेवा-भावना। इसमे स्वरूप चिन्तन-भावना दार्शनिक पद्धति से सम्बन्धित है। इस सम्प्रदाय में स्वरूप-चिन्तन भेदाभेद-भावना से किया जाता है, क्योंकि उपास्य (ब्रह्म) व्यापक तथा अंशी है और उपासक (जीव) व्याप्य एवं अंश है। यह अंशांशिभाव श्रुतियों के अनेक स्थलों में दृष्टिगत होता है।[1] **'ममैवांशे जीवलोके जीवभूतः सनातनः।'**[2] इस वाकय द्वारा उसी का समर्थन किया गया है। **''अंशो नानाव्यपदेशात्**[3]'' आदि सूत्रों में इसी सिद्धान्त का श्री व्यासजी प्रतिपादन करते हैं। अतः द्वैताद्वैत भावना के अनुसार उपास्य और उपासक के स्वरूप का चितन करना ही दर्शनशास्त्र का तात्पर्य समझा जाता है। दार्शनिक प्रणाली से श्री निम्बार्क सम्प्रदाय में भूमा विद्या की परम्परा प्राचीन है। श्री सनकादि से नारद जी को ओर नारद जी से श्रीनिम्बार्काचार्य को भूमा विद्या प्राप्त हुई थी।

'यो वै भूमा तत्सुखम्[4]**'** वह भूमा सर्वव्यापी अखण्ड सुख-स्वरूप है, अतएव जिसे उस सुख का अनुभव हो रहा हो वह क्षणिक सुखों की ओर आकर्षित नहीं होता। **''यत्र नान्यत् पश्यति, नान्यत् शृणोति, नान्यद् विजानाति, स भूमा**[5]'', उस

---

1. श्री निम्बार्काचार्य प्रणीत दशश्लोकी से।
2. श्रीमद्भगवद्गीता।
3. ब्रह्म सूत्र 1/2/42
4. छान्दोग्योपनिषद् 7/23/1
5. छान्दोग्योपनिषद् 7/24/1

मधुरातिमधुर रस से बढ़कर और कोई सुख है ही नहीं। उसी उपासना का रसोपासना, माधुर्य भाव, उज्ज्वल रसोपासना आदि नामों से उल्लेख मिला है। उसके उपास्यदेव श्री श्यामसुन्दर रस स्वरूप हैं, उन्हीं रस-रूप भगवान् की प्राप्ति होने पर यह जीव वास्तविक सुख-शान्ति का अनुभव कर सकता है, अन्यथा नहीं।

दशश्लोकी के युगल ध्यान वाले श्लोक को अपने भाष्य में उद्धृत करके श्री निवासाचार्य ने इस रहस्य का संकेत किया है।

उपासना के अन्तर्गत पूजा ही मुख्य है। इसके तीन भेद सम्प्रदाय में किये गये हैं—(i) वैदिकी पूजा, (ii) तान्त्रिक पूजा, और (iii) अनुरागात्मिका पूजा या सेवा।

(i) वैदिकी पूजा

इस सम्प्रदाय में वेदिक विधि-विधानों का विशेष आदर है, पर वे विधियाँ भगवान् से ही समबद्ध होनी चाहिये। शुष्क कर्मकाण्ड इसके लिए अनावश्यक है। इसलिए वेद-मन्त्रों के अनुसार प्रभु की पूजा प्रधानता से प्रचलित है। इसमें शालिग्राम या गोपालजी की प्रतिमा बड़ी उपयुक्त है तथा शालिग्राम की सेवा इस सम्प्रदाय के आचार्यों का मुख्य चिह्न है। वैदिक पूजा-विधि में भगवान् के षोडशोउपचार, द्वात्रिंशत् उपचार अथवा अष्ट चत्वारिंशत् उपचारों से मंत्र बोल-बोलकर पूजा की जाती है। वेदतन्त्र, सूक्त पाठ, हवन, जप आदि इसके अंग हैं। वैदिकी पूजा में गन्धरहित जल, दुग्धादि से विस्तृत स्नान कराया जाता है। इसे अभिषेक कहते हैं।

(ii) तान्त्रिकी पूजा

इस पूजा में गोपाल मंत्र की आराधना होती है। तन्त्र-शास्त्र के अनुसार प्रत्येक देवता का विशिष्ट प्रकार का रेखात्मक स्वरूप भी होता है। रेखाओं की विविध रचनायें ही यंत्र कहीं जाती हैं। यन्त्र का आकार त्रिकोण, चतुष्कोण, चक्र, कमल आदि के संयोग से बनता है। उन रेखाओं के मध्य परिकर समेत देवता की स्थापना होती है, एवं मुख्य इष्ट मंत्र के आकार भी स्थापित किये जाते हैं। फिर न्यास, ध्यान के साथ सबकी पूजा की जाती है। गोपालतापिनी उपनिषद्, गौतमीय तंत्र, सम्मोहन तन्त्र इत्यादि ग्रन्थ तान्त्रिकी पूजा के आधार हैं। केशव काश्मीरी जी की 'क्रमदीपिका' इस विषय का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

(iii) अनुरागात्मिका पूजा

भक्तों के लिए भगवान् श्रीकृष्ण की चरणसेवा को छोड़कर अन्य कोई आश्रय नहीं है। श्रीकृष्ण ही साक्षात् परमेश्वर हैं, जिनकी वन्दना ब्रह्मा-शिवादि देवता सदा किया करते हैं। श्रीकृष्ण की शक्तियाँ अचिन्त्य हैं, प्रभाव अगम्य हैं। भक्तजनों को आनन्दित करने के लिए वे मनोहर स्वरूप में प्रकट होते हैं। ऐसे प्रभु की प्राप्ति का साधन है भक्ति, जो पाँच भावों से पूर्ण मानी जाती है—**शान्त, दास्य, सख्य,**

वात्सल्य, ओर उज्ज्वल। इनमें सबसे उत्कृष्ट भक्ति उज्ज्वल भाव के अन्तर्गत होती है। इसका उदाहरण ब्रज गोपियाँ हैं। **'नारद भक्तिसूत्र'** में भी गोपी भाव वाली भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अपने आराध्य के प्रति सर्वाधिक प्रेम-भावना रखना यही उज्ज्वल या माधुर्य भाव है। इसके अन्तर्गत भक्त अपने में सहचरी भाव का आरोप कर अपनी सर्व-प्रवृत्तियों को भग्वान् की अन्तरंग सेवा में लगा देता है। इस प्रकार की सेवा अप्रकाश्य रूप में की जाती है। माधुर्य उपासना के विचार से निम्बार्क सम्प्रदायके आचार्यों में 'सहचरी' नाम धारण की परम्परा श्रीनिम्बार्काचार्य के समय से ही चली आ रही है, जिसे वे अपनी काव्यकृतियों ओर साम्प्रदायिक तत्त्व-वार्ता में प्रयुक्त करते रहते हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय की रहस्य भावना का दार्शनिक आधार श्रीमद्भागवत, ब्रह्मवैवर्त पुराण, पद्म पुराण आदि से लिया गया है। सभी कृष्ण-भक्त वैष्णवों के मत में उनके परमाराध्य भगवान् श्रीकृष्ण हैं। उनका वह परम दिव्यलोक माधुर्य भावना से परिपूर्ण है अत: निम्बार्क सम्प्रदाय में रसोपासना अनादिकाल से चली आ रही है।

अनुरागात्मिका उपासना में निकुञ्जबिहारी श्रीराधाकृष्ण प्रिया-प्रियतम भाव से आराध्य हैं। इस भाव का आश्रयस्थल ब्रजमण्डल में विराजित नित्य धाम श्रीवृन्दावन है। सखी भाव को स्वीकार करने वाला भक्त युगल स्वरूप वृन्दावनविहारी की **'अष्टयाम सेवा'** करना ही अपना कर्त्तव्य मानता है।

महावाणीकार श्रीहरिव्यास देवाचार्यजी ने निम्बार्कीय रसोपासना के रूप की बड़ी सुन्दर रीति से प्रतिष्ठा की है।

नित्य विहार

नित्य विहार श्रीराधामाधव की अनन्य आनन्दमयी अलौकिक सुख-पूर्ण सतत शाश्वत रति-क्रीड़ा है, जो नित्य वृन्दावन धाम की दिव्य कंचनमय भूमि सुन्दर वृक्षों से आच्छादित सुरंग पत्र, पुष्प, फल परिवेष्टित कङ्कणाकार यमुनाकूलवर्तिनी सुरभित निकुञ्जों में अनवरत रूप से चलती रहती है। इसमें किसी प्रकार का बाह्य या आन्तरिक विक्षेप नहीं होता। सहचरी-वृन्द निकुञ्ज रन्ध्रों से इस नित्य विहार का दर्शन करता रहता है। उनके लिए ही नित्य विहार का आयोजन है। नित्य विहार श्रीश्यामाश्याम के अप्राकृत प्रेम का विलास है, जो काम से कोसों दूर है। तात्विक दृष्टि से भी श्रीराधामाधव उस आदि, अनादि, एकरस परब्रह्म स्वरूप के युगल विग्रह रूप हैं। सहचरी-वृन्द भी उसी परब्रह्म का अंशभूत है। प्रिया-प्रियतम के समस्त आनन्द भोग सहचरी-जन की प्रसन्नता के लिए है। इसका पूर्ण विवरण **'युगल-शतक'** में प्राप्त होता है।

उत्सव-प्रणाली

भगवान् की सेवा में समयानुसार विविध उत्सव मनाये जाते हैं। उत्सव सामूहिक रूप में होते हैं, जिनमें सेवक-वृन्द तत्कालीन उत्सव-लीला के अनुसार पूर्वाचार्यों की वाणियों का गायन करता है। उत्सवों में वसन्त, होली, दोलन, शरद् आदि मुख्य हैं। जन्मदिन अथवा पाटोत्सवतिथियों में ही आचार्यों की जयन्तियाँ मनाई जाती हैं। निम्बार्क-सम्प्रदाय में माधुर्यभावपूर्ण युगल उपासना ही मुख्य हे। अवतारों के जयन्ती-उत्सव प्राय: शास्त्रीय विध्यनुसार होते हैं।

रासलीलानुकरण

रसोपासना और उत्सव-प्रणाली में रासलीलानुकरण का भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। रासों की परम्परा अति प्राचीनकाल से चली आ रही है। पूर्वकाल के रसोपासक महात्मा मानसी ध्यान में रासलीला की भावना करते थे।

'निम्बार्क-माधुरी', 'मुकुट की लटक' और 'सुदर्शन' में उद्धव घमण्डदेवजी के रास प्रवर्तक होने का प्रतिपादन किया गया है। श्रीराधाकृष्ण रासधारी ने **'रास-सर्वस्व'** में इसी का समर्थन किया है।

उपासना के बाह्य उपकरण

मुद्रा; तिलक, कण्ठी और स्मृति-चिह्न।

सगुण उपासना में आचार्य परम्परा और तिलक कण्ठी का बहुत महत्त्व है। ये साम्प्रदायिक आचार के प्रमुख अंग हैं। सभी वैष्णवों के कुछ बाह्य लक्षण बतलाये गये हैं। वे हैं तुलसी की कण्ठी, उर्ध्व पुण्ड्र-तिलक, शंख, चक्र, गदा और पद्म चिह्न।

निम्बार्क सम्प्रदाय के विशिष्ट स्थानों में आज भी स्मृति-चिह्न सुरक्षित हैं, जो उन स्थानों के महापुरुषों के दिव्य प्रसाद तो हैं ही, परन्तु साथ ही उनके पुनीत जीवन की ओर आकर्षित करते हुए दैनिक जीवन में आदर्श-पथ के प्रतिष्ठापक भी हैं।

द्वैताद्वैत दार्शनिक सिद्धान्त-विवेचन

भगवान् निम्बार्काचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त द्वैताद्वैत अथवा भेदाभेद के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीवेदव्यास प्रणीत ब्रह्मसूत्र के भाष्यों में विभिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से अपने दार्शनिक मतों का प्रतिपादन किया है। इन सभी मतवादों में श्रीनिम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैत मत अन्यतम है। उनके मतानुसार ब्रह्म का जीव और जगत् से स्वरूपत: भेदपरक एवं अभेदपरक दोनों ही रूपों में सम्बन्ध है। इस मत को द्वैत (भिन्नता मानने वाला) और अद्वैत (अभिन्नता मानने वाला) मत से सम्बोधित किया जाता है। वास्तव में इस मत में सत्यता भी प्रतीत होती है। कार्य-कारण सम्बन्ध पर विचार करने से इस मत की पूर्ण पुष्टि हो जाती है। जैसे कार्य (घट) कारण (मिट्टी) से भिन्न भी है और साथ ही अभिन्न भी। क्योंकि दोनों के नाम, रूप, आकार आदि में भिन्नता है, किन्तु

दोनों की सामग्री एक ही होने से अभिन्नता भी है। इसी प्रकार जगत् (कार्य) ब्रह्म (कारण) से भिन्न और अभिन्न उभय रूप है।

विचारपूर्वक यदि देखा जाये तो यह निश्चय होता है कि ब्रह्म अपनी अनन्त शक्ति से जीव और जगत् रूप में प्रकाशित होने के कारण उनसे अभिन्न रूप में प्रतिष्ठापित है। साथ ही अतीत रूप में विद्यमान होने के कारण जीव और जगत् से भिन्न भी है। अत: ब्रह्म, जीव और जगत् में परस्पर भेद (द्वैत) और अभेद (अद्वैत) दोनों ही हैं और यही श्रीनिम्बार्काचार्य का प्रतिपाद्य है। उनके इस द्वैताद्वैतवादी सिद्धान्त को विस्तार से हृदयंगम करने के लिए ब्रह्म, जीव और जगत् सम्बन्धी उनकी मान्यताओं का विस्तृत विवेचन आवश्यक है।

ब्रह्म

श्रीनिम्बार्काचार्य ने ब्रह्म को आनन्दमय कहा है, जिसमें आनन्द की प्रचुरता का ही प्राधान्य है।[1] आनन्दमय का अर्थ विकारवान् कदापि नहीं, उसका आनन्द भूमा की अवस्था में जाकर स्थित होता है।[2] वस्तुत: जीवात्मा को आनन्द देने के कारण ही परमात्मा ही आनन्दमय कहा जायेगा।[3] ब्रह्म जगत् का केवल प्रकृति अर्थात् उपादान कारण नहीं है, वह जगत् का निमित्तकारण भी है।[4] क्योंकि उसके द्वारा अश्रुत, श्रुत हो जाता है। अमूर्त मूर्त हो जाता है। अविज्ञात विशेष रूप से ज्ञात हो जाता है। जैसे एक मिट्टी के ढेले को देखने से सम्पूर्ण मिट्टी के पदार्थों का ज्ञान हो जाता है। अत: परमात्म ही जगत् का कारण है, ऐसा निश्चय होता है। वह सृष्टि का उपादान कारण भी है। क्योंकि 'उसने अभिलाषा की, कि मैं बहुत हो जाऊँ' इस वाक्य से भी अभिलाषा प्रकट करने वाला ब्रह्म चैतन्य स्वतन्त्र परमात्मा है।[5] वह आनन्दमय, अप्राकृत, सर्वशक्तिमान्, पुरुषोत्तमस्वरूप है। उसे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि जब वह सृष्टि करने की कामना करता है तो संकल्पमात्र से सृष्टि कर लेता हे।[6] रुतियों का भी एकमात्र ब्रह्म ही प्रतिपाद्य है। **'रसो वै स:', आनन्दो ब्रह्म:'** आदि उसी के द्योतक हैं। आनन्द उसका ही एक विशिष्ट गुण है, जिसका कि

---

1. 'आनन्दमय: परमात्मा एव, न तु जीव:' (निम्बार्कभाष्य 1/1/13)
2. 'निरतिशय-सुखरूपत्वामृतत्त्वस्वमहिम-प्रतिष्ठितत्त्वादीनां परमात्मन्येवोपपत्तेश्च भूमा परमात्मैव।' (वही, 1/3/9)
3. 'जीवानन्द हेतुत्वादपि परमात्मैवानन्दमय:' (वही,1/1/15)
4. प्रकृतिरूपादानकारणं चकारान्निमित्त-कारणं च परमात्मैव।' (निम्बार्कभाष्य 1/4/23)
5. 'तदैक्षत बहुस्याम्' इत्यादिना तदुपदेशात् ब्रह्मण: स्रष्ट्रत्वप्रकृतित्वे वर्तेते। (वही, 1/4/24)
6. 'कामात् संकल्पादेव, सोऽकामयत बहु स्याम:, इत्यादि श्रुते: अत: तद्भिन्न आनन्दमय:।' (वही, 1/1/19)

पृथक्-पृथक् रूप से उल्लेख हुआ है। उन सबका उपसंहार उस परमात्मा में ही समझना चाहिए।[1] वह स्वरूपत: अव्यक्त होते हुए भी भक्तियोग में ध्यान द्वारा व्यक्त हो जाता है। ब्रह्मज्ञान की उपलब्धि होने पर ही विशुद्ध अन्त:करण में उस ब्रह्म की स्पष्ट झाँकी परिलक्षित होती है।[2]

वह भक्ति से ही सर्वसुलभ है। वह सर्वप्रकार से परिपूर्ण, विद्रूप और विभु है। सम्पूर्ण जीव उसी के चिदंश की किरणों के रूप में विद्यमान हैं। वह अपनी शक्ति का अनुभवमात्र करने से संसार का रूप धारण करता है। वस्तुत: वह ब्रह्म नानारूपी विश्व की सृष्टि, लय आदि का हेतु है। अचिन्त्य शक्तियों का आधार भी वही है। वेदों का प्रतिपाद्य, जगत्-जीवमय विश्वात्मा, सर्वरूप से भिन्नाभिन्नावस्था में रहते हुए, आनन्दमय परमतत्त्व वासुदेव के रूप में प्रतिभासित होता है।[3] वह परमात्मा मायाधीश है। जन्म आदि विकारों से शून्य, स्वाभाविक और अचिन्त्य अनेक गुणों का सागर, विभूति सम्पन्न है। वह मुक्त जीवों का ऐश्वर्यानुभूति कराता है।[4] वह सत्यकाम और सत्यसंकल्पवान् है। जीवों के स्वरूप का आविर्भावकर्त्ता, मुक्ति-प्रदाता भी वही है। उसी की परम कृपा से जीवों को उसकी प्राप्ति होती है। वह अन्तर्यामी रूप से सर्वत्र विद्यमान है। वह सुख-दु:ख के भोगने वाला शरीरी जीवों से अधिक उत्कृष्ट है। शरीर का भी कर्त्ता है। आत्मा के अन्दर वह परमात्मा ही शासनकर्त्ता है।[5] श्रीनिम्बार्काचार्य की दृष्टि में वस्तुत: सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि आदि का कारण ब्रह्म ही है। उसकी अध्यक्षता में ही प्रकृति-चराचरात्मक जगत् की सृष्टि करती है। प्रकृतिस्थ जगत् का एकमात्र अधिष्ठाता ब्रह्म ही है।[6]

जीव

श्रीनिम्बार्काचार्य ने वेदान्तकामधेनु के एक ही श्लोक में जीव के वास्तविक स्वरूप का प्रतिपादन कर दिया है। ये आत्मवेत्ता, जीव को चैतन्य (ज्योतिस्वरूप)

---

1. आनन्दादयस्तु गुणा: गुणिन: सर्वत्रैक्यादुपसंह्रियनते। (वही, 3/3/113)
2. 'भक्तियोगे ध्याने तु व्यज्यते, ब्रह्मज्ञान-प्रसादेन विशुद्धसत्त्व:: ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमान:।' (निम्बार्कभाष्य 3/3/24)
3. 'अविभागोऽपि समुद्रतरंगयोरिव, सूर्य तत्प्रभयोरिव तयोर्विभाग:स्यात्।' (निम्बार्कभाष्य 1/1/13)
4. 'सर्वज्ञ: सर्वाचिन्त्यशक्तिविश्वजन्मादिहेतुर्वेदैकप्रमाणगम्य: सर्वभिन्नाभिन्नो भगवान् वासुदेवो विश्वात्मैव।' (निम्बार्कभाष्य 1/1/4)
5. 'जन्मादि विकारशून्यं स्वाभाविकाचिन्त्यानन्तगुण-साषरं सविभूतिकं ब्रह्मैव, मुक्तोऽनुभवति।' (वही, 4/4/19)
6. 'सुखदु:ख-भोक्तु: शारीरादधिकमुत्कृष्टं ब्रह्म जगत्कर्त्तु: ब्रूम:, आत्मानमन्तसेयमयति।' (निम्बार्कभाष्य 2/1/21)

शरीर से संयुक्त और वियुक्त होने वाला, अणु परिमाण वाला, सूक्ष्म, अनेक शरीरों में अलग-अलग होने से अनन्त तथा इसे परमात्म के अधीन कहते हैं—

ज्ञानस्वरूपं च हरेरधीनं शरीरसंयोगवियोगयोग्यम्।
अणु हिं जीवं प्रतिदेह-भिन्नं ज्ञातृत्ववन्तं यमनन्तमाहु:।।[1]

ब्रह्म का अंश होने के नाते जीव भी ब्रह्म ही है, तथापि जीव और ब्रह्म का पूर्णत: अभेद स्वीकार्य नहीं, भेदोभेद सम्बन्ध ही मान्य है। जीव को स्वरूपत: अणु मानते हुए श्री निम्बार्क ने उसके गुण और ज्ञान को विभु की संज्ञा दी है। अणु, चित् होते हुए उसका ब्रह्म से नित्य सम्बन्ध बना रहता है। इस प्रकार भगवत् साधर्म्य प्राप्त कर जीव सर्वज्ञ की कोटि में पहुँच जाता है। जिस प्रकार महान् गुण के कारण परमात्म महान् है, उसी प्रकार जीवात्मा अणु परिमाण का होकर भी गुण से महान् है।[2] जीवात्मा अणु परिमाण् वाला होकर भी शरीर के सुख-दु:ख का अनुभव करता है।[3]

जीवात्मा के प्रकाश से ही सारा शरीर प्रकाशित होता है, ठीक वैसे ही जैसे कि कमरे में एक स्थान पर स्थित दीपक सारे कमरे को आलोकित करता है।[4]

श्रीनिम्बार्काचार्य के अनुसार आनन्दमय परमात्मा ही है, जीव नहीं। वस्तुत: ब्रह्म का संयोग पाकर ही जीव आनन्दानुभव करता है। बद्ध जीव को इसीलिए अज्ञ अथवा अलपज्ञ की संज्ञा दी गई है। ब्रह्म के साथ जीव का क्रमश: विभु और अणु का सम्बन्ध ही स्थापित होता है। जीवात्मा न तो जन्म लेता है और न ही मरता है। वह नित्य और अजन्मा है। इससे जीव की नित्यता भी सिद्ध होती है।[5] मुक्त जीव ब्रह्म का साक्षात्कार करके उसके पूर्ण आनन्द में निमग्न हो जाता है। किन्तु बद्ध जीव को आनन्दात्मक जगत् का अनुभव केवल जड़रूप में ही प्रतिभासित होता है। उसे अपने चिदंशस्वरूप का विस्मरण हो जाता है। श्रीनिम्बार्क ने ज्ञान और जीव में धर्म-धर्मी सम्बन्ध रूप से भेदाभेद सम्बन्ध स्थापित किया है। यद्यपि चिदंश-रूप होने के नाते जीव और उसके ज्ञान में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता।[6]

---

1. वेदान्तकामधेनु (दशश्लोकी)
2. 'कृत्स्नजगत सृष्ट्यादि व्यापारार्हं ब्रह्मैव, व कारणं कारणाधिपाधिप: सर्वस्यन्त वशी, सर्वस्येशान:, मयाध्यक्षेण प्रकृति: सूयते सचराचरम्।' (निम्बार्कभाष्य 4/4/20)
3. 'दृष्यते बृहदेव प्राज्ञो गुणैरपि बृहद्भवति दार्ष्टान्ते तु जीवो अणु परिमाणको गुणेन विभुरिति विशेष:।' (वही, 2/3/28)
4. 'जीवोऽपि प्रकाशयति, अत: कृत्स्न-शरीरे सुखाद्यनुभवो न विरूध्यते।' (निम्बार्कभाष्य 2/3/23)
5. 'देहे प्रकाशे जीवगुणादेव, कोष्ठे दीपालोकादिवत।' (वही, 2/3/24)
6. 'न जायते म्रियते वा विपश्चित नित्यो नित्यानाम्।' (वही, 2/3/17)

परमात्मा आनन्दयोग से जीवात्म पर शासन करता है। अर्थात् जीव अन्तर्यामी परमात्मा द्वारा नियन्त्रित होता है। वह उस परमात्म से भिन्न भी है, जिसके प्रकाश से आनन्दयोग की स्थिति बनती है। वह परमात्म रसस्वरूप है, जिस रस की अनुभूति कर जीवात्मा आनन्दित होता है।[1] इस प्रकार जीव और ब्रह्म के बीच स्वरूपतः, गुणतः एवं शक्तितः शाश्वत भेद है। किन्तु भोक्ता जीव और नियन्ता ब्रह्म के बीच यह भेद ठीक वैसा ही है, जैसाकि समुद्र और उसकी तरंग एवं सूर्य और उसकी प्रभा के बीच विद्यमान है।[2] अतः यह ब्रह्म और जीव के बीच अभेदत्व के साथ भेदत्व सिद्ध हुआ। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जीव या चित् ज्ञानस्वरूप और ज्ञानाश्रय है। वह ज्ञाता, कर्त्ता और भोक्ता है। वह अणु है। मुक्तावसा में भी वह कर्त्ता रहता है। उस समय वह ईश्वर से केवल एक बात में भिन्न रहता है। वह यह कि ईश्वर नियन्ता है और जीव नियम्य। अंशांशिभाव रहने से जीव और परमात्म में भेदाभेद दिखाया गया है। वस्तुतः जीव परमात्म का अंश है, कारण 'ज्ञ' (सर्वज्ञ) 'ईश' (ईश्वर) और 'अज्ञ' (असर्वज्ञ) 'अनीश' (जीव) दोनों ही 'अज' (जनमरहित एवं नित्यसत्य) हैं—इस श्रुति वाक्य में जीव और ईश्वर में भेद उपदिष्ट हुआ है।[3]

इस प्रकार श्रीनिम्बार्काचार्य ने ब्रह्म और जीव में भेदाभेद सम्बन्ध स्थापित किया है। इस बात की उन्होंने स्पष्ट घोषणा की है कि जीव ब्रह्म का अंश होने से उनके बीच परस्पर भेदाभेद सम्बन्ध भी नित्य शाश्वत और स्वाभाविक है।

जगत्

श्रुति इस बात का प्रमाण है कि ब्रह्म ही जगत् रूप से प्रकाशित है। श्रीनिम्बार्काचार्य ने **'आत्मकृतेः परिणामात्'** सूत्र के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा है कि सर्वशक्तिमान् परमात्म स्वशक्ति के विक्षेप से जगत् के आकार में परिणत हो जाता है। वह अव्याकृत स्वरूप में रहकर ही अपनी शक्ति और कृति से जगत् रूप को प्राप्त होता है। ब्रह्म ही निमित्त और उपादान कारण है। जगत् उसी की अनुकृति है।[4]

---

1. 'जीवतद्ज्ञानयोर्ज्ञानित्वाविशेषेऽपि धर्मधर्मी भावो युक्त एव।' (वही, 2/3/27)
2. 'तद्योगं आनन्दयोगं शास्ति श्रुतिः "रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽनन्दी भवति" इति जीवस्य यल्लाभादानन्दम् योगः स तस्मादन्यः इति सिद्धम्।' (निम्बार्कभाष्य 1/1/20)
3. 'अविभागोऽपि समुद्र तरंगयोरिव सूर्य तत्प्रभयोरिव तयोर्विभागः स्यात्।' (वही, 2/1/13)
4. 'अंशो नाना व्यपदेशादन्यथा चापि दाशंकित-वादित्वयभिधीयत एके।' (अंशांशिभावाज्जीवमात्मनोर्भेदौ दर्शयति, परमात्मनो जीवेंऽशः 'ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ' इत्यादि' . . .)

जगत् ब्रह्म की लीलार्थ की हुई संकल्पमूलकम परिणति है। कार्य जगत् का कारा ब्रह्म से अनन्यत्व (अभेद) सम्बन्ध है, अत्यन्त भिन्नत्व (भेद) नहीं है। मृत्तिका सत्य है, क्योंकि उसके द्वारा निर्मित घाटदि भिन्न प्रतीत होते हुए भी पृथ्वी के ही विकृत रूप होने के कारण उससे अभिन्न ही है। वस्तुतः यह सारा दृश्यमान जगत् परमात्मस्वरूप ही सत्य प्रतीत होता है। क्योंकि कारण और कार्य में न तो सर्वथा भेद ही होता है और न अभेद ही। भेदोद ही नित्यसिद्ध रहता है। कार्य के दोषों से मुक्त होता है। इसी प्रकार जगत् (कार्य) के दोष ब्रह्म कारण में नहीं होते।[1] परमात्मा के व्यक्त और अव्यक्त दोनों रूप एक साथ ही स्वीकार किए जाते हैं। मूर्त और अमूर्त (स्थूल और सूक्ष्म) विश्व (जगत्) अपने कारण रूप ब्रह्म में भिन्नाभिन्न सम्बन्ध से रह सकता है। ठीक उसी प्रकार से जिस प्रकार सर्प इच्छानुसार कुण्डली बनाकर बैठ जाता है और अपनी इच्छानुसार ही विस्तृत हो जाता है। इसी प्रकार ब्रह्म अपने संकल्पमात्र से ही जगत् की सृष्टि और लय का हेतु है।[2]

उक्त अहि-कुण्डल न्याय से स्थित विश्व को ब्रह्म से भिन्न भी नहीं कह सकते और सर्वथा अभिन्न भी नहीं कहा जा सकता। बद्ध और मुक्त जीवों की आसक्ति और अनासक्ति का कारण भी जगत् ही है। ब्रह्म का शक्ति होने के कारण जगत् भी नित्य सत्य है, किन्तु नित्य होते हुए भी वह परिवर्तनशील है। भूत, भविष्यत् और वर्तमान रूपों से प्रकाशित समग्र जगत् परमात्म् ज्ञान में नित्यरूप से प्रतिष्ठापित है। यह जगत् पहले से ही सत्तावान् था। प्रत्येक वस्तु की सत्ता थी, जो कालान्तर में जगत् रूप में प्रकट हो गई। यह जगत् भी प्रलय होने पर सूक्ष्म रूप से संकुचित हाकर परमात्मा में स्थिर हो जाता है और सृष्टि के समय पुनः इसका विस्तार होने लगता है।[3] जगत् की सृष्टि-आदि तथा नानारूपता में परिणति ब्रह्म की सर्वशक्तिमत्ता द्वारा ही होती है। जगत् का एकमात्र आधार ब्रह्म ही है, क्योंकि वह नियन्ता एवं अन्तर्यामी रूप से सदैव विद्यमान होता है। कुम्हार को घट के निर्माण करनेमें चक्र, मिट्टी दण्ड आदि बाह्य उपकरणों का संग्रह करना पड़ता है, किन्तु परमात्मा तो ऐसा नहीं करता। वह तो दूध से दही अथवा जल से बर्फ की भाँति प्राकृतिक शक्ति से स्वतः जगतरुप में परिणत हो

---

1. 'ब्रह्मैव निमित्तमुपादानं च . . . सर्वा सर्वशक्ति ब्रह्म स्वशक्ति विक्षेपेण जगदाकारं स्वात्मानं परिणमय्य, अव्याकृतेन स्वरूपेण शक्तिमता कृतिमता परिणतमेव भवति।' (वही, 1/4/26)
2. 'कार्यस्य कारणानन्यत्वमस्ति नत्वत्यन्त भिन्नत्वं . . . एतदात्म्यमिदं सर्वं, तत्सत्यं तत्त्वमसि सर्वं खलिदं ब्रह्म।' (निम्बार्कभाष्य, 2/1/14)
3. मूर्त्तामूर्त्तस्याप्रतिषेध्यत्वं द्रढयति, मूर्त्तमूर्त्तादिकं विश्वं ब्रह्मण स्वकारणे भिन्नाभिन्नसम्बन्धेन स्थातुमर्हति भेदाभेद व्यपदेशादहि-कुण्डलवत्। (वही, 2/2/27)

जाता है।[1] वस्तुत: आनन्दमय, सर्वशक्तिमान् पुरुषोत्तम को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि जब वह सृष्टि करने की कामना करता है तो संकल्प मात्र से जगत् की सृष्टि कर लेता है। यथा—उसने कामना की कि मैं एक से बहुत हो जाऊँ।[2] जिस प्रकार कपड़े का प्रथम समेटकर बाद में पुन: विस्तृत कर दिया जाये, उसी प्रकार परमात्मा भी विश्व को अपने में समेटकर पुन: उसे प्रसारित कर देता है। इससे प्रलय के बाद भी जगत् की सत्ता सिद्ध होती है।[3] पुन: स्पष्ट करते हैं कि जैसे प्राणायाम की क्रिया द्वारा रुककर प्राणवायु अपने संकुचित रूप में अवस्थित रहता है, वैसे ही यह जगत् भी प्रलय होने पर सूक्ष्म रूप से संकुचित होकर परमात्मा में स्थित हो जाता है और सृष्टि के समय पुन: विस्तृत हो जाता है।[4] अत: जगत् और ब्रह्म का कार्यकारण, शक्ति-शक्तिमान् के आधार पर परस्पर भेदाभेद सम्बन्ध का ही प्रतिपदन किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि श्रीनिम्बार्काचार्य ने ब्रह्म को सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में स्वीकार किया है। जीव और जगत् की सत्यता पर भी उन्होंने बल दिया है। उनकी दृष्टि में जीव और जगत् सत्य है, मिथ्या नहीं। श्रीनिम्बार्काचार्य का अद्वैत [ब्रह्म द्वैत (जीव, जगत्)] से पृथक् नहीं है, अपितु जीव और जगत् को ब्रह्म का अङ्गीभूत रूप से एक करके ही है। किन्तु अद्वैत मतावलम्बी अद्वैत (ब्रह्म में जीव और जगत् का स्थान स्वीकार नहीं करते, इसलिए कि उनके मत में जगत् मिथ्या है और जीव का पृथक् रूप से कोई अस्तित्व ही नहीं है। फिर भी आश्चर्यजनक तो यह है कि अद्वैत (ब्रह्म की सत्ता का पूर्ण समर्थन करते हुए भी वे (अद्वैतवादी म म जीव और जगत् की सत्ता को स्वीकार न कर सके। उन्हें व्यावहारिक भाव से इनकी सत्ता को स्वीकार करना पड़ा। ब्रह्म से भिन्न करने से व्यावहारिक रूप से जीव और जगत् की सत्ता स्वीकार करने के कारण द्वैतावाद की प्रतिष्ठा होती है। अत: अद्वैतवादियों के मत की यथार्थ पुष्टि नहीं होती। वस्तुत: द्वैताद्वैतवादी श्रीनिम्बार्काचार्य ही यथार्थ रूप में अत्वादी हैं, क्योंकि उनके द्वैताद्वैतवाद में अद्वैत (ब्रह्मवाद) और द्वैत (जीव, जगद्वाद) सत्ता का एकपक्षीय द्योतन न होकर

---

1. 'सदैव सौम्येदमग्र आसीत' 'विगत निरोधश्चाञ्जसा तत्तद्रेपेणावगृह्यते तयेदमपि।' (निम्बार्कभाष्य, 2/1/17, 19)
2. 'यत: क्षीरवत् कार्यकारणे ब्रह्म परिणमते स्वसाधारण-शक्तिमत्वात्।' (निम्बार्कभाष्य, 2/1/23)
3. 'कामात् संकल्पादेव, सोऽकामयत बहुस्याम:' इत्यादि श्रुते:।' (निम्बार्कभाष्य 2/1/19)
4. 'यथा च पूर्वे संवेष्टित: पश्चात प्रसारित: पटस्तद्वद्विश्वम।।' (वही, 2/1/18)

उभयपक्षीय द्योतन होता है। यही द्वैताद्वैतवाद की परम विशेषता है। इसमें समन्वय की अभूतपूर्व क्षमता विद्यमान है।

4. निम्बार्क-सम्प्रदाय में श्रीशालिग्राम एवं राधास्वरूप निरूपण

श्रीशालिग्राम विग्रह

वैदिक एवं शास्त्रानुयायी होने के नाते इस सम्प्रदाय में वेदोक्त क्रियाओं के पालन पर विशेष बल दिया गया है। इनमें त्रैवर्णिकों के लिए श्रीशालिग्राम के पूजन का अत्यधिक महत्त्व है। शालिग्राम पूजा द्विजों के लिए संध्या वन्दन की तरह नित्यमाना गया है। जैसे संध्या न करने पर प्रत्यवाय की प्राप्ति होती है, उसी तरह शालिग्राम की पूजा न करने पर पाप लगता है। श्रीशालिग्राम की पूजा, गायत्री का जाप, पुरुषसूक्त का पाठ एवं भगवद्गीता के पाठ का भारतीय सनातन संस्कृति का कोई भी ग्रन्थ ऐसा नहीं, जिसमें इसका अनुमोदन न हो। याज्ञवल्क्य स्मृति का वचन है, **"दद्यात् पुरुषसूक्तेन यः पुष्याण्यप एव वा। अर्चितं स्याज्जगदिदं तेन सर्वं चराचरम्।"** अर्थात् जिसने पुरुषसूक्त के द्वारा पुष्प या जल भगवान् श्रीशालिग्राम को अर्पित कर दिया, उससे समस्त विश्व पूजित हो जाता है। यह वाक्य साधारण ग्रन्थ का नहीं है। याज्ञवल्क्य भारतीय दार्शनिकों एवं धर्मशास्त्रवेत्ताओं में सर्वमूर्धन्य हैं। वे विश्व की सर्वोच्च फिलासफी बृहदारण्यक के प्रधान वक्ता, मिथिला के माननीय विद्वान् थे। शालिग्राम सेवा का विधान समस्त वैष्णव सम्प्रदायों के ग्रन्थों में मिलता है। यह उपासना सृष्टि के आरम्भ से ही है, अतएव प्राचीन है। शालिग्राम पूजा में अनेक सुविधाएँ हैं, न विशिष्ट आभूषणों की आवश्यकता, न वस्त्रादि और न मठ-मन्दिरों की जरूरत रहती है। जहाँ कहीं भी रहकर केवल जल और तुलसीदल पुष्ट आदि सर्वत्र सुलभ सामग्री से ही पूजा कर सकते हैं।

प्राचीन समय में जब सृष्टि का विशिष्ट विकास नहीं हुआ था, श्रीसनकादिकि आदि दिगम्बर कहलाने वाले लोकाचार्य श्री सनतकुमार आदि देवर्षि श्रीशालिग्राम की ही उपासना करते थे। **श्रीशालिग्राम (श्रीसर्वेश्वर)** की प्रतिमा में ही अपने आराध्य श्रीयुगलकिशोर की छटा का अनुभव करते थे। उनके अनन्तर उनके परवर्ती आचार्यों को वही शालिग्राम (श्रीसर्वेश्वर) प्रभु की प्रतिमा प्राप्त होती रही, जो आज तक **अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधिपति श्री 'श्रीजी' महाराज** को परम्परा से सम्प्राप्त है। यह कहना नितान्त अज्ञता है, कि सनकादिकों के पास पूजा की सामग्री और सर्वेश्वर के विराजमान करने के लिए स्थान ही नहीं था, अतएव वे श्रीसर्वेश्वर सनकादिक सेव्य न होकर श्रीहरिव्यासदेवाचार्य के सेव्य थे। इस कथन पर कोई भी विज्ञ व्यक्ति विश्वास नहीं कर सकता, क्योंकि आज भी श्रीसर्वेश्वर (शालिग्राम) ही हैं, जिनकी सेवा स्वयं आचार्यचरण विशिष्ट अर्चक ही कर सकते हैं।

कच्ची भोजन सामग्री का भोग तो आचार्यश्री के अतिरिक्त अन्य किसी भी अर्चक के हाथ का भोग नहीं लगाया जाता। इसी का अनुकरण सम्प्रदाय के अन्य व्यक्ति भी करते हैं। जिनसे जितनी जैसी सेवा बनती है, वह उतनी वैसी ही श्रीशालिग्राम की अर्चा-पूजा करता है। शालिग्राम शिला में अंगोपांगों का आविर्भाव होना भी अन्याऽन्य सम्प्रदायों में मान्य है, तब श्रीनिम्बार्काचार्यपीठस्थ **श्रीशालिग्राम (सर्वेश्वर)** प्रभु के सम्बन्ध में सम्प्रदाय विद्वेषियों द्वारा शंकाएँ और भ्रान्ति करना व्यर्थ है।

श्रीराधा स्वरूप निरूपण

श्रीसनकादिक तथा श्रीनारद भगवान् के अनुसार ही श्रीनिम्बार्क भगवान् के श्रीराधाजी की उपासना का विशेष आदेश दिया है—वेद, पुराण, तन्त्र आदि शास्त्रों के अनुसार भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य ने कहा है—परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण के बायें अङ्ग में प्रसन्नतापूर्वक विराजमान श्याम-सुन्दर के अनुरूप परम सुन्दर दिव्य गुणों से सम्पन्न, अनन्त सखियों से सेवित, समस्त अभीष्टों को पूर्ण करन वाली श्रीवृषभानुनन्दिनी का हम सदा स्मरण करते हैं—यह उनकी प्रार्थनारूप दिव्य आदेश वाणी है—

> **''अंगे तु वामे वृषभानजां मुदा,**
> **विराजमानामनुरूप-सौभगाम्।**
> **सखीसहस्त्रै: परिसेवितां सदा,**
> **स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।।"**

इसी आदेश के आधार पर विद्वान् लेखकों ने यह निश्चित किया है, **''धार्मिक क्षेत्र में श्रीराधा का प्रथम प्राकट्य निम्बार्क मत में ही हुआ है।"**[1] उनकी यह भी मान्यता है कि वृन्दावन का आश्रय कर पनपने वाले कृष्णभक्तिपरक सम्प्रदायों में निम्बार्क मत की प्राचीनता अक्षुण्ण है। वेद, उपनिषद्, तन्त्र और पुराणों श्रीराधाजी का उल्लेख श्री, गोपी, रुक्मिणी आदि अनेकों नामों से हुआ है। अथर्ववेदीय गोपालतापिनी उपनिषद् ने गोपाल मन्त्र में गोपी शब्द से ही श्रीराधिका जी का उल्लेख हुआ है। पाञ्चारात्रोक्त मुकुन्द मन्त्रमें श्री शब्द से श्रीकिशोरजी का उल्लेख हे। "श्रीश्च से लक्ष्मीश्च पत्न्यौ"—इस यजुर्वेदीय पुरुषसूक्त में लक्ष्मी नाम स्पष्ट है, उनके साथ श्री शब्द से श्रीराधिकाजी का उल्लेख है। इन सब मन्त्रों में श्रीराधाजी और श्रीकृष्ण का वैशिष्ट्य एवं नित्याग बतलाया है। उपर्युक्त श्लोक में श्रीनिम्बार्काचार्य ने भी उनका नित्ययोग सूचित किया है। भैष्मी, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि भी श्रीकृषण की शक्तियाँ श्रीराधिकाजी की ही अंशरूपा हैं। अतएव विष्णुपुराण में रुक्मिणी शब्द से उल्लेख मिलता है—

---

1. आचार्य बलदेव उपाध्याय, 'भागवत धर्म'

"देवत्वे देव-देहे या मानुषत्वे च मानुषी।
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्पनस्तनुम्।।
राधवत्वे भवेत् सीता रुक्मिणी कृष्णजनमनि।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषाऽनपायिनी।।"

यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण का उल्लेश विष्णु शब्द से हुआ है। श्रीश्यामसुन्दर समस्त ऐश्वर्य, माधुर्यादि से परिपूर्ण हैं, उनकी अष्ट महापटरानियों में प्रमुख भैष्मी रुक्मिणी ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री है। यद्यपि श्रीनिम्बार्काचार्य ने अपनी दशश्लोकी के उक्त श्लोक में प्रेमाधिष्ठात्री श्रीराधिकाजी का ही स्पष्ट उल्लेख किया है, सर्वसाधारण को ऐसा सहज प्रतीत हो जाता है, तथापि टीकाकारों का कर्त्तव्य है कि वे किसी न किसी शब्द से छिपे हुए गूढ़ भाव की भी अभिव्यक्ति करें। इसी दृष्टि से श्रीनिम्बार्काचार्य की चतुर्थ पीठिका में होने वाले श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी ने देवी शब्द से ऐश्वर्याधिष्ठात्री श्रीरुक्मिणी का तात्पर्य निकाला और सूचीकटाह न्याय ने प्रथम उन्हीं के सम्बन्ध में लिखा, तत्पश्चात् प्रेम और प्रेमाधिष्ठात्री की उच्चता का दिग्दर्शन कराया। उन्होंने इस श्लोक की व्याख्या से पूर्व जो अवतरणिका दी है, उसमें भी 'श्रीश्चते लक्ष्मीश्च' इस वेदमन्त्र को उद्धृत करके भी अपनी व्याख्या की शैली व्यक्त कर दी है—वहाँ ही उन्होंने 'श्रुत्युक्त ल—35–म्यादि वैशिष्ट्यं विधत्ते' इस पंक्ति से स्पष्ट कर दिया है—यद्यपि श्री शब्दवाची प्रेमाधिष्ठात्री श्री किशोरीजी का उल्लेख इस मन्त्र में प्रथम है, और देवी पद से लक्ष्मी का बाद में, तथापि एक-एक अङ्गों के वर्णन के बाद जिस प्रकार अङ्गी का वर्णन किया जाता है, उसी प्रकार पहले ऐश्वर्य की व्याख्या करके तत्पश्चात् प्रेम और प्रेमाधिष्ठात्री का विवेचन इस श्लोक के द्वारा आचार्य श्री करते हैं। यह उनकी अवतरणिका का आशय समझना चाहिए।

5. निम्बार्क-सम्प्रदाय में शरणागति-सिद्धान्त एवं गुरु-महत्ता

शरणागति सिद्धान्त

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय विशुद्ध वैदिक सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय में श्रुति-स्मृति, पुराण, पञ्चरात्र, महाभारत तथा रामायण प्रमाण माने गये हैं। वर्णाश्रम-व्यवस्था तथा सदाचार पर विशेष ध्यान दिया गया है। सम्प्रदाय की वैदिकता, शास्त्रनिष्ठा तथा सदाचारपरायणता आदि की जानकारी के लिए वेदान्त पारिजात सौरभ, वेदान्तकौस्तुभ, वेदान्तरत्न-मञ्जूषा, वेदान्तकौस्तुभप्रभा, मन्त्ररहस्य षोडशी, प्रपन्नसुरतरुमञ्जरी, वैष्णवधर्मसुरद्रुम—मञ्जरी तथा स्वधर्मामृतसिन्धु आदि ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं। क्योंकि सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्त, उपासना-सिद्धान्त तथा आचार-विचारों की जानकारी के लिए उक्त ग्रन्थ ही मूर्धन्य प्रमाण हैं।

साधना की दृष्टि से सम्प्रदाय में प्रपत्ति या शरणागति का बड़ा महत्त्व है। **'शरणं साधनं विदु:'** (रहस्य मीमांसा) प्रपत्ति भक्ति का सर्वोच्च स्वरूप है। इसके आधार के रूप में उपनिषत् के **'मुमुक्षुर्वै शरण व्रजेत्'** भगवद्गीता के **'मामेक शरण व्रज'** श्रीमद्भागवत के **'याहि सर्वात्मभावेन . . . ..'** वाक्यों को विशेष महत्त्व दिया गया है। कहना न होगा कि इसी प्रमाणत्रयी के आधार पर प्रपत्ति का अत्यन्त विस्तृत विवेचन सम्प्रदाय के ग्रन्थों में हुआ है, जिसकी पुष्टि के लिए वेद, रामायण, महाभारत, पाञ्चरात्र तथा विभिन्न तन्त्रवाक्यों से चुने हुए प्रमाण उद्धृत किये गये हैं। आत्मशान्ति तथा भगवत् प्राप्ति के लिए प्रपत्ति से बढ़कर कोई दूसरा साधन नहीं है। वस्तुत:जैसी शान्ति, आत्मसुख तथा निश्चिन्तता प्रपत्ति से प्राप्त होती है, वैसी शान्ति, आत्मसुख तथा निश्चिन्तता अन्य किसी साधन से सम्भव नहीं। प्रपन्नों की सारी जिम्मेदारी भगवान् की होती है। जो निश्छल भाव से भगवान् के प्रपन्न होते हैं, भगवान् उनका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेते हैं। उनके सम्पूर्ण योगक्षेम की चिन्ता भगवान् करते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना: पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।[1]

संसार में सबसे बड़ी दुर्गम भगवान् की माया है। इस माया से विमोहित होकर ही जीव जन्म-मरण के चक्र में फँसा हुआ नानाविध दु:खों का भोगता है। इस अनर्थकारी माया को वही पार कर सकता है, जो भगवान् का अनन्य शरणागत होता है। जैसाकि भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमुख से कहा है—

देवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।[2]

जो दुष्कृतात्मा है, वे ही भगवान् के शरणागत नहीं होते। भगवान् ने उनकी बड़ी निन्दा की है। भगवान् ने उन्हें माया से अपहृत ज्ञान वाले नराधम एवं असुर बतलाया है—

न मां दुष्कृतिनो मूढ़ा प्रपद्यन्ते नराधमा:।
माययापहतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिता:।।[3]

भगवान् श्रीश्यामसुन्दर ने अपनी सर्वशास्त्रमयी गीता में सर्वान्तिम उपदेश एवं गुह्यतम ज्ञान के रूप में अपने परम प्रिय सुहृद अर्जुन को प्रपत्ति का ही उपदेश दिया है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में अपने परम प्रिय उद्धवजी को भी

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता
2. श्रीमद्भगवद्गीता
3. श्रीमद्भगवद्गीता

भगवान् ने शरणागति का उपदेश दिया है। विश्व के इन सर्वोच्च ग्रन्थों में शरणागति का सर्वोत्तम साधन के रूप में प्रौढ भाषा में प्रतिपादन हुआ है। शरणागति के साथ सर्वभाव का भी इन ग्रन्थों में प्रतिपादन है—**'तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत'** . . . **याहि सर्वात्मभावेन . . . चोद्धव।**[1] गीता तथा भागवत में अपने प्रिय सखा अर्जुन एवं उद्धव को सर्वात्म भाव से प्रपन्न होने का ही भगवान् ने स्पष्ट आदेश दिया है। सर्वभाव या सर्वात्मभाव का सर्वोच्च उदाहरण श्रीगोपीभाव ही है। इस भाव के अतिरिक्त किसी अन्य भाव में सर्वात्म् भाव नहीं हो सकता। अत: श्रीमद्भगवद्गीता या श्रीमद्भागवत के अनुसार प्रपत्ति या सर्वात्मभाव के उपासकों में व्रजागंनाओं का ही भक्ति के समस्त आचार्यों ने उदाहरण दिया है—'यथा व्रजगोपिकानाम्, यथा व्रजवल्लरीनामित्यादि।'

मेरी दृष्टि से श्रीनिम्बार्कीय साधना की पद्धति एवं भाव का यही मान्य आदर्श है। नित्यविहार, उपासना, रसोपासना या माधुर्य उपासना का प्राण ही सर्वात्मभाव है। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में सर्वात्मभाव है। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में सर्वात्मभाव, गोपीभाव या माधुर्य भाव की साधना है। सम्प्रति शरणागति या प्रपत्ति का स्वरूप तथा उसके विभिन्न अंगों का स्वरूप बताया जा रहा है—

आनुकूल्यस्य संकल्प: प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासों गोप्तृत्ववरण तथा।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षडिधा शरणागति:।।

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में शरणागति के इन छह अंगों की विस्तृत व्याख्या तथा इनके अनुसार साधक को जीवनयापन करने के सम्बन्ध में विशेष बल दिया गया है। शरणागति सम्बन्धी इन अंगों का विशद् शास्त्रीय विवेचन रहस्य मीमांसा, प्रपन्न सुरतरुमञ्जरी, मन्त्ररहस्यषोडशी तथा वेदान्तरत्न-मञ्जूषा में किया गया है। उक्त पुस्तकों के ये स्थल देखकर श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की शास्त्रनिष्ठा, भक्तिनिष्ठा, भागवतनिष्ठा तथा सदाचारनिष्ठा का अनुमान किया जा सकता है। आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्कमहामुनीन्द्र का तो प्रपत्ति विचार में एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही था, जिसकी चर्चा **वेदान्तरत्नमञ्जूषा** आदि ग्रन्थों में है।

शरणागति के उक्त छह अंगों में प्रथम अंग **'आनुकूल्यस्य संकल्प:'** है। इस अंग का अत्यन्त विस्तारपूर्वक विवेचन प्रपन्न-सुरतरु-मञ्जरी में हुआ है। इसका सारांश है कि प्राणीमात्र में भगवान् है या यों कहें कि प्राणीमात्र भगवान् के अंश हैं, अत: प्राणीमात्र के अनुकूल चलना, किसी को किसी प्रकार का दु:ख न देना, किसी

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता

की निन्दा न करना, किसी को अप्रिय वाणी न कहना प्रपन्न का प्रथम कर्त्तव्य है।[1] अथवा '**श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे**' के अनुसार भगवान् की शास्त्राज्ञा के अनुकूल चलना तथा अपने-अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुसार सन्ध्या, तर्पण, नित्य, नैमित्तिक अनुष्ठान भगवान् की आज्ञा समझकर करना 'अनुकूलस्य संकल्प' का अर्थ है जो कि भगवत् शरणागत का प्रथम् कर्त्तव्य है। इसके विपरीत प्राणियों को दुःखी करना, किसी की निन्दा करना आदि भगवदाज्ञा के प्रतिमूलाचरण है। इसका सर्वथा परित्याग कर देना ही '**प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्**' शरणागति का द्वितीय अंग है। इस परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर वैष्णव धर्म ही विश्व का सर्वोत्कृष्ट धर्म सिद्ध होता है। वैष्णव धर्म के समस्त ग्रन्थों में ऊँची भावना का दर्शन होता है। गीता, भागवत आदि वैष्णव धर्म के अमूल्य ग्रन्थरत्नों में उत्तम भागवत्त के यही लक्षण बतलाए गए हैं—'**अद्वेष्टा सर्वभूतानां . . . .सर्वभूतेषु चात्मानं भगवद् भावमात्मनम्**' इत्यादि।

साधक को सदा विश्वास रखना चाहिए कि प्रभु मेरी रक्षा अवश्य करेंगे, क्योंकि उनकी प्रतिज्ञा—"कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।" "मुंचतिः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात् तरिष्यसि" इत्यादि। 'रक्षिष्यतीति विश्वासः' प्रपत्ति का तीसरा अंग है। अर्थात् यह प्रपन्न का लक्षण है। किसी प्रकार की मुसीबत या संकट आने पर प्रपन्न को प्रभु से ही प्रार्थना करनी चाहिए, यह प्रपत्ति का चौथा अंग है—'**गोप्तत्त्ववरणं तथा**'। हम कोई साधन—जप, पूजा, दान आदि करें, उनमें हमारी अभिमान बुद्धि नहीं होनी चाहिए। कारण, प्रभु तो कृपैकलीय हैं। वह साधनों के अधीन नहीं। वे तो सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं—'**यमैवेष वृणुते तेन लभ्यः**' हैं। ऐसी दशा में प्रपन्न को अनवरत साधना संलग्न होने पर भी अपने में दैन्य भावना ही रखनी चाहिए, तभी प्रभु की कृपा का उदय हो सकता है। जैसाकि आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र ने कहा है—'**कृपास्य दैन्यादि युजि प्रजायते**" इत्यादि। तात्पर्य यह है कि उपायोपेय भावेन अर्थात् साधन भी भगवान्, साध्य भी भगवान्, इस दृष्टि से भगवान् की भावना या आराधना होनी चाहिए। '**सर्वधर्मान् परित्यज्य**' का भाव भी यही है। इस प्रकार कार्पण्य प्रपन्न का पाँचवाँ महत्त्वपूर्ण अंग है। इन सभी अंगों का अंगी आत्म-निक्षेप, आत्मभर न्यास या आत्म-आत्मीयभर न्यास को माना गया है। जैसाकि आद्याचार्य श्रीपाद का वचन है—"**चरमार्थं हविः कृत्वा माध्यमं चापर्णं तथा। प्रथमार्थे च ब्रह्माग्नावात्मानं जुहुयाद् बुधः।**[2]" यही श्रीनिम्बार्कीय वैष्णव

---

1. किञ्च स्वस्ववर्णाश्रमाधिकारानुसारेण सन्ध्यावन्दनतर्पणमिनिनित्यनैमित्तिक—क्रियानुष्ठानरूपभगवत् आज्ञापरत्वम् आश्रमाद्यनतिक्रमश्च- 'मोक्षार्थी न प्रवर्त्ततेत्यादि वचनात्' (प्रपन्नसुरतरुमञ्जरी, पृ. 28)
2. आद्याचार्य श्रीपाद के वचनानुसार

साधन का सर्वोच्च भाव है। यही जीवन का परम फल है, साध्य है एवं प्राप्य है और चिरशान्ति तथा शाश्वत सुख का एकमात्र साधन है। इस मुख्य अंग की पूर्ति के लिए ही दीक्षा का विधान है। यही अष्टादशाक्षर पञ्चपदी स्वाहान्त श्रीगोपाल मन्त्रराज का परम अभिधेय है। इस पावन कृति की पूर्ति श्रीगुरुदेव की अहैतुकी करुणा से सम्पन्न होती है। कारण श्रीगुरु-रूप स्रुवा के द्वारा ही जीवात्म् रूप हवि श्रीकृष्ण्-रूप परमात्मा की आहुति होती है, अर्थात् समर्पण होता—"एकेन चरमार्थस्य गुरुणा योग उच्यते। चरमेणात्म-होमस्य विधानं परिकीर्तितम्[1]" यही स्वाहान्त वाञ्छाचिन्तामणि पञ्चपदी मन्त्रराज का तात्पर्य है।

यहाँ आत्मपद आत्मा तथा आत्मीय का उपलक्षण माना गया है। अर्थात् आत्मा के साथ स्त्री, पुत्र, मन, बुद्धि अपना सर्वस्व पुण्यापुण्य, संचित, क्रियमाण, प्रारब्धादि कर्म तथा समस्त अहंकार ममकारास्पद वस्तुओं का प्रभु में विन्यास किया जाता है। जैसाकि रहस्य-मीमांसा का वचन है—

अथात्माने विनिक्षेप: आत्मीयै: सह कर्मभि:।
ज्ञानैश्च विष्णौ कर्त्तव्यों मनोबुद्धश्चादिभिस्तथा।।[2]

श्रीनिम्बार्कीय साधन में प्रपत्ति ही सर्वान्तिम साधना मानी गयी है और इसी में समस्त साधनों का अन्तर्भाव हो जाता है। अतएव जिसने विधिपूर्वक प्रपत्ति की दीक्षा ले ली या भगवत् प्रपन्न हो गया, वह कृतकृत्य हो जाता है। उसके लिए कोई कर्म शेष नहीं रह जाता। क्योंकि श्रीहरि एवं गुरु की आज्ञा के पालन में कर्मयोग, अपने सहित सम्पूर्ण विश्व को ब्रह्मात्मकत्वेन अनुसंधान करने में ज्ञानयोग तथा भगवद्विषयक निरतिशय प्रीति में भक्ति योग का अन्तर्भाव हो जाता है। इसी प्रकार अष्टांग योग का भी प्रपत्ति के अंगों में ही अन्तर्भाव हो जाता है। कारण यहाँ आत्मा तथा आत्मीय पदार्थों में निर्वेद ही यम है। श्रीहरि गुरु-विषयक अनुराग ही नियम है। चेतन-अचेतन समस्त पदार्थों में भगवदीयत्व का अनुसंधान तथा उनके प्रति औदासीन्य ही आसन है। सदा भगवन्निष्ठ होकर संसार की अनित्यता का अनुसंधान करते हुए प्रभु में अपनी समस्त अन्तर्वृत्तियों का न्यास ही प्राणायाम है। अनन्त स्वरूप गुण-शक्तियों से बृहत्तम परब्रह्म वासुदेव श्रीकृष्ण में चित्तवृत्तियों का न्यास करके उन्हें अन्तर्मुखी बनाना ही प्रत्याहार होता है। ब्रह्मात्मकत्व के अध्यवसाय की निश्चलता ही धारणा है। ब्रह्मात्मकत्व के अध्यवसाय की निरविच्छिन्न परम्परा को ही ध्यान कहते हैं। भगवद् विषयक ध्यान द्वारा अन्य विषयों का विस्मरण कर सर्वात्म ब्रह्म श्रीकृष्ण में

---

1. मन्त्ररहस्यषोडशी
2. रहस्य मीमांसा

गंगा-प्रवाहवत् निरविच्छिन्न मनोवृत्ति का नाम ही समाधि है। यही ध्रुवा स्मृति है। इस प्रकार समस्त साधनाओं का भगवत् प्रपत्ति में अन्तर्भाव होता है।

इस मंगलमय प्रपत्ति के द्वारा भगवदनुग्रह का उदय होता है और उससे प्रेमलक्षणा या पराभक्ति की प्राप्ति होती है, फिर भगवत्साक्षात्कार होता है। तभी भगवद्भावापत्ति मोक्ष की प्राप्ति होती है। यही श्रीनिम्बार्कीय प्रपत्ति का मूल स्वरूप है।

गुरु-महत्ता

मनव जीवन का परम लक्ष्य भगवत प्राप्ति ही है और भगवत् प्राप्ति का साधन है भगवत् प्रपत्ति। जैसाकि भगवान् ने श्रीमुख से कई बार कहा है—"**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**", "**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते**[1]" इत्यादि। इस भगवत् प्रपत्ति का एकमात्र साधन है 'वैष्णव दीक्षा'। दीक्षा के द्वारा ही विधिपूर्वक प्रपत्ति सम्पन्न होती है, जिसमें गुरुत्व की मुख्य उपयोगिता होती है। संसार के अनन्तानन्त संतापों से संतप्त, अतएव नितान्त व्याकुल होकर जीव सर्वप्रथम श्रीगुरुदेव का अन्वेषण करता है और उनकी शरण में जाता है। '**स गुरुमेवाभिगच्देत्।**' सद्गुरु की प्राप्ति जीव को भगवत् कृपा से ही होती है। ध्रुव तथा प्रह्लाद को देवर्षि नारद की प्राप्ति भगवत् कृपा से ही हुई थी। सद्गुरु निश्छल शरणागत शिष्य को अहैतुकी कृपा करके उसे भगवत् पन्न बनाते हैं। मन्त्रोपदेश करते हैं। साधना बतलाते हैं। ध्यान बताते हैं। सदाचार सिखाते हैं। वैराग्य का उपदेश देते हैं और बनाते हैं, भगवान् के अनुरूप रूप का रसिक। फिर जीव का कल्याण होता है। यही मार्ग है। कल्याण का साधन है। बिना गुरु के ज्ञान नहीं होता। बिना आचार्य के विद्या प्राप्त नहीं होती। पुस्तक से किया गया जप सफल नहीं होता। अवैष्णव का दिया मन्त्र अमोघ नहीं होता, जिसका सम्प्रदाय नहीं, परम्परा नहीं, ऐसा मन्त्र मोघ होता है। गंगाजल वही पवित्र होता है जिसकी परम्परा अविच्छिन्न है। मूल गंगोत्तरी से सम्बन्ध है। इसी तरह मन्त्र भी वही सार्थक होता है, जिसकी अनादि परम्परा है। दीक्षा दिव्य भाव को प्रदान करती है। दीक्षा में आत्म-समर्पण होता है। आत्म-समर्पण सच्चा सुख, सच्ची शान्तिप्रदान करता है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव किसी सच्चे सद्गुरु द्वारा निर्दम्भ भगवतप्रपन्न को होता है।

इस परिप्रेक्ष्य में श्रीनिम्बार्कीय दृष्टिकोण के आधार पर श्रीगुरुतत्त्वका विचार करने पर ज्ञाता होता है कि इस सम्प्रदाय में भगवत् प्राप्ति के लिए गुर्वाश्रिय को नितान्त आवश्यक माना गया है। गुरुकरण की आवश्यकता पर '**आचार्यवान् पुरुषो वेद**', '**स गुरुमेवाभिगच्देत्**', '**तस्माद्. गुरूं प्रपद्येत**' (भागवत) आदि वाक्यों का उद्धरण दिया जाता है। सम्प्रदाय में गुरु सोच समझ कर तथा छानबीन कर करने का आदेश

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता

है। क्योंकि गुरु को श्रोत्रिय, वेद-वेदान्तवेत्ता तथा भगवन्निष्ठ होना अनिवार्य बतलाया गया है। जो शब्द ब्रह्म और परब्रह्म दोनों में निष्णात हो, उसे ही गुरु बनाना चाहिये। क्योंकि अज्ञान रूप अन्धकार को नाश करने वाले को ही गुरु कहा गया है। इसी प्रकार श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में गुरु को आचार्य होना भी आवश्यक बताया गया है। आचार्य का अर्थ ''आचिनोति च शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि। स्वयमाचरते यस्मात् तदाचार्य इति स्मृत:" ऐसा आचार्य होना चाहिए। श्रीनिम्बार्क सिद्धान्तानुसार गुरु उसे बनाना चाहिये, जो वेदसम्पन्न, विष्णुभक्त, रागद्वेषातीत, मन्त्रज्ञ, सदा मन्त्राश्रय, शौचाचार सम्पन्न, स्वयं गुरुभक्तिसमायुक्त तथा जो विशेष रूप से पुराणों का ज्ञाता हो। इसी प्रकार जो सत्यभाषी, जितेन्द्रिय, परमार्थ परायण, क्रोध रहित, पाञ्चारात्रार्थविद् तथा पञ्चकलानुष्ठान परायण हो, उसे ही गुरु करना चाहिये। आचार्य श्रीकेशवकाश्मीरीजी ने गुरुत्व का बड़ा अच्छा स्वरूप बतलाया है— ''कामवासना के समूल उन्मूलन से जिसका प्रत्यङ्ग निर्मल हो चुका है, श्रीकृष्ण चरण-कमल में जिसका अहैतुक अनुराग है, निगमागम के वमल पथ का जो भली-भाँति वेत्ता है, संतों में जिसका समादर है, ऐसे को गुरु रूप में आश्रय करें।[1]" श्रीपुरुषोत्तमाचार्य ने इसके विपरीत गुरु करने पर दोष बतलाया है। 'विपर्यये दोष-स्मरणात्।' और कहा है—

''भिन्ननावाश्रित: यो यथा पारं न गच्छति।
ज्ञानहीनं गुरूं प्राप्त: कुतो मोक्षमवाप्नुयात्।"

शास्त्र में जैसे गुरु छानबीन करने की आज्ञा है, उसी प्रकार शिष्य भी परीक्षा लेकर ही करने का विधान है। वही भाग्यशाली है, जिसका प्रभु में निश्छल अनुराग है। प्रभु प्राप्ति के लिए जिसकी सच्ची लगन है, जिसका सच्चा अनुराग है, जिसे वस्तुत: विषयों से विराग है, वास्तव में ऐसा व्यक्ति ही शिष्य बनाने योग्य है। ऐसे विषय विरक्त, प्रशान्तचित्त, निर्दम्भ, भगवदनुरागी विरागी को शिष्य बनाने तथा मन्त्रोपदेश देने का सम्प्रदाय में विधान है।

6. निम्बार्क-सम्प्रदाय में युगल-रसोपासना

भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य के अनुसार 'रस' या आनन्द ब्रह्म का ही पर्याय है, जो श्रुति द्वारा **'रसो वै स:'** के रूप में प्रतिपादित किया गया है। श्रीनिम्बार्क ने अपने भाष्य में 'रस-तत्त्व' या परमात्मतत्त्व के अखण्ड आनन्दमयता की स्पष्ट घोषणा की है। उनकी मान्यता के अनुसार इस आनन्दमयता का सम्बन्ध जीव से नहीं, अपितु ब्रह्म से है—

आनन्दमय: परमात्मा न तु जीव: कुत: ?
परमात्म विषयकानन्द पदाभ्यासात्।

---

1. आचार्य श्री केशव काश्मीरि कृत क्रमदीपिका का पद्यार्थ।

रसं ह्योवायं लब्ध्वाऽनन्दी भवति इति
वाक्येन लब्धृलब्धव्ययोर्भेदव्यपदेशाच्च जीवोऽनानन्दमयः।[1]

इन सूत्रों द्वारा ब्रह्म में आनन्द की अनन्ता की पुष्टि की गई है। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि 'रस' या आनन्द ब्रह्म का स्वरूपात्मक धर्म होते हुए भी चित् या ज्ञान के द्वारा वह आस्वादयनीय है। रस-ब्रह्म का अनुभव ही 'भगवत्लीलारस' है। वस्तुतः परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी परमाह्लादिनी शक्ति श्रीराधा ही इस 'भगवत्लीला-रस' अथवा 'माधुर्य-रस' के केन्द्र हैं। श्रीनिम्बार्काचार्य ने इन्हीं युगलकिशोर की उपासना में अपने माधुर्य-भाव का पुट दिया है। पुराणों में श्रीराधाकृष्ण के लीलामय स्वरूप को शक्ति और शक्तिमान् के रूप में स्वीकार किया गया है। वे 'एक प्राण द्वै देही' है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ आत्मा-आत्माराम एवं बिंबप्रतिबिंब भाव की झाँकी स्पष्ट की गई है—

रेमे रमेशो व्रज-सुंदरीभि-
र्यथाऽर्भकः स्वप्रतिबिम्ब-विभ्रमः।[2]
आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ।
आत्माराम इति प्रोक्तो मुनिभिर्गूढवेदिभिः।।[3]

श्रीराधाकृष्ण को उपास्य मानकर चलने वाली धारा में निम्बार्कीय, गौड़ीय, वल्लभीय एवं राधावल्लभीय ये चार धाराएँ ऐसी हैं, जो माधुर्य-भाव की साधना अथवा रसिक साधना में आस्था रखती हैं। पूर्ववर्ती समस्त वैष्णव सम्प्रदायों में श्रीकृष्ण-भक्ति की मधुर्य-उपासना का सबसे प्राचीन प्रचारक निम्बार्क-सम्प्रदाय है। यद्यपि श्रीनिम्बार्काचार्य के आविर्भाव-काल में पर्याप्त मतभेद है, तथापि उच्चकोटि के विद्वान् निम्बार्क सम्प्रदाय की प्राचीनता को एकमत से स्वीकार करते हैं। इस सम्प्रदाय के उद्गम पर विचार करने से भी ऐसे अकाट्य तर्क प्राप्त होते हें, जिनसे निम्बार्क-सम्प्रदाय की प्राचीनता स्वीकार करने में सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। यह भी स्पष्ट रूप से सर्वमान्य है कि श्रीकृष्ण की माधुर्य-उपासना का श्रेय भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य को ही है। उनके सिद्धान्त ग्रन्थों से इस तथ्य की पूर्णरूपेण पुष्टि हो जाती है। श्रुतियों ने जिस रसोपासना की ओर इंगित किया है, वह रसरूप परमात्मा श्रीकृष्ण ही है। उन्हीं की उपासना से जीवों को परम-सुख की उपलब्धि हो सकती है। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए सुदर्शनावतार श्रीनिम्बार्क ने श्रीराधाकृष्ण की माधुर्योपासना पर विशेष बल दिया है। श्रीकृष्ण के चरणों की शरण लिए बिना

---

1. नि. भाष्य 1/1/13, 18
2. श्रीमद्भागवत 10/33/37
3. स्कन्दपुराण

कल्याण नहीं हो सकता। अस्तु, जीव की एकमात्र गति पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही है। साथ ही उनके वामाङ्ग में विराजमान उन्हीं के समान अनुपम लावण्य से युक्त तथा सहस्र सखियों से परिवेष्टित सर्वेश्वरी श्रीराधा की आराधना करना परम आवश्यक है। वे स्पष्ट घोषणा करते हैं—

''अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा
विराजमानामनुरूप-सौभगाम्।
सखी-सहस्त्रैः परिसेवितां सदा,
स्मरेम देवीं सकलेष्टाकामदाम्।।[1]"

श्रीनिम्बार्काचार्य के उपास्य तत्त्व की परमोत्कृष्टता इसी स्वरूप में निहित है। श्रीराधा श्रीकष्ण के वामाङ्ग में सर्वदा ही विराजमान रहती हैं। अथर्ववेदीय राधिकातापनीयोपनिषद् में तो यहाँ तक कहा गया है कि बिना सखी भाव का अवलम्ब लिए कोई भी साधक इस दिव्य-मधुर्य रस का आस्वादन नहीं कर सकता और यह भाव बिना सर्वेश्वरी श्रीराधाजी की कृपा के किसी को प्राप्त नहीं होता। सम्पूर्ण-भुवन की ओर सहज में ही आकृष्ट करने वाले पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण इन्हें अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय मानते हुए, प्रेमाद्र होकर उनकी चरण-रज को शिरोधार्य करने के लिए सदैव लालायित रहते हैं। जिन राधाजी के वशीभूत परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण रहते हैं, उन्हीं कि उपासना का सन्देश पर्नियतमभाव से श्रुतियों ने दिया है। वस्तुतः श्रीराधाकृष्ण रस के सार-समुद्र एक ही देहधारी हैं, क्रीड़ा करने के लिए ही दोनों हुए हैं। उनका यह अंग-अंगी सम्बन्ध द्वैताद्वैतभाव का भी पोषक है—

'येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिः
देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाऽभूत्।'[2]

श्रीनिम्बार्काचार्य ने ऐश्वर्यप्रधान भक्ति के स्थान पर माधुर्यप्रधान भक्ति की शिक्षा दी है। उनकी दृष्टि में भगवान् श्रीकृष्ण के ऐश्वर्यमय रूप की ओर आकृष्ट होना तो भक्ति का नहीं, अपितु धर्म-साधना का आरम्भ मात्र है। भक्ति की सर्वोत्कृष्टता एवं सच्ची उपासना तो उसके जीवन्त साहचर्य्य एवं प्रेम में बँधकर उनके माधुर्यमय रूप का आस्वादन करना है। इस माधुर्य भाव की प्राप्ति बिना सर्वेश्वरी राधा की कृपा के सम्भव नहीं। अतः निम्बार्काचार्य ने **'अंगे तु वामे'** कहकर सर्वप्रथम श्रीराधिका (किशोरी जी) जू का स्मरण श्रीकृष्ण के साथ कर उनकी कृपा की याचना की है। वे कहते हैं—'हे राधे! तुमने पतंग की भाँति अपने पीछे दौड़ते हुए मुकुन्द को अपने प्रेम

---

1. वेदान्त ऽश श्लोकी से समुद्धृत।
2. श्रीराधिकातापनीयोपनिषद् 2-7-11

रूपी डोरे से बाँध दिया है। श्रीकृष्ण तुम्हारे साथ क्रीड़ा करते हुए सर्वदा विद्यमान रहते हैं—

''मुकुन्दस्त्वया प्रेमडोरेण बद्धः,
पतंगों यथा त्वामनुभ्राम्यमाणाः।
उपक्रीडयन् हार्दमेवानुगच्छन्,
कृपा वर्तते कारयतौ मयीष्टम्।।[1]"

इस प्रकार अपने प्रियतम के प्रेम से प्रफुल्लित अंगों वाली शरीर में स्वेदबिन्दुओं से युक्त, प्रेम-पीयूष की वृष्टि करने वाली तथा कृपाकटाक्ष से देखने वाली रासेश्वरी श्रीराधिका की आराधना किये बिना इस माधुर्य की प्राप्ति असम्भव है। श्रीराधाष्टक स्त्रोत के अन्तिम श्लोक में उन्होंने इस बात की पुष्टि की है कि श्री कृष्ण की परम्प्रिया श्रीराधिका के इस अष्टक के सहारे हीं साधक अपनी साधना के क्षेत्र में तत्पर होकर सखीभाव से ही उन युगल के आनन्द का रसास्वादन कर सकता है—

इदं त्वष्टकं राधिकायाः प्रियायाः
पठेयुः सदैवं हि दामोदरस्य।
सुतिष्ठन्ति वृन्दावने कृष्णधाम्नि
सखीमूर्तयो युग्मसेवानुकूलाः।।[2]

'प्रातर्नमामि वृषभानुसुतापदाब्जम्' कहकर श्रीनिम्बार्काचार्य वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिका किशोरीजी के चरणारविन्दों की प्रात:कालीन वन्दना करते हुए दिखाई देते हैं। वे अपने 'प्रातः-स्मरण स्तोत्र' में कहते हैं 'शयन से उठे हुए, युगलरूप सर्वेश्वर, सुखकारी, रसिकेश्वरेश्वर, परस्पर केलिरस के चिह्नों से चमत्कृत, सखियों से परिवेष्टित, सुरत काम से शोभायमान, सुरत-सार समुद्र के चिह्नों को अपने कपोल तथा नेत्रों पर धारण करने वाले, रति आदि समस्त प्रकार के अलौकिकानन्द को प्रदान करने वाले, दिव्यकाम से युक्त, पुण्यपुञ्ज श्रीराधाकृष्ण का मैं प्रातः स्मरण करता हूँ—

प्रातर्भजामि शयनोत्थत-युग्मरूपं,
सर्वेश्वरं सुखकरं रसिकेशभूपम्।
अन्योन्य-केलिरस-चिह्न-चमत्कृताङ्गम्,
सख्यावृतं सुरत-काममनोहरं च।।
प्रातर्भजे सुरतसार-पयोधि-चिह्नं,
गण्डस्थलेन नयनेन च सन्दधानौ।

---

1. श्रीनिम्बार्ककृत राधाष्टक से
2. श्रीराधाष्टक

रत्याद्यशेष-शुभदौ समुपेत-कमौ,
श्रीराधिकावर-पुरन्दर-पुण्य पुञ्जौ।।[1]

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि श्रीनिम्बार्काचार्य ने अपनी प्रत्यक्ष माधुर्योपासना का स्पष्ट सन्देश स्वरचित ग्रन्थों में दिया है। श्रीनिम्बार्क पूर्व वैष्णव सम्प्रदायों में इस प्रकार का सन्देश प्राप्त नहीं होता। उनकी इस माधुर्योपासना का पूरा-पूरा प्रभाव परवर्ती समस्त वैष्णव सम्प्रदायों पर पड़ा है, जिसके फलस्वरूप ब्रज-वृन्दावन में आज भी माधुर्य भक्ति में ओतप्रोत रसमयी-मन्दाकिनी प्रवाहित होती दिखाई देती है।

श्रीनिम्बार्काचार्य के उपरान्त उनके परम्परानुयायी जिन शिष्यों-प्रशिष्यों ने उनके द्वारा आरोपित रासोपासना के पादप को पल्लवित और पुष्पित किया, उमनें श्रीऔदुम्बाराचार्य और श्रीनिवासाचार्य प्रमुख हें। तत्पश्चात् इस परम्परा में रसमय भावभक्ति की वृद्धि होती गई जो 14वीं और 15वीं शताब्दी में श्रीभट्टदेवाचार्य और उनके पट्टशिष्य महावाणीकार श्रीहरिव्यासदेवजी के वाणी साहित्य में स्पष्ट रूप से पाई जाती है।

युगलशतककार श्री भट्टदेवाचार्यजी माधुर्योपासना के ऐसे अमृतानन्दघन हुए, जिन्होंने अपनी अलौकिक रसवृष्टि द्वारा रसिकों के मन-मयूरों को मत्त बना दिया। **युगलशतक** का रचनाकाल वि.सं. 1352 निर्धारित है। श्रीभट्टदेवाचार्य, श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य के प्रिय शिष्य थे। निम्बार्कसम्प्रदाय के आचार्य का यह रसिक रूप इतना विख्यात हुआ कि भक्तमालकार श्री नाभादास को लिखना पड़ा—

मधुर भाव सम्मिलित ललित लीला सुवलित छवि।
निरखत हरषित हृदयप्रेम वरषत सुकलित कवि।।

x x x

आनन्दकन्द श्रीनन्दसुवन श्रीवृषभानुसुता भजन।
श्रीभट सुभट प्रगट्यो अघट रसरसिकन मनमोदघन।।[2]

नाभादासजी ने **'रस-रसिकन मन मोदघन'** इन शब्दों में यह संकेत किया है कि श्रीयुगलकिशोर की मधुर लीलाओं का ब्रजभाषा में वर्णन करने वलो रचियताओं में श्रीभट्टजी ही प्रथम रचयिता हैं। श्रीभट्टजी कृत 'युगलशतक' में रूपमाधुर्य, केलिमाधुर्य, रतिमाधुर्य आदि के नित्यविहार निकुञ्जलीला सम्बन्धी पद प्राप्त होते हैं, जो माधुर्य-भक्ति से परिप्लावित हैं। श्रीश्यामाश्याम के अंग-प्रत्यंगों की आनन्दात्मक

---

1. श्री निम्बार्क कृत 'प्रातः स्मरण स्त्रोत्र', श्लोक सं. 3 व 4
2. भक्तमाल छन्द सं. 76

रसमाधुरी का पान करते हुए श्रीभट्टजी के नेत्र चकोरवत्-दृष्टि करके पलक मारना भी भूल जाते हैं—

बसौ मेरे नैनन में दोउ चंद।
गौर वरन वृषभानुनंदिनी स्याम वरन नन्दनन्द।।
गोलक रहे लुभाय रूप में निरखत आनन्दकन्द।
जै श्रीभट्ट प्रेमरस बंधन क्यों छूटै दृढ़ फंद।।[1]

निम्बार्क सम्प्रदायान्तर्गत श्रीभट्ट को "हितुसखी" का अवतार माना जाता है। युगलशतक के एक टीकाकार बरसानावासी लडैंतीदास (सं. 1877) ने लिखा है—

श्रीभट है हितू सहचरी, प्रगट कियौ शृंगार।
जुगल सत्त विख्यात है, रसिकन को आधार।।

श्रीभट्टजी ने युगलशतक के छहों प्रकरण-सिद्धान्तसुख, व्रजलीला, सेवासुख, सहजसुख, सुरतसुख और उत्साहसुख में श्रीराधामाधव की मधुर-रसमयी लीलाओं का सखीभाव से ही गान किया है। श्रीनिम्बार्काचार्य की भाँति उन्होंने श्रीराधा की उपासना को ही प्रधानता दी है, जिनके चरणों को प्रियतम श्यामसुन्दर भी सदा 'पलोटते' रहते हैं और उनका संवाहन कर स्वयं को कृतकार्य मानते हैं—

प्यारीजू के चरण पलोटत मोहन।
नील कमल के दलन लपेटे, अरून कमलदल सोहन।।
कबहुँक लेलै नैन लगावत, अलि धावत मानो गोहन।
जै श्रीभट्ट छबीली राधे, होत जगे तें दोहन।।[2]

श्रीभट्टदेवजी के प्रधान शिष्य अनन्तरसिक श्रीहरिव्यासदेवजी माने जाते है। आदि व्रजभाषा वाणी युगलशतक के रूप में जिन सरस रसोपासना के सूत्रों की रचना श्रीभट्टजी ने की, उसी का उत्कृष्ट रसमय मधुर महाभाष्य उनके शिष्य श्रीहरिव्यासदेवजी ने अपने 'महावाणी' नामक ग्रन्थ में किया है। 'महावाणी' में शुद्ध नित्यविहार रस से संवलित उज्ज्वल रस की उपासना पद्धति मधुर रसभीने उत्कृष्ट भाव सरस प्रांजल भाषा में व्यक्त हैं, जिनके कारण यह ग्रन्थ रसिकजनों का कण्ठाभरण बना हुआ है। 'महावाणी' में पाँच सुख—सेवासुख, उत्साह सुख, सुरतसुख, सहजसुख और सिद्धान्तसुख वर्णित हैं। नित्य विहार अथवा निकुञ्जलीला में प्रियाप्रियतम नित्य-केलि और सिद्धान्तसुख वर्णित हैं। नित्य विहार अथवा निकुञ्जलीला में प्रियाप्रियतम नित्य-केलि में संलग्न रहते हैं और इस केलिरस के पान का अधिकारी

---

1. युगलशतक, पद सं. 53
2. युगलशतक, पद सं. 76

वही हो सकता है, जो महावाणी में वर्णित श्रीहरिव्यासदेवजी की आज्ञानुसार चलता है—

जाके दस पैड़ी अति दृढ़ हैं, बिनु-प्रयास कोन तहैं चढ़ि हैं।
पहले रसिक जनन कों सेवै, दूजी दया हिये धरि लेवै।।
तीजी धर्म सुनिष्ठा गुनि हैं, चौथी कथा अतृप्त ह्वै सुनि है।
पंचमि पद पंकज अनुरागै, षष्ठी रूप अधिकता पागै।।
सप्तमि प्रेम हिये विरधावै, अष्टमि रूप ध्यान गुन गावै।
नवमी दृढ़ता निश्चय गहिवै, दशमी रस की सरिता बहिवै।।
या अनुक्रम करि जे अनुसरहीं, सनै-सनै जगते निस्वरहीं।
परमधाम परिकर मधि बसहीं, श्रीहरिप्रियाहितू संग लसहीं।।[1]

इन पंक्तियों में कहा गया है कि रसिकजनों की प्राणीमात्र पर दया, साम्प्रदायिक आचार के प्रति निष्ठा, अमृतमयी कथा का, अतृप्तिपूर्ण श्रवण, पदपंकज में अनुराग, उपास्य रूप में रत होना, हृदय में प्रेम भाव का उदित होना, प्रिया-प्रियतम के रूपध्यान तथा गुणगान साधना में दृढ़भाव और इन सबके फलस्वरूप अन्त में रस की धारा में आपादमस्तक मग्न होना हीं साधन-साधना और साधना-लभ्य की दशा है। महावाणी में अष्ट-सखी ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, रंगदेवी, सुदेवी, तुंगविद्या और इंदुलेखा का भी उल्लेख मिलता है। रसिक साधन उक्त प्रकार से साधना करता हुआ अपने लीलोपयोगी रूप (सखीभाव) को प्राप्त करके हीं नित्य-विहार लीला का साक्षात्कार कर सकता है।

श्रीहरिव्यासदेवजी ने अपनी साधना के बल से देवी को वैष्णवी दीक्षा प्रदान कर अपनी अपूर्व निष्ठा और सच्ची वैष्णवता का परिचय दिया है। भक्तमालकार नाभादास को लिखना पड़ा—

हरिव्यास तेज हरि भजन बल देवी को दीक्षा दई।
श्रीभट्ट चरणरज परसि के सकल सृष्टि जाकों नई।।

इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत श्रीरूपरसिकदेव, रसिक अनन्य नृपति श्रीस्वामी हरिदासजी तथा उनकी शिष्य-परम्परा में अष्टाचार्य और बीसवीं शताब्दी के परम रसिक श्रीमाधवदासजी अलीमाधुरी जैसी विभूतियों ने प्रकट होकर माधुर्यभक्तिपूर्ण रसिक साधना की उत्तरोत्तर परम्परा स्थापित की है। अत: कहना होगा कि माधुर्योपासना के उद्‌भव और विकास का मूल निम्बार्क-सम्प्रदाय ही है।

---

1. श्रीमहावाणी सिद्धान्त-सुख पद सं. 41

7. निम्बार्क-सम्प्रदाय : समन्वयात्मक दार्शनिक दृष्टिकोण

श्रुतिर्विभिन्ना: स्मृतयो विभिन्ना:,
नैको मुनिर्यस्य वच: प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां,
महाजनो येन गत: स पन्था:।।

इस सिद्धान्त के अनुसार स्मृतियों में, श्रुतियों में भी परस्पर विरुद्ध वाक्य मिलते हैं। निर्णेताओं की वाणी भी इत्थंभूत प्रमाण के रूपमें नहीं आ सकती। इस स्थिति में और कोई चारा नहीं है, सिवाय महापुरुषों के आनुगत्य के। महाजनों का मार्ग वेदानुकूल होता है। जब कभी वैदिक मार्ग उच्छिन्न-सा होता है, तब पथ विभ्रान्त लोगों को सदुन्मुख बनाने के लिए महाविभूतियों का इस धराधाम पर अवतार होता है।

ऐसी महाविभूतियों में सर्वप्रथम अवतीर्ण होने वाले चक्रराज सुदर्शन के अवतार भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य हैं, जिनका लोक-वेद-विख्यात द्वैताद्वैत सिद्धान्त है। द्वैताद्वैत सिद्धान्त वेदविहित है। वेदानुकूल धर्मशास्त्र भी इसी का समर्थन करते हैं। लिखा है—

''श्रुतिर्द्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ।[1]''

जहाँ पर श्रुतियाँ दो बातों का प्रतिपादन करती हैं, वहाँ समझ लेना चाहिए कि दोनों धर्म यथार्थ हैं। वेद वाक्य सब समान रूप के हैं, उनमें बाध्य-बाधक भाव की कल्पना करना अन्याय होगा। मानव की निर्मूल कल्पना से सिद्धान्त सिद्ध नहीं हो सकता। वेदमूलक कल्पना ही युक्तिसंगत है। वेद जो कुछ कहते हैं; जिसका प्रतिपादन करते हैं, उनको उसी रूप में मानना आस्तिकता है, और शास्त्रीयता है। वेद पर किन्तु-परन्तु की टीका-टिप्पणी करना, प्रत्यक्षानुवादिनी-परोक्षानुवादिनी कहकर श्रुतियों को खींचातानी में लाना भी उनके साथ अन्याय करना है, यदि वेद कण्ठरव से ऐसा कहते तो मान भी लिया जाता। वेद तो साफ-साफ द्वैताद्वैत को ही कहते हैं। वेद न केवल द्वैत, न केवल अद्वैत, न विशेषण विशेष्य, न शुद्ध द्वैत न शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन करते हैं, वेद तो जो वस्तुस्थिति है, उसकी घोषणा करते हैं, इसीलिए तो वेदों का स्वत: प्रामाण्य स्वीकार किया गया है। द्वैताद्वैत को समन्वित वैदिक सिद्धान्त समझकर शिरोधार्य किया गया है। उपनिषद्-ब्रह्मसूत्र-गीता के आज तक के भाष्यकारों की सैद्धान्तिक अपनी-अपनी मान्यताएँ भिन्न होने पर भी मूलत: द्वैताद्वैत में समाविष्ट हो सकती हैं।

यद्यपि ईश्वर सब कुछ है, सर्वावस्था में हे। **कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं** समर्थ है। ईश्वर को जिस दृष्टि से देखा जाये, समझा जाये, भावना की जाये, तत्तत् स्थितियों में

---

1. मनुस्मृति से समुद्धृत।

वह है ही। अस्ति में भी ईश्वर है, नास्ति में भी है। अस्ति-नास्ति इस विप्रतिषिद्धावस्था में भी ईश्वर का अपलोप नहीं किया जा सकता है। जो है, वह त्रिकालाबाधित है। है को नहीं से अपलोप नहीं किया जा सकता, नहीं कहना केवल वाचारम्भ मात्र है, वस्तुस्थिति नहीं है। अतएव ईश्वर की ईश्वरता निरतिशय महिमाशाली है। यदि कहीं किसी अवस्था में न्यूनता (अभाव) आ जाये तो ईश्वर का ईश्वरत्व नहीं रहेगा। अत: **'सदा सर्वत्र सर्वग:'** ईश्वर है। इन दृष्टियों से विचार करने पर तो द्वैताद्वैत, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, अचिन्त्य भेदाभेद, सभी दार्शनिक दृष्टियों में तत्-तत् रूप से ईश्वर प्राप्त होगा। ईश्वर तो एक शाश्वत सार्वत्रिक सत्ता है।

किन्तु अब यह विचार करना है कि मूलत: वेद क्या कहते हैं? और शास्त्रसम्मत तर्क क्या कहते हें? श्रुति-सूत्र-धर्माशास्त्रानुकूल तर्क द्वारा कौनसा सिद्धान्त युक्तिविरुद्ध नहीं है? इसको भी देखना है। सम्प्रति यहाँ पर द्वैताद्वैत को लेकर विचार करते हैं।

प्रश्न यह उठता है, कि तम: प्रकाशवत् विरुद्ध स्वभाव वाले द्वैत और अद्वैत का सैद्धान्तिक सामञ्जस्य कैसे सम्भव है?

खासकर आलोचकों के द्वैताद्वैत सिद्धान्त में दो प्रश्न होते हैं। द्वैताद्वैत मानने पर समानाधिकरणता न होने से द्वैताद्वैत वादिसम्मत कर्मधारय समास नहीं होगा और एकविज्ञान से सर्वविज्ञान के वैदिक प्रतिज्ञा भी उत्पन्न ही नहीं होगी।

द्वैताद्वैत सिद्धान्त आपातत: विरुद्ध प्रतीत होता है, किन्तु विचार करने पर यह सिद्ध होता है, कि विरोध का लेशमात्र भी नहीं है। निम्बार्क-सिद्धान्त में चित्, अचित् और ईश्वर नाम के तीन शाश्वत तत्त्व माने गए हैं, श्रुतियाँ भी **''भोक्त भोग्य प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म ह्योतत्"** कहकर इसी सिद्धान्त की पुष्टि करती हैं। चिदचित् का बह्म के साथ स्वाभाविक भेदाभेद (द्वैताद्वैत) सम्बन्ध है। इस बात को समझने के लिए सर्वप्रथम द्वैत और अद्वैत पदार्थ को समझना आवश्यक है।

द्वि+इत शब्द से द्वैत शब्द निष्पन्न होता है। उसके साथ नञ्-समास् करने पर अद्वैत होता है। पर द्वि शब्द का अर्थ है—दो प्रकार से। इत शब्द का अर्थ है—ज्ञात। इसका समष्ट्यर्थ हुआ—दो प्रकार से ज्ञात, इस प्रकार द्वैत और अद्वैत का सामञ्जस्य (समानाधिकरणता) जिस पदार्थ या सिद्धान्त में हो, उसको द्वैताद्वैत कहते हैं। जैसे जिसमें शैत्य और पावनत्व युक्त जल हो, उसको गंगा कहते हैं। गंगा का शैत्य और पावनत्व के साथ स्वाभाविक भेदाभेद है। शीतत्त्वने पावनत्वेन ज्ञात होते हुए भी गंगाधीन शीतत्त्व पावनत्व के होने से गंगात्वेन भी ज्ञात होता ही है।

ठीक इसी प्रकार चिदचित् का चित्वेन अचित्वेन भेदरूप ज्ञातत्त्व के साथ-साथ चिदचित् की ब्रह्माधीन स्थिति प्रवृत्ति होने के कारण एक ही ब्रह्मात्वकत्व रूप से

ज्ञातत्त्व है ही। एक कालावस्था में भी उक्त प्रकार के भेदाभेद सम्बन्ध की सामञ्जस्यता होने से सामान्याधिकरण न होने के कारण कर्मधारय समास नहीं हो सकता, यह शंका निर्मूल हो जाती है।

व्याप्य-व्यापक भाव तथा कार्यकारण भाव से स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध तो सर्वत्र देखा गया है, यह सर्ववादी को मानना ही पड़ेगा।

दीपक की प्रभा, सूर्य का तेज-प्रकाश, वृक्ष की शाखा, गंगा का शैत्य-पावनत्व, स्फटिक मणि की शुक्लता, जपाकुसुम की रक्तिमा, सुवर्ण का कुण्डल, अहि-कुण्डल इत्यादि स्थलों में स्वभावत: भेदाभेद सम्बन्ध स्पष्ट है।

एक सुवर्ण कुण्डल, कटक, मुकुटादि पदार्थ में कुण्डलत्व-कटकत्वादिरूप अनेक प्रकार से ज्ञातत्त्व के साथ-साथ एक सुवर्णत्वेन भी ज्ञातत्त्व विद्यमान हैं।

दूसरी बात यह है कि 'अहिकुण्डल' इस प्रयोग में देखिए, वलयाकार में विद्यमान सर्पकुण्डल कार्य है, सर्प कारण है। कुण्डल कार्य और परतन्त्र तथा व्याप्य है, सर्प उसकी अपेक्षा स्वतन्त्र व्यापक तथा कारण है। इस स्वतन्त्र्य-पारतन्त्र्य-व्याप्य-व्यापक, कार्यकारणभाव से भेद-सम्बन्ध भी हैं। सर्प के बिना कार्यभूत कुण्डल की स्थिति-प्रवृत्ति न होने से कुण्डल का सर्प के साथ अभेद सम्बन्ध भी है। इसी प्रकार जीव-जगत् का ब्रह्मशक्तिमत्वेन व्याप्यत्वेन पारतन्त्र्येण ब्रह्म के साथ भेद-सम्बन्ध है और उनकी ब्रह्म व्यतिरिक्त स्थितिप्रवृत्ति न होने से अर्थात् ब्रह्माधीन स्थिति प्रवृत्तिक होने से अभेद सम्बन्ध भी स्वाभाविक है।

वर्णित विवेचन के विषय में सहस्रों प्रमाण मिलते हैं। भगवान् मनु ने कहा है—

''एकत्वे सति नानात्वं न नात्वे सति चैकता।
अचिन्त्यं ब्रह्मणो रूपं कस्तद्वेदितुमर्हति।।"

अर्थात् "एकत्वे = सुवर्णत्वे सति नानात्वं कटककुण्डलादित्वं नानात्वे = कटककुण्डलादित्वे सति एकता = सुवर्णतैव" एक ही सुवर्ण को कटक कुण्डलादिरूप अनेक-भूषणों के रूप में भी देख सकते हैं। उसी भूषणादि दर्शनकाल में एक ही सुवर्ण रूप से भी देखा जा सकता है। ठीक इसी प्रकार चिदचित् का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध समझना चाहिए। इस तथ्य को बताने वाले वेद ही हमारी शरण हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि उक्त तत्त्वत्रय को शाश्वत मानने से एकविज्ञान से सर्वविज्ञानवाद की वैदिक प्रतिज्ञा उच्छिन्न हो जाती है। किन्तु यह कहना अदूरदर्शिता का ही परिणाम है। क्योंकि सिद्धान्त में तत्त्वत्रय अत्यन्त भेदरूप में स्वीकृत नहीं है। सब ब्रह्मात्म है। अत: द्वैताद्वैत (भेदाभेद) सिद्धान्त में ही एकविज्ञान से सर्वविज्ञान की वैदिक प्रतिज्ञा का निर्वाह होना सम्भव है, अन्यत्र नहीं। अद्वैतवाद में तो उक्त प्रतिज्ञा घट ही नहीं सकती। क्योंकि अद्वैतवाद में तो एकविज्ञान से सर्वविज्ञान होने के बजाय

सर्वविज्ञान ही सर्वथा लुप्त हो जाता है। ब्रह्म व्यतिरिक्त मिथ्या ज्ञान को सर्वविज्ञान कहना ही असंगत हो जाएगा।

इसी प्रकार अत्यन्त भेदवाद में भी सर्वविज्ञान की प्रतिज्ञा समन्वित नहीं हो सकती। कहीं ऐसा नहीं देखा गया है, कि घट उपादानों से पट हो जाये।

अत: सर्वविज्ञान की प्रतिज्ञा द्वैताद्वैतवाद में घट सकती है। श्रीनिम्बार्काचार्यजी को वेदनिष्ठा का ही परिणाम था, जो कहीं भी किसी अवस्था में वेदवाक्य को खींचातानी के रूप में नहीं लाया गया, इसीलिए उन्होंने वेदविरुद्ध द्वैताद्वैत सिद्धान्त को शिरोभूषा माना। श्रुतियाँ द्वैत और अद्वैत तत्त्व का प्रतिपादन करने वाली हैं। यदि हम विशुद्ध अद्वैतवादी बनते हैं तो द्वैतवादिनी श्रुति बाधित हो जाएगी। हम यदि विशुद्ध द्वैतवादी बनते हैं, तो अद्वैत प्रतिपादक श्रुति का बाध होगा, ऐसी स्थिति में अर्धनास्तिकता आ जाएगी। किसी धर्माचार्य के लिए यह उचित भी नहीं है। वेद तो स्वयं ज्ञानरूप हैं, सर्वज्ञ हैं। उनका तात्पर्य केवलाद्वैतवाद में होता अथवा केवलद्वैत में होता तो एक ही वाद का प्रतिपादन करने वाले वाक्य मिलते। अत: सहृदयों को समझना है कि वेद भगवान् का तात्पर्य स्वाभाविक भेदाभेदवाद में ही है। इसी तथ्य को, वेद की वस्तुस्थिति को समझकर ही आचार्यपाद द्वारा उक्त सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है।

इस वाद का समर्थन सभी आचार्यों द्वारा हुआ है। सबको भेदाभेद सम्बन्ध इष्ट है। भले ही भिन्न-भिन्न नाम से सिद्धान्त का नामकरण किया हो, वस्तुस्थिति में सब द्वैताद्वैत में समाविष्ट हैं। वेद कल्पतरु हैं, उनकी छायाश्रित होने वाले महानुभावों को भिन्न-भिन्न सिद्धान्त प्रतीत होते हैं, उसका ही परिणाम सम्प्रदाय है।

जो भी हो, सभी वादों का समन्वय द्वैताद्वैतवाद में सावकाश हो जाता है।

अद्वैतवाद का समावेश

द्वैताद्वैतवाद में अद्वैतवाद का समावेश तो स्वभावत: है ही। स्वयं श्रीशंकराचार्यजी ने भी ब्रह्मसूत्र के अहिकुण्डलाधिकरण में भेदाभेदवाद को स्वीकार किया है। "तत्रैवमुभयव्यपदेशे सति यद्यभेद एवैकान्ततो गृह्यते, भेदव्यपदेशो निरालम्बन एव स्यात्। अत उभयव्यपदेशदर्शनादहिकुण्डलवदत्र तत्त्वं भेदव्यपदेशे निरालम्बन एव स्यात्। अत उभयव्यपदेशदर्शनादहिकुण्डलवदत्र तत्त्वं भवितुमर्हति" अर्थात् इस प्रकार श्रुतियों में दोनों के व्यपदेश होने पर यदि एकान्तत: अभेद का ही ग्रहण किया जाये तो भेदव्यपदेश निरालम्बन ही हो जाएगा। अत: सर्प इस प्रकार अभेद है, आभोग वक्राकार कुण्डलाकार आदि तो भेद हैं और अगले सूत्र में कहा है कि—"यथा प्रकाश: सावित्रस्तदाश्रयश्च सविता नात्यन्तभिन्नो उभयोरपि तेजस्वाविशेषात्" अर्थात् जैसे सूर्य का प्रकाश और उसका आश्रय अत्यन्त भिन्न नहीं हैं, क्योंकि दोनों में तेजस्व समान है। इन दोनों की अत्यन्त भिन्नता भी नहीं है। दोनों ही भेदव्यपदेश के भागी हैं।

शंकराचार्यजी के उद्धरण पर विचार करने से सिद्ध होता है कि वे भी भेदाभेदवाद से असहमत नहीं हैं। यद्यपि उन्होंने उपक्रम में **'भेदस्तु अविद्याकृतोऽस्ति'** अर्थात् भेद तो अविद्याकृत है, ऐसा कहा है, तथापि भेदाभेदव्यपदेश के समर्थन में जिन श्रुतियों का उद्धरण दिया है, उनमें अविद्याकृत भेद का प्रतिपादन तो क्या उसकी गंधमात्र नहीं है। ध्यातृध्येय-गंतृगन्तव्यता की धारा तो अविच्छिन्न है ही। अविद्या (प्रकृति) को भी उन्होंने सान्त मानने पर भी अनादि माना है। अनादित्व साम्यात् उसका सम्बन्ध ब्रह्म के साथ है ही। सान्त का तात्पर्य यदि सर्वतोभावेन सार्वत्रिक है, तो उसका पुनराविर्भाव नहीं होना चाहिए। अत: सान्त का तात्पर्य है, साधक सम्बन्ध परिहार। इसीलिए गीता में भगवान् ने कहा है—**''मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते**[1]" भगवत् प्रपत्ति से माया संतरण की शक्ति आती है, माया को एकान्तत: सान्त बनाने की गति नहीं हो सकती।

इन दृष्टियों से विचार करने पर आचार्य श्रीशंकर का अद्वैतवाद भी द्वैताद्वैतावाद में समाविष्ट हो जाता है। 'एकमेवाद्वितीयम्' इन श्रुतियों से भी भेदाभेदवाद में कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि अद्वितीयता का तात्पर्य स्वसमानता के निषेध लोक में यह देखा जाता है—"अद्वितीय पण्डित है, अद्वितीय प्रतिभाशाली है" ऐसे प्रयोगों का व्यवहार होता है। यहाँ अद्वितीयता का तात्पर्यपण्डितान्तर के निषेष में नहीं है, प्रत्युत्त स्वसमानता के प्रतिषेध में ही उसका पर्यवसान है।

विशिष्टाद्वैतवाद का समन्वय

द्वैताद्वैतवाद में विशिष्टाद्वैतवाद का भी समावेश है। इस सिद्धान्त में भी केवलाद्वैत अभीष्ट नहीं है। किन्तु चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म अद्वैत है। चिदचित् विश्लेषण के होने से भेदाभेद तो गुणगुणी के समान आ गया। इसके लिए स्वयं श्रीरामानुजाचार्यजी ने अपने भाष्य में लिखा है कि— "विशिष्टवस्त्वेदकेशत्वेना- भेदव्यवहारो मुख्यत:। विशेष्य-विशेषणयो: स्वरूपस्वभावेन भेदव्यवहारो मुख्य: ब्रह्मणो निर्दोषत्वञ्च रक्षितम्।[2]"

अर्थात् विशेषण-विशेष्यभाव का व्यवहार भेदाभेद रूप से ही होता है। विशेष्य से विशेषण अत्यन्त भिन्न नहीं है। विशेष्याधीन विशेषण के होने से अभेद व्यवहार मुख्य है। विशेष्य-विशेषण का स्वरूप-स्वभाव से भेदव्यवहार भी मुख्य है। इन शब्दों पर विचार करने पर सिद्ध होता है कि श्रीरामानुजाचार्य का सिद्धान्त स्वाभाविक भेदाभेदपरक है। केवल सम्प्रदायसिद्धि के लिए दर्शन का नामकरण भिन्न रूप से किया है।

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता
2. श्रीरामनुज भाष्य पूर्ववद्धा सूत्र (3/2/28)

शुद्धाद्वैतवाद का समावेश

द्वैताद्वैतवाद में शुद्धाद्वैतवाद भी समन्वित हो जाता है। इस सिद्धान्त में ब्रह्म के तीन अंश माने गए हैं। सदंश, चिदंश और आनन्दांश। संक्षेप में सदंश जगत् है, चिदंश जीव है, आनन्दांश ब्रह्म है। ऐसा अंशांशीभाव में सच्चिदंश के साथ अभेद होना स्वाभाविक है। सत्वेन चित्वेन विद्यमान वस्तु का भेदत्वेन व्यवहार भी सिद्ध है। इस बात की पुष्टि श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज ने की है। "एवं च ब्रह्मण: सच्चिदानन्दरूपेण सर्वेषां ब्रह्माभेदः, ब्रह्मणस्तु कार्यलक्षणेन सर्वस्माद्भेदः।[1]"

इस प्रकार भेदाभेद सिद्धान्त को श्रीवल्लभाचार्यजी ने भी स्वीकार किया है। यह दूसरी बात है कि सिद्धान्त का नामकरण भिन्न है। यह तो सम्प्रदाय सिद्धि के लिए है।

भेदवाद का समावेश

द्वैताद्वैतवाद में भेदवाद का प्रवेश होना भी स्वाभाविक है। किन्तु यह भेदवाद वैदिक सिद्धान्त के अनुरूप प्रतीत नहीं होता। अत्यन्त भेद मानने पर एकविज्ञान से सर्वविज्ञान की प्रतिज्ञा भी उच्छिन्न हो जाती है। तथापि ब्रह्म की सर्वस्वता इसमें स्वीकृत है। माध्वाचार्य दर्शन में लिखा है—

श्रीमन्मध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत्तत्त्वतो
भेदो जीवगणा हरेरनुचराः नीचोच्चभावं गताः।

जीवात्म भगवत् अधीन है,अनुचर है, जगत् भी तदधीन है। ऐसी स्थिति में कण्ठरव से भेदाभेद को घोषित न करने पर भी आत्मा से उसको मानना उचित ही है।

इस प्रकार सभी वादों का समन्वय द्वैताद्वैतवाद में हो जाता है। द्वैताद्वैतवाद विशुद्ध वैदिक है। द्वैताद्वैतवाद तो जो वेद की वस्तुस्थिति है,जो वेद का स्वरस है वह ही है। अतएव भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य ने कहा है—

सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकं,
श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतं,
त्रिरूपतापि श्रुतिसूत्रसाधिता।।[2]

8. निम्बार्कीय उपासना-पद्धति की वैज्ञानिक दृष्टि

विज्ञान के प्रभाव में आज का समष्टि-मानस अपना प्रेरक और परिचालक बुद्धि को मानता जा रहा है। 'बुद्धि' को अपनी निरपेक्षता में महत्त्व देने वाला समष्टि-मानस विभेदगामी होगा—यह उसकी अनिवार्य परिणति है। बुद्धि की प्रकृति ही है—विभेद की सृष्टि, बुद्धि का कार्य ही है—व्यवर्तन। वर्तमान संसार ऊपर से देश-काल के

---

1. 'प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात्' सूत्र-भाष्य।
2. श्री निम्बार्कचार्यकृत दश श्लोकी से समुद्धत।

व्यवधान को विज्ञान ही दूर करता जा रहा है—मानस का व्यवधान उतना ही बढ़ता जा रहा है—इसीलिए वर्तमान सन्दर्भ में 'आधुनिकता' (Modernisor) को परिभाषित करने वाले समस्तविध, ह्रासोन्मुखी और विघटनकारी वृत्तियों का उसे संधान बनाते हैं। बुद्धिवाद आस्था का घोर-विरोधी है—वह कहीं पर भी टिकना सिखाता ही नहीं—जो है, उसके प्रति सन्देह उत्पन्न करना और स्वयं संदेह में पड़े रहना उसकी प्रकृति में है। स्थायित्व और बुद्धिवाद प्रसूत आधुनिकता-परस्पर विरोधी हैं। आग और पानी की तरह। कहने का अभिप्राय यह कि वर्तमान संसार का सारा क्लेश सारी दुर्दशा विज्ञान की अधकचरी स्थिति को ही अन्तिम स्थिति मानकर बुद्धि को ही अन्तिम प्रमाण मानने वाली 'आधुनिकता' के कारण है। आगे बढ़कर तो मैं यह भी कह सकता हूँ कि ये 'आधुनिकतावादी' बुद्धि को प्रमाण मानने वाली बुद्धि में भी अनास्था रखते हैं, फिर भी बुद्धि के सहारे चलते हैं। इस अस्थिर प्रकृति की साम्प्रतिक बुद्धिवादिता समष्टि-मानस में द्वैत, भेद और अनेकता पैदा कर चुकी है—जिसकी परिणति आज विश्व को भुगतनी पड़ रही है। इसीलिए दूसरी ओर इस दुर्दशा से आक्रान्त समष्टिमानस 'एकता' का नारा अनायास लगा रहा है और कह रहा है कि इसकी स्थिति 'भावनात्मक' (Sensational) ही हो सकती है। अर्थात् क्लेशमात्र की निवृत्ति के लिए अपेक्षित 'एकता' को अन्ततः भावनात्मक ही होना पड़ता है। बुद्धिवादी युग में भी भावना को ही महत्ता देनी पड़ती है। भावना या भाव ही बुद्धिवाद से ग्रस्त संसार का उद्धारक हो सकता है—यही सोचकर भारतीय नारायणीय धर्म के अनुयायी साधकों और चिन्तकों ने 'भाव' को दमन नहीं, शोधन की राह दिखाई और उसके बल पर ऐहिक-पारलौकिक-उभंयत्र सुख और शान्ति की स्थापना की।

निम्बार्क मत भी राग-शोधन में आस्था रखने वाला मत है। वह मानता है कि एक ही राग यदि पार्थिव धरातल की ओर मोड़कर अपार्थिव की ओर कर दिया जाये तो वह आत्यन्तिक सुख और शान्ति का अजस्र स्रोत होगा। दार्शनिक दृष्टि से विचार करते हुए तो अन्ततः यह भी माना गया है कि रागतत्त्व मूलतः उसी परम प्रेममय परतत्त्व अथवा ह्लादिनी का पार्थिव जगत् में आ पड़ा कण है और यह प्रति व्यक्ति में उसका निजस्वरूप या निजी वैशिष्ट्य के रूप में निहित है। साधनावश 'नित्यविहार' के साक्षात्कार से वह 'रागकण' आस्वाद्य होने लगता है—स्वस्वरूप में साधक प्रतिष्ठित हो जाता है जिस प्रकार प्रेक्षक मन्त्रस्थ शृंगार को देखता हुआ आत्मनिष्ठ उद्बुद्ध वासना का आस्वाद लेता हुआ शृंगार मग्न हो जाता है—रस मग्न हो जाता है—कि वही स्थिति सखीभाव से सम्पन्न साधक की भी है।

यही सखीभाव और तद्नुरूप भावमय देह गुरुनिर्दिष्ट साधना प्रणाली से उपलब्ध हो सकती है।



द्वितीय-अध्याय

निम्बार्क-सम्प्रदाय : पीठाचार्य-पराम्परा एवं उसका साहित्यिक-अवदान

निम्बार्क-सम्प्रदाय : पीठाचार्य-परम्परा

वैष्णव चतु:सम्प्रदायों में श्रीनिम्बार्क–सम्प्रदाय अति प्राचीन सम्प्रदाय है। इसका प्रादुर्भाव श्रीब्रह्माजी के मानस पुत्र श्रीसनकादि–महर्षियों से होता है। जैसाकि दृष्टव्य है—

सनक: श्रीब्रह्म रुद्र सम्प्रदायचतुष्टयम्।

सनकादि मुनिजन, श्री (लक्ष्मी), ब्रह्माजी और भगवान् शंकर ये ही चारों वैष्णव चतु:सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। इस सम्प्रदाय की आचार्य परम्परा श्रीहंस भगवान् से प्रारम्भ होती है। श्रीहंस भगवान् ने सनकादिकों के प्रश्न का समाधान कर उन्हें वैष्णवी दीक्षा प्रदान की थी। उपासना में श्रीसर्वेश्वर शालग्राम भगवान् की सेवा–पूजा करने की आज्ञा प्रदान की थी। वह शुभ दिन था युगादि तिथि कार्तिक शुक्ला नवमी (अक्षय नवमी)। हंस भगवान् के अवतार का मुख्य उद्देश्य था, श्रीसनकादिकों के प्रण का समाधान कर उन्हें वैष्णवी दीक्षा प्रदान करना। अत: कार्तिक शुक्ला नवमी (अक्षय नवमी) श्रीहंस–सनकादि जयन्ती तथा श्रीसर्वेश्वर भगवान् का प्राकट्य दिवस भी उसी दिन मनाया जाता है।

श्रीहंस–सनकादिकों का यह प्रसङ्ग श्रीमद्भागवत में वर्णित है।[1]

श्रीहंस भगवान् के शिष्य सनकादि मुनिजन हैं और श्रीसनकादिकों के शिष्य देवर्षि नारद तथा श्रीनारद मुनि के शिष्य हैं। श्रीचक्रसुदर्शनावतार आद्याचार्य जगद्गुरु भगवान् श्रीनिम्बार्कमहामुनीन्द्र।

श्रीहंस भगवान्, श्रीसनकादि मुनिजन तथा देवर्षि श्रीनारद ये तीनों तो देवस्वरूप में हैं। अत: प्राय: करके कई सम्प्रदायों की परम्परा में इनका नाम आ जाता है, किन्तु

1. श्रीमद्भागवत, एकादश स्कन्ध, अध्याय-13, श्लोक सं. 16 से 42 तक में वर्णित।

इनके पश्चात् श्रीनिम्बार्क भगवान् आचार्य रूप में इस भूतल पर प्रकट हुए थे, अतः यह सम्प्रदाय '**श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय**' के नाम से लोक में प्रसिद्ध हुआ।

भगवान् श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र प्राकट्य युधिष्ठिर शके 3 में दक्षिण भारत तैलङ्ग (आन्ध्र प्रदेश) वैदूर्यपत्तन मूँग पट्टन (वर्तमान पैठण) गोदावरी तटवर्ती अरूणाश्रम में हुआ था। आपके पिता का नाम श्रीअरुण मुनि और माताश्री का नाम श्रीजयन्त देवी था। जन्मकालीन नाम 'श्रीनियमानन्द' था '**नहि वैष्णवता कुत्र सम्प्रदाय-पुरस्सराः**[1]' वचनानुसार द्वापर के अन्त में जब वैष्णव धर्म का ह्रास होने लगा, तब भक्तजनों की करुणा भरी पुकार पर भगवदादेश पाकर श्रीचक्रराज सुदर्शनजी ने ही नियमानन्द के रूपमें अवतार लिया। इनकी समय समीक्षा तथा श्रीनियमानन्द से 'श्रीनिम्बार्क' नाम से व्यवहृत करने का इतिहास उनके चरित्र में यथास्थान परिवर्णित है।

श्रीहंस भगवान् के बाद आचार्य परम्परा में रसिकराजराजेश्वर महावाणकार जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज 34 पीठिका में श्रीनिम्बार्काचार्य-पीठासीन हुए। आचार्यवर्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज के द्वादश शिष्य थे। सभी की भावनानुसार आचार्यश्री ने अपने द्वादश शिष्यों में श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी को सम्प्रदाय परम्परानुसार श्रीसनकादि संसेवित श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा प्रदान कर उन्हें अपने आचार्यपीठ के उत्तराधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित किया।

श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी हाराज के उनद्वादश शिष्यों के नाम तथा देवी की दीक्षा प्रदान करना आदि वर्णन आगे श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज के प्रसंग में यथास्थान वर्णित है। अब यहाँ श्रीहंस भगवान् से लेकर अद्यावधि वर्तमान आचार्यचरण तक आचार्यपीठ परम्परा का संक्षिप्त इतिवृत्त प्रस्तुत है।

1. श्री आचार्य पंचायतनस्थ सुदर्शनचक्रावतार आद्य निम्बार्काचार्य

श्रीहंस भगवान्

हंसस्वरूपं रुचिरं विधाय, यः सम्प्रदायस्य प्रवर्तनार्थ।
स्वतत्त्वमाख्यत्सनकादिकेभ्यो, नारायणं तं शरणं प्रपद्ये।।

अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक, करुण-वरुणालय, सर्वान्तिर्यामी, सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार श्रीहरि के मुख्य 24 अवतारों में श्रीहंस भगवान् भी एक अवतार हैं। आपका प्राकट्य सत्युग के प्रारम्भ काल में युगादि तिथि कार्तिक शुक्ला नवमी (अक्षय

---

1. श्रीमद्भगवत, महात्म्य में श्री नारदोक्तवचन।

नवमी) को माना जाता है। आपके अवतार का मुख्य प्रयोजन यही मान्य है कि एक बार श्रीसनकादि महर्षियों ने पितामह श्रीब्रह्माजी महाराज से प्रश्न किया कि—

गुणेष्वाविशते चेतो गुणांश्चेतसि च प्रभो।
कथमन्योन्संत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षो:।।

पितामह! जबकि चित्त विषयों की ओर स्वभावत: जाता है और चित्त के भीतर ही वासना रूप से विषय उत्पन्न होते हैं, तब मुमुक्षुजन उस चित्त और विषयों का परित्याग कैसे करें?

यह चित्तवृत्ति-निरोधात्मक गम्भीर प्रश्न जब ब्रह्माजी के समझ में नहीं आया तब महादेव ब्रह्मा ने भगवान् श्रीहरि का ध्यान किया। इस प्रकार ब्रह्माजी की विनीत प्रार्थना पर **''ऊर्जे सिते नवम्यां वै हंसो जात: स्वयं हरि:''** कार्तिक शुक्ला नवमी को स्वयं भगवान् श्रीहरि ने हंसरूप में अवतार लिया। भगवान् ने हंसरूप इसलिए धारण किया कि जिस प्रकार हंस नीर-क्षीर (जल और दूध) को पृथक् करने में समर्थ है, उसी प्रकार आपने भी नीर-क्षीर विभागवत् चित्त और गुणत्रय का पूर्ण विवेचन कर परमोत्कृष्ट दिव्य तत्त्व के साथ-सा पंचपदी ब्रह्मविद्या श्रीमन्त्रराज का सनकादि महर्षियों को सदुपदेश कर उनके सन्देह की निवृत्ति की। यह प्रसङ्ग श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्णोद्धव संवादरूप में विस्तारपूर्वक वर्णित है।[1]

श्रीसर्वेश्वर और लोकाचार्य
श्रीसनकादि महर्षि

यदीयपादाब्जयुगाश्रयेण, भक्तिर्वरिष्ठात्ववती विशुद्धा।
उदञ्चती श्रीभगवत्यजस्रं, नमाम्यहं श्रीसनकादिकं तम्।।
जय जय सनक-सनन्दन, सनातन-सनत-कुमार।
रूप चतुष्टय पद-कमल, वन्दौ बारम्बार।।

भगवत्परायण, बाल-ब्रह्मचारी, सिद्धजन, तपोमूर्ति ये चारों भ्राता सृष्टिकर्त्ता श्रीब्रह्मदेव के मानस पुत्र हैं। इन चारों के नाम हैं—सनदक, सनन्दन, सनातन और सनत कुमार। इनके उत्पन्न होते ही श्रीब्रह्माजी ने इनको सृष्टि विस्तार की आज्ञा दी, पर इन्होंने प्रवृत्ति मार्ग को बन्धन जानकर परम श्रेष्ठ निवृत्ति मार्ग को ही ग्रहण किया।

इन महर्षियों ने श्रीहंस भगवान् द्वारा कार्तिक शुक्ला नवमी को वैष्णव पंचपदी ब्रह्मविद्या श्रीगोपाल मन्त्रराज की दीक्षा संप्राप्त कर लोक में निवृत्ति धर्म का प्रचार-प्रसार किया। अत: ये **लोकाचार्य** के नाम से प्रसिद्ध हैं। श्रीसनकादि मुनिजन ही निवृत्ति धर्म एवं मोक्ष मार्ग के प्रधान आचार्य हैं। पूर्वजों के पूर्वज होते ये भी ये सदा

---

1. श्रीमद्भागवत, एकादश स्कन्ध, अध्याय-13

ही पाँच वर्ष की अवस्था में रहकर भगवद्भजन में ही संलग्न रहते हैं। श्रीसर्वेश्वर प्रभु इन्हीं के संसेव्य ठाकुर हैं, भगवान् द्वारा सम्प्राप्त श्रीगोपाल मन्त्रराज का सतत अनुष्ठान करना इनका परम लक्ष्य है। जैसे—

नारायणमुखाम्भोजान्मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः।
आविर्भूतः कुमारैस्तु गृहीत्वा नारदाय च।
उपदिष्टः स्वशिष्याय निम्बार्काय च तेन तु।
एवं परम्पराप्राप्तः मन्त्रष्त्वष्टादशाक्षरः।।

यह अष्टादशाक्षर श्रीश्रीगोपाल मन्त्रराज श्रीहंसरूप नारायण द्वारा श्रीसनकादिकों को प्राप्त हुआ। श्रीसनकादिकों से देवर्षि श्रीनारद को मिला और श्रीनारद द्वारा सुदर्शनचक्रावतार भगवान् श्रीनिम्बार्क को संप्राप्त हुआ। इस प्रकार सम्प्रदाय में यह परम्परागत मंत्र है। जो 'गोपालतापिन्युपनिषद्' का वैदिक मन्त्र है। इसका वर्णन विभिन्न पुराणों एवं तन्त्रों में भी भली प्रकार उपलब्ध है। श्रीसनकादिकों द्वारा लिखी हुई 'श्रीसनतकुमार संहिता' प्रसिद्ध है। इनका पाटोत्सव (आविर्भाव-दिवस) कार्तिक शुक्ला नवमी को मनाया जाता है।

सनकादि-संसेव्य-भगवान् - श्रीसर्वेश्वर प्रभु

कारूण्यसिंधुं स्वजनैकबन्धुं, कैशोरवेषं कमनीयकेशम्।
कालिन्दिकूले कृतरासगोष्ठीं, सर्वेश्वरं तं शरण प्रपद्ये।।

श्रीसनकादिक संसेव्य (परमाराध्य) श्रीसर्वेश्वर भगवान गुञ्जापुल सदृश अति सूक्ष्म श्रीशालिग्राम स्वरूप श्री विग्रह हैं। इसके चारों ओर गोलाकार दक्षिणावर्तचक्र और किरणें बड़ी ही तेज पूर्ण एवं मनोहर प्रतीत होती हैं। मध्य भाग में एक बिन्दु है और उस बिन्दु के मध्य भाग में युगल सरकार श्रीराधाकृष्ण के सूक्ष्म दर्शन स्वरूप दो बड़ी रेखायें हैं। जो सूर्य के प्रकाश में भी कभी किसी भाग्यशाली सज्जन को ही दिखाई पड़ती हैं।

यह श्रीसर्वेश्वर भगवान् की प्रतिमा श्रीसनकादिकों ने देवर्षि श्रीनारदजी को प्रदान की थी और श्रीनारदजी ने भगवान् श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र को। इस तरह यह श्रीसर्वेश्वर भगवान् की शालिग्राम प्रतिमा क्रमशः परम्परागत अद्यावधि अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) में विराजमान हैं। विश्व में इतनी प्राचीन एवं सूक्ष्म चमत्कारपूर्ण श्रीशालिग्राम मूर्ति और कहीं पर भी नहीं है। जब श्रीआचार्यचरण धर्म-प्रचारार्थ अथवा किन्हीं भक्तजनों के परमाग्रह पर यत्र-तत्र पधारते हैं, तब, यही श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा साथ रहती है। श्रीसर्वेश्वर भगवान् श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के परमोपास्य इष्टदेव हैं। श्रीनिम्बार्काचार्यों की परम्परागत परमनिधि

श्रीसर्वेश्वर प्रभु हैं। इसी कारण श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के भक्तजनों में परस्पर मिलने-जुलने पर 'जय श्रीसर्वेश्वर' करने की प्रणाली सदा से चली आ रही हैं।

भगवान् श्रीराधामाधव

सर्वेष्टं जयदेव-भक्तकविना नित्यं समाराधितं,
श्रीवृन्दावन-कुञ्ज-केलिरमणं श्रीरंगदेवयर्चितम्।
श्रीनिम्बार्कमुनीन्द्रपीठविलसत्कारूण्यपूरं परं,
राधामाधवपादपद्मयुगलं वन्दे गिरा कर्मणा।।

श्रीराधामाधव प्रभु श्रीनिम्बार्क-वीथि-पथिक रसिक-शिरोमणि श्री जयदेव कवि संसेव्य ठाकुर हैं। वर्तमान श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ में विराजने से पहले बंगाल से आकर ब्रजमण्डल में श्रीराधाकुण्ड (श्रीनिवासाचार्यजी की बैठक) पर विराजते थे। इन्होंने वि.सं. 1823 में जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजी महाराज को स्वप्न में आदेश दिया था कि हमें पुष्कर क्षेत्रस्थ श्रीआचार्यपीठ, सलेमाबाद ले चलो। प्रभु की आज्ञा के अनुसार रथ में विराजमान करके प्रस्थान किया। पीछे से श्रीराधा कुण्ड के ब्रजवासी और बंगाली भक्तों ने विचार किया कि भगवान् को ब्रज से बाहर नहीं ले जाने देना चाहियें। वे सबके सब संगठित होकर चलें। रथ भरतपुर पहुँचा, वहाँ सेवा हो रही थी, पीछे से आये हुए नर-नारियों ने आचार्यश्री से प्रार्थना की—"श्रीमाधव भगवान् ब्रज में ही विराजें, बाहर न पधोरं।" भरतपुर नरेश से भी अनुरोध किया गया। नरेश को विश्वास था कि—आचार्यश्री को प्रभु का आदेश हुआ है स्वयं वे अपनी इच्छा से पधार रहे हैं। उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी नहीं हो सकता। वि.सं. 1823 ज्येष्ठ शुक्ला 4 का वह दिन भरतपुर और ब्रजमण्डल के उपस्थित सभी नर-नारियों के हृदय-पटलों पर बहुत दिनों क अङ्कित रहा। इस घटना का उल्लेख कृष्णगढ़ राज्य के इतिहास रजिस्टरों में जयलाल कवि ने भी किया है। आचार्यपीठ (सलेमाबाद) के मार्ग में जितने नगर आये, उनके नागरिकों ने श्रीमाधव प्रभु और आचार्य चरणों का हार्दिक स्वागत किया। कृष्णगढ़ के नरेन्द्र और प्रजावर्ग को महान् हर्ष हुआ। आचार्यपीठ (सलेमाबाद) और यहाँ के निकटवर्ती ग्रामों की जनता के हर्ष का तो पारावार ही नहीं रहा। पुनीत दिवस ज्येष्ठ शु. 10 (गगांदशहरा) को बड़े समारोहपूर्वक श्रीसर्वेश्वर प्रभु के सन्निकट श्रीमाधवजी विराजमान हुये।

वि.सं. 1860 के लगभग देश में अराजकता छाई हुई थी। मुस्लिम शासन कमजोर हो चुका था। अंग्रेज शनैःशनैः देश को हथिया रहे थे। कई शक्तिशालली फौजी लूट-मार कर रहे थे। ऐसी स्थिति में वि.सं. 1868 में श्रीमाधवजी रूपनगर के किले में पधराये गये। आचार्यपीठ के विशाल मन्दिर को यवन लुटेरों ने ध्वंस कर डाला, तब कुछ दिनों बाद संगमरमर का नया मन्दिर बना। जोधपुर नरेश की ओर से मकराना से संगमरमर पत्थर भेंट रूप में अर्पित हुआ। वि.सं. 1872 में श्रीमाधवजी

रूपनगर से आचार्यपीठ (सलेमाबाद) में विराजमान हैं। प्रेमीजन श्रीराधामाधवजी के दर्शन कर तृप्त हो जाते हैं। गद्-गद् हृदय से वे कह उठते हैं कि—

''सुन्दरता निरखत फिर्यो, दैव योग ते आय।
राधामाधव देख छवि, अब न अन्त चित जाय।।"

भक्त कवि सूरदासजी के शब्दों में—

''जिन आँखिन सों यह रूप लख्यो उन आँखिन सो अब देखिये का।"

देवर्षिवर्य श्रीनारदजी

सुधाकरे स्वेच्छतनुत्वभाजं, स्वर्णापिवीतित्वमुपैति वासम्।
प्रवर्तयन्तं हरिभक्ति-योगं, श्रीनारदं तं शरणं ब्रजामि।।

भक्ति-ज्ञान-वैराग्य प्रभृति समस्त साधनों का समस्त लोक-लोकान्तरों में सर्वत्र विचरण कर प्रचुर प्रचार-प्रसार करने वाले, कीर्तन कला-विशेषज्ञ, वीणाधर देवर्षिवर्य श्रीनारदजी महाराज के नाम को कौन नहीं जानता। आपका परदु:ख-दु:खित्व भाव बहुत प्रसिद्ध है। भगवत्कृपा से आपकी सर्वत्र अबाध गति थी। आप सभी जीवों पर समान भाव रखते हुए सबका हितचिन्तन किया करते थे। आपने श्रीहंस वंशावतंस ब्रह्मपुत्र श्रीसनत्कुमारजी से पञ्चपदी ब्रह्मविद्या अष्टादशाक्षरी श्रीगोपला मन्त्रराज की दीक्षा ग्रहण कर लोक में सर्वत्र वैष्णव धर्म की विजय-पताका पुहराई। ध्रुव-प्रह्लाद आप ही के कृपापात्र थे। दक्ष प्रजापति के हर्यश्व एवं सबलाश्व नामक सहस्राधिक पुत्रों को आपने दिव्योपदेश प्रदान कर सृष्टि-रचना विषयक कर्म-बन्धन से छुड़ाकर निवृत्ति-पथ-परायण बनाया। इसी प्रकार प्राचीन राजा बर्हि को भी हिंसात्मक कर्मों की ओर से हटाकर भगवद्भक्ति की ओर प्रवृत्त किया। तात्पर्य यह है कि अहर्निश आपका भगवद्गुणगान तथा परोपकार में ही समय व्यतीत होता था। महर्षि वाल्मीकि तथा श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास को संक्षिप्त रामचरित एवं चतु:श्लोकी भागवत का ज्ञान कराकर वाल्मीकि रामायण ओर श्रीमद्भागवत जैसे अनुपम ग्रन्थों का निर्माण करवाना आप ही का आयोजन था। ब्रजमण्डल में आकर श्रीगोवर्धन के समीप श्रीअरुणाश्रम में श्रीचक्र सुदर्शनावतार श्रीनियमानन्द (श्रीनिम्बार्क) को आपने ही श्रीसनकादि मुनिजनों द्वारा संप्राप्त पंचपदी ब्रह्मविद्या श्रीगोपाल मन्त्रराज की दीखा प्रदान कर सनकादि संसेवय भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा समर्पण की थी। आप सभी शास्त्रों के पूर्ण ज्ञाता थे। श्रीसनकादिकों के पूछने पर आपने बताया था कि—मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, वेदविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, सर्पविद्या और देवयजन विद्या आदि सभी विद्यायें पढ़ी हैं, फिर भी हे महर्षे! न जाने क्यों चिन्ताग्रस्त हूँ। अत: आत्मशान्त्यर्थ आपकी शरण में आया हूँ।

देवर्षि श्रीनारदजी के इस कथन से हमको यह भी शिक्षा मिलती है कि—श्रीहरिगुरु परायण (शरणागत) हुये बिना अर्थात् भगवद्भक्ति बिना चाहे जितनी विद्यायें पढ़कर ज्ञानी बन जाएं, पर वास्तविक शान्ति प्राप्त नहीं होती।

आपके द्वारा निर्मित अनेक शास्त्रों में 'श्रीनारद पञ्चरात्र' व 'श्रीनारद-भक्ति-सूत्र' प्रधान हैं। आपका जयन्ती दिवस (पाटोत्सव) मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशी तिथि माना जाता है।

भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य

यत्सम्प्रदायाश्रयणान्नराणां श्रीराधिकाकृष्णपदारविन्दे।
प्रेमागरीयान्सहसाभ्युदैति निम्बार्कमेतं शरणं प्रपद्ये।।

आपका आविर्भाव युधिष्ठर शके 6 में कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को सायंकाल मेष लग्न में हुआ था। जन्म समय चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु ओर शनि ये पाँच ग्रह उच्च स्थान में थे। माता का नाम श्रीजयन्ती देवी तथा पिता का नाम श्रीअरूण मुनि था। जन्म-स्थान दक्षिण प्रान्त गोदावरी तटवर्ती श्रीअरुणाश्रम माना जाता है। यह स्थान वैदूर्यपत्तन (मँगी पट्टन) जो कि आन्ध्रप्रदेश दक्षिण हैदराबाद राज्य में आजकल 'पैठण' के नाम से प्रसिद्ध है। आपका जन्मकालीन नाम **'श्रीनियमानन्द'** था। भक्तजनों की करुणा भरी पुकार पर गोलोकबिहारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने परम प्रिय आयुध श्रीचक्रसुदर्शनजी को आदेश देते हुए कहा था कि—

सुदर्शन-महाबलो! कोटिसूर्यसमप्रभ!
अज्ञानतिमिरान्धानां विष्णोमार्गं प्रदर्शय।।

हे कोटि सूर्य सदृश दिव्य तेजधारी महाबाहो चक्रराज! आप शीघ्र ही भूतल पर अवतरित होकर अज्ञान रूप घोर अन्धकार में डूबे हुए जीवों का वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार द्वारा भक्ति का पथ-प्रदर्शन कीजिये।

इस भगवतदादेशानुसार श्रीचक्रराज सुदर्शन ने उपर्युक्त द्रविड़ देश में बालक नियमानन्द के रूप में अवतार लिया था।

निम्बार्क सम्प्रदाय अति प्राचीन है। युधिष्ठिर शके 6 को आज पाँच हजार वर्षों से अधिक चल रहा है। जैसे—धर्मराज युधिष्ठिर के प्रमाण 3044 वर्ष तत्पश्चात् विक्रम सम्वत् के इस समय 2060 वर्ष इन दोनों का योग मिलाकर 5104 वर्ष हुए, जिसमें युधिष्ठिर शके 6 में आपका जन्म होने के कारण 6 वर्ष कम करने से 5098 वर्ष होते हैं। अर्थात् विक्रम सं. 2060 में आपके प्राकट्य समय को 5098 वर्ष हुऐ थे जो कि कई स्थानों (ग्रन्थ या व्रतोत्सव पत्रों) पर श्रीनिम्बार्काब्द के आगे अंकित रहता है।

एक बार आपने अपन आश्रम में दिवाभोजी दण्डी महात्मा के रूप में आये हुये श्रीब्रह्माजी को रात्रि हो जाने पर भोजन करने से निषेध करते देखकर निम्ब वृक्ष पर

अपने तेज-तत्त्व श्रीसुदर्शनचक्र को आवाहन कर सूर्य रूप में दर्शन कराकर उन्हें भोजन कराया। निम्ब (नीम) के वृक्ष पर अर्क (सूर्य) के दर्शन कराने पर ब्रह्माजी द्वारा आपका श्रीनियमानन्द से **'निम्बार्क'** नाम रखा गया और आपके द्वारा प्रसारित सम्प्रदाय को **श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय** के नाम से प्रसिद्ध किया। आपने देवर्षि श्रीनारदजी द्वारा इसी स्थान (श्रीगोवर्धन) की उपत्यका अरुणाश्रम-वर्तमान श्रीनिम्बग्राम (नीमगाँव) में पञ्चपदी ब्रह्मविद्या गोपाल मन्त्रराज की दीक्षा ग्रहण कर श्रीहंस-सनकादि द्वारा परम्परागत स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त और युगलकिशोर श्रीराधाकृष्ण की युगल उपासना का लोक में प्रचार-प्रसार किया। आपका सिद्धान्त और उपासना संक्षेप में इस प्रकार है—

श्रीनिम्बार्क सिद्धान्त में तत्त्वत्रय (ब्रह्म, जीव और प्रकृति) अनन्त और अनादि हैं। ब्रह्म स्वतन्त्र है। जीव और प्रकृति परतन्त्र (ब्रह्म के अधीन) हैं। बद्ध, बद्धमुक्त और मुक्त सामान्यत: जीवों के ये तीन प्रभेद हैं, जो प्रकारान्तर से अनेक हो जाते हैं, जो सिद्धान्तशास्त्रों द्वारा ज़ाने जा सकते हैं। समस्त चराचर जगत् ब्रह्म का अंश एवं परा-परात्मिका प्रकृति शक्त् होने के कारण सत्य है। जीव और प्रकृति रूप से चराचरात्मक सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्म से भिन्न है, किन्तु उसका अंश एवं शक्ति होने के कारण स्वभावत: अपृथक् सिद्ध अभिन्न भी है। यही स्वाभाविक द्वैताद्वैत (भेदाभेद तथा भिन्नाभिन्न नामक) सिद्धान्त है। इस सम्प्रदाय में जीव को सखी भाव द्वारा नित्य किशोर निकुञ्जबिहारी प्रिया-प्रियतम-लाल श्रीराधाकृष्ण की पंचकालानुष्ठान विधि से उपासना करने का विधान है। श्रीनित्यनिकुञ्ज में आप रंगदेवी जू के नाम से सेवा में रहते हैं।

आपके द्वारा रचित अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध ग्रन्थ इस प्रकार हैं—बादरायण कृत ब्रह्मसूत्रों पर **'वेदान्त पारिजात सौरभ'** नामक भाष्य, **वेदान्त दशश्लोकी, मन्त्र रहस्य षोडशी, प्रपन्नकल्पवल्ली, राधाष्टक** और **प्रात: स्मरणादि स्तोत्र।**

आचार्यवर्य श्रीनिवासाचार्य

शंखावतार: पुरुषोत्तमस्य, यस्य ध्वनि: शास्त्रमचिन्त्यशक्ति:।
यत्स्पर्शमात्राद् ध्रुवमाप्तकामस्तं श्रीनिवासं शरणं प्रपद्ये।।

ये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कर-कमलांकित श्रीपाञ्चजन्य शंख के अवतार हैं तथा श्रीनिम्बार्क भगवान् के प्रमुख शिष्य हैं। इनका निवास-स्थान ब्रजमण्डल में श्रीगोवर्द्धन के समीप श्रीराधाकुण्ड ललिता संगम पर है। यह स्थान श्रीनिवासाचार्यजी की बैठक के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्थान पर आपके चरण-चिह्न हैं, जिनकी नियमित रूप से सेवा-पूजा होती है। आपके शंखावतार होने का प्रमाण आप ही के पट्टशिष्य श्रीविश्वाचार्यजी महाराज द्वारा निर्मित उपर्युक्त श्लोक में निर्दिष्ट हैं। आपके द्वारा

निर्मित ब्रह्मसूत्रों पर बृहद्भाष्य **'वेदान्त कौस्तुभ'** के नाम से सुप्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें केवल **'लघुस्तवराज'** मिलता है, अन्य-ख्याति निर्णय, पारिजात सौरभ भाष्य, रहस्य प्रबन्ध, कठोपनिषद् भाष्य आदि अनुपलब्ध हैं।

आचार्यरूप में आप श्रीपाञ्चजन्य शंखावतार हैं और निकुञ्ज उपासना में श्रीनव्यवासा (प्रियाप्रियतम श्रीयुगलकिशोर की नित्य सहचरी) के अवतार माने जाते हैं। आपका पाटोत्सव दिवस माघ शुक्ला पंचमी (बसन्ती पंचमी) को मनाया जाता है।

श्रीआचार्य-पञ्चायतन

श्रीमद्धंसं कुमारांश्च नारदं मुनिपुङ्गवम्।
निम्बार्क श्रीनिवासञ्च वन्दे आचार्य-पंचकम्।।

श्रीहंस भगवान् से लेकर श्रीनवासाचार्य पर्यन्त इन पाँचों आचार्यों को **आचार्य-पञ्चायतन** के नाम से कहा गया है। श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ सलेमाबाद एवं श्रीवृन्दावन धाम आदि कई एक संस्थानों में इन पाँचों की कहीं चित्रपट रूप में तथा कहीं शैली प्रतिमाओं के रूप में स्थापना कराई हुई है। नित्यप्रति सेवा-पूजन का क्रम भी भगवदचर्या के समान ही चलता है।

2. द्वादश आचार्य एवं अष्टादश भट्टाचार्यस्थ आदिवाणीकार : श्री भट्ट देव

श्रीनिवासाचार्य से लेकर श्रीदेवाचार्य पर्यन्त इन निम्नांकित आचार्यों की **'द्वादशाचार्य'** संज्ञा है तथा श्रीसुन्दरभट्टाचार्य से लेकर श्रीभट्टाचार्य पर्यन्त अट्ठारह भट्टों की **'अष्टदश भट्ट'** संज्ञा है। उनके नाम, ग्रन्थ एवं पाटोत्सव आदि का परिचय इस प्रकार है—

(2) श्रीविश्वाचार्य

इनके द्वारा रचित कई एक ग्रन्थ हैं, उन ग्रन्थों में **'श्रीकृष्णस्तवराज'** इन्हीं की रचना मानी जाती है तथा अन्य ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। पाटोत्सव फाल्गुन शुक्ला 4 (चतुर्थी) का मान्य है।

(3) विवरणकार श्रीपुरुषोत्तमाचार्य

इनके भी निर्मित ग्रन्थ अनेक मिलते हैं। उनमें **'वेदान्त-कामधेनु दशश्लोकी'** पर विस्तृत भाष्य **'वेदान्तरत्नमञ्जूषा'** इनका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। 'वेदान्तरत्नमञ्जूषा' की भूमिका में इनका विस्तृत चरित्र उल्लिखित है। पाटोत्सव चैत्र शुक्ला 6 (षष्ठी) का होता है।

(4) श्रीविलासाचार्य - पाटोत्सव - वैशाख शुक्ला 8 (अष्टमी)।

(5) श्रीस्वरूपाचार्य - पाटोत्सव - ज्येष्ठ शुक्ला 7 (सप्तमी)।

(6) श्रीमाधवाचार्य – पाटोत्सव – आषाढ़ शुक्ला 10 (दशमी)।

(7) श्रीबलभद्राचार्य – पाटोत्सव – श्रावण शुक्ला 3 (तृतीया)।

(8) श्रीपद्माचार्य – पाटोत्सव – भाद्रपद शुक्ला 12 (द्वादशी)।

(9) श्रीश्यामाचार्य – पाटोत्सव – आश्विन शुक्ला 13 (त्रयोदशी)।

(10) श्रीगोपालाचार्य – पाटोत्सव – भाद्रपद शुक्ला 11 (एकादशी)।

(11) श्रीकृपाचार्य – पाटोत्सव – मार्गशीर्ष शुक्ला 15 (पूर्णिमा)।

(12) जाह्नवी (ब्रह्मसूत्र भाष्य) कार श्रीदेवाचार्य।

इनके अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। जिसमें कुछ मुद्रित भी हैं। इनका विशेष परिचय मुद्रित 'जाह्नवी' की प्रथम तरङ्ग कीभूमिका में द्रष्टव्य है। आपने 'ब्रह्मसूत्र' पर जाह्नवी नामक बड़े ही सुन्दर सरस अनुपम भाष्य की रचना की है। श्रीनिम्बार्क भगवान् कृत "ब्रह्मसूत्र भाष्य' 'वेदान्त पारिजात सौरभ' की भाँति यह भाष्य परम मननीय है। **पाटोन्सव माघ शुक्ला 5 बसन्त-पञ्चमी है।**

अष्टादश भट्टाचार्य

(1) सेतुका (जाह्नवी व्याख्याकार) श्रीसुन्दरभट्टाचार्य

इनके भी रचित ग्रन्थ विपुल मत्रा में मिलते हैं। बहुत से मुद्रित भी हैं। आपने **ब्रह्मसूत्रों** पर श्रीदेवाचार्य जी महाराज द्वारा निर्मित जाह्नवी टीका पर 'सेतु' नामक **विस्तृत व्याख्यान** लिखा है। नाम के अन्त में भट्ट पदवी इन्हीं आचार्य चरण से प्रारम्भ **होती है। पाटोत्सवमार्गशीर्ष शुक्ला 2 (द्वितीया)** है।

(2) रीपद्मनाभ भट्टाचार्य – पाटोत्सव – वैशाख कृष्ण 3 (तृतीया)।

(3) श्रीउपेन्द्र भट्टाचार्य – पाटोत्सव – चैत्र कृष्णा 4 (चतुर्थी)।

(4) श्रीरामचन्द्र भट्टाचार्य – पाटोत्सव – वैशाख कृष्णा 5 (पंञ्चमी)।

(5) श्रीवामन भट्टाचार्य – पाटोत्सव – ज्येष्ठ कृष्णा 6 (षष्ठी)।

(6) श्रीकृष्ण भट्टाचार्य – पाटोत्सव – टाषाढ़ कृष्णा 9 (नवमी)।

(7) श्रीपद्माकर भट्टाचार्य पाटोत्सव – आषाढ़ कृष्णा 8 (अष्टमी)।

(8) श्रीश्रवण भट्टाचार्य पाटोत्सव पाटोत्सव कार्तिक कृष्णा 9 (नवमी)।

(9) श्रीभूरि भट्टाचार्य – पाटोत्सव – आश्विन कृष्णा 10 (दशमी)।

(10) श्रीमाधव भट्टाचार्य – पाटोत्सव – कार्तिक कृष्णा 11 (एकादशी)।

(11) श्रीश्याम भट्टाचार्य – पाटोत्वसव – चैत्र कृष्णा 12 (द्वादशी)।

(12) श्रीगोपाल भट्टाचार्य – पाटोत्सव – पौष कृष्णा 11 (एकादशमी)।

(13) श्रीबलभद्र भट्टाचार्य – पाटोत्सव – मघ कृष्णा 14 (चतुर्दशी)।

(14) श्रीश्रीगोपीनाथ भट्टाचार्य – पाटोत्सव – राव्ण शुक्ला 7 (सप्तमी)।

(15) श्रीकेशव भट्टाचार्य – पाटोत्सव – चैत्र शुक्ला 1 (प्रतिपदा)।

(16) श्रीगाङ्गल भट्टाचार्य – पाटोत्सव – चैत्र कृष्णा 2 (द्वितीया)।

अनन्तश्रीविभूषित श्रीचक्रसुदर्शनावतार आद्याचार्य जगद्गुरु भगवान् श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र से लेकर जगाद्विजयी प्रस्थानत्रयी भाष्यकार **श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्यजी** पर्यन्त सभी आचार्य चरण पञ्चद्राविड़ (दाक्षिणातयब्राह्मण कुलोत्पन्न) ब्राह्मण थे। तदनन्तर श्री भट्टदेवाचार्यजी से लेकर वर्तमान आचार्य चरण (श्री 'श्रीजी' महाराज) पर्यन्त सभी आचार्य चरण पञ्च गौड़ (गौड़ ब्राह्मण कुलोत्पन्न) ब्राह्मण भी पीठासीन होते आ रहे हैं।

श्रीसनकादि संसेव्य भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु जगद्गुरु आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यजी को दवर्षि श्रीनारदजी से संप्राप्त हुये थे, जो कि श्रीनिम्बार्काचार्यजी से लेकर वर्तमान आचार्यचरण श्री 'श्रीजी' महाराज पर्यन्त उपर्युक्त इन सभी आचार्य चरणों (पूर्वाचार्यों) द्वारा संसेवित होते आ रहे हैं। अत: यह श्रीविग्रह अति प्राचीन और चमत्कारपूर्ण हैं।

वही सनकादि संसेव्य, सभी पूर्वाचार्यों द्वारा संपूजित, अति प्राचीन, सूक्ष्म शालिग्राम श्रीविग्रह, भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु, अद्यावधि अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, सलेमाबाद, अजमेर (राजस्थान) में विद्यमान हैं जो कि श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के परमाराध्य एवं कुलदेव हैं। यही कारण है कि इन्हीं श्रीसर्वेश्वर प्रभु की श्रीनिम्बार्काचार्य से लेकर वर्तमान आचार्य पर्यन्त परम्परागत सेवा चली आने के कारण श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय में एकमात्र जगद्गुरु (आचार्यगादी) अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, सलेमाबाद ही है एवं सम्बन्धित शाखा स्थान भारत में यत्र-तत्र सहस्रों की संख्या में विद्यमान है।

(33) आचार्यवर्य श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य

काश्मीरि की छाप पाप तापनि जगमंडन।
दृढ़ हरिभक्ति कुठारआन धर्म विटप विहंगम।।
मथुरा मध्य म्लेच्छ वाद करि बरबट जीते।
काजी अजित अनेक देखि परचै भय भीते।।
विदित बात संसार सब सन्त साखि नाहिन दुरी।
'श्रीकेसौभट' नर मुकुटमनि जिनकी प्रभुता विस्तरी।।[1]

---

1. श्रीनाथास्वामी कृत भक्त माल से समुद्धत।

अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य, दिग्विजयी, प्रस्थानत्रयी-भाष्यकार श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य इस आचार्य परम्परा में श्रीहंस भगवान् से 33वीं संख्या में श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ पर विराजमान थे। आपका आविर्भाव तैलङ्ग देशस्थ वैदूर्यपत्तन (मुँगीपट्टन) श्रीनिम्बार्काचार्यजी की वंश परम्परा में ही हुआ था। आपका स्थितिकाल 13वीं शताब्दी माना जाता है। आपने भारत-भ्रमण कर कई बार दिग्विजय किया था। काश्मीर में अधिक निवास करने के कारण आपके नाम के साथ 'काश्मीरि' विशोषण प्रसिद्ध हो गया था। काश्मीर में ही आपने वेदान्त सूत्रों पर **'कौस्तुभ प्रभा'** नामक विशद् भाष्य लिखा और उज्जैन में कुछ दिनों स्थाई निवास कर श्रीमद्भागवत पर 'तत्त्व-प्रकाशिका' नामक टीका लिखी, किन्तु उसमें 'वेदस्तुति' वाला सन्दर्भ ही उपलब्ध है। इसी प्रकार आपका एक **'क्रमदीपिका'** नामक ग्रन्थ भी है, जिसमें मन्त्रानुष्ठान का विधिपूर्वक वर्णन है। श्रीमद्भागवद्गीता एवं उपनिषदों पर भी आपकी विस्तृत संस्कृत टीका है। आपका **पाटोत्सव ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्थी** को मनाया जाता है।

(34) आदिवाणीकार आचार्यवर्य श्री भट्टदेवाचार्य

मधुर भाव संमिलित, ललित लीला सुवलित छवि।
निरखत हरषत हृदै, प्रेम बरषत सुकलित कवि।
भव निस्तारन हेतु, देत दृढ़ भक्ति सबनि नित।
जासु सुजस ससि उदै, हरत अतितम भ्रम श्रम चित।।
आनन्दकंद श्रीनन्दसुत, श्रीवृषभानुसुता भजन।
श्रीभट्ट सुभट्ट प्रगट्यो अघट, रस रसिकन मन मोद घन।।[1]

आपका आविर्भाव गौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ था। आपके पूज्य माता-पिता मथुरापुरी ध्रुव टीला पर निवास करते थे। आचार्य-परम्परा में श्रीहंस भगवान् से आप श्री 34वीं संख्या में विद्यमान थे। प्रस्थानत्रयी भाष्यकार जगद्विजयी श्रीकेशवकाश्मीरि जैसे श्रीगुरुदेव तथा महावाणीकार रसिकराजराजेश्वर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज जैसे शिष्य आपकी दिव्य गरिमा के द्योतक हैं। इससे आपके प्रखर वैदुष्य तथा दिव्य तप का सहज ही पता लग जाता है। संस्कृत एवं हिन्दी दोनों ही भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार था। आपके द्वारा निर्मित अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें भाषा ग्रन्थ **'श्रीयुगलशतक'** का रसिक समाज तथा भक्त समाज में विशेष प्रचार है। यह ग्रन्थ ब्रज-भाषा की 'आदिवाणी' नाम से कहा जाता है। ब्रज-भाषा में सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ का निर्माण हुआ था। इस ग्रन्थ में श्रीप्रिया-प्रियतम की नित्य निकुञ्ज लीलाविहार की सुललित रसमयी लीलाओं से सुसम्पन्न सो पद हैं। अष्टायाम सेवा और वर्षभर के सभी

---

1. भक्तमाल से समुद्धत।

उत्सवादिकों का अत्यन्त मनोहर रसमयपूर्ण हृदयग्राही वर्णन है। एक समय श्रीभट्टदेवाचार्य जी ने 'भीजत कब देखो इन नैना" इत्यादि पद से युगल सरकार का ध्यान किया। ध्यान करते ही तत्काल श्रीप्रभु न अभिलाषानुसार दर्शन दिये। भगवान् श्रीराधा–कृष्ण इनकी गोद में विराजमान रहा करते थे तथा विविध प्रकार की इनके साथ क्रीड़ा किया करते थे। श्रीधामवृन्दावन में आपकी अगाध निष्ठा थी। वे अपने आपको तथा आराध्य देव भगवान् श्रीराधाकृष्ण को श्रीवृन्दावन से बाहर देखने की बात नहीं करते थे। उन्होंने एक पद में यही बताया है कि—

रे मन! वृन्दाविपिन निहार।
यद्यपि मिले कोटि चिन्तामनि तदपि न हाथ पसार।।
विपिन राज सीमा के बाहर हरि हूँ को न निहार।
जय 'श्रीभट्ट' धूरि धूसर तनु यह आसा उर धार।।[1]

धाम निष्ठा की भाँति वे अपने आराध्यदेव की अनन्य निष्ठा के सम्बन्ध में भी कह रहे हैं। यथा—

सेव्य हमारे हैं सदा, वृन्दाविपिन विलास
नन्द नन्दन वृषभानुजा, चरण अनन्य उपास।।

आपका स्थितिकाल 13वीं शताब्दी का अन्त ओर 14वीं शताब्दी का प्रारम्भकाल था। आप अपने एक दोहे में बता रहे हैं कि—

नयन बाण पुनि राम शशि, गनो अङ्क गति वाम।
प्रकट भयो श्रीयुगलशत, यह संवत अभिराम।।[2]

इस प्रकार इस ग्रन्थरत्न का रचनाकाल विक्रम सम्वत् 1352 बतलाया जाता है। इनका पाटोत्सव आश्विन शुक्ला 2 (द्वितीया) को मनाया जाता है।

(35) आचार्यवर्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य

जय जय श्रीहरिव्यासजू रसिकन हित अवतार।
महावानीरच सबनि को, उपदेस्यो सुख सार।।
श्रीभट्ट चरन रज परस तें सकल सृष्टि जाको नई।
हरिव्यास तेज हरिभजन बल देवी को दीच्छा दई।।[3]

आप इस परम्परा में 35वीं संख्या में आचार्य पीठासीन थे। आपके भी संस्कृत एवं ब्रज–भाषा में विचरित अनेक ग्रन्थ हैं। जिनमें '**महावाणी**' प्रधान ग्रन्थ हैं। यह रस

---

1. युगल शतक (वाणी ग्रन्थ)
2. युगल शतक (वाणी)
3. नाभादास कृत भक्त माल से समुद्धृत।

ग्रन्थों में सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। यह महावाणी श्रीभट्टदेवाचार्यजी कृत श्रीयुगलशतक का मानो वृहद्भाष्य ही है। श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज विशेषतया मथुरापुरीस्थ नारद टीला पर निवास किया करते थे। अधिक समय तो आप लोक कल्याणार्थ भ्रमण में ही रहा करते थे। भ्रमण काल में वैष्णव धर्म का आपने सर्वाधिक प्रचार-प्रसार किया। सर्वत्र वैष्णव धर्म की विजय वैजयन्ती फहराई।

श्रीसर्वेश्वर प्रभु की राजभोग सेवा के पश्चात् स्थान पर या भ्रमणकाल में सर्वत्र वैष्णव सेवा भी मुख्यतया आपके यहाँ वृहद् रूप से हुआ करती थी। शरणागत जनों को जहाँ-तहाँ पञ्च संस्कारपूर्वक वैष्णवी दीक्षा देकर परमार्थ की ओर अग्रसर करते हुए भगवद् भक्ति का प्रचार करना ही आपका मुख्य लक्ष्य था।

शिष्य-परम्परा

श्रीरसिकराजेश्वर महावाणीकार **नित्यनिकुञ्जेश्वर** युगल-किशोर श्रीश्यामाश्याम की नित्य विहारमयी लीलाओं के उज्ज्वल रसोपासक प्रबल प्रताप परमयशस्वी ख्यातनामा अनन्त श्रीविभूष्त जगद्गुरु निम्बार्काचार्य स्वामी श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज के **श्रीवैष्णवी देवी** भी सम्मिलित थी। इनमें आचार्य गद्दी आचार्यश्री ने शिष्य परिकर में अपने कृपापात्र **श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज** को दी। साथ ही अपनी **निजी सेवा**, पूर्वाचार्यों द्वारा परम्परागत श्रीसनकादि संसेव्य शालिग्राम विद्यास्वरूप **ठाकुर श्रीसर्वेश्वर** प्रभु (आराध्यदेव) की सेवा भी प्रदान की।

तत्पश्चात् अन्य शिष्यों ने भी अपने प्रखर वैदुष्य तथा तपस्या द्वारा भक्ति का प्रचार-प्रसार करते हुये जहाँ-तहाँ मठ, मन्दिर की संस्थापना की, जो कि उनकी **'द्वारा गादी' के** नाम से प्रसिद्ध है। वे भी बड़े-बड़े विशाल मठ, मन्दिर हैं। इस प्रकार श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज एवं उनके शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा भारत में सर्वत्र भावपूर्ण वैष्णव धर्म का बहुत ही सुन्दर प्रचार-प्रसार हुआ।

श्रीस्वामी हरिव्यास**देवाचार्यजी महा**राज के शिष्यों का नामोल्लेख अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु **निम्बार्काचार्य श्रीनारायण**शरणदेवाचार्यजी महाराज ने किया है, वह इस प्रकार है—

श्रीमब्द्यासपदारविन्दमधुपं श्रीपरशुरामं तां
गोपालं मदनादिकञ्च तमहं बाहूबलं मोहितम्।
वन्दे केशव-माधवोद्धव-हृषीकेशं स्वयं भ्वादयान्
सर्वान् ज्ञानविरागभक्तिनिकरान्श्रीलापरं चंडिकाम्।।[1]

---

1. श्रीआचार्यचरितम् विश्राम, 14 श्लोक सं. 43

अर्थात् श्रीहरिव्यासदेवाचार्यचरण–चञ्चरीक–श्रीपरशुरामदेवाचार्य, श्रीगोपालदेवाचार्य, श्रीमदगोपालदेवाचार्य, श्रीबाहुबलदेवाचार्य, श्रीमोहितदेवाचार्य, श्रीकेशवदेवाचार्य, श्रीमाधवदेवाचार्य, श्रीउद्धव (घमण्ड) देवाचार्य, श्रीहृषीदेवाचार्य, श्रीस्वभूरामदेवाचार्य, श्रीलपरागोपालदेवाचार्य, और श्रीमुकुन्ददेवाचार्य इन सभी महात्माओं को, जो कि भक्ति और ज्ञान का प्रकाश करने वाले थे, मैं सादर दण्डवत् करता हूँ और इनके साथ ही साथ श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज की परम शिष्या श्रीहरि भक्ति परायणा श्रीचण्डिका (श्रीदेवीजी) को भी प्रणाम करता हूँ।

यह देवी आजकल काश्मीर जम्बू से सन्निकट वैष्णवी देवी के नाम से प्रसिद्ध है। जहाँ जीव–हिंसात्मक बलि न होकर मिष्ठान भोग लगाया जाता है।

इस प्रकार रसिक राजराजेश्वर जगद्गुरु निम्बार्काचार्य स्वामी श्रीहरिव्यासदेवाचार्य महाराज की ख्याति देश में सर्वत्र हो गई थी। आज भी इस सम्प्रदाय के लोग एवं संतजन जहाँ–तहाँ अपने आपको हरिव्यासजी के नाम से कहा करते हैं। आपका **पाटोत्सव कार्तिक कृष्णा 12 (द्वादशी)** को मनाया जाता है।

सखी–भाव की उपासना में आप 'श्रीहरिप्रिया' सहचरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। आपके द्वारा रचित 'श्रीमहावाणी' के पदों में 'श्रीहरिप्रिया' शब्द का ही प्रयोग किया गया है। श्रीमहावाणी श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की अमूल्य निधि है। इसमें आपने श्रीप्रिया प्रियतम को नित्यनिकुंजोपासना में सखी भाव को ही मान्यता प्रदान की है, जैसे—

प्रातः कालहि ऊठिके, धार सखी को भाव।
जाय मिले निज रूप में, याकौ यहै उपाव।।[1]

(36) जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी

राजस्थान में निम्बार्क-सम्प्रदाय की प्रधानपीठ के संस्थापक महाकवि श्री परशुरामदेव एवं उनके 'द्वारे' की आचार्य-परम्परा की साहित्यिक-देन

ज्यों चन्दन को पवन निम्ब पुनि चन्दन करई।
बहुत कालतम निविड़ उदै दीपक ज्यों हरई।।
श्रीभट पुनि हरिव्यास सन्त मारग अनुसरई।
कथा कीरतन नेम रसन् हरिगुन उचरई।।
गोविन्द भक्ति गद राग गति, तिलक दाम सद वैदहद।
जंगली देश के लोग सब श्रीपरशुराम किये पारषद।।[2]

---

1. महावाणी से उद्धृत।
2. भक्त माल से समुद्धृत।

सामान्य परिचय

आचार्यवर्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य महाराज के पश्चात् आचार्य पद पर श्रीपरशुरामदेवाचार्य महाराज अभिषिक्त हुये। इनका समय पन्द्रहवीं शताबदी है। ये बड़े ही प्रतिभासम्पन्न उच्चकोटि के सिद्ध आचार्य थे। इनकी कीर्ति और महिमा सर्वत्र फैली हुई थी। इन्होंने अपने श्रीगुरुदेव के आदेश से निम्बार्कतीर्थ[1] नामक परम पावन मरूस्थल में पुष्कर क्षेत्र के समीप एक मस्तिगशाह नामक यवन फकीर को परास्त कर वैष्णव धर्म का प्रचार–प्रसार किया था।

जहाँ पर आजकल श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ स्थित है, वह स्थान आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व भयंकर बीहड़ वन था। उस जंगल में एक प्राचीन परम मनोहर अति सुन्दर जल पुष्प ओर लता वृक्षों से समन्वित आराम था, जिस आश्रम को एक पैशाचिक सिद्धि सम्पन्न दुष्ट यवन फकीर मस्तिंगशाह ने अपने आधिपत्य में कर लिया था। उस आश्रम के सन्निकट होकर ही द्वारका धाम जाने का प्रधान मार्ग था। यह मदान्ध फकीर उस मार्ग से जो कोई धार्मिक जन यात्रा के लिए निकलता तो उन्हें बड़ा ही दुःख पहुँचाया करता था। एक समय कुछ साधु–सन्त महात्मा इसी मार्ग से द्वारका धाम को जा रहे थे। जब ये फकीर के निवास–स्थान के सन्निकट पहुँचे तो फकीर ने इन सभी सन्तों को अपनी पैशाचिक सिद्धि के बल पर रोक लिया और विभिन्न प्रकार का उनके साथ दुर्व्यवहार करते हुए तंग किया, जिससे सन्तों को महान् कष्ट हुआ। जैसे–तैसे उस नर–पिशाच से जान बचाकर वे वहाँ से लौट पड़े और उस यवन फकीर द्वारा किये गये दुष्कृत्य का सम्पूर्ण वृत्तान्त श्रीहरिव्यासाचार्य जी को सुनाया। श्रीचरणों को यह जानकर बड़ा ही दुःख हुआ। आपने अपने कृपापात्र (शिष्य) श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी को आदेश दिया कि उस दुष्ट यवन को जाकर परास्त करो। तुम में उसको परास्त करने का पूर्ण सामर्थ्य एवं सिद्धि बल भी है। आचार्यश्री की आज्ञा पाकर कुछ सन्तों को साथ लेकर श्रीपरशुरामदेवजी ने उस यवन फकीर को परास्त करने एवं साधु–महात्माओं के तथा धर्मप्राण जनता के दुःख दूर करने और वैष्णव धर्म के प्रचार निमित्त प्रस्थान किया। सर्वप्रथम तीर्थगुरु श्रीपुष्कररराज पहुँच कर स्नान किया। वह यवन यहाँ से 12 कोस की दूरी पर रहता था। एक दिन संत मण्डली सहित वहाँ पहुँच गये, जहाँ पर वह संतद्रोही दुष्ट फकीर था। आए हुये सन्तों को देखकर उस यवन फकीर ने अपनी सिद्धि द्वारा सबको मर्दित करना चाहा, किन्तु कई बार प्रयोग करने पर भी वह सफल नहीं हो पाया। साथ ही उसके सम्पूर्ण देह में विद्युत् प्रहार की भाँति जलन पैदा होने लगी। उस यवन के पास तीन पैशाचिक सिद्धियाँ थीं, जिनको श्रीपरशुरामदेवजी महाराज ने क्रमशः हरण कर लीं थीं। जब उसने सभी प्रकार से

---

1. पद्म पुराण के परिवर्तित।

अपने आपको असहाय एवं असमर्थ पाया तो करुण-क्रन्दन कर क्षमा-याचना करने लगा। बहुत अनुनय-विनय करने के अनन्तर श्रीचरणों ने उसे क्षमा करके अन्यत्र चले जाने को कहा। आज्ञानुसार उसने वैसा ही किया। वह वहाँ से चला गया, किन्तु अन्तिम समय में उसने फिर वहीं आकर अपने शरीर का इस आश्रम से कुछ दूर पर अन्त किया। जिसकी कब्र अद्यावधि श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ परशुरामपुरी (सलेमाबाद) से कुछ दूरी पर दक्षिण दिशा में विद्यमान है। यह यवन पीछे परम भगवद्भक्त हो गया था।

श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी ने द्वारका धाम के मार्ग को निष्कण्टक बनाकर इस भयंकर मरूस्थल प्रदेश (रेतीले स्थान) में वैष्णव धर्म का प्रचार करते हुए श्रीनिम्बार्कतीर्थ में कुछ दिन पर्यन्त निवास कर पुन: मथुरापुरी की ओर गमन किया। श्रीहरिव्यासदेवायार्यजी ने इनके कार्यकौशल तथा सिद्धिबल के प्रभाव को देखकर परम प्रसन्नता प्रकट की ओर सब प्रकार से योग्य समझकर इन्हें अपने पद पर प्रतिष्ठित करके तथा भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा देकर अन्तिम बार यही आदेश प्रदान किया कि उसी मरूस्थल प्रदेश में जाकर वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार करो। श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी पुनश्च श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा सहित श्रीआचार्यवर्य के आदेशानुसार मरूस्थल प्रदेश में आकर भगवद्भक्ति की गङ्गा बहाने लगे। ये कभी-कभी अपने निवास-स्थान से पुष्कर जाकर अनेक दिवस पर्यन्त नागेश्वर पर्वत की कन्दराओं में भी निवास करते थे। और फिर अपने आश्रम लौट आते थे। इन्होंने अपने निवास-स्थान के लिए किसी भी प्रकार के घर का निर्माण नहीं किया, केवल एक पीपल वृक्ष के नीचे रहकर तपश्चर्या धूनी (हवनकुण्ड) कर श्रीयुगल आराधना करते थे। इनके द्वारा निर्मित **'परशुराम सागर'** नामक विशाल ग्रन्थ है। उसकी रचना दोहे, चौपाई, छन्द, वरवा, छप्पय और पद आदि अनेक छन्दों में हुई है। यह विशल ग्रन्थ 4 भागों में प्रकाशित हुआ है।[1] यह ग्रन्थ परम उपादेय मनन करने योग्य है।

आचार्यश्री ने जन-कल्याणार्थ सदा के लिए पुष्कर क्षेत्र में ही निवास किया था। कभी आप पुष्कर निवास करते तो कभी श्रीपरशुरामपुरी तथा कभी अन्यान्य प्रान्तों में परिभ्रमण कर सनातन धर्म का उत्थान करते थे।

आपका जयन्ती महोत्सव भाद्रपद कृष्णा 5 (पञ्चमी) का है। यह उत्सव श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) में बड़े समारोह के साथ मनाया जाता है। अन्यत्र, वृन्दावन, जयपुर आदि अनेक स्थलों पर भी यह उत्सव बहुत सुन्दर रूप से सम्पन्न होता है।अ निम्बार्कतीर्थ में इस जयन्ती महोत्सव के दिवस को समस्त जन-समुदाय श्रीस्वामीजी की पञ्चमी अथवा गुरुपञ्चमी के नाम से पुकारते हैं।

---

1. 'परशुराम सागर' सम्पादक : डॉ. श्री राम प्रसाद शर्मा।

परशुराम देव कृत साहित्य का समीक्षात्मक-अध्ययन सम्बन्धित अध्याय में संगोपांग रूपेण परिवर्तित है।

(37) आचार्यवर्य श्रीहरिवंशदेवाचार्य

अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ (निम्बार्कतीर्थ—सलेमाबाद) संस्थापक अनन्त श्रीविभूष्त जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज के पश्चात् श्रीहरिवंशदेवाचार्यजी महाराज श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ पर आसीन हुये। ये आचार्य चरण भी बड़े ही प्रतिभा-सम्पन्न थे। इनके प्रखर वैदुष्य, भगवद्जन तथा सदुपदेशों द्वारा भक्ति का अपूर्व प्रचार-प्रसार देख जयपुर, उदयपुर, भरतपुर, बीकानेर, किशनगढ़, बून्दी आदि सभी रियासतों के राजा-महाराजा पूर्ण प्रभवित थे। आप दया, धर्म के अपूर्व भण्डार थे। प्राणीमात्र के प्रति सदा हित-चिन्तन आपका प्रधान लक्ष्य था।

सर्वे भवन्तु सुखिन:, सर्वे सन्तु निरामया:।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिदु:ख भाग्भवेत्।।

यह उदार भावना आप में प्रत्यक्ष रूपेण चरितार्थ थी। आपका सभी के प्रति यह उद्घोष था कि श्रीसर्वेश्वर प्रभु का समाश्रय ग्रहण करो। संसार से निर्भय होने का एकमात्र यही उपाय है। आपका **पाटोत्सव मार्गशीर्ष कृष्णा 7 (सप्तमी) है।**

आपके पट्ट शिष्य श्रीनारायणदेवाचार्यजी महाराज के अतिरिक्त अन्यतम शिष्यों में एक श्रीब्रजभूषणशरण जी भी बड़े भजननिष्ठ विद्वान्, प्रतिभा-सम्पन्न एवं त्याग-मूर्ति सिद्ध महात्मा थे, जिन्होंने राजस्थान, जयपुर मण्डलान्तर्गत हस्तेड़ा नामक ग्राम के ठाकुर श्री अनूपसिंहजी को शिष्य बनाकर वहाँ एक सुन्दर मन्दिर की स्थपना करवाई। इसी के शाखा-स्थान किशनगढ़-रेनवाल आदि में भी है। हस्तेड़ा और किशनगढ़ इन दोनों स्थानों के एक ही महन्त होते आ रहे हैं। वर्तमान महन्त **श्रीहरिवल्लभदासजी** साहित्य-दर्शनशास्त्री की विद्वत्ता, भजन-साधन-निष्ठा, साधु-सेवा एवं मिलसारी आदि सद्गुणों द्वारा उन्नतशील है।

(38) आचार्यवर्य श्रीनारायणदेवाचार्य

श्रीहरिवंशदेवाचार्यजी महाराज के पश्चात् श्रीनारायणशरणदेवाचार्यजी महाराज ने श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ को समलंकृत किया। आप भी ड़े ही प्रतिभा-सम्पन्न आचार्यथे। विक्रम सम्वत् 1850 के आसपास महाराणा श्रीजगतसिंहजी के पूर्ण आग्रह पर उदयपुर पधारे और कुछ समय तक निवास कर भक्ति का खूब प्रचार-प्रसार किया। जिनकी प्रतिभा-सम्पन्न उज्ज्वल कीर्ति के द्योतक आज भी वहाँ श्रीप्रयागदासजी का स्थल तथा श्रीबाईजीराज का कुण्ड आदि कई एक स्थान विद्यमान हैं। 'स्थल' के वर्तमान महन्त **श्रीमुरलीमनोहरशरणजी शास्त्री** आयुर्वेदाचार्य तथा श्रीबाईजीराज कुण्ड के वर्तमान महन्त **श्रीराधावल्लभशरणजी** आदि की सुव्यवस्था एवं विद्वत्ता से इन दोनों स्थानों की पूर्ण ख्याति है।

श्रीनारायणशरणदेवाचार्य जी महाराज द्वारा रचित **'श्रीआचार्यचरितम्'** नामक संस्कृत भाषा में अनुपम ग्रन्थ है, जिसमें सभी आचार्यों के जीवन का संक्षिप्त परिचय है। आपका **पाटोत्सव पौष शुक्ला 9 (नवमी)** को मनाया जाता है।

श्रीनारायणशरणदेवाचार्यजी महाराज से लेकर श्रीगोपीश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज पर्यन्त इन आठ पीठिकाओं में होने वाले आचार्य चरणों ने श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, सलेमाबाद के अतिरिक्त मथुरा, वृन्दावन, भरतपुर, उदयपुर और जयपुर आदि नगरों में अनेक नरेशों द्वारा विशेष रूप से आमन्त्रित होकर श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा की तथा वहाँ विराजे। मठ-मन्दिरों का निर्माण हुआ और उनके आधीन राज्य द्वारा जागीरें निकाली गईं। फलस्वरूप इन सदियों में श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का राजस्थान प्रदेश में अपूर्ण प्रभाव रहा है।

(39) आचार्यवर्य श्रीवृन्दावनदेवाचार्य

वि.सं. 1754 में आप आचार्यपीठ सिंहासनासीन हुये और श्रुति— स्मृतिपुराण प्रतिपादित भक्तिपूर्ण अपने सदुपदेशों के द्वारा अनुपम लोकहित किया। आपकी सादगी, सरलता, विद्वत्ता, तपश्चर्या और त्याग आदि से जयपुर, जोधपुर, किशनगढ़, बीकानेर, भरतपुर आदि राज्यों की तवारिखों में विक्रम सम्वत् 1754 से 1797 तक आपके पुनीत नाम का उल्लेख मिलता है। कृष्णगढ़ाधीश महाराज श्रीसाँवतसिंह जी (श्रीनागरीदासजी) परिकर आप ही के शिष्य थे। आपकी परम कृपा से उन्हें मानसिक उपासना ओर दृढ़ निष्ठा प्राप्त हुई थी।

विक्रम सं. 1756 में आमेर नरेन्द्र महाराज सवाई श्रीजयसिंहजी (द्वितीय) के विनय पत्र आने पर आप आमेर पधारे। नरेद्र नेबहुमान सम्मानपूर्वक अगवानी सत्कार करके अपने श्रीगुरुदेव को राजमहलों में पधराया। इन श्रीगुरुदेव की आज्ञानुसार महाराजा श्रीजयसिंहजी ने वि.सं. 1769 और 1775 के बीच में दो महान् यज्ञ किये। वह यज्ञस्थल आमेर से बाहर श्रीपरशुराम द्वारा के निकट है, जो आज भी विद्यमान है। उन यज्ञों में पूज्य श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी महाराज ही रहे। उन्हीं के आदेशानुसार वि.सं. 1784 माघ कृष्णा 5 (पञ्चमी) बुधवार पूर्वाह्न के समय में भारत के एक दर्शनीय महानगर जयपुर शहर बसाने की नींव लगी। उस शहर में निवास करने के लिए वैष्णव सम्प्रदायों के आचार्य एवं महत्तम महानुभाव भी आमन्त्रित किये गये। उनके लिए मठ मन्दिरादिकों का भी निर्माण हुआ।

आप संस्कृत, हिन्दी, ब्रज-भाषा, बङ्ग भाषा एवं मिथिला आदि अनेक भाषाओं के पूर्ण विद्वान् थे। आपके द्वारा निर्मित **'श्रीगीतामृतगङ्गा'** ब्रजभाषा में बड़ा ही अनुपम ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ द्वारा संचालित **'श्रीसर्वेश्वर'** मासिक के प्रथम वर्ष के विशेषांक रूप में प्रकाशित हो चुका है।

आपके समय के विद्वान् कवियों ने आपके कलिमलापह कलेवर में अलौकिक ऐश्वर्य का अनुभव किया। आचार्य श्रीवृन्दावनदेवजी में श्रीवृदावन विहारी का साक्षात्कार होने पर उनका वाग्देवी ने भी यही प्रकाशित किया—

श्रीवृन्दावनदेवाय गुरवे परमात्मने।
मनो मंजरी रूपाय युग्य-संगानुचारिणे।।
भजेऽहं वनाधीशदेवं महान्तं, महासौम्यरूपं जनानां सुशान्तम्।
सदा-प्रममत्तं महाप्रेमगम्यं, मुखे राधिका-कृष्ण-लीलासुरम्यम्।[1]

श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के अति सन्निकट होने के कारण 'रूपनगर' 'किशनगढ़' के राजा-महाराजाओं का आचार्य पीठ एवं श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी के चरणों में ओर भी विशेष अनुराग बढ़ा। आचार्य चरणों के सम्पर्क में इस राजकुल के तत्कालीन राजा, राजमहिला एवं राज-परिकर और प्रजाजनों में भगवद्भक्ति का अनुपम विकास हुआ। महाराजा श्रीराजसिंहजी, राजमहिषी श्रीबाँकावतीजी, कुँवर श्रीसाँवतसिंह (श्रीनागरीदासजी), राजकुमारी श्रीसुन्दरकुंवरिजी और इनके दास और दासियाँ भी विशिष्ट भक्त कवि बने। इन सभी भक्त कवियों द्वारा अनेक भक्तिपूर्ण ग्रन्थों का निर्माण हुआ, जिनका परिवर्णन सम्बन्धित अध्याय में किया गया है।

(40) आचार्यवर्य श्रीगोविन्ददेवाचार्य

अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीगोविन्ददेवाचार्यजी महाराज का स्थितिकाल विक्रम की 18वीं शताब्दी माना जाता है।

वि.सं. 1800 से 1814 तक आपने आचार्य सिंहासन को अलंकृत किया। आपके समय में आचार्यपीठ की यथेष्ट उन्नति हई।

जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी महाराज के धामवास हो जाने पर जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, कोटा, करौली आदि के नरेशों ने एक मत होकर श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ पर महाराष्ट्र देशीय शेषजयरामजी को अभिषिक्त करना चाहा। यह संघर्ष बहुत जोर-शोर से चला, किन्तु, भक्त समुदाय और सम्प्रदाय के विरक्त संत, महन्तों ने राजाओं का विरोध किया। अन्त में राजाओं को अपना विचार बदलना पड़ा ओर विक्रम सं. 1800 में श्रीगोविन्ददेवाचार्यजी महाराज को आचार्यपीठ के सिंहासन पर अभिषिक्त किया गया। आप संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान् और विशिष्ट कवि थे। आपकी पद रचना बड़ी ही सुललित है। एक पद के अन्त में देखिये जिसमें कि भगवान् श्रीसर्वेश्वर का नामोल्लेख भी है।

---

1. पं. शेष श्रीजयरामदेव द्वारा प्रणीत।

"जयति वृषभापनु-नन्दिनी जगवन्दिनी,
कृष्णहियचन्दिनी रंग-सेवी।
प्रणत 'गोविन्द' नंद नंद सुख कन्द,
सर्वेश निजदास हरि प्रिया देवी।।"

श्रीनिम्बार्काचार्य पीठासीन होने के पश्चात् आप अनेक संतों की जमात एवं विद्वान्ों को लेकर विशेषत: भ्रमण किया करते थे। अधर्म का दमन एवं धर्म की स्थापना करते हुये जीवों को वैष्णव धर्म में दीक्षित कर हरि सम्मुख करना ही एकमात्र आपके भ्रमण का मुख्य उद्देश्य था। इन आचार्य चरणों को बड़े-बड़े राजा एवं बादशाह निमन्त्रण देकर अपने यहाँ बुलाने में अपना सौभाग्य समझते थे। एक समय धर्म प्रचारार्थ आप दिल्ली पधारे। आप में कई एक ईश्वरीय गुण विद्यमान थे। **'आचार्य मां विजानीयात्'** यह उद्धव के प्रति स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है। आपकी गुण-गरिमा श्रवण कर नगर निवासियों की भीड़ उपदेशादि श्रवण एवं दर्शन करने के लिएआने लगी। इनके उपदेशामृत की प्रशंसा सर्वत्र होने लगी। रसिक महानुभावों में एक अपूर्व भावों की विशेषता होती है, न की भावपूर्ण भजन शैली एवं पराभक्ति के द्वारा जागतिक जीवों के लिए लौकिक एवं शारीरिक सम्बन्धी सभी आसक्तियों का सहज ही छुटकारा हो सकता है।

किशनगढ़ के नरेश श्रीसाँवतसिंहजी (श्रीनागरीदासजी) और उनके छोटे भ्राता बहादुरसिंहजी में परस्पर अनबन रहती थी। कई राजा-म्हाराजाओं ने भी उन्हें कई बार समझाया, किन्तु कलह शान्त नहीं हुआ। विक्रम सं. 1814 के आश्विन शुक्ला 9 शुक्रवार को रूपनगर से श्रीसाँवतसिंह जी और किशनगढ़ से श्रीबहादुरसिंहजी आपके कुशल समाचार पूछने आये। उस समय आप अस्वस्थ थे। दोनों भाई आचार्य चरणों के निकट बैठे थे। दोनों ने ही कुशल समाचार पूछे। इस पर महाराजश्री ने कहा—"जब तक रूपनगर और कृष्णगढ़ राज्य का कलह शान्त न होगा, हमारा स्वास्थ्य नहीं सुधर सकेगा।" दोनों हजी ने ही कहा क्या आज्ञा है? महाराज बोले रूपनगर की राज्यगद्दी पर सरदारसिंहजी को और कृष्णगढ़ की गद्दी पर बहादुरसिंह जी को अभिषिक्त करके आप (साँवतसिंहजी) श्रीवृन्दावनवास कीजिये। दोनों ने आज्ञा मानकर वैसी ही व्यवस्था की। सच है, महापुरुषों के वचनों में एक प्रबल शक्ति होती है, जिसके द्वारा बड़े से बड़े कार्य भी सहज ही में सुसम्पन्न हो जाते हैं। वे समदर्श होते हैं। उनमें सदा एकता की भावना बनी रहती है। वे द्वेष करने वालों में भी परस्पर प्रेम-भावना उत्पन्न करा देते हैं। एक कवि ने कहा है कि—

कैंची आरा दुष्टजन देत विलगाय।
सुई सुहागा सन्त-जन बिछुरे देत मिलाय।।

इनके द्वारा रचित '**श्रीयुगलरसमाधुरी**' परमोत्कृष्ट ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुका है। आचार्यों के मङ्गल बधाई एवं अन्य फुटकर पद भी बहुत हैं। श्रीवृन्दावन के समाज में जहाँ-तहाँ गाये जाते हैं। आपकी रचनाओं का एक बड़ा भारी संकलन '**हरि गुरु सुयश भास्कर** के नाम से प्रख्यात है। सम्पूर्ण वाणी अनुपलब्ध है। इसकी हस्तलिखित एक प्रति भरतपुर राज्य में किसी काश्तकार के घर पर जैनमुनि श्रीकान्तिसागरजी को प्राप्त हुई थी, जो अभी तक अप्रकाशित है। आपका **पाटोत्सव दिवस कार्तिक कृष्ण 5 (पञ्चमी)** है।

(41) आचार्यवर्य 'श्रीजी' श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्य जी

आचार्य श्रीगोविन्दशरणदेवावार्यजी महाराज बड़े ही प्रतिभा-समपन्न आचार्य थे। विक्रम सं. 1814 से 1841 तक आप श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ पर विराजमान थे। अपने ही बंगाल के सुप्रसिद्ध कवि श्रीजयदेव के आराध्य ठाकुर श्रीराधामाधवजी को, जो कि बहुत वर्षों से ब्रज-मण्डलस्थ श्रीराधाकुण्ड (श्रीनिवासाचार्यजी की बैठक) पर विराजमान थे, वि.सं. 1823 में लाकर वर्तमान श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ, सलेमाबाद में प्रतिष्ठापित किया था। इस प्रसङ्ग का विस्तृत विवेचन हम श्रीराधामाधवजी के परिचय में कर आये हैं।

श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश आचार्य चरणों की '**श्रीजी**' संज्ञा भी आपके समय से ही प्रचलित हुई थी। पूर्ववर्ती आचार्यों के नाम राजा-महाराजाओं के यहाँ से प्राप्त पत्रों एवं पट्टों में श्री स्वामीजी तथा श्रीमहाप्रभुजी आदि विशेषणों से ही प्रयुक्त होता आ रहा था।

श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजी महाराज के कितने ही पूर्ण चरित्र मिलते हैं। आपका '**बृहद् वाणी**' ग्रन्थ भी है, जिसका कुछ भाग श्रीसर्वेश्वर मासिक पत्र वर्ष 18 के विशेषांक रूप में 'श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजी की वाणी' के नाम से प्रकाशित भी हो चुका है। इस ग्रन्थ की ललित पदावली का मनोरम शब्द गुम्फन बड़ा ही आकर्षक और अलंकारपूर्ण है, युगलकिशोर श्यामाश्याम की रसमयी लीलाओं का चित्रण बड़ा ही भावयुक्त और परम-सरस है, जिसके अवलोकन मात्र से ही हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। आपकी प्रखर विद्वत्ता और सिद्धि-सम्पन्नता सर्वविदित है। आपने अपने तपोबल से अनेक विधर्मियों को परास्त कर वैष्णवधर्म की विजय पताका फहराई। राजस्थान के अनेक राजा-महाराजा और प्रजा आपके अनुगत होकर वैष्णव धर्म में परम आस्था रखने लगे थे। इस प्रकार श्री आचार्यवर्य की इस महत्त्वपूर्ण अलौकिक घटना से सभी को दिव्य और सात्विक प्रेरणा प्राप्त होती रहेगी। भगवान् श्रीसर्वेश्वर के गुण-गन युक्त एक पद आपकी वाणी से समुद्धृत है—

करहुँ नाथ सर्वेश्वर दीन जानि करूना।
कीजिये सनाथ मोहि आय पायो सरना।।

मैं अनादि सिद्ध दास तुम अनादि स्वामी।
विरसरत क्यों कृपा सिन्धु जानि कुटिल कामी।।
अपनी दृढ़ भक्ति साधु सङ्ग मोहि दीजै।
लीला गुन रूप नांव रसना रस पीजै।।
ऊँच-नीच जोनिन मैं दु:ख अपार पायो।
'गोविन्द सरन' दीनबन्धु जानि सरन आयो।।[1]

इस प्रकार ऐसे प्रतापी आचार्यश्री ने 27 वर्ष तक आचार्यपीठ को सुशोभित कर विक्रम सम्वत् 1841 के चैत्र मास में श्रीयुगलकिशोर की नित्य निकुञ्ज लीला में प्रवेश किया। **पाटोत्सव कार्तिक कृष्णा 8 (अष्टमी)** को मनाया जाता है।

(42) आचार्यवर्य 'श्रीजी' श्रीसर्वेश्वर शरणेदवाचार्य

आप अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ की आचार्य परम्परा में हंस भगवान् से 42वीं संख्या में विद्यमान थे। आपका जन्म जयपुर मण्डलान्तर्गत सराय नामक ग्राम के समीप सूरपुरा नामक ग्राम के सुप्रसिद्ध गौड़ ब्राह्मण पं. श्रीभवानीरामजी जोशी के घर हुआ था। आपके माता-पिता भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु के अनन्य भक्त थे। माता-पिता ने श्रीसर्वेश्वर प्रभु श्रीशालिग्राम स्वरूप हैं, अत: उनकी आराधना से संप्राप्त होने के कारण पिता ने इस बालक का नाम भी शालिग्राम ही रख दिया। इनके पीछे प्रभु कृपा से दूसरा भाई और हो जाने पर माता-पिता ने इनको भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा में ही समर्पण कर दिया। आचार्यश्री (जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्य महाराज) के चरणाश्रित होकर दीक्षा के समय 'श्रीसर्वेश्वरशरण' यह नाम निर्धारित किये जाने के पश्चात् आपका अध्ययन प्रारम्भ हुआ। 'होनहार विरसान के होत चीकने पात' वाली कहावत आपके लिए पूर्णरूपेण चरितार्थ हो जाती है। थोड़े समय के बाद ही आप हिन्दी, संस्कृत भाषाओं के ज्ञाता होकर पूर्ण प्रकाण्ड विद्वान् हो गये। वि.सं. 1841 में आप श्रीनिम्बार्क-पीठासीन हुये।

वैसे तो जयपुर बसने के पूर्व आमेर नरेश सवाई जयसंहजी (द्वितीय) ने राजगद्दी पर आसीन होते ही अपने गुरुदेव अनन्तश्रीविभूषित श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी महाराज को आचार्यपीठ (सलेमाबाद) से आमेर पधराया था। आपश्री की सम्मति से और अन्य भी अनेक विद्वान्ों व महात्माओं को आमन्त्रित किया था तथा आपश्री की आज्ञानुसार महाराज श्रीजयसिंहजी ने विक्रम सं. 1784 में जयपुर नगर की स्थापना की थी। इस प्रकार आचार्य चरणों का आमेर व जयपुर नरेशों से सम्पर्क निरन्तर बना रहा था। इसी परम्परा में श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी महाराज से चतुर्थ पीठिका में

1. श्री गोविन्द शरण देवाचार्य जी की वाणी के उद्धृत।

श्रीसर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी एवं सवाई जयसिंह (द्वितीय) की चतुर्थ पीढिका में महाराज श्रीप्रतापसिंहजी वर्तमान थे।

इस समय में महाराज सवाई प्रतापसिंह जी ने श्रीसर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज की अनुमति से वैष्णवों की चारों सम्प्रदायों की स्थायी रूप से स्थापना की।

जयपुर-राज सम्मानित विद्वद्वर कवि मण्डन भट्ट ने विक्रम सं. 1878 में 'जय साह सुजश प्रकाश' नामक ग्रन्थ की रचना की है, जिसमें उन्होंने लिखा है-

"माधव महीन्द्र सुत श्रीप्रताप, बुलवाय किये गुरु करि मिलाप।
निज महल बिच मन्दिर बनाय, तो में पधराये सिर नवाय।।
राधा-नन्दनन्दन भक्ति भाव, सीखे प्रताप नृप रचि सुभाव।
कर दिये रघुकुल के गुरु गनेश, साँचे सेवक ह्वै प्रतापेश।
तिन गुरु चरनन को योग पाय, दिये सम्प्रदाय चारों बनाय।।[1]"

ब्रजनिधि श्रीप्रतापसंहजी के पौत्र श्रीजयसिंहजी (तृतीय) के जन्मोपलक्ष्य में 'श्रीजी' श्रीसर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज का जयपुर राज्य की ओर से महान् स्मृति-महोत्सव सम्पन्न हुआ था, जिसमें राज्य कोष से लाखो रुपयों का व्यय किया गया था। यह उन धार्मिक राजाओं की श्रीगुरुचरणों में अपूर्व निष्ठा थी।

आपश्री द्वारा निर्मित अनेक स्तोत्र हैं, जिनमें कुछ मुद्रित भी हो चुके हैं। जयपुर के संस्थान श्री श्रीजी की मोरी में मन्दिर के ठाकुरजी का नाम श्रीगोपीजनवल्लभजी होने के कारण उनके नाम पर निर्मित 'श्रीगोपीजनवल्लभाष्टक' आप ही की सुमधुर कृति है। आप अपने समय के श्रीमद्भागवत के अद्वितीय विद्वान् थे।

प्राय: देखा जाता है कि विद्वत्ता, प्रभुता और भक्ति रूप त्रिवेणी का सङ्गम एक स्थान पर होना सुदुर्लभ है, किन्तु यहाँ तो उपर्युक्त तीनों धारायें समान रूप से निर्बाध प्रवाहित थी। जयपुर के सुप्रसिद्ध महाकवि श्रीरसिकगोविन्दजी आप ही के कृपापात्र थे। कवि लोग निर्भीक् हुआ करते हैं। वे आलोचना करने में नहीं डरते। पर आपकी विद्वत्ता पूर्ण सुमधुर शैली से तो वे भी प्रभावित हीकर बोल उठे कि मैंने कथा तो और भी अनेक वक्ताओं के मुख से सुनी है, किन्तु मुझे वास्तविकता इन्हीं की कथा में मिली है, वे अपनी कविता में लिखते हैं—

जनक को ज्ञान, शुकदेव को विराग पूजा
पृथु की, सुभक्ति चैतन्य भक्त-राज की।
गोपिन को प्रेम, श्रीगोवन्दजू को माधुरज
दासता हनू की, राजनीति रघुराज की।।

---

1. जयसाह सुजश प्रकाश ग्रन्थ से समुद्धृत।

सत्य दशरथ कौ, युधिष्ठिर को धर्म-धैर्य,
काव्य-वाल्मीकि, जयदेव कवि-राज की।
नारद कीसीख, सनकादिक की साधुताई,
कथा 'श्रीसर्वेश्वरशरण' महाराज की।"

★ ★ ★

देवनि के देव गुरुदेव सर्वेश्वरशरण,
भू पर प्रकट अवतार जोन धरतौ।
श्रीभागोत पुरान पुरुषोत्तम की,
ऐसी भाँति कहो कोविद उचरतौ।।
कौन साधु सेतौ जस लेतौ दान देतो कौन,
'गोविन्द' गरीब को कलंक कैसे हरतौ।
छाय जाति मूढ़ता पलाय जाती प्रेम भक्ति,
पातकी अनेक तिन्हें पावन कौन करतौ।[1]

(43) आचार्यवर्य 'श्रीजी' श्रीनिम्बार्कशरणदेवाचार्य

आपका नाम श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की आचार्य परम्परा में 43वीं संख्या में आता है। वि.सं. 1870 में आप आचार्यपीठासीन हुये थे।

जयपुर महाराज जगतसिंहजी के कोई सन्तान नहीं थी। वि.सं. 1875 में उनका स्वर्गवास हो गया। उनकी एक रानी गर्भवती थी, किन्तु जयपुर राज्य के परिकर के कुछ सामन्तों ने मोहनसिंह नामक एक व्यक्ति के राज्याभिषेक का निश्चय कर लिया था। कुछ सामन्तों ने उसको यह कहकर रोका कि रानीजी के प्रसव की प्रतीक्षा की जाये। इस पर दोनों पक्ष सहमत हो गये। महारानी भटियानी श्रीआनन्दकुमारीजी ने श्रीनिम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज से प्रार्थना की और उनकी आज्ञानुसार पुत्र प्राप्त्यर्थ श्रीसर्वेश्वर प्रभु की विशेष आराधना आरम्भ हुई। श्रीस्वामी परशुरामदेवाचार्यजी के हवनकुण्ड (धूनी) पर हवन करवाया गया। प्रभु कृपा से रानी साहिबा के राजकुमार का जन्म हुआ। उनका नाम जयसिंह (तृतीय) रखा गया। जयपुर राज्य की ओर से पूज्य गुरुदेव श्री श्रीजी श्रीसर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज का विशिष्ट-स्मृति महोत्सव (मेला) किया गया। उसमें राज्य की ओर से एक लाख रुपये खर्च हुये। आचार्यपीठ की ओर से भी इतना ही व्यय हुआ। वहमेला (भण्डारा) एक ऐतिहासिक था। घृत के लिए कुण्ड बनवाया गया था। चारों धामों के साधु-सन्तों

---

1. महाकवि रसिक गोविन्द विरचित।

को आमन्त्रित किया गया था। जयपुर के सुप्रतिष्ठित मण्डन कवि ने इस भण्डारे का विशद् वर्णन किया है।[1]

विक्रम सम्वत् 1878 में वृन्दावन धाम में एक विशाल मन्दिर की नींव लगी। इकावन हजार घनफुट जमीन पर पाँच वर्ष के सतत परिश्रम से जयपुर के शिल्पियों ने अनुपम मन्दिर का निर्माण किया। उस समय इस मन्दिर की उपमा पाने वाला वृन्दावन में कोई दूसरा मन्दिर नहीं था। रङ्ग मन्दिर, लाला बाबू, टिकारी मन्दिर, शाह बिहपरी आदि विशाल मन्दिर इसके पश्चात् ही बने हैं। केवल मदनमोहन, गोविन्द, गोपीनाथ, राधावल्लभ आदि 5-7 ही विशाल प्राचीन मन्दिर थे,किन्तु उनकी आकृति शैली भिन्न थी। जयपुर की राजमाता भटियानी रानी आनन्दकुमारीजी ने अपने गुरुदेव री 'श्रीजी' श्रीनिम्बार्कशरणदेवाचार्यजी महाराज के आदेशानुसार यह मन्दिर बनवाकर अपने नाम को भी प्रभु से संलग्न रखने के लिए विक्रम सम्वत् 1883 ज्येष्ठ शुक्ला नवमी को ठाकुर श्री आनन्द मनोहर वृन्दावनचन्द्र महाराज की प्रतिष्ठा करवाई, पूजा सेवा के लिए तीन ग्राम भेंट किए ओर श्री 'श्रीजी' महाराज की सेवा में अर्पित कर दिये, जो कि श्री 'श्रीजी' महाराज की बड़ी कुञ्ज के नाम से प्रसिद्ध है।

महारानी जी और स्व. नरेश की कृपापात्र रूपाँ बडारन ने भी इसी के साथ एक छोटा मन्दिर बनवाकर इसी दिवस श्रीरूपमनोहर वृन्दावनचन्द्रजी की प्रतिष्ठा करवाई। मध्य द्वारों पर संगमरमर के सुन्दर हाथी श्रीवृन्दावनचन्द्रजी के इन्हीं दोनों मन्दिरों में मिलते हैं। आचार्य श्री द्वारा विरचित कुछ फुटकर पद उत्सव संग्रहों में उपलब्ध होते हैं। आपकी प्रौढ विद्वत्ता एवं अपने आराध्य देव श्रीसनकादि संसेव्य भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु के श्रीचरणों में अगाध निष्ठा कैसी थी, यह तो आपके द्वारा निर्मित **श्रीसर्वेश्वर प्रपत्ति-स्तोत्र** से सहज ही विदित हो जाता है।

भक्ति क्षेत्र सम्बन्धी अनेक चरित्रों के अतिरिक्त स्वदेश की सुरक्षा एवं स्वतन्त्रता पर भी आपश्री की पूर्ण भावना थी। जब ब्रिटिश शासनकाल में अंग्रेजों द्वारा भरतपुर पर आक्रमण हुआ था, उस समय आपने अपने प्रिय शिष्य महाराज श्री भरतपुर की मदद के लिए 300 साधुओं की सेना श्रीनिम्बार्कार्चापीठ से भरतपुर के धर्मयुद्धार्थ भेजकर भारतीय संस्कृति-परम्परा का संपोषण किया था। इस प्रकार आपके इस जीवन-चरित्र से सभी को भगवद्भक्ति एवं देश-प्रेम की शुभ-प्रेरणा संप्राप्त होती है।

(44) आचार्यवर्य 'श्रीजी' श्रीव्रजराजशरणदेवाचार्यजी

'श्रीजी' श्रीनिम्बार्कशरणदेवाचार्यजी के पश्चात् श्रीव्रजराजशरणदेवाचार्यजी महाराज श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ पर अभिषिक्त हुये। आपके द्वारा रचित संस्कृत के

---

1. कवि मण्डन कृत 'जय साह सुजश प्रकाश' में उल्लिखित।

अनेक स्तोत्र भी मिलते हैं। आप भी अपने समय के प्रतिभा-सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान् थे। आप अपने चित्र में अंगुष्ठ और तर्जनी अंगुली को मिलाकर उपदेशमयी मुद्रा द्वारा शेष तीनों अंगुलियों को ऊपर उठाकर मानों यह सन्देश दे रहे हैं कि—ब्रह्म, जीव और जगत् ये तीनों तत्त्व अनन्त और अनादि तथा सत्य हैं। ब्रह्म स्वतन्त्र हैं, जीव और प्रकृति ब्रह्म के अधीन हैं। ब्रह्म और जीव का सेव्य-सेवक भाव ही परमोपादेय है। आपके द्वारा **'श्रीसर्वेश्वर प्रणति पद्यावली'** नामक स्तोत्र बड़ा ही सुललित है।

आपकी चरण पादुका श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ में विद्यमान है। **पाटोत्सव ज्येष्ठ शुक्ला 5 (पञ्चमी)** को मनाया जाता है।

(45) आचार्यवर्य श्रीगोपीश्वरशरणदेवाचार्य

धर्मनिष्ठ, त्याग-तपोमूर्ति, परम निस्पृही, महान् यशस्वी आचार्यपाद 'श्रीजी' श्रीगोपीश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज का जन्म जयपुर मण्डलान्तर्गत **हस्तेड़ा** नामक ग्राम में गौड़ ब्राह्मण वंश में हुआ था। आप श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ परम्परा में श्रीहंस भगवान् से 45वीं संख्या में विद्यमान थे। आपनेअपने धर्म पर आये हुए विपरीत वातावरण को देखकर जयपुर की लाखों रुपये की सम्पत्ति का तृणवत् परित्याग कर दिया था।

विक्रम सम्वत् 1900 में आप श्रीनिम्बार्काचार्य पीठासीन हुये। आपके समय जयपुर के राज्य सिंहासन पर महाराज सवाई श्रीरामसिंहजी (द्वितीय) आसीन थे।

यह प्रसिद्ध है कि आपके साथ हाथी, घोड़े, रथ, पालकी और उंट आदि सवारियाँ और श्रीसर्वेश्वर प्रभु के दुग्धाभिषेक वाली सुरभियाँ (गायें), ये सब सङ्ग चलते थे, किन्तु आप इन सब को श्रीसर्वेश्वर प्रभु का वैभव समझकर श्रीसर्वेश्वरजी को गले में धारण करके और हाथी पर भगवान् श्रीराधाकृष्ण की वाङ्मयी मूर्ति श्रीमद्भागवत को विराजमान करके पुष्कर आदि राजस्थान के पुनीत तीर्थस्थलों में स्वयं पैदल यात्रा करते थे। श्रीआचार्य चरणों के तपोमय इस आदर्श से सम्पूर्ण राजस्थान के भक्तजन अत्यन्त श्रद्धा-भाजन बने हुये थे। वास्तव में आपमें महाराज मनु द्वारा निर्धारित आचार्य के लक्षणों का प्रत्यक्ष दर्शन होता था।

इस प्रकार विक्रम सम्वत् 1901 से वि.सं. 1928 तक अनादि-वैदिक सद्धर्म का प्रचार-प्रसार करते हुये आचार्यपदारुढ़ रहकर आपने अनुकरणीय आदर्श की रक्षा करके श्रीनित्यकुञ्जविहारी सर्वाधार श्रीराधासर्वेश्वर प्रभु की नित्य लीला में प्रवेश किया। आपका **पाटोत्सव माघ कृष्णा 10 (दशमी)**को मनाया जाता है।

(46) आचार्यवर्य 'श्रीजी' श्रीघनश्यामशरणदेवाचार्य

अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्कपीठाधिपति श्रीघनश्यामशरणदेवाचार्यजी महाराज बड़े शान्त, सरल, समदर्शी एवं सौम्य मूर्ति थे। आपका जन्म भी **जयपुर**

मण्डलान्तर्गत हस्तेड़ा नामक ग्राम के उस गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ था। जिस वंश-परम्परा में आपके पूज्यगुरुदेव श्रीगोपीश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज का था। इस परम्परा के घर आज भी हस्तेड़ा में विद्यमान हैं। आप विक्रम सम्वत् 1928 से विक्रम सम्वत् 1963 तक आचार्यपीठ पर विराजमान थे। आपके समय में हाथी, घोड़ा, रथ, पालकी, ऊँट, बैल, गायें आदि सब प्रकार से वैभव का पूर्ण साम्राज्य था।

आप भगवान् श्रीराधामाधव तथा श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा के अतिरिक्त हरिनामस्मरण एवं जप-साधन में सतत संलग्न रहा करते थे। श्रीमद्भागवत का नित्य स्वाध्याय तथा वैष्णव सेवा आपका प्रधान लक्ष्य था। जोधपुर, बीकानेर, बून्दी आदि राज्यों में भी बड़े समारोहपूर्वक आपश्री की पधरावनी तथा कई बार तीर्थाटन आदि के आयोजन भी बड़े ठाठ-बाट पूर्वक होते रहे। आपके वचन में पूर्ण सिद्धि बल था। आपके शुभाषीर्वाद द्वारा कई भक्तों के मनोरथ पूर्ण हुये हैं। यहाँ भगवान् श्रीराधामाधव एवं श्रीसर्वेश्वर प्रभु के दर्शनों के अतिरिक्त इस तप:स्थली में श्रीस्वामीजी (श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी) महाराज की धूनी की विभूति और नालाजी का जल श्रद्धालु जनों की मनोभिलाषा पूर्ण करते हैं। आचार्य श्री घनश्यामशरणदेवाचार्यजी महाराज वाक् सिद्ध थे।

आपका **पाटोत्सव आश्विन कृष्ण षष्ठी** को मनाया जाता है।

(47) आचार्यवर्य 'श्रीजी' श्रीबालकृष्णशरणदेवाचार्य

जगद्गुरु-श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधिराजितम्।
श्रीबालकृष्णशरणदेवाचार्यं सदाऽऽश्रये।।

आपका आविर्भाव विक्रम सं. 1917 के चैत्र कृष्णा त्रयोदशी सोमवार को जयपुर राज्यान्तर्गत चाकसू तहसील के 'पूरण की नागल' नामक ग्राम में एक परम पावन गोड़ ब्राह्मण वंश में हुआ था। आपके पिताश्री का **नाम पं. श्रीगोपालजी शर्मा गौड़** था और माता श्री का नाम **श्रीललितादेवी** था। **विक्रम सम्वत्** 1963 चैत्र कृष्णा द्वादशी सामवार को 46 वर्ष की अवस्था में **आप** श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ **पर** सिंहासनारूढ़ हुये।

आचार्यप्रवर श्रीबालकृष्णशरणदेवाचार्यजी **महाराज** का वैदुष्य ओर सारल्य अनुपम था। श्रुति-स्मृति पुराणादि शास्त्रों भक्तिपरक ग्रन्थों तथा स्वसाम्प्रदायिक-वेदान्त-उपासना ग्रन्थों पर आपका [illegible] अनुपम एवं गम्भीर था। श्रीमद्भगवद्गीता तो आपश्री के कर कमलों से पृथक् [illegible] नहीं होती। **'श्रीसुदर्शन कवच'** आदि का पठन प्राय: चलता ही रहता था। श्रीगोपालमन्त्रराज का जाप तो प्रतिदिन अनुष्ठान के रूप में दशांश हवन के साथ चलता ही रहता था। सूर्य के प्रखर ताप में सभी ऋतुओं में आपश्री प्रतिदिन खड़े-खड़े श्रीमन्त्रराज का जाप क्रम एक घण्टे

से भी अधिक समय तक सूर्य की ओर बिना पलक गिराये एक दृष्टि रखते हुये किया करते थे। ऐसी कठोर उपासना आपकी यावज्जीवन चलती रही।

वस्तुतः आपकी शान्ति, कांति, दयालुता, गम्भीरता इतनी सराहनीय थी कि जिसे स्मरण करते ही आज भी प्रत्यक्ष की भाँति अनुभूति होने लगती है। इस प्रकार का महान् गुण गरिमापूर्ण जीवन जहाँ-तहाँ मिलना दुर्लभ है। आपके परमोच्चतम आदर्शमय जीवन से प्रभावित होकर अनेक शास्त्राचार्यों, मनीषीजनों ने आप श्री के शरणापन्न हो, शिष्यत्व ग्रहण किया था। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के लब्धप्रतिष्ठ महामनीषी पण्डित प्रवर श्रीरामप्रतापजी शास्त्री (प्रोफेसर नागपुर) ब्यावर (राजस्थान) निवासी ने आप से शरणागति प्राप्त कर अपना परम सौभाग्य माना था। पं. श्रीलाडिलीशरणजी ब्रह्मचारी न्याय-व्याकरण-काव्यतीर्थ भी आप श्री के ही शिष्य थे, जो कि आचार्यपीठ के अधिकारी पद पर भी रहे। जोधपुर के महान् यशस्वी बैरिस्टर श्रीहंसराजजी सिंघवी भी आपश्री ही के कृपापात्र थे। जोधपुर, बीकानेर, बून्दी आदि उच्चतम राज्यों के राजा-महाराजा, राजरानियाँ, मन्त्रीगण आपश्री के शिष्य-प्रशिष्य थे। मारवाड़ के प्रायः सभी जागीरदार आप में परम श्रद्धा रखते हुये शरणापन्न हो होकर कृतार्थता का अनुभव करते थे।

इसी प्रकार जब आचार्यश्री का दक्षिण यात्रा में हैदराबाद पधारना हुआ, तब हैदराबाद स्टेट के नवाब ने आपश्री की विराट् शोभायात्रा का आयोजन किया और स्वयं ने भावनायुक्त होकर अपनी श्रद्धा समर्पित की। राजस्थान निवासी सैनिक कमाण्डर श्रीहनुमानसिंहजी राठौड़ ने हैदराबाद की उस शोभायात्रा स्वागत समारोह में अतीव तत्परता से भावनायुक्त होकर अपनी सेवा प्रस्तुत की थी।

आप श्री के आचार्यत्व काल में ही अजमेर राज्य के सुप्रसिद्ध ठिकाना खरवा के राव साहब श्रीगोपालसिंहजी तथा श्रीमोडसिंहजी से अजमेर राज्य के तत्कलीन कमिश्नर साहब का सेना सहित इसी आचार्यपीठ में मिलना हुआ था।

. उदयपुर (मेवाड़) के हिज हाइनेस महाराणा साहब श्रीभोपालसिंह भी आप श्री के चरणों में अगाध निष्ठा रखते थे।

अनन्तश्री समलंकृत आचार्यवर्य ने 83 वर्ष पर्यन्त इस धरातल को सुशोभित किया और श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ को 36 वर्ष तक विभूषित कर वि.सं. 2000 ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदा को ऐहिक लीला संवरण कर श्री सर्वेश्वर राधामाधव प्रभु के नित्यदिव्य चिन्मय धाम में प्रवेश किया। आपका पाटोत्सव चेत्र कृष्णा द्वादशी को मनाया जाता है।

(48) आचार्यवर्य श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज

आपश्री वर्तमान में निम्बार्काचार्यपीठ निम्बार्कतीर्थ, (सलेमाबाद), वाया किशनगढ़ जिला अजमेर (राजस्थान) के अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु पद पर पीठासीन हैं, आपश्री का वृहद् वर्णन आपके व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व सम्बन्धी सप्तम अध्याय में परिवर्णित है।

आपश्री ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में शास्त्रोक्त विधि-विधान पूर्वक, एवं निम्बार्क-सम्प्रदाय-परम्परा नियमानुसारेण श्री श्यामशरणजी का युवराज पद के लिए अभिषेक किया है। **युवराज श्रीश्यामशरण जी** सौम्य, प्रत्युत्पन्नमति, नवनवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा सम्पन्न, सुसंस्कारित, भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत के समुपासक हैं। वर्तमान में आप सुगठित युवा रूप में हैं। आपका अध्ययन, मनन निदिध्यासन वृन्दावन धाम में श्री पं. वैद्यनाथ जी झा जैसे विलक्षण विद्वानों के सानिध्य में चला है। आप कुशाग्र बुद्धि के धनी हैं। वर्तमान में आपकी उच्च शिक्षा निम्बार्कपीठस्थ 'गंगासागर' में गुरुकुल प्रणाली से सम्पन्न हो रही है।

5. अखिल भारतीय जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) : परिचयात्मक पृष्ठभूमि

यह अति प्राचीन पौराणिक तीर्थ-स्थल पश्चिम रेलवे के स्टेशन किशनगढ़ (राजस्थान) से दस मील उत्तर की ओर परबतसर रोड पर अखिल भारतीय श्री निम्बार्काचार्य पीठ निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) जिला अजमेर-किशनगढ़ (राजस्थान) में विद्यमान है। इस तीर्थ की प्राचीनता के सम्बन्ध में भगवान् वेदव्यास कृत पद्मपुराणान्तर्गत महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलता है।[1] यह तीर्थ अरावली पर्वतमाला की विशाल उपत्यका में स्थित तीर्थों के गुरु श्री पुष्करराज क्षेत्रान्तर्गत पिप्पलाद तीर्थ एवं साभ्रमती नदी के समीप विद्यमान है। यह पिप्पलाद तीर्थ आज भी पीपलाद ग्राम के नाम से यहाँ सुविख्यात है, जहाँ पर कई विशाल पीपल के पेड़, शिव मन्दिर एवं गुफादि हैं, जो इसकी प्राचीनता एवं पवित्रता के द्योतक हैं।

इसकी प्राचीनता का उल्लेख श्रीपद्मपुराण में मिलता है, जिसमें महादेव जी अपनी परम्प्रिया जगदम्बा भगवती श्री पार्वती को सुना रहे हैं—

''पीप्पलादान्तस्तीर्थात्पिचुमन्दार्कमुत्तमम्।
तीर्थं साभ्रमतीतीरे व्याधिदौर्गन्ध्यनाशनम्।।
पुरा कोलाहले युद्धे दानवैर्विजिताः सुराः।
वृक्षेषु विविशुस्तत्र सूक्ष्माः प्राणपरीप्समा।।

---

1. पद्मपुराण, उत्तर खण्ड, अध्याय – 158 से वर्णित।

तत्र बिले स्थित: शंभु: अश्वत्थे हरिरव्यय:।
शिरीषेऽभूत्सहस्राक्षो निम्बे देव: प्रभाकर:।
एवमादि यथायोग्यं वृक्षेषु विबुधास्तथा।
यावत्कोलाहलो दैत्यो विष्णुना प्रभविष्णुना।।
हतो महादेवास्तावत् स्थितास्ते वृक्षमाश्रिता:।।
येन येन हि यो वृक्षो विबुधेन समाश्रित:।।
स तु तन्मयतां यातस्तस्मात्तं न विनाशयेत्।
इति सूर्यस्य विश्रामात्पिचुमन्दार्कमुक्तकम्।।"[1]

अर्थात् महादेव जी पार्वती से कहते हैं कि—

"पिप्पलादतीर्थ से कुछ दूर साभ्रमती नदी के किनारे सम्पूर्ण आधि-व्याधियों का विनाश करने वाला पिचुमन्दार्क (निम्बार्कतीर्थ) है। प्राचीन समय में कोलाहल नामक दैत्य हुआ था। उसके साथ देवताओं का युद्ध हुआ था। उसके प्रहारों से घबड़ाकर अपने प्राणों की रक्षार्थ देवता लोग सूक्ष्म रूप धारण करके वृक्षों पर जा चढ़े। जब तक महाविष्णु ने कोलाहल दैत्य का वध नहीं किया, तब तक शंकर जी विल्व वृक्ष पर, विष्णु जी पीपल वृक्ष पर, इन्द्र भवान् शिरीषपुष्प पर तथा सूर्य नीमवृक्ष पर चढ़े रहे। ये देवता जिन-जिन वृक्षों पर रहे थे, वे वृक्ष तद्देवनाम कहलाये। इसी से इन वृक्षों का काटना निषिद्ध माना जाता है। जिस स्थल पर निम्ब के वृक्ष पर भगवान सूर्य ने वास किया था, यह निम्बार्कतीर्थ कहलाया।"

इस प्रकार इस पुष्कर क्षेत्र की पावन भूमि में कश्यप, कपिल, जमदग्नि, अगस्त्य, भरद्वाज, विश्वामित्र प्रभृति अनेक ऋषि-महर्षियों ने कन्दमूल फलादि का आहार करके हजारों वर्ष पर्यन्त तपश्चर्या की है। वहाँ के पर्वत-कन्द्रराएँ एवं कुण्ड आज भी इसका प्रमाण हैं। महर्षि दधीचि ने यहाँ पर केवल पीपल के पत्ते खाकर ही तपश्चर्या की थी। इसी कारण इसका पिप्लाद नाम पड़ा। जहाँ पर विराजमान होकर उन्होंने तप किया, वह स्थान पिप्लादतीर्थ कहलाया। इस प्रकार साभ्रमती नदी भी यहीं है, जो श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ से पश्चिम की ओर एक मील की दूरी पर करकेड़ी मार्ग में पड़ती है। लेकिन एक समस्या सामने आ सकती है—वह यह है कि साबरमती तो अहमदाबाद के पास गुजरात में है, यहाँ कहाँ? साभ्रमती शब्द का ही अपभ्रंश होकर साबरमती नाम हो गया होगा। इन प्रश्नों का समाधान भी यहाँ पद्मपुराण के कतिपय प्रमाणों द्वारा स्पष्ट हो जाता है। अरावली पहाड़ी आबू माउण्ट तक ही है, आगे गुजरात में साबरमती के पास नहीं। अरावली पर्वत, पुष्करारण्य पिप्लादतीर्थ, निम्बार्कतीर्थ यह

---

1. पद्म पुराण

सब साबरमती के पास कहाँ? यह सब तो इसी साभ्रमती नदी के पास हैं। पद्मपुराण के अन्तर्गत साभ्रमती माहात्म्य में कहा गया है—

पितृतीर्थ-गयानाम सर्वतीर्थवरं शुभम्।
यत्राऽऽस्ते देवदेवेश: स्वयमेव पितामह:।।[1]

इस प्रकार उक्त वैद्यनाथ महादेव, गया कुण्ड, नंदा सरस्वती और ब्रह्माणी का मन्दिर—ये सभी पास में बतलाये गये हैं, अत: ये सब बातें साबरमती के पास गुजरात में कहाँ? ये तो सभी इसी पुष्करारण्य वाली साभ्रमती के पास हैं। अत: पद्मपुराण के प्रमाणानुसार यही साभ्रमती निश्चित है, जो पुष्करारण्य में होकर बहती है। इसी के पास श्रीनिम्बार्कतीर्थ है।—"तीर्थ: साभ्रमती तीरे[2]" साभ्रमती नदी के किनारे पर यह तीर्थ है। इस नदी के चारों युगों में भिन्न-भिन्न नाम रहे हैं, यथा—

कृते कृतवती नाम त्रेतायां गिरिकर्णिका।
द्वापरे चन्दना नाम कलौ साभ्रमती स्मृता।[3]

अत: श्री पुष्करारण्य में पिप्लादतीर्थ से कुछ दूर साभ्रमती के तट पर श्रीनिम्बार्कतीर्थ का जो वर्णन है, वह तीर्थ यही है। इसके अतिरिक्त ओर एक बात स्मरणीय है, पद्मपुराण के इस निम्बार्कतीर्थ माहात्म्य में ही आया है कि कोलाहल नामक दैत्य के भय से यहाँ भगवान् सूर्य ने नीम का आश्रय लिया और भगवान् विष्णु ने पीपल वृक्ष का। अत: निम्बार्कतीर्थ के नीम-पीपलादि वृक्षों को काटने का यहाँ कई शताब्दियों से निषेध रहा है। किशनगढ़ राज्य के संस्थापन सं 1643 या 1664 वि. के पहले भी यहाँ देववृक्षों का काटना निषिद्ध था। किशनगढ़ राज्य के 210 ग्रामों में कहीं भी कोई इन वृक्षों को नहीं काटता था। सूखा या हरा नीम्बादि देववृक्ष यदि गिर जाता तो राज्य एवं प्रजा जन उसका उपयोग भी नहीं करते थे। उसे भगवत्सवो के उपयोग में लगाया जाता था। इस प्रकार की मर्यादा बिना किसी बाधा के भारत-स्वत्तन्त्रता काल अर्थात् सन् 1947 तक चलती रही।

यह नियम तो सदा से ही है कि यात्रा करने वाले तीर्थ-या करके जबतक तीर्थगुरु श्रीपुष्करराज में आकर स्नान न कर लें तब तक यात्रा सफल नहीं होती। आज भी इस प्रकार की मान्यता विद्यमान है। चारों धाम, सप्तपुरी, गंगा, यमुना आदि की यात्रा कर पुष्कर स्नान करने के लिए आने वाले जन निम्बार्कतीर्थ में स्नान करके फिर पुष्कर जाते थे। इस प्रकार नित्यप्रति यात्रियों का यातायात देख विक्रम की 16वीं शताब्दी में एक प्रसिद्ध तान्त्रिक सिद्ध मुसलमान फकीर मस्तिङ्गगाह ने

---

1. पद्म पुराणस्थ साभ्रमती महात्म्य।
2. पद्म पुराण।
3. पद्म पुराण।

निम्बार्कतीर्थ पर अपना अड्डा जमा लिया था। उसके द्वारा धर्म–परिवर्तन आदि अनेक अत्याचारों एवं धर्म–मर्यादाओं पर कुठाराघात देख धार्मिक जनता ने यहाँ का आधिपत्य तत्कालीन श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधिपति आचार्य–प्रवर जगद्गुरु श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज के अधीन जानकर उनसे रक्षार्थ प्रार्थना की, जो मथुरा में श्री नारदटीला पर विराजमान थे। यदि यहाँ उनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता, तो धार्मिक जनता इतनी दूर जाकर उनसे ही प्रार्थना क्यों करती और वे ही अपने परम्प्रिय शिष्य जो श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा में संलग्न रहते थे, इसकी रक्षार्थ भेजने का अनुरोध क्यों करते ?

श्री परशुराम देवाचार्य जी महाराज इस बीहड़ वन में जमकर यहाँ के वातावरण सुधार हेतु अनेक कष्ट सहे।

सन्त जन दयालु होते हैं। वे स्वयं कष्ट सहन कर परोपकार में रत रहते हैं। इस प्रकार गुरुजी की आज्ञा से श्रीपरशुरामदेवाचार्य जी यहाँ आये। उनके यहाँ पहुँचने के बाद यवनों ने धार्मिक जनता पर आतंक फैलाना बन्द कर दिया। इसके बाद भी मथुरा जैसे स्थान को छोड़कर यहाँ पर पीठ की स्थापना का क्या उद्देश्य था ? यदि इधर भी पीठ स्थापना का विचार हुआ तो फिर तीर्थराज श्रीपुष्करराज को छोड़कर इस बियावान जंगल में क्यों ? अत: यही कहा जा सकता है कि यहाँ पर श्रीनिम्बार्कतीर्थ था और इसका सम्बन्ध आचार्यप्रवर (गुरु) जगद्गुरु श्री हरिव्यास देवाचार्य जी से भी था। इसी कारण यहाँ प्रधान श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ की स्थापना हुई। अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ के संस्थापक अनन्तश्री विभूषित जगद्गुरु श्रीमन्निम्बार्काचार्य **श्री परशुरामदेवाचार्य जी** थे। इसी की कार्यभार परम्परा के 48वें जगद्गुरु श्री **'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्यजी** है, जो वर्तमान में श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधिपति हैं। इनके अन्वेषण का श्रेय अधिकारी श्री **ब्रजवल्लभ शरण जी वेदान्ताचार्य**, वृन्दावन को है। आज से लगभग 40 वर्ष पूर्व अधिकारी जी को इसी तीर्थ के सम्बन्ध में **'पिचुमन्दार्क तीर्थ'** के नाम से एक लेख वाराणसी से प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र 'गीताधर्म' में प्रकाशित हुआ था। जब श्री निम्बार्काचार्य पीठ में अखिल भारतीय सनातन धर्म सम्मेलन हुआ, तब धार्मिक जनता की माँग पर सलेमाबाद के स्थान पर इसका नामकरण **'निम्बार्कतीर्थ'** किया गया। यह कोई नवीन नामकरण नहीं किया गया है। **'श्रीनिम्बार्कतीर्थ'** की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए पद्मपुराण में लिखा है—

निर्म्बाकत: परं तीर्थं न भूतो न भविष्यति।
अत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुक्ति–भागी भवेद् ध्रुवम्।।[1]

1. पद्म पुराण उ. खण्ड अध्याय 158

अर्थात् श्री महादेव जी पार्वती जी को निम्बार्कतीर्थ माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—"हे पार्वती! निम्बार्कतीर्थ से बढ़कर और दूसरा कोई तीर्थ नहीं है और न ही भविष्य में ऐसा तीर्थ होगा, क्योंकि इस तीर्थ में केवल स्नान और आचमन करने मात्र से ही मनुष्य मुक्ति का पात्र बन जाता है।

सलेमाबाद नामकरण

सलेमाबाद नामकरण की मध्यकालिक ऐतिहासिक परम्परा इस प्रकार रही है। यह नाम 1515 वि. सम्वत् की अजमेर के सूबेदार साँवत सिंह भाटी व उनके वंशजों की तवारिखें में अंकित है। अकबर बादशाह का अजमेर आगमन 1597 वि.सं. के आसपास माना जाता है। अकबर बादशाही से पूर्व सलेमाबाद टकसाल के सलेमाबाद मुद्रांकृति ताम्बे के सिक्के भी प्रचलित हुए हैं। जनश्रुति है कि शेरशाहसूरी तथा बादशाह अकबर का इस पीठ पर आगमन हुआ है, यह बात माननीय सन्त ख्वाजा साहब मोईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की जियारत से जुड़ी होने से सत्य हो सकती है। सलेमाबाद के नाम साम्य पर शेरशाह के पुत्र का नामकरण इस्लामशाह उर्फ सलीम होना और स्वामीजी के वरदान से उसका जन्म होना माना जाता रहा है, क्योंकि मन्दिर स्थापना के लिए अपनी ऐतिहासिक गढ़ी समर्पित करने वाले स्वामीजी के प्रमुख शिष्य खेजडला के श्रीगोपालदासजी भाटी के साथ दिल्लीपति शेरशाह सूरी का आगमन तथा राधामाधव के दर्शन की घटना समकालिक सन्त टीलाचार्यजी की वाणी से प्रमाणित है तथा स्वामी द्वारा धूणी से कई दुशाले प्रकट करने की जनश्रुति से भी पुष्ट है—

''सेरसाह दिल्लीपति प्रणम गोपालदास
सेवक सलेमाबाद माधव जस गायो है।"

जनश्रुति यह भी कि मस्तिङ्गशाह नामक तान्त्रिक एवं मायावी सन्त को आचार्य श्री परशुरामदेवाचार्यजी ने परास्त कर विशिष्ट ख्याति प्राप्त की थी। इन सब घटनाओं का सलेमाबाद से सम्बन्ध रहा है, पर सलेमाबाद नामकरण का प्रमुख हेतु वि.सं. 1480 की ऐतिहासक घटना है, जब राव चूँडा को मुल्तान के बादशाह सलीमशाह ने भाटियों और मोहिलों के सहयोग से हराया था, इस योजना को सफल बनाने के लिए ससैन्य जियारत के लिए आने वाले सलीम बादशाह का यहाँ कई वर्षों तक छावनी सहित मुकाम किया जाना विश्वसनीय है। अत:मुल्तान के सलीम बादशाह के आबाद होने से इस स्थानका नाम सलीमाबाद प्रसिद्ध हुआ।

श्रीनिम्बार्कतीर्थ के दर्शनीय स्थल एवं पारमार्थिक संस्थाएँ

श्रीसर्वेश्वर भगवान्

यहाँ के प्रमुख पूजा-अर्चावतार विग्रहों में श्रीसर्वेश्वर भगवान् (सर्वेश्वर प्रभु) के दर्शन मुख्य हैं। इस विश्व की एकमात्र प्रतिमा की सनकादिकों से लकर सभी

आद्याचार्यों द्वारा पूजा-अर्चना एवं आराधना की जाती रही है। आचार्यप्रवर जहाँ भी रहते हैं, श्रीसर्वेश्वर प्रभु साथ ही रहते हैं।

ठाकुर श्रीराधामाधव, गोपीजनवल्लभ जी

आचार्यपीठ में विराजमान श्री गोपीजनवल्लभ जी का नामोल्लेख अथर्ववेदीय श्रीगोपालतापिनी के अनुसार है। अत: अष्टादशाक्षर श्री गोपाल मन्त्र की उपासना को सार्थक करने वाली यह प्राचीन सेव्य प्रतिमा है। श्रीराधामाधव जी की छटा दर्शनीय है। एक बार श्रीराधामाधव जी की प्रतिमा के दर्शन हो जाने पर निम्न पदुक्तिचरितार्थ हो जाती है—

जिन आँखिन सों यह रूप लख्यो
उन आँखिन सों अब लखिये का।।

यह प्रतिमा श्रीगीतगोविन्दकार रसिक-शिरोमणि श्री जयदेव कवि का सेव्य स्वरूप है। यह सं. 1829 वि. ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को यहाँ पधारकर विराजमान हुए।[1]

आचार्य मन्दिर

श्रीराधामाधव तथा सर्वेश्वर प्रभु के बायें उत्तर भाग वाले मन्दिर में श्रीगोपीजनवल्लभ जी एवं श्री बाँके जी के दर्शन किये जा सकते हैं व इसके दायें भाग में आचार्य मन्दिर है, जहाँ पर श्रीसनकादिक, श्रीहंस, श्रीनिम्बार्क, श्रीनारद तथा श्रीनिवासाचार्य (इस आचार्य पंचायत) के सुन्दर दर्शन हैं। आचार्य मन्दिर से दक्षिण पूर्व में 'वेद मन्दिर' हैं जहाँ चारों वेद एक साथ प्रतिष्ठित हैं। दक्षिण में नीचे उतरने पर 'सिद्धपीठ' के दर्शन हैं, यहाँ आचार्य सिंहासन और श्रीपरशुराम देवाचार्यजी महाराज के चित्रमय इतिवृत्तों की झाँकी है।

श्रीनिम्बार्कतीर्थ (सरोवर)

यह तीर्थ स्थान चारों ओर से ब्रज प्राचीन लता-वल्लरियों के सदृश सुशोभित है। यह प्रदेश श्री निम्बार्काचार्य पीठ की स्थापना काल से ही प्राय: अजल और अरस था। प्रौढ लोगों का कहना है कि कुछ समय पूर्व इस तीर्थ के चारों ओर सुन्दर उद्यान भी था। यहाँ दस-बारह हाथ गहरा गड्ढ़ा खोदने पर ही जल निकल आता था। समय की गतिविधि के कारण वि.सं. 1956 से लेकर 2031 तक अच्छे प्रदेशों में जलाभाव पड़ गया, उत्पादन भी कम हो गया। परन्तु इसी पीठ में सं. 2031 में अखिल भारतीय विराट् सन्त धर्मसम्मेलन होने के पश्चातवर्ती काल में इतनी वर्षा हुई है कि

---

1. किशन गढ़ स्टेट की तावारीख में उल्लिखित।

श्रीनिम्बार्कतीर्थ के चारों ओर जल ही जल हो गया और श्रीराधामाधव जी की कृपा से फिर वही सरसता आ गई है।

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) के अन्यान्य देव मन्दिर

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) के अन्य मन्दिरों में मुख्यत: निम्नलिखित मन्दिर हैं—

1. श्रीविजयगोपालजी का मन्दिर (यह श्री आचार्यपीठ के संरक्षण में है)
2. श्रीबिहारी जी का मन्दिर
3. श्रीनृसिंह जी का मन्दिर
4. श्रीआनन्दघनजी का मन्दिर
5. श्रीगोपाल जी का मन्दिर
6. श्री टीलास्वामी जी का मन्दिर
7. बाल के हनुमान् जी का मन्दिर
8. तीर्थ हनुमान जी
9. सिद्ध गणपति मन्दिर
10. शीतला मन्दिर एवं प्राचीन शिवालय आदि।

समाधि स्थल

सोलहवीं–सत्रहवीं शताब्दी के अनन्तर जिन–जिन आचार्यों का यहाँ लीला–विस्तार हुआ, उनमें श्री वृन्दावन देवाचार्य जी महाराज की समाधि पुरानी है। इन समाधियों का आश्रय लेने वाले को तिजारा ज्वर आदि रोगों से भी मुक्ति मिलती है तथा श्रद्धालु भक्तजनों की कामनाएँ भी पूर्ण होती रही है।

विशाल–वापिका

नगर में एक विशाल वापिका (बावड़ी) है, जिसका निर्माण सुन्दर पत्थरों के द्वारा किया गया है। यह बोहरे जी की बावड़ी है, किन्तु इसके सम्बन्ध में एक बात प्रचलित है कि इसमें चोर के घुस जाने पर छहमास तक उसके पता न लगने के कारण इसे 'चोर बावड़ी' भी कहते हैं। इसका निर्माण वि.सं. 1715 में यहाँ के कुबेरवत् धनाढ्य नववाणा बोहरा हृदयराम ने कराया था, जिसके सम्बन्ध में शिलालेख पर दोहा आज भी विद्यमान है—

अविचल काम अनूप जल जाति जुजैन जाय।
प्राज्ञापति स्याही लगे ब्रह्म हरीची बाय।।[1]

---

1. वि.सम्वत् 1715 लिखित बो. हरदोराम

श्रीधर–वाटिका

सलेमाबाद निवासी पं. श्रीधर शिवलाल जी ज्ञान सागर छापा–खाना, बम्बई वालों द्वारा निर्मित इस वाटिका में श्री हनुमान जी महाराज के सुन्दर दर्शन हैं। अतः इसे श्री हनुमान जी की बगीची के नाम से भी जाना जाता है। श्री निम्बार्काचार्यपीठ में होने वाले जन्माष्टमी महोत्सव के तीसरे दिन इस बगीची में श्री हनुमान जी का बड़ा भारी मेला लगता है।

पुस्तकालय

आचार्यपीठ में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का भी बृहद् सागर (बृहद भण्डार) है। इस पुस्तकालय में श्री नारद पञ्चरात्र आदि दुलर्भग्रन्थ हैं। महाभारत, भागवत आदि विशाल ग्रन्थ समुपलब्ध हैं, अनेक ग्रन्थ अस्त–व्यस्त भी हो गये हैं।

सागरमाला पर्वत

आचार्यपीठ की पश्चिम दिशा में लगभग 2 मील पर यह पर्वत है। इसकी उपत्यकाएँ छह हजार बीघा में विस्तृत थीं, जहाँ पर केवल गौचारण होता था। यहाँ पर प्राणियों का वध करना तो दूर, नरेश भी आखेट नहीं कर सकते थे। पशुपक्षियों पर गोली चलाने वाले की छह मास की सजा हो जाती थी। उस समय यह ऋषियों का तपोवन बना हुआ था। लेकिन विक्रम संवत् 1789 में एक भयंकर सिंह से आक्रान्त होकर महाराज श्री वृन्दावन देवाचार्य जी ने किशनगढ़ नरेश श्री साँवत सिंह को उसका वध करने की आज्ञा दे दी थी। इस पर्वत पर बहुत सी जड़ी–बूटी भी मिलती हैं।

तेजाजी का चबूतरा

तेजाजी का चबूतरा भी दर्शनीय स्थल है। तेजाजी बड़े गौ भक्त थे। इनका चबूतरा सलेमाबाद में बना हुआ है। साँप के डसे हुए व्यक्ति को यहाँ बाँधा जाता है, जिससे साँप का विष उतर जाता है। भाद्रपद शुक्ला दशमी (तेजा दशमी) को सर्वत्र श्री तेजाजी के स्थानों में मेला लगता है व सेवा अर्चना की जाती है।

प्रदक्षिणा (परिक्रमा)

यहाँ आचार्यपीठस्थ श्री राधामाधव सर्वेश्वर भगवान् की अन्दर मन्दिर में तो परिक्रमा होती ही है, उसके बाहर भी दो प्रदक्षिणा होती हैं। एक केवल मन्दिर मात्र की होती है ओर दूसरी समस्त नगर (पुरी) की प्रदक्षिणा होती है। गिरिराज की परिक्रमा की भाँति यहाँ की परिक्रमा करने वाले भक्तों की कामनाएँ पूर्ण होती हैं।

शिला लेख

एक हजार वर्ष पूर्व इस निम्बार्कतीर्थ के सन्निकट एक बहुत विशाल नगर बसा हुआ था,जिसे बहवलपुर कहते थे। दैवयोग से इस नगर का ध्वंस हो गया। आचार्यपीठ के चारों ओर 2–2, 1–1 मील की दूरी पर शिलालेख प्राप्त हुए हैं, जिनसे प्राचीन नगर का

प्रमाण सिद्ध होता है। इसी प्रकार आचार्यपीठ एवं निम्बार्कतीर्थ ने भी अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। इसका यवन, हूण, चोल आदि आतंकवादियों के काल से ध्वंस एवं पुनरुद्धार होता रहा है। फिर भी यह प्राचीन पुनीत 'हंसावतार स्थल' श्रीनिम्बार्कतीर्थ अखिल भारतीय जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य पीठ जन कल्याण में अग्रसर है।

अखिल भारतीय श्री निम्बार्काचार्यपीठ, सलेमाबाद की पारमार्थिक संस्थाएँ

(i) 'श्रीसर्वेश्वर' मासिक पत्र

यह शोधपूर्ण धार्मिक, मासिक पत्र विगत तीस वर्षों से आपश्री (वर्तमान श्री श्रीजी महाराज) के संरक्षण में श्री 'श्रीजी' मन्दिर वृन्दावन से प्रकाशित हो रहा है। इसके अनेक विशेषांक प्राय: सभी के लिए संग्रहणीय हैं।

(ii) श्रीनिम्बार्क मुद्रणालय

इस प्रेस में पीठ का धार्मिक साहित्य प्रकाशित होता है। भक्त जनों ने अपना-अपना प्रकाशन सम्बन्धी कार्य भेजकर इसको प्रगतिशील बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

(iii) 'श्रीनिम्बार्क'पाक्षिक पत्र

यह पत्र पाक्षिक रूप से अंग्रेजी मास की 1 और 15 तारीख को प्रतिपक्ष प्रकाशित होता है। इसके मुख पृष्ठ पर सदुपदेश के अतिरिक्त धार्मिक लेख, कविता एवं जीवनोपयोगी सुन्दर साम्रगी रहती है।

(iv) श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय

राजस्थान सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त इस विद्यालय में छात्रों को माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर द्वारा निर्धारित प्रवेशिका, उपाध्याय एवं संस्कृत विश्वविद्यालय की शास्त्री आचार्य (निम्बार्क दर्शन) आदि की परीक्षाएँ दिलाई जाती हैं।

(v) श्रीनिम्बार्क दर्शन महाविद्यालय

इस विद्यालय में सभी राज्यों के छात्रों को (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी) की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री एवं आचार्य की परीक्षाएँ दिलाई जाती हैं। यह संस्था उक्त वाराणसी विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त है।

(vi) श्रीसर्वेश्वर वेद विद्यालय

इसमें वेद-शास्त्रों का अध्ययन गुरुकुल पद्धति से कराया जाता है। यह भारत सरकार से मान्यता प्राप्त रहा है।

(vii) श्रीराधासर्वेश्वर छात्रावास

इस छात्रावास में प्राय: दोनों महाविद्यालयों (संस्कृत महाविद्यालय एवं दर्शन महाविद्यालय) के कुल मिलाकर 50 छात्रों के रहने की व्यवस्था है। भोजन, वस्त्र,

पुस्तक, प्रकाश, परीक्षा शुल्क एवं परीक्षा देने हेतु आने-जाने का मार्गव्यय भी आचार्यपीठ की ओर से देय होता है।

(viii) श्रीनिम्बार्क पुस्तकालय

यह एक बहुत प्राचीन पुस्तकालय है, इसमें लगभग 2000 प्रकाशित एवं अप्रकाशित (हस्तलिखित) ग्रन्थ हैं। इसमें संस्कृत हिन्दी एवं दर्शन के अप्राप्य एवं दुर्लभ ग्रन्थों की सुलभता है।

(ix) श्रीहंस वाचनालय

इस वाचनालय में श्री आचार्यपीठ द्वारा संचालित सर्वेश्वर मासिक तथा निम्बार्क पाक्षिक के अतिरिक्त मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक एवं दैनिक समाचारादि पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। यहाँ पर बैठकर पढ़ने की सार्वजनिक उत्तम व्यवस्था है।

(x) श्रीराधामाधव गौशाला

श्रीराधामाधव गऊशाला में गायों के आवास की समुचित व्यवस्था है। यहाँ का गोदुग्ध एवं गोधृत प्रतिदिन भगवत् सेवा-पूजा के कार्य में लाया जाता है। गोबर खाद के रूप में कृषि की उपयोगिता में लाया जाता है।

संलग्न संस्थाएँ

आचार्यपीठ की उक्त संस्थाओं के अतिरिक्त कुछ संलग्न संस्थाएँ भी हैं, जिनका विवरण निम्न प्रकारेण है—

1. श्रीसर्वेश्वर प्रेस, मुद्रणालय, श्री वृन्दावनधाम
2. श्रीसर्वेश्वर संस्कृत शोध विद्यालय, श्रीधाम, वृन्दावन
3. श्रीसर्वेश्वर छात्रावास, श्रीधाम, वृन्दावन
4. श्रीसर्वेश्वर पुस्तकालय, मदनगंज (किशनगढ़)
5. श्रीराधामाधव पुस्तकालय, निम्बार्क कोट, अजमेर
6. श्री निकुंज पुस्तकालय, वृन्दावन
7. श्रीसर्वेश्वर शोध प्रकाशन, वृन्दावन
8. श्रीनिम्बार्क ग्रन्थमाला निम्बार्ककोट, अजमेर
9. श्रीसर्वेश्वर मासिक, वृन्दावन
10. श्रीसर्वेश्वर सत्संग प्रचार केन्द्र मदनगंज (किशनगढ़)
11. श्रीनिम्बार्क सत्संग मण्डल, अजमेर
12. श्रीनिम्बार्क भजनाश्रम, परशुरामद्वारा पुष्कर
13. श्री निकुंज सत्संग मण्डल, वृन्दावन

इन संस्थाओं के अतिरिक्त मधुकरी द्वारा सन्तों की सेवा की जाती है। सन्त सेवा स्थलों में श्री निम्बग्राम, वृन्दावन, श्रीनिम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद), पुष्कर एवं श्रीनिम्बार्कनगर (कुम्भ के पर्वपर) विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के दर्शनीय उत्सव-महोत्सव

1. **अक्षय तृतीया**—इस दिन भगवान् श्रीराधामाधव की चन्दन-शृङ्गार युक्त मनोहर झाँकी के दर्शन होते हैं।

2. **श्रीराधामाधवजी का पाटोत्सव**—भगवान् का मनोहर फूल-बंगला में दर्शन।

3. **रथ-यात्रा महोत्सव**—निज मन्दिर के बाहर जगमोहन में पुजारीगण एवं आचार्यश्री के करकमलों द्वारा रथों की अनुपम दौड़।

4. **श्रीगुरु-पूर्णिमा**—आज के दिन बृहद् रूप में भक्त समुदाय एकत्रित होकर श्रीआचार्य का चरण पूजन करते हैं।

5. **झूलनोत्सव**—यह उत्सव भी दर्शनीय है, पर आचार्यश्री इस समय श्रीवृन्दावन में विराजते हैं।

6. **श्रीकृष्ण जयन्ती महोत्सव**—यह तो यहाँ का ऐतिहासिक दर्शनीय मुख्य महोत्सव (बृहद्मेला) है। पीठ के संस्थापक श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी का पाटोत्सव भी इसी के अन्तर्गत है।

7. **शरदपूर्णिमा**—नख शिख-पर्यन्त सुन्दर शृंगार युक्त श्रीराधामाधव की मनोहर दिव्य झाँकी के दर्शन।

8. **विजयादशमी**—सुदर्शनादि समस्त आयुधों क पूजा के साथ-साथ शमी पूजन एवं श्रीरामलीलानुकरण होता है।

9. **दीपोत्सव**—दीप-माला की परम मनोहर सुन्दर सजावट की जाती है।

10. **अन्नकूट**—श्रीगोवर्धन पूजा एवं छप्पन-भोग के दर्शन होते हैं।

11. **फूल-डोल**—फलों के हिंडोले में श्रीप्रिया-प्रियतम के दर्शन एवं रंग भरी पिचकारियों की बहार आयोजित की जाती है।

इन स्थानीय उत्सवों के अतिरिक्त आचार्यश्री के तत्त्वावधान में ही श्रीराधाजयन्ती, श्रीराधासर्वेश्वर मन्दिर मदनगंज, श्रीमद्भागवत जयन्ती, निम्बार्ककोट, अजमेर तथा श्रीहंस-सनकादि जयन्ती और श्रीनिम्बार्क जयन्ती परशुरामद्वारा श्रीपुष्करराज में बड़े समारोह पूर्वक मनाए जाते हैं।



तृतीय-अध्याय

वैष्णव भक्ति, धर्म-दर्शन एवं सम्प्रदाय-चतुष्टय

1. वैष्णव भक्तितत्त्व : उद्‌भव एवं विकास

वैष्णव भक्तितत्त्व

'भक्ति' शब्द भज् (सेवायाम्) धातु से 'तिन्' प्रत्यय लग कर बना है जिसका अर्थ है भगवान की सेवा। क्ति का निर्वाह प्रेम से होता है। अस्तु, ईश्वर में परानुराग तथा उत्कृष्ट प्रेम ही भगवद्‌भक्ति है।[1] ज्ञानी पुरुष कर्त्तव्यबुद्धि से प्रेरित हो निष्काम भाव से भगवान से प्रेम करता है। वही भगवान का भक्त है, वही उस अनन्त शक्तिमान् के प्रेम का अधिकारी है।[2] जब वह अपने आराध्यदेव के प्रति हृदय में रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर स्तुति, कीर्तन आत्मनिवेदनादि करने लगता है—तभी उसकी भक्ति प्रकट होती है। जब इस अनुराग सूचक भक्ति के मूलाधार भगवान विष्णु होते हैं तब इसे वैष्णव भक्ति के नाम से व्यवहृत किया जाता है। वैष्णवाचार्यों ने भक्ति को मोक्ष, ब्रह्म साक्षात्कार, ईश्वर तादात्म्य, विष्णुसान्निध्य आदि नामोल्लिखित 'साध्य तत्त्व' का आधार बताया है। वैदिक ज्ञान-कर्म-उपासना की दुरूहता ने उदार हृदय वैष्णव-भक्तों को उससे अपेक्षाकृत सुगम भक्तिमार्ग की ओर अग्रसर किया; फलत श्रवण, कीर्तन, शरणागति, आत्मनिवेदन, दैन्य, पादपूजन आदि साधनों द्वारा प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। इस भक्ति में प्रेम को साध्य और साधन दोनों रूपों में प्रतिष्ठित किया गया।

वैदिक काल से प्रारम्भ होकर यही वैष्णव-भक्ति-तत्त्व मध्ययुग में आकर लोक ग्राह्य हुआ। इसके उद्‌भव और विकास के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने अनेक भ्रान्तियाँ उपस्थित कर दी हैं। वैष्णव-भक्ति-भावना स्वरूप वेदों, उपनिषदों-पुराणों में विकसित होता हुआ आया था। वही मध्ययुगीन संत-भक्तों के लिए ग्रहणीय बन गई।

---

1. सा परानुरक्तिरीश्वरे—शांडिल्य सूत्र संख्या 2
2. आत्मारामाश्च मुनयोनिग्राथा अप्युरुक्रमें। कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिमित्थंभूतगणौ हरिः।। (भागवत 1/7/10)

हमारे चरित नायक श्री परशुरामदेव भी मध्ययुगीन वैष्णवाचार्य एवं संत-भक्त कवि थे। उनको भक्ति की वही सुदृढ़ परम्परा मिली थी।

भक्ति का उद्भव

वेद कर्मकाण्ड एवं ज्ञानोपासना के उद्गम है। उनमें उपलब्ध होने वाली देवतातत्त्व के प्रति उपासक की अनुराग सूचक तथा प्रेमपरक अभिव्यक्तियाँ भक्ति प्रेरित है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में भी अनुराग सूचक भक्ति का सर्वथा अभाव नहीं मानना चाहिए। कर्मकाण्ड के साथ भक्ति की कल्पना भी प्रसूत हो चुकी। मंत्रोपासना में विशिष्ट देवताओं के प्रति मार्मिक अनुभूतियाँ इस बात की द्योतक है। यही भक्ति-परम्परा सूर्य, उषा, वरूण, अग्नि आदि प्राकृतिक आराध्य-स्वरूपा से प्रारम्भ होती हुई विष्णु भक्ति के परम विकास को प्राप्त हुई।

पाश्चात्य विद्वान्ों ने गीता में वर्णित कृष्णभक्ति पर चर्चा करते हुये उसे अभारतीय सिद्ध करने का निष्फल प्रयत्न किया है। वेंचर, क्रीथ, ग्रियर्सन तथा प्रो. विलसन आदि पाश्चात्य पण्डित भक्ति को वैदिक तत्त्व स्वीकार नहीं करते तथा वे इसका सम्बन्ध येन-केन-प्रकारेण ईसाई मत से जोड़ते हैं। परन्तु उनकी इस निर्मूल धारणा में श्वेत जाति की अहम्मन्यता, विकृत देशभक्ति तथा वैदिक वाङ्मय के प्रति उदासीनता विद्यमान है। वेबर की दृष्टि में श्रीकृष्ण की अलौकिक तथा लोकप्रिय रूप कल्पना प्रसूत तथा ईसा की छाया पर आधारित है [1] और डॉ. लोरिन्जर का तो यहाँ तक कथन है कि 'गीता' में न्यू टेस्टामैन्ट की प्रतिलिपि मात्र है—उसमें मौलिकता नहीं है। डॉ. ग्रियर्सन दक्षिण भारत की वैष्णव-भक्ति का उद्भव मद्रास के आसपास निर्वसित ईसाई बस्तियों के प्रभाव स्वरूप बताते हैं।[2] उनके मत में मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन मर्मस्पर्शी ईसाइयों के हृदयरूपी विद्युत केन्द्र से संचालित विद्युत-धारा-प्रवाह के समान पलक मारते हो सर्वत्र भारतवर्ष में व्यापत हो गया था।[3] प्रो. विलसन भक्ति को विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों द्वारा प्रतिष्ठापित एवं प्रचारित मानते हुए भारत

---

1. A. दृष्टव्य वेबर का मत—Indische Studien. B. The Evoluation of the Religious Thought–By Herbert Baynes. C. Religious reaction and school of Bhakti, Page 50
2. (a)Journal of the Royal Asiatic Society 1907, Page 311-36 (b) Encyclopaedia of Religion and Eithics, Part II, articles on Bhakti marg by Dr. Grierson, Page 539-51.
3. Journal of the Royal Asiatic Society – `Articles on Modern Hindusism and its debt to the Nwstorious' by Dr. Grierson.

के भक्ति तत्त्व को अत्यन्त अर्वाचीन सिद्ध करते हैं।[1] गीता के महान भक्ति साहित्य से प्रभावित होकर मोनियर विलियम जैसे अधिकांश विद्वान्ों ने इस परम-पावनी भक्ति धारा का उद्‌गम अपने अपौरूषेय ग्रन्थों में ढूँढ़ निकालने तथा उसे अपने ही धर्मशास्त्र का अंग मान लेने का दुस्साहस भी किया है।[2]

इन विद्वान्ों की निर्मूल-भ्रान्त-धारणाओं का निराकरण करने हेतु अनेक विद्वान्ों ने प्रयत्न किया है तथा गीता में प्रतिपादित भक्ति को प्रमाणित आधारों पर भारतीय सिद्ध कर दिया है। वेबर महोदय ने कृष्ण-जन्माष्टमी पर्व और महाभारत में वर्णित श्वेत द्वीप को ईसाई धर्म का स्थल बताया था तथा उनका आशय श्वेत द्वीप को यूरोपीय सिद्ध करना था। राय चौधरी[3] और लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक[4] ने उक्त मान्यता का सप्रमाण खण्डन किया। निष्पक्ष विद्वान् सी.पी. ताईल ने डॉ. लोरिजर तथा वेबर के इस निराधार कथनों पर दीर्घशंका प्रकट की है।[5]

डॉ. भण्डारकर, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[6] तथा डॉ. वेणीप्रसाद[7] ने भी भक्ति को वैदिकतत्त्व सिद्ध किया है तथा उसे ईसा ने अति प्राचीन माना है। वस्तुत: वैष्णव भक्ति

---

1. `Bhakit is an invention and apparently a modern one of the Institutions of the existing sects intended like that of the mystical holines of the Gurus; to extent their own authority'-Prof. H.H. Wilson `Hindu Religion' Page No. 232
2. Non-Christian religous systems-Hindusism. (By Monior Williams M.A., D.C.L. Page 208 & 221-221)
3. Early History of Vaishanava Sect. Dr. H. Ray Choudary Page 19.
4. वेबर नामक पश्चिम संस्कृत पण्डित ने इस कथा (नारायणीयोपाख्यान) का विपर्यास करके यह दीर्घशंका प्रकट की थी कि भागवत धर्म में वर्णित भक्ति-तत्त्व श्वेत द्वीप से अर्थात् हिन्दुस्तान के बाहर के किसी भी अन्य देश से लाया गया है और क्ति का यह तत्त्व इस समय ईसाई धर्म के अतिरिक्त और कहीं भी प्रचलित नहीं था—अब पश्चिमी पण्डितों में यह भी निश्चित नहीं है कि वेबर साहब की उपर्युक्त शंका निराधार है। (गीता रहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र, तिलक (हिन्दी) पृ. 546)
5. "In the teaching of the Bhagwat Gita, Loringer velieves he can detect citations from the New Testament, and the stories of Krishn's birth and childhood appear to webber to exhibit traces of christian influence. They are, in my judgement very doubtful." (Out lines of the history of Religion by C.P. Tiele, Translated by J. Easten Carpenter N.A. Past Buddhistic Brahminism Page 149.
6. सूरदास-भक्ति का विकास, पृ. 11-12
7. हिन्दू भक्ति सम्प्रदाय का आदि स्रोत ऋग्वेद है। (हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता—डॉ. वेणीप्रसाद, पृ. 42)

भारतीय है और वैदिक ऋचाओ संहिताओं, ब्राह्मणों आदि में पनपती हुई अपने मध्ययुगीन विशिष्ट स्वरूप में विकसित हो सकी है।

भक्ति के स्रोत ग्रन्थ और वैष्णवभक्ति का विकास

(i) वेदों में भक्ति—

ऋग्वेद ही भक्ति का आदि स्रोत है। इन्द्र, मित्र, वरूण, अग्नि, गरूड़, यम आदि प्रकृति की प्रभावशाली सत्ताओं को ही यहाँ पूज्य माना गया है।[1] तथा प्रकृति की इन सत्ताओं का अधिष्ठाता महाशक्तिमान ईश्वर ही सर्वव्यापी सत्यतत्त्व माना गया है। ऋचाओं में प्रमुख देवताओं का स्तुति-गायन भी किया गया है। इन विविध देवी-देवताओं के पूजा-अर्चना-विधान में साधक की कोमल स्निग्ध एवं रागपूर्ण भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। इन देवताओं को माता-पिता-प्रेमी, सहायक आदि शब्दों से सम्बोधित किया गया है, जो उपास्य देव के प्रति साधक के गाढ़े अनुराग का सूचक है।[2] शौर्य के प्रतीक इन्द्र की स्तुति में यहाँ मातृ-पितृ-प्रेम की कोमल रागात्मिकवृत्ति प्रकट हुई है।[3] इन्द्र को मित्रता, सहृदयता एवं भातृत्व व का पतीक माना गया है।[4] वरूण के सूक्तें में हमें संख्य-भावना के दर्शन होते हैं। स्तोता गिड़गिड़ाकर करूण पुकार करता है। इस अनुनय-विनय में रागात्मिकावृत्ति अबाधित रूप से प्रवाहित है।[5] शुष्क कर्मकाण्ड के विधायक अग्नि देवता की स्तुति में भी यही रागात्मकता लक्षित होती है। यहाँ उन्हें प्राणीमात्र की मातृ-पितृ-सत्त के रूपम स्वीकार किया गया है।[6] अनेक सूक्तों में उपासक की अनुरागवृत्ति श्रृंगार रस को भी स्पर्श कर गई है।[7] उपासक का ये कोमल भावनाएँ दाम्पत्य कोटिक प्रणय भक्ति की प्रतीक हैं। इसी

---

1. इन्द्र मित्रं वरूणमग्नि माहूरथौ दिव्य: स सुपर्णों गरूत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वनमाहु।। (ऋग्वेद—164/43)
2. ऋग्वेद में मनुष्य और देवताओं का जैसा सम्बन्ध है वैसा आगे के हिन्दू साहित्य में नहीं है। यहाँ देवता मनुष्य जीवन से दूर नहीं है। आर्यों का विश्वास है कि देवता उनकी सहायता करते हैं, उनके शत्रुओं का नाश करते हैं। वे मनुष्य से प्रेम करते हैं और प्रेम चाहते हैं। भारतीय भक्ति-सम्प्रदाय का आदि स्रोत 'ऋग्वेद' है। यहाँ कुछ मंत्रों में आदमी और देवता के बीच में गाढ़े प्रेम ओर मित्रता की कल्पना की गई है। (हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता—डॉ. वेणीप्रसाद, पृ. 42)
3. त्वं हि न: पिता वसो त्वं माता शतक्रतो वभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे। (ऋग्वेद 8/98/11)
4. ऋ. 4/25/2
5. ऋ. 7/88/6
6. ऋ. 6/1/15
7. ऋ. 10/43/1

प्रकार वैष्णवी भक्ति के उपाँग श्रवण, कीर्तन, स्मरण, विनय आदि के प्रतीक भी यहाँ उपलब्ध होते हैं।[1] अत: वेदों में कर्मकाण्ड उपासना के साथ ही भक्ति की व्यापक भावना भी प्रस्फुटित हुई है। इन्हीं तथ्यों से प्रमाणित होकर महर्षि शांड़िल्य ने अपने भक्ति-सूत्र में वेदों को भक्ति का मूलाधार बताया है।[2] अत: वेद ही भक्ति के मूल स्रोत हैं।

(ii) उपनिषदों में भक्ति

उपनिषद साहित्य में भक्तितत्त्व का प्रतिपादन हुआ है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में सर्वप्रथम् 'प्रपत्ति' को प्रधानता दी गई है; जहाँ भक्ति का केवल भगवान के शरणापन्न होना पड़ता है, क्योंकि भक्त-प्रेमी भगवान ही उपेयोपाय स्वरूप है जो भक्ति पर स्वत: ही अनुग्रह कर उसका उद्धार कर देते हैं।[3] भगवान के अनुग्रह से ही भक्त की मनोकामना सिद्ध हाती है। इसी अनुग्रह को 'पोषण'[4] 'प्रसाद', 'पुष्टि' आदि नामों से व्यवहृत किया गया है। कठोपनिषद्[5] में साधक को निष्काम होने एवं आत्मलाभ करने हेतु जगत्कर्त्ता के 'प्रसाद' की प्राप्ति करने का निर्देश किया गया है। जहाँ 'अनुग्रह' सिद्धान्त ही प्रतिपादित हुआ है। छांदोग्य उपनिषद में भी भक्ति को उपासना का प्रमुख अंग स्वीकार किया गया है।[6] उपनिषद-साहित्य में सर्वप्रथम् 'भक्ति' शब्द का प्रयोग हुआ है तथा देव (ईश्वर) एवं गुरु भक्ति की अनिवार्यता बताई गई है।[7] वैष्णव-धर्म में आचार्य-गुरु का अत्युच्च स्थान है, इसी गुरु भक्ति का प्रतिपादन उपनिषद् की अनेक श्रुतियों में पाया जाता है।[8]

---

1. श्रवणयो जातमस्य मकहतो महि ब्रवत्सेदु श्रुर्वीभिर्युज्यं चिदभ्यसत। (ऋ. 1/56/2)
   कीर्तन—विष्णोर्नु कं वीर्याण प्रवोचं य: पार्थिवानि विममे रजासि। (ऋग्वेद 1/54/2)
   विनय—इमं में वरूण श्रु धी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युराचक्रे। (ऋ. 1/25/9)
2. भक्ति प्रमेया श्रुतिभ्य: (ऋग्वेद 1/2/9)
3. यो ब्रह्माणं विदधति पूर्व यो वेदिश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये। (श्वेता. 6/18)
4. पोषणं तदनुग्रह (भागवत 2/10/4)
5. तमक्रतु: पश्यति वीतशोको धातु: प्रसादान्महिमानमात्मन:।। (कठोपनिषद् 9/2//0)
6. छन्दोग्योपनिषद् 1/11/2
7. यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता हयर्धा, प्रकाशयन्ते महात्मन:।। (श्वेता 6/23)
8. (अ) नैषा तर्केणं मतिरापनेया प्रोक्ताऽन्येनेव-सुज्ञानाम् प्रेष्ठ। कठ. 1/29; (ब) आचार्यवान् पुरुषो वद। छाँदोग्य. 6/14/2; (स) तद् विज्ञानार्थ स गुरमेवाभिगच्छेत् समित्पाणि श्रो9यं ब्रह्मनिष्ठम्।। (मुण्डकोपनिषद. 1/1/12)

उपनिषत्कालीन उपासना-पद्धति में एक ओर हृदय-पक्ष को प्रधानतपा देकर ब्रह्म-साक्षात्कार के लिए ज्ञान-मिश्रित रागात्मिका भक्ति की धारा प्रवाहित हुई तो दूसरी और बुद्धि-पक्ष-प्रधान ज्ञानोपासना का मार्ग प्रशस्त हुआ है। यहाँ दो मार्ग स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं; एक तो हृदय-पक्ष को बिलकुल छोड़कर केवल बुद्धि या विशुद्ध ज्ञान को लेकर चला और दूसरा हृदय-पक्ष समन्वित ज्ञान को लेकर।[1] इस प्रकार उभयात्मक विरुद्ध-धर्मयुक्त मार्गों में एक ओर यज्ञादि कर्म, मनन, विरकित आदि को आवश्यक तत्त्व स्वीकार कर निवृत्ति-परक ज्ञानमार्ग का निर्माण किया गया तो द्वितीय पक्ष में निष्काम कर्म का विधान रखा गया जिससे ज्ञानमार्ग दो शाखाओं में दिखाई पड़ा-निवृत्ति परक-ज्ञान मार्ग और कर्मपरक-ज्ञान मार्ग।[2] परब्रह्म साक्षात्कार हेतु उपर्युक्त दो प्रवृत्तियों के आधार पर ब्रह्मस्वरूप का चिन्तन किया गया। फलस्वरूप ब्रह्म के निर्गुण, सगुण, अरूप, अरस, अगन्ध[3] (शब्द, स्पर्श, रूप रस और गन्ध रहित) इत्यादि अनन्त विषणों से विभूषित कर उसे समस्त इन्द्रियों से परे तथा अगम[4] (अदृश्य-अग्राह्य) बतलाया गया। सगुण-ब्रह्म का विवेचन भी उपनिषदों में किया गया। छाँदोग्योपनिषद् में ब्रह्म का स्वरूप 'मनोमय-प्राण-शरीर, प्रकाश-स्वरूप, सत्य-संकल्प, आकाशात्मा, सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगंध, सर्वरस, सम्पूर्ण, सर्वव्यापक, वाक्-रहित एवं सम्भ्रम शून्य है।[5] तैत्तिरीयोपनिषद् में अन्न, प्राण, मन, ज्ञान तथा आनन्द रूप ब्रह्म का विवेचन हुआ है।[6] कई स्थलों पर उपयात्मक ब्रह्म की विरुद्ध-धर्म युक्त सत्ता को स्वीकार किया गया है।[7] ईशावास्योपनिषद् अतः यह स्पष्ट है कि उपनिषद् काल में भक्ति मार्गानुकूल ब्रह्म के हृदयग्राही स्वरूप की स्थापना हो चुकी थी।

(iii) महाभारत गीता में भक्ति

(अ) भागवद्-धर्म तथा पंचरात्र-नारायणी-सम्प्रदाय—महाभारत में शान्तिपर्व के अन्तिम खण्ड नारायणीयोपाख्यान में पंचरात्र मत का वर्णन हुआ है।

---

1. भक्ति का विकास सूरदास-लेखक आचार्य श्री रामचन्द्र शुक्ल।
2. भक्ति का विकास सूरदास-लेखक आचार्य श्री रामचन्द्र शुक्ल।
3. अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथा ऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् (कठोप. 3/15)
4. यत्तंदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम् (मुण्डो. 1/1/6)
5. मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्प आकाशात्मा। सर्वकर्मा सर्वगंधःसर्वरसः सर्वमिदमभ्यान्ता ऽअवास्यनादरः।। (छान्दोग्योपनिषद् 3/14/2)
6. अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। मनोब्रहित व्यजानात्। (तैत्तिरीयोपनिषद्-भृगुवल्ली 3/15)
7. (अ) अणोरणीयान् महतो महीयान् आत्मा गुहायाँ निहितोऽस्य जन्तौः (श्वेताश्वतरोपनिषद् 20) (ब)

नारायणीय उपाख्यान में वर्णित होने से इसे नारायणीय सम्प्रदाय भी कहा गया है। पंचरात्र ग्रन्थ भागवतधर्म को वेद की एकायन शाखा से सम्बद्ध करते हैं।[1] प्रश्न संहिता[2] इसी एकायन विद्या को मोक्षप्राप्ति का साधन बतलाते हैं। इस प्रकार महाभारत काल में भागवत् धर्म की पंचरात्र, नारायणी तथा एकायन आदि शाखाएँ प्रचलित थीं। प्राचीन तन्त्र ग्रन्थों में भी भागवत-सम्प्रदाय के पंचरात्र, सात्वत्, एकान्तिक आदि नाम उपलब्ध होते हैं।[3] पाणिनीय सूत्रों के भाष्यकार पतंजलि ने सूत्रों में प्रचलित वासुदेव शब्द को तत्कालीन सर्वाधिक पूज्य देवता वासुदेव का प्रतीक बताया है। वृष्णिवंशी वासुदेव प्राचीन भागवत् धर्म में पंचरात्र, सात्वत- सम्प्रदाय के उपास्य स्वरूप हैं।[4] पाणिनि को विद्वान्‌ों ने ई.पू. छठी शती में माना है। अतः भारत में भागवत धर्म के इन प्राचीन सम्प्रदायों का प्रसार ई.पू. सातवीं शताब्दी में हो गया था। डॉ. भण्डारकर के मतानुसार शान्तिपर्व के नारायणीयोपाख्यान की रचना बुद्ध से पूर्व की है।[5] डॉ. एस.के. आयंगर भी इसे बुद्ध से प्राचीनतर मानते हैं।[6] डॉ. ग्रियर्सन[7] इस आख्यान के घटनास्थल 'श्वेत द्वीप' को बेक्ट्रिया निवासी ईसाई-धर्म प्रचारकों का उपनिवेश मानते हैं तथा इसे ईसा के बाद की घटना बतलाते हैं। बाल गंगाधर तिलक[8] आदि भारतीय विद्वान्‌ों ने इस विदेशी धारणा को निर्मूल कर दिया है। अतः नारायणीय पर्व का यह पंचरात्रमत ईसा पूर्व छठी-सातवीं शताब्दी का ही है।

प्राचीन वैष्णव धर्म की दो विशिष्ट संज्ञाएँ उपलब्ध होती हैं—पंचरात्रमत तथा भागवत मत। पंचरात्रमत के उपास्य देव 'वासुदेव' हैं। 'वासुदेव' शब्द का अर्थ है 'सर्वव्यापक देवता'। वासुदेव हेय गुणों से विरहित तथा ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज आदि षड्गुणों से विशिष्ट होने से 'भगवान्' कहे गये हैं।[9] इन्हीं का उपासक सम्प्रदाय भागवत कहलाया। इसी प्रकार इसका पंचरात्र संज्ञा भी विचारणीय है। भगवान ने अपने पंच आयुधों के अंशरूप शांडिल्य, औपगायनर, मोज्यायन, कौशिक तथा भारद्वाज पंच ऋषियों को उनके घोर तप से प्रभावित होकर सहयाद्रि पर्वत पर

---

1. एष एकायनो वेदः प्रख्यातः सर्वतो भुवि। (ईश्वर संहिता 1-43)
2. वेदमेकायनं नाम वेदानां शिरसि स्थितम्। तदर्थकं पांचरात्र मोक्षदं ततक्रियावताम् (प्रश्न संहिता) तथा ईश्वर संहिता, ईश्वर संहिता 1-14
3. पाद्म तंत्र 4-2-88
4. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ सर आर.जी. भण्डारकर, वाल्यूम IV, पृ. 415
5. वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म, पृ. 8-12
6. प्रोसिडिंग्स आव दी सैकेण्ड ओरियण्टल कान्फ्रैंस, कलकत्ता, पृ. 353
7. भक्ति मार्ग—इन्साइक्लेपेडिया आव रिलीजन एण्ड एथिक्स पार्ट-2
8. गीता रहस्य, पृ. 546
9. ज्ञान-शक्ति बलैश्वर्यं वीर्य तेजाँस्यशेषतः। भगवच्छब्दाच्यानि विना हैयेगुणादिभिः।।

उन्हें एकायनवेद समझाया। एकायनवेद का ज्ञान पाँच रात्रियों में सम्पन्न होने से इसे 'पंचरात्र' कहा गया।[1] नारायणमुख से निस्सृत यह ज्ञान चार वेद और एक सांख्ययाग के समान वृहत् होने से पंचरात्र से अभिहित किया गया।[2] पंचरात्र के समक्ष उपर्युक्त पंचशास्त्र रात्रि के समान मलिन पड़ जाते हैं।[3] तथा यह ज्ञान परमतत्त्व, मुक्ति, भुक्ति, योग तथा विषय इन पाँच तत्त्वों का ही निरूपण करता है; अतः इन्हीं कारणों से इसे पंच (पाँच) रात्र (ज्ञान) नाम दिया गया।[4]

भक्ति का विवेचन महाभारत के वसु उपरिचर तथा नारद सम्बन्धी दो आख्यानों में हुआ है। भगवान नारायण ने मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु और वशिष्ठ आदि सप्तर्षि तथा स्वायंभुव मनु के समक्ष मेरू पर्वत पर प्रकट होकर उन्हें अपनी धर्म-परम्परा का ज्ञान कराते हुये बताया कि 'एकायन-भक्ति वृहस्पति को प्राप्त होकर अन्त में वसु उपरिचर नामक धर्मात्मा में पूर्ण होगी।" बृहस्पति के पश्चात् राजा वसु ने पंचरात्र सम्प्रदाय में दीक्षित एक अहिंसात्मक अश्वमेध-यज्ञ का आयोजन किया जिसमें भगवान हरि ने प्रकट होकर यज्ञ-भाग ग्रहण किया। वसु उपरिचर के अतिरिक्त बृहस्पति एकता, द्विता, श्रिता आदि ऋषियों को भगवान के दर्शन न हो सकने पर धर्माधिकारी बृहस्पति को ऋषियों ने समझाया कि बिना ऐकान्तिक-अहिंसात्मक उपासना के पशुबलियुक्त यज्ञों से भगवान् प्रसन्न नहीं होते।

नारद-भक्ति-आख्यान में उल्लेख है कि जब नारायण के एकान्त उपासक नारद के हृदय में 'पंचरात्र' के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हुई तो वे बद्रिकाश्रम में स्थित नर नारायण की प्रेरणा से मेरू पर्वत पर पहुँचे जहाँ उन्हें श्वेतांग तपस्वी मिले जो भग्वान के अनन्य-भक्त थे। नारद ने श्वेतद्वीप में भगवान का स्तुति-गान किया तथा भगवान ने दर्शन देकर उन्हें वासुदेव धर्म का रहस्य बताया। वासुदेव ही परब्रह्म परमात्म हैं तथा आत्माओं के आत्मा हैं। वे ही सृष्टिकर्त्ता है तथा उनका संकर्षण रूप जीवमात्र का प्रतीक है। मनस्तत्त्व के प्रतीक प्रद्युम्न संकर्षण से तथा जीवात्मा के प्रतीक अनिरुद्ध प्रद्युम्न से ही निकले हैं। वासुदेव का कथन है कि "संकर्षण प्रद्युम्न व अनिरुद्ध मेरी ही मूर्तियाँ हैं। वाराह, नृसिंह, परशुराम, रामचन्द्र मेरे ही अवतार हो चुके हैं तथा कंस

---

1. पंचायुधांशास्ते पंचं शाण्डिल्यश्चोपगायनः।
मौज्यायनः कोशिकश्च भारद्वाजश्च योगिनः।।
पंचापि पृथगेकैकदिवारात्रं जगत्प्रभुः।
अध्यापयामास यतस्तदेतन्मुनि पुंगवाः।।
शास्त्रं सर्वजनैर्लोके पंचरात्रमितीर्यते।(ईश्वर सं.अ. 21):।।
2. महाभारत-शान्तिपर्व अ. 339
3. पाद्मतन्त्र 1
4. रात्रं च ज्ञानवचनं ज्ञानं पंचविधं स्मृतम्।। (नारद पंचरात्र 1/44)

आदि असुरों को मारने के लिए मैं पुन: अवतार लूँगा। उस समय मैं अपने उपर्युक्त चार रूपों से सब कार्य सम्पन्न करूँगा और सात्वत द्वारा द्वारिका नगरी का नाश करके ब्रह्मलोक चला जाऊँगा।

इस वसु उपरिचराख्यान में सर्व शक्तिमान 'हरि' की प्रतिष्ठा की गई है तथा वासुदेवोपासना-प्रधान भागवत-धर्म में अहिंसात्मक यज्ञ-कर्म तथा एकान्तिक उपासना को स्वीकार किया गया है। द्वितीय उपारख्यान में ब्रह्म-जीव तथा जगत् की उत्पत्ति तथा लय का तात्विक विवेचन किया गया है। परब्रह्म वासुदेव ही हैं जो षाड्गुण्य युक्त सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी तथा अनन्त हैं। निराकार ब्रह्म वासुदेव ही नृसिंह, राम, कृष्ण आदि सगुण रूपों में अवतीर्ण होते हैं। यहाँ सगुण रूप वासुदेव को धर्म-संस्थापक, भक्त उद्धारक तथा सृष्टि-विघ्न हरणकर्त्ता बतलाया गया है जिनके इस कल्याणकारी स्वरूप के प्रति भक्त-हृदय में श्रद्धा, प्रेम तथा भक्ति-भावना का होना स्वाभाविक है। यहाँ सगुणोपासना के अनुकूल अवतारवाद की प्रतिष्ठा स्थापित की गई है। साधना के क्षेत्र में यहाँ शरणागति को एक मात्र मोक्ष का 'अयन' अथवा 'उपाय' कहा गया है। इसी शरणागति अथवा प्रपत्ति-भक्ति का विस्तृत प्रतिपादन गीता में हुआ है। अवान्तरकाल में हयी नारायणीय सम्प्रदाय अथवा पंचरात्र मत नामान्तर से सात्वतों के मत में अभिव्यक्त हुआ।

(ब) सात्वत-धर्म—पंचरात्र मतानुसार वासुदेव प्राकृत गुंणों से विरहित होने से निर्गुण हैं तथा षाड्गुण्य होने से सगुण हैं। सृष्टि-सम्पादन के लिए वासुदेव के ज्ञान-शक्ति, ऐश्वर्य, बल, वीर्य व तेज आदि गुणो के आधारभूत संकर्षण व्यूह में ज्ञान तथा बल का प्राधान्य है; प्रद्युम्न में ऐश्वर्य एवं वीर्य का तथा अनिरुद्ध में शक्ति और तेज गुणों का। इन तीनों व्यूहों का बीज वासुदेव भगवद्व्यूह में है। इस चतुर्व्यूहो द्वारा ही सृष्टि सम्पादन होता है। चतुर्व्यूह में वासुदेव ही सर्वशक्तिमान् होने से यहाँ उन्हीं की उपासना को विशेष महत्त्व दिया गया है।[1] सात्वत सम्प्रदाय में भी इसी चतुर्व्यूह की उपासना का विधान है। भीष्मपर्व में इसी वासुदेव-धर्म का रहस्य भीष्म द्वारा समझाया गया है।[2] अध्याय के अन्त में भीष्म कहते हैं कि वासुदेव को क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र पूजते हैं तथा द्वापर से कलियुग के प्रारम्भ तक संकर्षण ने उन्हें सात्वत-विधि से पूजा है। अगले अध्याय में प्रजापति ब्रह्म वासुदेव की आराधना करते हुये उन्हें चतुर्व्यूहों के साथ नर रूप में प्रकट होने की प्रार्थना करते हैं। इस प्रकार पाँचरात्र या नारायणी-सम्प्रदाय की वासुदेवोपासना का प्रचलन सात्वतों में भी हुआ और इसे

---

1. अहि. सं. 5/17/60
2. भीष्म पर्व-अध्याय 65

सात्वत धर्म की संज्ञा दी गई।[1] वस्तुत: पंचरात्र, नारायणीय, सात्वत तथा भागवत-धर्म एक ही हैं।

शूरसेन ब्रजमण्डल में निवास करने वाली क्षत्रिय जाति 'सात्वत' में पंचरात्रमत की वासुदेवोपासना का प्रचार होने से ही पंचरात्रमत सात्वतधर्म के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[2] इन्हीं सात्वतों के यादव कुल में कृष्ण का जन्म हुआ था।[3] ऐतरेय, शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में सात्वतों का नामोल्लेख हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मण के ऐन्द्रमहाभिषेक के प्रसंग में सात्वतों का दक्षिण में निवास बताया गया है।[4] इसी प्रकार द्रविड़ इतिहासकार डॉ. कृष्णास्वामी आयंगर के मतानुसार द्रविड़ देश के अनेक राजा अपने को सात्वत-वंशी कृष्ण के वंशज बतलाते हैं।[5] यदि महाभारत से पूर्ववर्ती इन ब्राह्मण ग्रन्थों का रचनाकाल ईसापूर्व दशम शताब्दी भी माना जाय तो भी प्रकट होता है कि दक्षिण में सात्वतधर्म का प्रसार ईसा से दशशती पूर्व ही हो गया था।[6]

(स) श्रीमद्भगवद्गीता—गीता में वासुदेव भक्त का तात्विक निरूपण हुआ है। गीता वैष्णव-भक्त का सर्वप्रथम शास्त्रीय ग्रन्थ है। कर्मयोग के आधार पर कई गीता भाष्यकारों का मत है कि इस ग्रन्थ में हृदयहीन तथा शुष्क कर्मोपासना का निर्देश हुआ है, परन्तु यह मत भ्रामक है। गीता-उपासक जीवात्मा को श्रद्धा तथा भक्ति पूर्वक समर्पण-बुद्धि से कर्म करने का उपदेश देती है। जब व्यथित हृदय अर्जुन संग्राम-स्थल में आत्मजों का वध निकट समझ शस्त्र डाल देते हैं तब विराट् स्वरूप धारण कर भगवान कृष्ण उनके भ्रम का निवारण करते हुए उसे कर्म करने की प्रेरणा देते हैं।[7]

वे कहते हैं हे अर्जुन! जो निष्काम हृदय से कर्म करता हुआ समस्त कर्मों का समर्पण मुझे कर देता है वही मेरा अनन्य भक्त है।[8] वस्तुत: ईश्वर में सब कर्मों का

---

1. सूरदास—भक्ति का विकास—रामचन्द्र शुक्ल
2. गीता-रहस्य—लोकमान्य तिलक पृ. 542
3. Dr. S.K. Aiyanger. (Sattavatas-Proceedings of secnd oriental conference, Calcutta-1923, Page 353)
4. एतस्या दक्षिणास्याँ दिशि ये के च सात्वतां राजानो भौज्यायैव ते अभिषिच्यन्ते। भोजेति एनान् अभिषित्तानाचक्षते।। ऐ.ब्रा. 8/3/14
5. महीशूर के तमिल राजा 'इरून गोवेड़' अपने को कृष्ण् की 49वीं पीढ़ी से सम्बन्धित करते हैं (परम संहिता-प्रस्तावना, पृ. 15-17 भागवत सम्प्रदाय बलदेव उपाध्याय से उद्धृत)
6. तंत्र में विष्णु-भागवत सम्प्रदाय—श्री बलदेव उपाध्याय
7. गीता-अध्याय 10 सम्पूर्ण तथा 11 वाँ 1-34
8. मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्त: संगवर्जित:। निर्वैर: सर्वभूतेषु य: स मामेति पाण्डव।। (गीता 11/55)

समर्पण कर देना ही भक्ति है और इसी भक्ति तत्त्व का प्रतिपादन गीता के कर्मयोग में हुआ है। साधक इस कर्मयोग के सेवन से अन्ततः आत्म-समर्पण तक पहुँच जाता है। साधक के कर्मों का चरम विकास ज्ञानोपलब्धि है तथा उसके ज्ञान की पूर्णता आत्म-समर्पण में प्रकटं होती है। वही ज्ञान ग्रहणीय है, जिसकी प्रेरण से साधक समस्त धर्मों का परित्याग कर आत्म-समर्पण द्वारा भगवान के शरणागत हो जाए। गीता के अन्तिम श्लोक में इसी ज्ञानकर्मयोग का प्रतिपादन हुआ है।[1]

गीता की कर्मयोग उपासना के लिए साधक का हृदय अत्यन्त शुद्ध एवं श्रद्धायुक्त होना आवश्यक है। अन्तःकरण की शुद्धि के लिए निष्काम कर्म सेवन का विधान है। कर्मों की फलेच्छा का सर्वथा त्याग साधक के आध्यात्मिक ज्ञान एवं परम शान्ति के लिए आवश्यक है।[2] भगवदर्थ एवत्र उपास्य समर्पण हेतु किये जाने वाले कर्म विधान में साधक के हृदय में भगवान् के प्रति प्रेम और श्रद्धा की भावनाएँ विद्यमान रहती हैं तथा निरन्तर भगवत-चिनतन बना रहता है; अतः कर्मफल का त्याग ही श्रेयस्कर है।[3] गीता की कर्म-साधना में श्रद्धा का स्थान भी अत्युच्च है क्योंकि श्रद्धा रहित, विवेकहीन तथा भ्रम-बुद्धि से कर्म करने वाले साधक पथभ्रष्ट हो जाते हैं।[4] श्रद्धावान ही ज्ञान प्राप्त करता है और उसी ज्ञान से हृदय में भगवदर्थ कर्म करने की स्वाभाविक प्रेरण होती है। फलतः उसे भगवत्प्राप्ति एवं परम शान्ति मिलती है।[5] जिसकी बुद्धि शंकाओं एवं तर्कों के विचार से युक्त है। वह अश्रद्धावान् व्यक्ति गीता के भक्ति-मर्म को गहण करनेके योग्य नहीं। भगवान् की उक्ति है—जो श्रद्धा धारण करके मुझे भजता है वही मेरा सर्वश्रेष्ठ भक्त, उपासक एवं परम योगी है।[6] इस प्रकार गीता में श्रद्धा पर आधारित प्रेमरूपा-भक्ति का भी प्रतिपादन हुआ है।

गीता-मर्यादा-भक्ति की भी समर्थक है। वह तो परमज्ञानी, अनासक्त-योगी को भी वेद शास्त्र-सम्मत कर्मों का सेवन करने का उपदेश देती है।[7] गीता के शास्त्रीय भक्ति विवेचन में समस्त भक्ति-विधियों का निरूपण हुआ है। भगवान ने अर्जुन को वैधी-भक्ति का उपदेश देते हुये कहा है— "अनन्य श्रद्धा एवं प्रेम सहित निष्काम-भाव

---

1. सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रजः।
   अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। (गीता 18/66)
2. गीता अध्याय 12/11, 12
3. गीता अध्याय 12/11, 12
4. गीता 4/40
5. श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्दियः।
   ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति (गीता 4/39)
6. गीता 12/
7. गीता अ. 3/19-20

से मुझ वासुदेव-परमात्मा का नाम-गुण-कथन, श्रवण, कीर्तन, स्मरण एवं सगुण रूप का अत्यन्त श्रद्धा के साथ पूजन-अर्चन करने तथा मेरे परायण होने से ही मुझ में तेरी आत्मा का एकाधार होगा।"[1] भजन-कीर्तन तथा नाम-श्रवण प्रभाव से दुष्टात्मा एवं दुराचारी भी साधु-स्वभाव ग्रहण कर अनन्य भक्त बन जाते हैं।[2] जो अनन्य प्रेम तथा निष्काम-भाव से भगवान का चिन्तन करते हैं उन्हें भगवत्प्राप्ति हेतु योग-सिद्धि आदि साधन सुलभ हो जाते हैं।[3] भगवान के नाम-स्मरण कीर्तन तथा उनके ऐश्वर्य-गान से निरन्तर भक्ति-कर्मों का सम्पादन होता है ऐसे परम-श्रद्धालु भक्त् ही ईश्वर को प्राप्त करते हैं।[4] भक्ति-भाव से प्रेरित होकर जो भक्त पत्र, पुष्प फल द्वारा भगवान् का अर्चन-पूजन करता है, भगवान उस पर प्रसन्न हो जाते हैं।[5]

इसी प्रकार गीता में दैन्य एवं शरणागत-भाव का भी प्रतिपादन हुआ है। अर्जुन के कार्पण्य तथा शिष्य शब्द अत्यन्त दीनता तथा अटूट श्रद्धा के सूचक हैं।[6] विराट्-स्वरूप की वन्दना में अर्जुन की शरणागति एवं दास्य-भक्ति की व्यंजना हुई है।[7] अत: स्पष्ट है कि गीता-भक्ति का उत्कृष्ट एवं प्रामाणिक ग्रन्थ है।

(iv) सूत्रों में भक्ति तत्त्व

महामुनि शाण्डिल्य और देवर्षि नारद ने सूत्र-पद्धति में वैष्णव भक्ति का निरूपण किया है। शाण्डिल्य से पूर्व महाभारत गीता की व्याख्यात्मक पद्धति में भक्ति का विस्तृत प्रतिपादन हो चुका था। शाण्डिल्य सूत्र गीता के आधार पर निर्मित हुआ माना जाता है।[8] शाडिल्य ने इन परम्परागत भक्ति-सिद्धान्तों में कुछ नवीन तत्त्वों का समावेश कर निम्नजाति के उपेक्षित साधकों को भक्ति का अधिकार भी दिया था।[9] शाण्डिल्य ज्ञान कर्म की अपेक्षा भक्ति को अधिक महत्त्व देते हैं।[10] उनके अनुसार भक्ति शुद्ध रागात्मिका वृत्ति है जिसके दो भेद हैं---अपरा तथा परा। अपरा प्रेमाभक्ति

---

1. गीता 9/34
2. गीता 9/30
3. गीता 9/22
4. गीता 9/10 तथा 10/10
5. गीता 9/26
6. कार्पण्यदौषोपहत स्वभाव: पृच्छामि त्वां धर्म संमूढ़चेत:।
   यच्छ्रेय: स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (2/7)
7. गीता 2/43, 2/43, 4
8. The Bhakti Doctrine of the Shandilya sutra by Dr. B.H. Barua. Second Oriental Confrence Calcutta Page 537.
9. महापातकिनां त्वातर्ता (शांडिल्य भक्ति सूत्र (गीता प्रेस गोरखपुर), अध्याय 2, 82
10. भक्त्या जानातीति चेन्नाभिज्ञप्तया सहाय्यात्।। (वही अ. 1/15)

की साधनावस्था है तथा पराभक्ति शुद्धप्रेम—भावावस्था।[1] साधक प्रेम की पराकाष्ठा द्वारा आनन्द की चरमावस्था शुद्ध-पराभक्ति स्थिति में प्रवेश पाता है।[2] शुद्ध-पराभक्ति प्रेम ही साध्य है, परन्तु साधक को साध्य वस्तु के ज्ञान का होना भी परमावश्यक है। अत: ज्ञान प्रेमाभक्ति का पूर्व अंग है।

वैष्णव-भक्ति-मार्ग में नारद-भक्ति-सूत्रों को सप्तम दर्शन की संज्ञा देते हैं। नारद-भक्ति-सूत्रों में हृदय की भावुकता तथा उत्कृष्ट प्रमोद्रेक की प्रधानता होने से इनमें प्रतिपादित भक्ति को प्रेमाभक्ति कहना अधिक सार्थक है। वस्तुत: नारद-भक्ति शुद्ध प्रेम पर आश्रित है। यहाँ ईश्वर का परम प्रेम प्राप्त करना ही भक्ति का सार है।[3] प्रेम की साधना के लिए कर्म आवश्यक है, परन्तु प्रेम की पराकाष्ठा में साधक के कर्म स्वत: ही ईश्वरार्पण हो जाते हैं अन्ततः उसे और कर्म करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। इस प्रकार प्रेम तत्त्व को प्रधानता देने वाले नारद कर्मों का ईश्वरार्पण होना स्वीकार करते हैं। गीता साधक को अन्तिम स्थिति तक लोकसंग्रहार्थ कर्म करने का निर्देश करती है।[4] परन्तु नारद-भक्ति की चरमावस्था में कर्म की आवश्यकता नहीं समझते। अत: स्पष्ट है कि नारद ने प्रेम को भक्ति का प्रमुख अंग बना दिया है।[5] इसी कारण नारदीय भक्ति को प्रेमाभक्ति के नाम से अभिहित किया जाता है।

नारद ने भक्ति के विविध एकादश रूपों को स्थिर किया है।[6] गोणी भक्ति-स्वरूप का विवेचन भी नारदीय सूत्रों में किया गया है। नारद की यह प्रेम लक्षणा भक्ति अत्यन्त सरस एवं मार्मिक होने से निम्बार्क, रामानुज, वल्लभ, गौड़ीय आदि मध्ययुगीन वैष्णव-भक्त-सम्प्रदायों के भक्ति-तत्त्व की प्रमुख आधार सिद्ध हुई।

(v) श्रीमद्भागवतपुराण में भक्ति

कृष्ण भक्ति को सर्वग्राह्य एवं सर्वसुलभ बनाने के लिए भागवत पुराण में प्रेमाभक्ति-तत्त्वों के प्रतिपादन द्वारा सख्य, वात्सल्य, शृंगार रस के परिपाक से कोमल एवं रसमयी भाव-भूमिका निर्मित की गई जिससे श्रीकृष्ण के लौकिक एवं अलौकिक

---

1. सापरानुरक्तिरीश्वरे (वही अ. 1/2)
2. द्वेषप्रतिपक्षभावाद्रसशब्दाच्चराग: (वही अ. 1/6)
3. सात्वस्मिन् परमे प्रेमरूपा। (सूत्र 2 नारद भक्ति सूत्र,गीता प्रेस)
4. कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय:। लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि। (गीता अध्याय 3/20)
5. भक्त एकान्तिनो मुख्या:। (सूत्र 67)
6. गुणमहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणसक्ति, दास्यासक्ति, संख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति, परमविरहासक्ति रूपा एकाधाऽप्येकादशधा भवति (सूत्र 82)

स्वरूप की प्रतिष्ठा हुई। भागवतकार ने भगवान श्रीकृष्ण की मानव कल्याणार्थ लीलावतारी, परब्रह्म तथा प्रियतम आराध्य देव के रूप में चित्रित कर भक्ति क्षेत्र में अप्रतिम योग प्रदान किया। भागवत पुराण की इसी पृष्ठभूमि पर परवर्तीकालीन वैष्णव-भक्ति-सम्प्रदायों की सरस परमोपासना स्थिर हो सकी। भागवतपुराण का प्रेमाक्ति विधान अत्यन्त सरस और हृदयस्पर्शी है जहाँ रति-वात्सल्य शृंगार का मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया है।[1] इसके मधुर प्रभाव से विरही भक्त का उद्विग्न हृदय प्रेमरस से स्निग्ध तथा रोमांचित हो प्रियतम से मूक प्रेमालाप एवं अज्ञात प्रणयलीला का रसास्वादन करता है।[2] अत: भागवत भक्ति-शास्त्र का विश्व कोष माना जा सकता है जिसमें प्रेमाभक्ति-तत्त्व का बड़ा ही मार्मिक एवं सांगोपांग विवेचन किया गया है।

भक्ति के प्रधान दो भेद माने जाते हैं—(1) साधन-रूपा जिसको वैध-भक्ति के नाम से पुकारा जाता है। (2) साध्य-रूपा जिसे प्रेमा, प्रेमलक्ष्णा, रागानुगा आदि नामों से व्यवहृत किया गया है। दोनों में सेवा-विधान अथवा वैध साधना का साधन है और प्रेमतत्त्व साध्य है। भागवत में दोनों प्रकार के भक्ति साधनों का विस्तृत विवेचन किया गया है। भागवतकार ने श्रवण, कीर्तन, स्मरण, आत्मनिवेदन पाद-सेवन आदि नवधा भक्ति-तत्त्वों का प्रतिपादन किया है। महाभागवत प्रह्लाद यहाँ आत्मकल्याणार्थ नवधा भक्ति द्वारा भगवान् विष्णु को रिझाने का उपदेश देते हैं।[3] श्रवण-भक्ति का माहात्म्य बताते हुये जड़ भरत रहुगण को सत्संग द्वारा श्रवण-लाभ करने का उपदेश देते हैं।[4] ब्राह्मण, माता-पिता, गौ, गुरु आदि के पूज्य प्राणों का घातक महापापी भी कीर्तन-भक्ति से मुक्त हो जाता है तथा चाण्डाल एवं म्लेच्छ को भी इस मार्ग द्वारा मोक्ष प्राप्त हो सकता है।[5] कालिकाल में कृष्ण-नामोच्चारण ही विशेष रूप से कल्याणकारी है।[6] स्मरण-भक्ति से मनुष्य आवागमन से मुक्ति पाता है।[7] पापात्मा अजामिल ने केलव अन्तिम काल में नारायण का उच्चारण कर-विष्णु-धाम प्राप्त

---

1. भक्ति का विकास : सूरदास—पं. रामचन्द्र शुक्ल
2. An outline of the Religious literature of India–By J.N. Farquahar Page 230.
3. श्रवणं कीर्तनं विष्णो: स्मरणं पादसेवनम्।
   अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।। (भाग 7/5/23)
4. भाग 5/12/92
5. वही 6/13/8
6. वही 12/12/51
7. वही 10/2/37, वही 6/1/2

किया था।[1] महाराजा अम्बरीष ने पाद-सेवा द्वारा ही भगवान को प्रसन्न किया था जिनके भक्ति-बल के समक्ष महान् तपस्वी दुर्वासा को भी परास्त होना पड़ा था। ध्रुव, प्रह्लाद, परीक्षित, द्रौपदी, अक्रूर, विदुर आदि भक्तों के उदाहरणों द्वारा भागवतकार ने यह स्पष्ट किया है कि कठिन परिस्थितियों में भी जो अडिगरहकर भगवान का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन आदि करते हैं उनको निश्चय ही भागवत्कृपा-प्राप्ति होती है।

भक्ति के क्षेत्र में दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य भावों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आराध्यदेव का सानिध्य प्राप्त करने के लिए भक्त अपने हृदय में उनके प्रति रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने लगता है। फलत: उसे दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं रति भावों का अवलम्बन लेना पड़ता है। भक्त-हृदय में दास्य से अधिक सख्य में, सख्य से अधिक वात्सल्य में और सर्वाधिक रति-भाव में उसके आराध्य के प्रति प्रेमोद्रेक होता है। अत: भक्तिमार्ग में रति-भाव को सर्वोपरि समझा जाता है। भागवतकार ने राजा अम्बरीष के आख्यान में दास्य-भक्ति का निर्देशन किया है।[2] श्रीकृष्ण के बाल्यकाल की विविध लीलाओं में वात्सल्य, सख्य और रति रस का परिपाक किया गया है। दान लीला, मान लीला, माखन लीला, गोदोहन लीला, चीरहरण लीला तथा रासलीला आदि लीलाएँ रतिरस पर अवलम्बित है। भागवत के दशवें-ग्यारहवें स्कन्ध में रति-भक्ति की महारस प्रदान करने वाली 'महारासलीला' का वर्णन भागवतकार ने हृदयग्राही ढंग से किया है। जो भक्ति शुद्ध रति-भाव से भगवान में आसक्त होता है उसके प्रेम को भगवान दिव्य-प्रेम रूप में स्वीकार कर उसे विशुद्ध आनन्द प्रदान करते हैं। भगवान ने कामासक्त गोपियों के प्रेमानुग्रह पर उन्हें योगमाया विधान द्वारा महारास का परमानन्द प्रदान दिया।[3] वेदज्ञान, कर्मकाण्ड से अनभिज्ञ गोपियों का सरल हृदय शास्त्र-मर्यादा, लोक-लज्जा, परिवार-गृह-पति आदि का मोह त्याग पतिव्रत धर्म की सीमा लांघकर, अनन्य में प्रेमी परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण की ओर आकृष्ट हुआ तो ज्ञान-ध्यान के समक्ष प्रेम विजयी हुआ और परमभक्ता गोपियों को सर्वानन्द की प्राप्ति हुई।[4] इसी परमानन्द-प्राप्ति के लिए ज्ञानी तथा कर्मयोगी अनेक प्रकार की साधनाओं का निर्देश करते हैं। परन्तु महारस की प्राप्ति को भागवत् रस के रसास्वादन से ही सम्भव है। इसलिए श्रीकृष्ण द्वैपायन भावुक भक्तों को परामानन्द लाभ करने हेतु श्रीमदभागवत-रस-सरिता में निमग्न होने का संकेत करते हैं।[5]

---

1. श्रीमद्भागवत-11 वाँ स्कन्ध
2. श्रीमद्भागवत-11 वाँ स्कन्ध
3. वीक्षरंतु मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रित: (श्रीमद्भागवत)
4. श्रीमद्भागवत् 11/12/13
5. निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
   पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुका:।।(वही 1/1/3)

(vi) मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति

मध्ययुगीन वैष्णवाचार्यों ने वेदान्त सम्मत- वैष्णव-प्रेमलक्षणा-भक्ति का स्वरूप स्थिर किया जिसमें वेदान्त दर्शन की जटिलता एवं शुष्कता से परे प्रेम और प्रपत्ति को महत्त्व दिया गया था। भक्ति का यह स्वरूप इस युग की कई भक्ति साधनाओं के प्रभाव से गृहीत हो सका था। दक्षिण की शैव-वैष्णव भक्ति-भावना से प्रेम तत्त्व की प्रधानता शापित हो चुकी थी। भाण्डाल की वैष्णव-भक्ति-भावना में तो नायक-नायिका के मधुर-भाव की प्रतिष्ठा भी हो चली थी। इस तरह आलवारों ने वात्सल्य; सख्य, दैन्य एवं मधुर रस के गीतों द्वारा प्रेमलक्षणा-भक्ति-मार्ग को अग्रसर कर दिया था। भागवत पुराण और नारदीय सूत्रों का प्रेमाभक्ति-तत्त्व-पौराणिक काल से ही भागवत-धर्म में स्थान पा चुका था। वैष्णवाचार्य इसी पौराणिक प्रेमाभक्ति तथा आलवारों के प्रेम-तत्त्व से प्रभावित हुए। काश्मीर में भी प्रेममार्गी 'प्रत्यभिज्ञा' सम्प्रदाय ज्ञान से प्रेमाभक्ति को अधिक महत्त्व प्रदान कर रहा था। मध्यप्रदेश का 'बारकरी' भक्त-सम्प्रदाय जिसमें 'सन्त ज्ञानेश्वर' प्रमुख थे, इसी प्रकार की प्रेम साधना का प्रसार कर रहा था। बंगाल का 'वैष्णव सहजिया मत' भक्ति के प्रेमपक्ष का पोषक था। सूफी-सन्त भी प्रेम की पीर को प्रकट कर रहे थे। 'वाउल' सम्प्रदाय जो सहजिया और सूफियों का मध्यमार्ग था मानव प्रेम को भक्ति-क्षेत्र में प्रतिष्ठित कर चुका था। इस प्रकार ईसा की दूसरी शताब्दी से लेकर नवीं-दसवीं शती तक भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रेमाभक्ति का व्यापक प्रसार हो चुका था। अत: मध्ययुगीन वैष्णवाचार्यों ने भी प्रेमाभक्ति का सैद्धान्तिक विवेचन कर समस्त उत्तरी भारत में भक्ति की मधुर-धारा प्रवाहित की। मध्ययुगीन भक्त-हृदय ने अपनी लौकिक प्रेमानुभूतियों से भगवान् रामकृष्ण आदि आरायों के पौराणिक स्वरूप को प्रेम में घुलामिला दिया जिससे उनके सरस लोकरंजक स्वरूप की प्रतिष्ठा हुई। अब आराध्यदेव परम ऐश्वर्यशाली ही नहीं रहे वरन् भक्त मनोहारी एवं आत्मानन्द बन बैठे।

इस प्रेमलक्षणा-भक्ति मार्ग में लौकिक-प्रेम की स्वीकृति से नायक-नायिका की भावना ने प्रवेश किया फलत: दाम्पत्य-भावोपासना की प्रतिष्ठा हुई तथा मधुर रस को भक्ति मार्ग में सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त हुआ। इसी दाम्पत्य भाव ने युगलोपासना की ओर प्रेरित किया जिससे देव-युग्मों की स्थापना हुई। मध्ययुगीन वैष्णवाचार्यों ने अपनी अपनी साम्प्रदायिक मान्यताओं के अनुसार सीताराम-राधाकृष्ण के युगल तत्त्वों की प्रतिष्ठा की। युगलोपासना की इस भक्ति-परम्परा में राधाकृष्ण की मधुर-भक्ति का व्यापक प्रसार हुआ। रसिक भक्तों ने राधाकृष्ण के प्रति अपनी रति-भक्ति-परक सरस अलौकिक-अनुभूतियों द्वारा शृंगारिक भक्ति काव्यों की विपुल सरिता बहा दी। साथ ही उन्होंने राधाकृष्ण की इस माधुर्योपासना में नितान्त विशुद्ध निष्काम तथा ऐकान्तिक लौकिक-प्रेम को मान्यता दी थी। इस दाम्पत्य भक्ति एवं माधुर्योपासना में

शुद्ध एवं पवित्र प्रेम को मान्यता दी थी। इस दाम्पत्य भक्ति एवं माधुर्योपासना में शुद्ध एवं पवित्र प्रेम के निर्वाह हेतु वैष्णवाचार्यों द्वारा परकीया प्रेम तत्त्व को प्रमुखता प्रदान की गई। लौकिक प्रेम एवं स्वकीया प्रीति में स्वसुख स्वार्थ, अधिकार एवं स्थायित्व की भावना से संकीर्णता सम्भावित रहती है; अतः परकीया प्रीति को जिसमें दृढ़ निष्ठा, सतत श्रद्धा, त्याग, निष्काम भावना का प्राबल्य होता है, माधुर्य भक्ति में मान्यता प्राप्त हुई परन्तु आगे चलकर इस परकीया-प्रेम तत्त्व के व्यावहारिक रूप में स्थूल शृंगारिक भावनाओं के समावेश से यह शुद्ध एवं अकलुषित न रह सका।

इस प्रकार मध्ययुगीन वैष्णवाचार्यों ने प्रमुख रूप से राधाकृष्ण की युगलोपासना का प्रवर्तन किया जो आज भी वैष्णवधर्म का प्रमुख अंग है।

2. धर्म दर्शन एवं सम्प्रदाय-चतुष्टय

भारतीय दर्शन वेदान्त शब्द से व्यवहृत किया गया है। व्यासकृत ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्भगवत गीता तथा उपनिषद जो प्रस्थानत्रयी के नाम से अभिहित किये जाते हैं वेदान्त के मूलाधार हैं, आचार्यों ने अपने-अपने मतानुसार भाष्यरचना कर वेदान्त के इन छह पक्षों का प्रतिपादन किया है—अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत तथा आर्चित्य भेदाभेद।

अद्वैतवाद—ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है तथा जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है।[1] यही अद्वैतवाद का मूल सिद्धान्त है। प्रस्थानत्रयी पर शारीरिक-भाष्य के प्रणेता शंकराचार्य ने उभय रूपात्मक ब्रह्म को स्वीकार किया। उनके अनुसार सगुण ब्रह्म जगत के समान मायिक हैं तथा निर्गुण ब्रह्म सर्वथा पारमार्थिक एवं निर्विकार सत्ता है। ब्रह्म सत्य त्रिकालिक, ज्ञानरूप, अविभक्त और अनन्त है। सच्चिदानन्द ब्रह्म ही यथार्थ है। यही ब्रह्म मायावृत्त होकर सगुण ब्रह्म एवं ईश्वर के नाम से चराचर जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, लय का एक मात्र कारण बनता है।

ब्रह्म-स्वरूप में दो लक्षणों की विद्यमानता है-स्वरूप लक्षण, और तटस्थ लक्षण। स्वरूप लक्षण ब्रह्म के यथार्थ एवं तात्विक रूप को प्रकट करते हैं। सत्य, ज्ञान तथा अनन्त[2] ब्रह्म के विशेषण हैं जो ब्रह्म की अद्वैत स्थिति में उसकी एकजातीयता के विरोधी हैं तथा उसकी सजातीयता सिद्ध करते हैं। निर्गुण ब्रह्म जब अपने विशुद्धरूप से विशिष्ट रूप धारण कर सृष्टि सम्पादन करता है तो उसमें नवागत अस्थायी गुण उसके तटस्थ लक्षण कहे जाते हैं।

---

1. ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।
2. सत्यं ज्ञानमननतं ब्रह्म . . . . .तैत्ति. उ. 2/1/1

शंकराचार्य ने माया को अविद्या बतलाया है[1] परन्तु उनके परवर्ती अद्वैतवादियों ने माया और अविद्या में सूक्ष्म अन्तर बताते हुए माया को ब्रह्म की बीज शक्ति कहा है। इसी बीजशक्ति के कारण निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप में प्रकट हो सृष्टि सम्पादन करता है। यही माया अग्नि की दाहिका शक्ति के समान ब्रह्म की अपृथग्भूता शक्ति है। मायारहित ब्रह्म जब सृष्टि कर्म में प्रवृत्त नहीं होता तब उसकी आश्रिता यह अविद्यात्मिका बीजशक्ति अव्यक्तावस्था में महसुप्तिरूपिणी होती है।[2] यह त्रिगुणात्मिका न माया न सत् है न असत् है और न इनकी उभयरूपात्मिका। वह भिन्न नहीं, भिन्ना-भिन्न भी नहीं है, न अंगसहित है, न अंगरहित और न उभयात्मिका ही है। अत: वह नितान्त अद्भुत तथा अनिर्वचनीय है।[3] यही परमेश्वर की अव्यक्त शक्ति अम्बिकारूपिणी त्रिगुणात्मिका माया जगत की उत्पादिका है। इसी कार्य से इसके स्वरूप की प्रतीति होती है।[4] इसकी आवरण और विक्षेप नामक दो शक्तियाँ होती हैं। आवरण शक्ति विशुद्ध ब्रह्म को आवृत्त करती है तथा विक्षेप शक्ति वस्तुभूत ब्रह्म में आकाशादि प्रपंचों द्वारा जगत् की प्रतीति करा देती है।[5] वस्तु में अवस्तु का उत्पादन होता है तथा मायोपाधिक ब्रह्म ही जगत का कर्त्ता बनता है।

जीव ब्रह्म के समान ही अद्वैत है। वह चैतन्य है, कर्मपुल का भोक्ता है।[6] सूक्ष्म होने से अणु है।[7] जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं वरन् उसी के समान विभु है; उनका परस्पर सम्बन्ध अद्वैत है जिसका ज्ञान बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से होता है। मायोपाधिक ब्रह्म जगत का कारण है और जीव कार्य। जीव ब्रह्म ही है। कार्य कारण में अतात्त्विक परिवर्तन से विवर्त की कल्पना की गई है।[8] "रामानुजादि आचार्यों की दृष्टि में परिणामवाद का राज्य है, परन्तु अद्वैतियों के अनुसार विवर्तत का। तात्विक परिवर्तन

---

1. शा.भा.1/4/3
2. शा.भा.1/4/3
3. विवेक चूड़ामणि-शंकरकृत 111
4. अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनाविद्या त्रिगुणात्मिका या।
   कार्यानुमेया सुधियैय माया यथा जगत् सर्वमिदं प्रसूयते।। (वही श्लोक 110)
5. शक्तिद्वयं हि मायाया विक्षेपावृत्तिरूपकम्।
   विक्षेपशक्तिर्लिंगादि ब्रह्माडान्तं जगत् सृजेत।। (दृग्दृश्यविवेक-श्लोक 13)
6. शारीरिक भाष्य 2/3/17
7. 2/3/43 वही
8. सतत्त्वोऽन्यथा प्रथा विकार इत्युदीरितत:।
   अतत्त्वत्तोऽन्यथा प्रथा विवर्त इत्युदाहृत:।। (वेदान्तसार-निर्णयसागर मुम्बई)

(जैसे दूध से दही का) विकार कहलाता है तथा अतात्विक परिवर्तन (जैसे रज्जु सर्प का) विवर्त की संज्ञा पाता है।"[1]

समस्त संसार जो चर्म-चक्षुओं द्वारा दीख पड़ता है असत्य है। सबमें एक ही शुद्ध और परब्रह्म का अस्तित्व है और उसी की माया से भक्ति की प्रतीति होती है। वस्तुत:जीवात्मा परब्रह्म का ही स्वरूप है। जबतक इस अभेद का अनुभव नहीं होता तब तक मुक्ति असम्भव है। शंकर के अद्वैत् वाद का महावाक्य 'सर्वंखलु इदं ब्रह्म' है। दृश्य का निषेध कर जो अनुच्छिष्ट और अवशिष्ट रहता है वही अखण्ड, चिन्मात्र, एक रस, अद्वितीय ब्रह्म है। यह अदृश्य अलक्ष्य और अग्राह्य है। उसकी श्रुति-प्रतिपादित सगुणता केवल उपासना के लिए है। ब्रह्म का वास्तविक रूप निर्गुण और निर्विशेष ही है। आचार्य के अनुसार तत्पदार्थ में अतद्[2] स्वरूप का आरोपण ही अध्यास है और यही संसार के समस्त व्यवहार प्रमेय-कर्तृत्व-भोक्तृत्व का कारण है। अध्यास से संसार में प्रवृत्ति होती है तथा अध्यासनिवृत्ति से जीव को मुक्ति मिलती है।

शांकर-मत का निवृत्ति मार्ग तथा आचार-सिद्धान्त भी उल्लेखनीय है। उनके अनुसार स्मृति गीतादि ग्रन्थों में प्रतिपादित आचरण के आधार पर कर्म करना उपादेय है।

वैष्णवभक्ति-दर्शन और चतु: सम्प्रदाय

(i) द्वैताद्वैत—श्रीनिम्बार्काचार्य ब्रह्म तथा जीव में भेदाभेद तथा द्वैताद्वैत् सम्बन्ध के प्रतिपादक हैं तथा ईश्वर तत्त्वत्रय में वे द्वैत और अद्वैत दोनों सम्बन्धों का प्रतिपादन करते हैं। उनके मतानुसार चित अथवा जीव ज्ञानस्वरूप और ज्ञानाश्रय हैं। वह एक ही काल में ज्ञानस्वरूप ता ज्ञानाश्रय दोनों ही हैं; जैसे कि सूर्य प्रकाशमय होता हे तथा प्रकाश का आश्रय भी। उसका यह स्वरूपभूत गुणभूत-ज्ञान ज्ञातृत्व से अभिन्न है; परन्तु धर्मधर्मिभाव से दोनों में भिन्न भी है।[3] निम्बार्क के अनुसार जीव प्रत्येक दशा में कर्त्ता है। संसारी दशा में उसका कर्त्ता होना अनुभवगम्य है तथा मुक्तावस्था में उसका कर्तृत्व श्रुति पर प्रतिपादित है।[4] शंकराचार्य मुक्त दशा में जीव का कर्तृत्व स्वीकार नहीं करते परन्तु निम्बार्क उनके विपरीत मुमुक्षब्रह्मोपासीत शान्तोपासीत आदि

---

1. वेदान्त के लेखक श्रीबलदेव उपाध्याय-पृ. 532-33 हिन्दी सा.का.व.इ.प्र.भा. हिन्दी सा.की.पी. सम्पादक-राजबली पाण्डे ना.प्र.स. काशी।
2. अध्यासा नाम अतस्मिन् तदबुद्धि:।
3. ज्ञानस्वरूपं च हरेरधीनं शरीरसंयोगवियोगयोग्यम्।
अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्न ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहु:।। (दशश्लोकी 1)
4. कर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा:। (ईशावास्य उपनिषद्)

श्रुतिवाक्यों द्वारा जीव का मुक्तावस्था में कर्त्ता होना प्रमाणित करते हैं।[1] जीव अपने चैतन्यात्मक एवं ज्ञानाश्रय होने से ईश्वर के समान होता है, परन्तु उसमें संसारदशा तथा मुक्तावस्था दोनों में ही नियम्यत्व विद्यमान रहता है। सदा ईश्वर पर आश्रित रहने वाला जीव नियम्य है तथा ईश्वर उसका नियंता। अत: जीव स्वतन्त्र न होकर ईश्वर के अधीन है। परिमाण में जीव अणु तथा नाना है।[2] हरि अंशी है तथा वह उनका अंशरूप। उसके अंश होने का तात्पर्य अंशी के अवयव से नहीं प्रत्युत शक्तिरूप होने से है।[3]

निम्बार्क-मतानुसार ब्रह्म अद्वैत-अविभक्त और सदा निर्विकार है। वह सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ तथा समस्त गुणों का आश्रय है। ब्रह्म के निम्न स्वरूप हैं—

(क) पर अमूर्त—परम-अक्षर-तत्त्व जो सर्वथा निरपेक्ष है तथा जो स्वगत सुधासिन्धु में ही निमज्जित करता है।

(ख) अपर अमूर्त—सर्वदृष्टा ईश्वर जिसमें समस्त शक्तियाँ अन्तर्भूत हैं। इस दशा में ब्रह्म को ईश्वरत्व के साथ सम्पूर्ण सृष्टि का भाव बना रहता है।

(ग) पर मूर्त—समग्र संसार का धारणकर्त्ता जिसे हिरण्य-गर्भ कहा जाता है।

(घ) अपर मूर्त—जीवरूप ब्रह्म जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द की अनुभूति होती है।

सृष्टि के उपादान और निमित्त ब्रह्म ही हैं। ब्रह्म के अनन्त व्यक्त-रूपों का नाम ही सृष्टि है। सृष्टि के सम्पूर्ण दृश्य-श्रव्य आदि अनुभव गम्य पदार्थों में अन्तर्बाह्य सर्वत्र परब्रह्म नारायण ही व्याप्त तथा स्थित है।[4] ईश्वर स्वतन्त्र तथा चिदचित् का नियामक है। जीव जगत् नियम्य होने से ईश्वर के अधीन हैं तथा उससे अभिन्न हैं।

सर्वथा अविकृत-अविभक्त-ब्रह्म नानारूपात्मक पदार्थों में आविर्भूत हो आनन्दोपभोग करता है। अत: जीव जीवावस्था में ब्रह्म का पूर्ण अंश है; उसका परमात्मा से अभिन्न सम्बन्ध है। संसारदशा में ईश्वर और जीव के चित्त में परिवर्तन नहीं होता परन्तु ब्रह्म के अनन्त रूप होने से इन रूपों के दृष्टा जीव भी अनन्त हैं। ईश्वर सार्वभौम हैं तथा अणु रूप जीव समस्त पदार्थों में व्याप्त हो स्वयं अनुभवगम्य होता है। निम्बार्क ने जीव दो प्रकार के माने हैं—

---

1. कर्त्ताशास्त्रार्थत्वात-ब्रह्मसूत्र 2/3/22 पर पारिजात सौरभ
2. दशश्लोकी-1
3. अंशो हि शक्तिरूपो ग्राह्य: (ब्रह्मसूत्र 2/3/42 पर कौस्तुम)
4. यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अन्तर्बहिश्च तत् सर्वं व्याप्य नारायण: स्थित:।। (सिद्धान्त जाह्नवी पृ. 53)

(क) मुक्त—(1) नित्यमुक्त, भगवान् के पार्षदादि

(2) मुक्त-साधनाओं से मुक्ति-प्राप्त।

(ख) बद्ध—(1) मुमुक्ष—संसारदशा में मुक्ति साधक, (2) बुभुक्षु भोगाभिलाषी साधक। अचित् तत्त्व तीन प्रकार का बताया है—(1) अप्राकृत-प्रकृति से परे वैकुण्ठ। श्रुति प्रतिपादित परम व्योम, परमपद तथा विष्णुपद; (2) प्राकृत जगत जिसकी उत्पादिका प्रकृति है पर यहाँ प्रकृति को सांख्य मत के विपरीत परतन्त्र तथा ईश्वराधीन माना है। (3) काल-अचेतन तत्त्व जो जगत् नियामक होने पर भी ईश्वराधीन है तथा स्वरूप में नित्य और कार्यरूप में अनित्य है।

श्री कृष्ण—परब्रह्म कृष्ण यहाँ अविद्या, अस्मिता, रागद्वेष, अभिनिवेशादि समस्त दोषों से विरत, सत्य-ज्ञान स्वरूप तथा अनन्त, आचिन्त्य, मोक्षदान, सम्पूर्ण-ज्ञान-शक्ति-बल-ऐश्वर्यतेज आदि कल्याणकारी गुणों की अशेष अक्षय राशि हैं तथा वे ही नृसिंह—नारायण आदि व्यूहांगों के अंगी हैं। परमेश्वर, ब्रह्मरुद्रादिकों के जनक, अविद्याजन्य पापों का हरण करने वाले, कमल नेत्र तथा मुमुक्षुओं का वरण करने योग्य हैं।[1] वे ही परम उपास्य हैं जिनकी वन्दना ब्रह्माशिवादिक देव करते हैं तथा वे अपनी अचिन्त्य शक्तियों द्वारा भक्तों के समस्त क्लेश हरते हैं। अत: कृष्ण के चरणारविन्दो का आश्रय छोड़ देने पर जीवों की अन्य गति नहीं।[2]

श्री राधा—निम्बार्क ने दशश्लोकी, राधाष्टक, कृष्णाष्टक तथा प्रात: स्मरण स्तोत्र आदि ग्रन्थों में राधाकृष्ण के स्वरूप एवं राधाप्रधान युगलोपासना का दार्शनिक विवेचन किया है। उनकी इष्टदेवी राधाकृष्ण की अर्धांगिनी है; कृष्ण के वामाँग में विराजमान राधाकृष्ण के अनुरूप ही शक्ति-सोन्दर्य-कलामयी हैं तथा अर्धांगिनी होने से अभिन्न हैं, श्री कृष्ण की आह्लादिनी और प्राणेश्वरी हैं। वह सहस्त्र सखियों द्वारा निरन्तर परिसेवित हैं तथा भक्तों की सकल कामनाओं की दात्री हैं। यही वृषभानुजा राधा परमेश्वरी रूप में स्मरणीय हैं।[3] आराध्यदेव श्री कृष्ण सर्वेश्वर हैं तथा उन्हीं के अनुरूप शक्तिरूपा राधिका सर्वेश्वरी हैं। परवर्ती आचार्यों ने निम्बार्काचार्य के इसी राधाभाव को ग्रहण कर युगलोपासना में राधास्वरूप की विशिष्टता स्थापित की निम्बार्क मत की है। राधा का स्वरूप ब्रह्म, पाद्म; मत्स्यादि पुराण; राधिकोपनिषद्, ऋक्परिशिष्ट तथा राधा तंत्रों के अनुसार है। वेदों में 'श्री' के श्री तथा लक्ष्मी उभय का वर्णन हुआ है।[4] श्री कृष्ण के साथ श्री राधारूप में तथा लक्ष्मी रुक्मिणी के रूप में

---

1. दशश्लोकी-3
2. दशश्लोकी-8
3. दशश्लोकी-5
4. श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे। (पुरुषसूक्त)

आविर्भूत हुई हैं। ऋक्परिशिष्ट राधाकृष्ण में अभिन्नत्व बताता है तथा भिन्नत्व देखने वाले को मुक्ति का निषेध करता है।[1] राधा कृष्ण की आह्लादिनी है पर राधिकोपनिषद् में राधाकृष्ण को परस्पर सेवा करने वाला कहा गया है।[2] स्कन्दपुराण क अनुसार कृष्ण आत्माराम हैं। और राधा उकनी आत्मा है, जिसमें वे नित्य रमण करते हैं।[3] राधाकोपनिषद् में राधिका शरीर से ही लक्ष्मी, गोपियों तथा अन्य कृष्ण महिषियों का आविर्भाव होना कथित है। राधाकृष्ण परब्रह्म विष्णु से उद्भूत हुये हैं, अभिन्न होते हुये भी रसक्रीड़ा हेतु दो विग्रह हैं। श्री राधा सर्वेश्वरी, समस्त विद्यारूपिणी, सनातनी तथा प्राण-अधिष्ठात्री हैं। श्री कृष्ण की कृपा प्राप्ति का हेतु राधिकाभक्ति है जिकी उपेक्षा कर कृष्ण-वन्दना करने वाला महामूढ़ है।[4]

निम्बार्कमत में राधाकृष्ण की युगलोपासना की प्रतिष्ठा होने से इसे सनक सम्प्रदाय कहा गया है। राधाकृष्ण की भक्ति से ही जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती है तथा अनादि काल से माया में पड़े जीव को सत्य स्वरूप का ज्ञान होता है।[5] यहाँ राधाकृष्ण की निकुंज लीला में प्रवेश पाता है। यह निकुंज लीला नितान्त गोप्य, एकान्तिक तथा रहस्यमयी है। भागवतानुसार यहाँ राधाकृष्ण को नित्य किशोर नित्य किशोरी के रूप में स्वीकार किया है। श्री कृष्ण की बाल्य, पौगण्ड, कैशोर तथा यौवन सभी अवस्थायें एक साथ और नित्य हैं। भगवान् नित्य कैशोर वय में रहते हैं।[6] तथा उनके लीलाधाम पार्षद आदि विधान भी नित्य तथा नूतनवयस: हैं।[7] भगवान् भक्तों के लिए नित्यकिशोर रूप में लीला करते हैं। नित्ल-किशोर-किशोरी की इस नित्य-विहार-लीला का सेवनकेवल रसिक-भक्त ही कर सकता है। निकुंज लीला रस की दृष्टि से नितान्त मधुर और अन्तरंग है। रसिक किशोर-किशोरी अहर्निश निकुञ्ज रसकेलि में निमग्न रहते हैं। यहाँ ब्रजलीला की भाँति मानविरह का विधान नहीं होता है तथा अखण्ड-माधुर्य रस प्रवाहित होता रहता है। सहचरी रूप में भक्त अहर्निश मंगला से शयन तक युगल के केलिनिकुंज का परिसेवन करते हुए दृष्टा एवं साक्षी रूप से निकुंज लीला का दर्शनानन्द लेते हैं।

---

1. राधया सहितो देवो माधवेन च राधिका।
   योऽनयोर्भेदं पश्यति स संसृतेमुक्तो न भवति।। (ऋकपरिशिष्ट)
2. कृष्णेनाराध्यते इति राधा-राधिकोपनिषद्। (कल्याण का श्रीकृष्णांक)
3. आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ।
   आत्माराम इतिप्रोक्ते मुनिभिर्गूढ़वेदिभथ्:।। (स्कन्दपुराण कल्याण का श्रीकृष्णांक)
4. राधिकोपनिषद्
5. दश श्लोकी-2
6. सन्त वयसि कैशोर भृत्यानुगह—कातरम्। (भागवत—3/28/17)
7. सर्वे च नूतनवयस: सर्वे चारु चतुर्भुजा:। (भाग-6/1/35)

(ii) विशिष्टाद्वैत—रामानुजमतानुसार जगत् में निर्गुण ब्रह्म की कल्पना भ्रामक है। वे ब्रह्म की अद्वैत सत्ता को चिन्मय आत्मा तथा जड़-प्रकृति से विशिष्ट मानते हैं। चित्, अचित्, ब्रह्म के शरीर हैं; इस प्रकार जड़ तन से विशिष्ट ब्रह्म की अद्वैतता है।

रामानुजानुसार पदार्थ तीन हैं यचित्, अचित् और ईश्वर। चित से अभिप्राय भोक्त जीव से है तथा अचित का जगत से और ईश्वर का सर्वान्तर्यामी ब्रह्म से; रामानुज का यह तत्त्वत्रय श्वेताश्वेतरोपनिषद के 'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वप्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म एतत्' की कल्पना पर आधारित है।[1]

चिदचिद नित्य और स्वतन्त्र हैं पर उनमें सर्वान्तर्यामी परमात्मा का निवास होने से वे ईश्वराधीन हैं।[2] ईश्वर तथा चिदचिद् का परस्पर सम्बन्ध आत्मा और शरीर के अनुरूप है। आत्मा शरीर का धारण-पोषणकर्त्ता; नियामक एवं उसके कार्यों का प्रेरक है। उसी प्रकार ईश्वर चिदचिद् का आश्रय नियामक एवं उसके समस्त कर्मों का प्रेरक है।[3]

रामानुजमतानुसार ब्रह्म पाँच रूपों में प्रकट होता है—

(क) परब्रह्म—नारायण या वासुदेव हैं जिनका प्रमुख धाम अनन्त ऐश्वर्यशाली व वैकुण्ठ है। जहाँ शेषशायी भगवान् दिव्यालंकारों से सुशोभित चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये श्री, भू, लीला आदि दिव्य महिषियों से परिसेवित हैं तथा जिनके साथ अनन्त, गरूड़, विष्वकसेनादि पार्षद तथा मुक्त आत्माएँ अहर्निश विहार करती हैं।

(ख) व्यूह—पूजा-उपासना तथा सृष्टि-उत्पादनार्थ इसी परब्रह्म ने चार रूप धारण किये हैं—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध।

(ग) विभव—भगवान के मत्स्य-कच्छपादि दशावतार।

(घ) अर्चा—मन्दिरों की मूर्तियों में परब्रह्म सूक्ष्म शरीर से निवास करते हैं।

(ङ) अन्तर्यामी ब्रह्म—जो योगियों के अन्तःकरण में तथा प्रेरक रूप से घर घर में व्याप्त हैं।

रामानुज के परम उपास्य श्री लक्ष्मी नारायण हैं—

नारायण—श्री या लक्ष्मी के पति तथा सर्वोपरिदेव हैं। उनका दिव्य श्री विगह सर्वदा एकरस, अचिन्त्य, विलक्षण, स्वेच्छानुरूप, नित्य-निर्मल तथा सौन्दर्य लावण्य,

---

1. श्वेता. 1/12
2. परमेश्वरस्यैव भोक्तृभोग्ययोरूभयोरन्तर्यामिरूपेणावस्थानम् (स.द.सं. पृ. 40)
3. 2/1/9-श्री भाष्य

कौमार्य आदि अनन्त गुणों वाला है। दिव्यआभूषण तथा आयुधों से सुसज्जित यही परब्रह्म नारायण ब्रह्मा से सूक्ष्मकीट पतंगों तक की सृष्टि करते हैं तथा निरन्तर अपने स्वरूप में अवस्थित हैं। इनकी लीला ही समस्त सृष्टि का एकमात्र कारण है।[1]

लक्ष्मी—शेषशायी भगवान् नारायण की प्रियतमा 'श्री' या 'लक्ष्मी' रूप, गुण, विभव, ऐश्वर्य, शील आदि गुणों में अपने प्रियतम के अनरूप हैं।[2] वह नित्यानुकूल, षडैश्वर्यशालिनी, निरविद्या, भगवती, जगन्माता, दिव्यमहिषी हैं।[3] रामानुजमत का प्रवर्तन 'श्री' से माना जाता है, इसीलिए इसे श्री सम्प्रदाय कहते हैं।

अद्वैतवाद के विपरीत रामानुजमत में जीव एक और विभु न होकर अणु और अनन्त हैं। देहधारण से जीव में नानात्व ही प्रकट नहीं होता वरन् जीवों में नितान्त पृथक्ता भी हैं। ब्रह्म विभु है और जीव अणु; दोनों में सजातीय विजातीय भेद नहीं, स्वभावत: भेद है। जीव कार्य और ईश्वर कारण है। इसी कारण ब्रह्म जीव का अधिपति है।[4] जीव अनीश, अज्ञ तथा त्रयतापों से निरनतर बाधित है। रामानुज अग्नि-स्फुल्लिग के सदृश ही जीव-बह्म में अंशाशीभाव का सम्बन्ध स्थापित करते हैं। आपने जीव के तीन भेद माने हैं—

(क) बद्ध—सृष्टि-चक्र में बँधे हुये जीव (ब्रह्मा से लेकर सूक्ष्म कृमि-कीट पतंग तथा वनस्पति) जिनकी दो कोटियाँ हैं—भोगेच्छु तथा नित्य। (2) मुक्त, (3) नित्यद्य रामानुज ने 'अचित् तत्त्व' के तीन भेद बताये हैं—(1) शुद्ध सत्त्व—यह रजोतमोगुण से परे विशुद्ध सत्त्व, नित्य तथा अप्राकृत तत्त्व हैं जिसे त्रिपाद, विभूति, परमपद, परम व्योम, वैकुण्ठादि नामों से व्यवहृत किया जाता है।

(ख) मिश्र सत्त्व—रजतमोगुण से युक्त मिश्रसत्व ही अविद्या या प्रकृति है जो प्राकृतिक सृष्टि का उपादान है। (3) सत्त्व शून्य 'काल' है।

रामानुज ने भक्ति के साधन पक्ष में कर्मयोग को प्रमुख स्थान दिया है। पूजा-कर्म भी पाँच प्रकार के बताए गये हैं—

(क) इज्या—देवप्रतिमापूजन।

(ख) अभिगमन—देव स्थान तथा मार्ग का परिमार्जन प्रक्षालन एवं लेपन।

(ग) स्वाध्याय—मन्त्रजाप, वेष्णव-सूत्रस्तोत्रादि का पाठ।

(घ) उपादान—आराध्य देव की पूजा हेतु सामग्री एकत्र करना।

---

1. गीताभाष्य—नामानुज पृ. 1-5
2. स्तोत्रमंत्र, 38 श्री यामुनाचार्य कृत।
3. रामानुजाचार्य कृत गद्यत्रय पर वंकटभाष्य।
4. श्वेता. 6/9

(ङ) योग—देव अनुसंधान, यमनियमादि, अष्टांग-योग के साथ शुद्ध एवं सात्विक अन्न जलादि का सेवन। इस कर्मोपासना से साधक की आत्म शुद्ध हो ब्रह्मज्ञान के योग्य बनती है।[1]

कर्मयोग-ज्ञान से विशुद्ध चित्त वाला साधक ही भगवान का एकान्तिक भक्त बनता है तथा इसी भक्तियोग से वह भगवान का साक्षात्कार करता है। रामानुज को पराप्रपत्ति अथवा शरणागति ही मान्य है। भगवान को आत्म समर्पण करना ही प्रपत्ति है। जीव दीनभाव से भगवान् के शरणागत हो जाय तो उसके समस्त दुःख भगवदनुग्रह से मिट जायेंगे। जीवपक्ष में ईश्वर की शरणागति और ईश्वर पक्ष में जीव के प्रति अहैतुकी दया ही रामानुजीय प्रपत्ति सिद्धान्त की विशेषता है।[2]

शंकराचार्य जीवनमुक्ति को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार आत्मा नित्य मुक्त है। अज्ञानावरण हटने पर मुक्तात्मा का ब्रह्म के साथ ऐकात्म्य तथा अभिन्नत्व सम्पन्न हो जाता है। इसके विपरीत रामानुज के मतानुसार मुक्तात्मा में सर्वातत्त्व और सत्य संकल्पत्व गुणें का प्रादुर्भाव हो जाता है। पर सर्वकर्तृत्व गुण केवल ईश्वर में ही विद्यमान रहता है; अतः मुक्तावस्था में भी जीव ब्रह्म का दास है।[3] आत्मा प्रत्येक अवस्था में देहधारी होती है। वैकुण्ठ में भी वह अप्राकृत देहधारण कर भगवान् का किंकर बनती है। श्री रामानुज के अनुसार कैंकर्य-विग्रह प्राप्त करना ही परम पुरुषार्थ और मुक्ति है। इस प्रकार श्री रामानुजाचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त 'विशिष्टाद्वैत' एवं उपासना श्री लक्ष्मीनारायण-युगल स्वरूप है, उसी प्रकार श्री रामानन्दाचार्य जी के मतानुसार दार्शनिक सिद्धान्त-विशिष्टाद्वैत तथा उपासना श्री सीताराम-युगल स्वरूप है। अन्य सब सैद्धान्तिक एवं सदाचार सम्बन्धी विषय उभय आचार्य वर्य्यों का समान है।

(iii) द्वैतदर्शन—माध्वाचार्य ने जीव और ईश्वर दोनों तत्त्वों को नित्य तथा भिन्न मानते हुये द्वैतवाद का प्रतिपादन किया है।[4] उसके मतानुसार गुणों के तारतम्य से जीव की तीन श्रेणियाँ होती हैं—मुक्ति योग्य, नित्य संसारी और तमोयोग्य। प्रत्येक जीव में संसारदशा तथा मुक्तावस्था में भिन्नता होती है तथा वह परमात्मा से नितान्त भिन्न है। मुक्तपुरुष आनन्दानुलव करता है पर उसकी आनन्दानुभूति में भी परस्पर तारतम्य बना रहता है।[5]

---

1. सर्व दर्शन संग्रह—52-54
2. सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणम् व्रज—गीता।
3. सर्वदर्शन संग्रह, पृ. 47
4. सर्वदर्शन संग्रह-26, पृ.
5. गीताभाष्य-माध्व

माध्व ने जीव और ईश्वर दोनों को चेतन तत्त्व माना है। संसार में दो प्रकार के तत्त्व हैं—क्षर और अक्षर। समस्त भूत क्षर हैं, तथा जीव अक्षर हैं जो अविनाशी है। पर जीव अज्ञान, मोह, दु:ख, भयादि से युक्त होने से वह अनादि से बद्ध है। वह भगवान के अधीन हैं तथा उसमें स्वभावत: अल्पशक्ति एवं अल्पज्ञान होने से वह सदा ईश्वर पर आश्रित रहता है। अत: जीव चैतन्य होकर भी परतन्त्र है और ईश्वर सर्वथा स्वतन्त्र।

वेदों में ईश्वर को सत्यसंकल्प बतलाया गया है। सत्यसंकल्प ईश्वर द्वारा निर्मित्त सृष्टि कभी असत्य नहीं होती; अत: माध्वमत में अद्वैतवाद के विपरीत जगत को मायाजन्य, रज्जुसर्पवत्-मिथ्या तत्त्व नहीं माना जाता, वरन् उसे सत्य स्वीकार किया गया है। यहाँ द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशिष्ट, अंशी, शक्ति, सादृश्य और अभाव दस पदार्थ माने गए हैं। परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, आकाश, प्रकृति, गुणत्रय, महतत्त्व, अहंकार, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, तन्मात्रा, भूत, ब्रह्माणु, अविद्या, वर्ण, अन्धकार, वासना काल और प्रतिबिम्ब बीस द्रव्य हैं तथा शक्ति के 4 भेद हैं—(1) अचिन्त्य-शक्ति, (2) आधेयशक्ति, (3) सहजशक्ति, (4) पदशक्ति।

अचिन्त्यशक्ति का भगवान् विष्णु में पूर्ण निवास है। यह अघटित घटना-पटीयसी होती है। आधेय शक्ति आरोपित शक्ति है जिसे मूर्ति में प्रतिष्ठित देव-सानिध्य कहा जाता है। सहज-शक्ति सर्व-पदार्थनिष्ठ होती है तथा पदशक्ति, पद और पदार्थ को विछिन्न करती है।

माधव ने विष्णु को ही परम तत्त्व माना है। जो अनन्त असीम, निरवधिक तथा निरतिशय गुणों से विभूषित परमात्मा है।[1] उन्हीं से चराचर जगत की सृष्टि होती है।[2] वे सच्चिदानन्द हैं, दिव्यदेहधारी तथा नित्य और स्वतन्त्र हैं। उनके मत्स्य कूर्मादि समस्त अवतार स्वयं पूर्ण होते हैं।[3] भागवतकार ने विष्णु के अवतारों में श्री कृष्ण को ही पूर्णावतार माना है तथा शेष को अंशावतार[4] परन्तु माध्वमत के अनुसार भगवान के अवतारों में भेद दृष्टि रखना अनुचित है।

लक्ष्मी विष्णु की शक्ति है तथा वह परमात्मा की भाँति नित्यमुक्त, अप्राकृत तथा दिव्य-देह धारिणी है।[5] वह विष्णु के अधीन है; शक्ति से भगवान से न्यून होने से वह उनमें भिन्न है।[6] वह भगवान् की भार्या है जो माया का रूप धारण करती है तथा भग्वान

---

1. सर्व दर्शन संग्रह 23 (पूर्णप्रज्ञादर्शन)
2. विष्णोर्देहात् जगत्सर्वमाविरासीत्। (तत्त्व-विवेक)
3. अवतारदयो विष्णो: सर्वे पूर्णा: प्रकीर्तिता:। (माध्ववृहत्भाष्य)
4. श्रीमद्भागवत—1/3/28
5. द्वावेच नित्यमुक्तौ तु परम: प्रकृतिस्तथा।
   देशत: कालतश्चैव समव्याप्ताबुभावजा।। (भागवत-तात्पर्य-निर्णय)
6. परमात्माभिन्न तन्मात्राधीन लक्ष्मी:। (माध्वसिद्धान्तसार पृ. 26)

से संकेत पाकर सृष्टि का सम्पादन करती है। श्री, भू, ह्री, दक्षिणा, सत्या; सीता, रुक्मिणी आदि उसी के रूप हैं।

माधव ने साधना के क्षेत्र में नामस्मरण, गुणकथन, मनन श्रवणादि की महत्ता स्वीकार की है तथा इनके सेवन के लिए निम्न उपाय बतलाये हैं—

(क) अंकन—रूप-स्मरणादि के लिए देह को बक्रादि आयुधों से चित्रित करना।

(ख) नामकरण—नाम-स्मरण-उच्चारण के लिए पुत्रादिकों का विष्णुपरक नाम रखना।

(ग) वाचक—सत्य, प्रिय तथा हितमय वचन बोलना तथा स्वाध्याय करना।

(घ) कायिक—दान आदि से परोपकार करना।

(ङ) मानसिक—श्रद्धा सहित भगवान के चरणों में एकान्तिक भक्तिभाव रखना।

(iv) **अद्वैतवाद**—''ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर:'' शंकराचार्य के इस दार्शनिक अभिमत का पूर्व में सम्यक् प्रख्यापन किया जा चुका है।



चतुर्थ-अध्याय

मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन एवं निम्बार्क-सम्प्रदाय

मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन

विभिन्न सम्प्रदायों की दार्शनिक विचारधाराओं, परम्परागत-भक्ति-भावनाओं एवं विभिन्न काल में उपस्थित होने वाली घटनाओं के ताने-बाने से परशुरामदेव की साधना का सूत्र निर्मित हुआ है। आपके साहित्यिक पृष्ठभूमि मध्ययुग का इतिहास है। इसे बहुत से इतिहासकारों ने सांस्कृतिक ह्रास का युग कहा है।

इस युग में धर्म के क्षेत्र में जहाँ एक ओर संकीर्णता,जातीयता तथा सम्प्रदाय-भावना बढ़ी वहाँ दूसरी ओर पाशुपत-शैव, शाक्त, बौद्ध, वैष्णव आदि सम्प्रदायों में उल्लेखनीय समन्वय भी हुआ। वैष्णव-धर्म ने विभिन्न मतों को अपनी प्रेम साधना से प्रभावित किया और साथ ही उस पर अन्यान्य सम्प्रदायों की छाप अंकित हुई। इसी काल में वैष्णव धर्म में अनेक श्रुति सम्मत दार्शनिक सम्प्रदाय स्थापित हुए। अद्वैत, विशिष्टताद्वैत शुद्धाद्वैत आदि अनेक भिन्न-भिन्न मतमतान्तरों का प्रवर्तन हुआ। शैव-शाक्त, गाणपत्य आदि सम्प्रदाय भी वेद-विहित रूप में संगठित किये गये। वैदिक काल में प्रारम्भ होने वाली भक्ति उपनिषदों, ब्राह्मण-ग्रन्थों, महाभारत, गीतादि में विकसित होती हुई पुराणों में आकर अब विशिष्ट रूप धारण कर चुकी थी। उसने पौराणिक युग में आकर सुसंगठित एवं शास्त्रीय रूप धारण कर लिया था। इसी मध्ययुग के प्रेमा-भक्ति प्रवाह में सम्पूर्ण भारत आकण्ठ निमग्न हो गया जिसके विषय में विदेशी विद्वान् अनेक थोथी कल्पनाएँ कर बैठे। अव्यवस्थित एवं अनुपलब्ध ऐतिह्य के कारण पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी अहम् मान्यता प्रकट करने का अवसर प्राप्त किया। यह भक्ति आन्दोलन हिन्दी के इतिहास में **'भक्तिकाल'** के नाम से व्यवहृत होता है जिसकी प्रबल भक्ति धारा को डॉ. ग्रियर्सन ईसाईयत की देन बतलाते हैं। यह आन्दोलन अकस्मात् विद्युत की भाँति प्रकट नहीं हुआ था वरन् इसके लिए अनेक वर्षों से भारत के आकाश में मेघखण्ड एकत्र हुए थे। यह भक्ति धारा वेदों से आरम्भ होकर उपनिषदों, ब्राह्मणों-पुराणों में अपना सुगम मार्ग बनाती हुई तथा बौद्ध-जैन धर्म के प्रस्तरों से टकराती हुई प्रबल रूप में प्रकट हुई थी, जिसके समक्ष कट्टर मुस्लिम शासक भी नत मस्तक हो गये थे। पुराणों का रचनाकाल ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से ईसा की छठी शताब्दी तक माना जाता है। इस युग में वैष्णव धर्म में

नाराणीय, सात्वत् पांचरात्र आदि सम्प्रदायों का पूर्व विकास हो चुका था। इन सम्प्रदायों ने वैष्णव धर्म की शास्त्रीय मर्यादा स्थापित की। गीता की निष्काम उपासना तथा भागवत पुराण की प्रेमाभक्ति का सम्मिलित रूप वैष्णव-धर्म में स्वीकृत हो चुका था। विष्णु, वासुदेव, कृष्ण की आराधना भारत में व्यापक रूप से प्रचलित थी। इस युग में वैष्णव धर्म के साथ-साथ भारत में बौद्ध और जैन धर्म का प्रभाव एवं विस्तार भी उत्तरोत्तर होता जा रहा था। ईसा की चौथी शताब्दी से छठी शताबदी तक भारत में गुप्त वंश का शासन रहा, जिसके प्रभाव से भागवत धर्म का प्रसार सम्भव हो सका और बौद्ध धर्म की व्यापकता कम हुई, परन्तु हर्षवर्द्धन के समय सातवीं शताबदी में बौद्ध-जैन, शैव, गाणपत्य मतों ने पुन: प्रतिष्ठा प्राप्त की और वैष्णव धर्म की उपेक्षा ही रही। यज्ञ-कर्मों में पशुबलि तथा वैष्णव-भक्ति कर्मों में उग्र-ब्राह्मणवाद की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप समानता एवं अहिंसा के मूलाधार पर बौद्ध-जैन-धर्म का सूत्रपात, प्रचार एवं विकास हुआ जिससे प्रत्यक्ष रूप से वैष्णव धर्म को इन धर्मों के साथ, ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से ईसा की सातवीं-आठवीं शताब्दी तक संघर्ष करना पड़ा। वैष्णव धर्म का रक्षण, प्रसार एव नवीन सरस रूप में उसके विकास का महत्त्वपूर्ण कार्य दक्षिण के आल वारों द्वारा सम्भव हो सका। दक्षिण के इन संतों की पावन-प्रेमा-भक्ति से प्रभावित हो यहाँ के आचार्यों ने प्रेम-लक्षणा-भक्ति का दार्शनिक निरूपण किया। इन वैष्णवाचार्यों द्वारा अद्वैत, द्वैत, विशिष्टताद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि विभिन्न वैष्णव भक्ति-सम्प्रदायों का प्रवर्तन हुआ। इधर बौद्ध जैन धर्म अपने पथ को भूल चुके थे, फलत: वैष्णव भक्ति आन्दोलन प्रबल वेग से बढ़ता गया और 14-15 वीं शताब्दी में आकर पूर्णता को प्राप्त हुआ।

वैष्णव धर्म साधना के क्षेत्र में ईसा की छठी शताब्दी से लेकर 11-12 वीं शताब्दी तक का युग महत्त्वपूर्ण है। आठवीं-नवीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म ह्रासोन्मुख हो चला था और दक्षिण का वैष्णव धर्म उसे परास्त कर वैष्णवाचार्यों द्वारा देश के एक छोर से दूसरे छोर तक पुन: प्रसारित हो सका। वैष्णव धर्म के क्षेत्र में बौद्ध धर्म की अहिंसा को स्वीकारा नया तथा शैव-शाक्त, पाशुपत, नाथ-योगी, गाणपत्य सौर आदि उपासना मार्गों की प्रेमान्धता, मिथ्याडम्बर, अनाचार आदि को त्याग कर उनकी निराकारोपासना, एकेश्वरवाद, समानता आदि सिद्धान्तों को भी मान्यता दी गई। इस प्रकार वैष्णव धर्म साधना सार्वलौकिक एवं सर्वव्यापक स्वरूप ग्रहण कर सकी।

इसे मुस्लिम कठोरता का भी सामना करना पड़ा, पर सूपुयों की एकान्त साधना ने इसे प्रभावित किया। मुस्लिम शासकों की कट्टरता ने भक्ति आन्दोलन को और भी तीव्र कर दिया। इन्हीं विविध परिस्थितियों में संघर्ष करता हुआ वैष्णव धर्म अन्तिम काल में पूर्णता को प्राप्त हो सका तथा इन्हीं कारणों से यह 15वीं शताब्दी में आकर अत्यन्त सरस एवं लोक-ग्राह्य स्वरूप ग्रहण कर सका। परशुरामदेव, तुलसी, सूर आदि भक्त-कवियों के हाथों में आकर तो पुन: इसका प्रसार समस्त भारत में हो गया।

वेदों से आरम्भ होने वाली भक्ति-भावना जो पौराणिक युग में आकर विशिष्ट रूप धारणकर चुकी, वही मध्ययुगीन भक्ति-आन्दोलन की मूल शक्ति सिद्ध हुई। अनेकानेक सन्त-भक्तों ने साकार-निराकार साधना के सिद्धान्तों को इसी परम्परा से लेकर अपनी सधुक्कड़ी भाषा में जनता को प्रदान किया। प्रेम-मार्गीय भक्तों ने शास्त्रीय एवं प्रेमाभक्ति के राग अलापे और उपदेश-व्यंग्य के माध्यम से निर्गुण सन्तों ने मानव-मात्र का कल्याण किया।

यहाँ उन मध्ययुगीन साम्प्रदायिक दर्शनों का उल्लेख करना आवश्यक है, जिन्होंने परशुरामदेव के साहित्य पर प्रभाव डाला है तथा जिनके प्रभाव से मध्ययुगीन प्रेमलक्षणा-भक्ति का स्वरूप स्थिर हो सका है।

(1) पौराणिक वैष्णव धर्म

ऋग्वेद की ऋचाओं में सूर्य, अग्नि, इन्द्र, वरूण आदि देवताओं की स्तुतियों में वैष्णव भक्ति-भावना का बीजांकुरण हुआ। संहिताओं, ब्राह्मणों में कर्मकाण्डविधान का प्राधान्य था परन्तु यहाँ सगुण ब्रह्म की कल्पना और उसके साथ भक्ति भावना का भी संचार होता रहा। महाभारत गीता तक आते आते भक्ति अत्यन्त व्यापक रूप धारण कर चुकी थी। वासुदेवभक्ति के नाराणीय, पांचरात्र, सात्वत आदि विभिन्न सम्प्रदाय स्थापित हो गये। पौराणिक युग सगुण भक्ति का स्वर्ण युग था। यहाँ तक आते आते विष्णु को पूर्ण ब्रह्म स्वीकार कर लिया गया। परब्रह्म विष्णु के रामकृष्ण आदि के अवतारों की प्रतिष्ठा हुई। परम्परागत भक्ति-भावना जो महाभारतकाल में वासुदेव-भक्ति का प्रबल रूप धारण कर चुकी थी, पौराणिक युग में आकर कृष्ण भक्ति में समाविष्ट हो गई। वासुदेव कृष्ण बन गये और नारायण, सातवत आदि प्राचीन सम्प्रदाय पौराणिक युग में आकर वैष्णव धर्म के विशिष्ट अंग बन गये तथा उनके आधार पर नवीन युग का प्रवर्तन हुआ। मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन पर पुराणों का विशेष प्रभाव रहा है। हिन्दी साहित्य पर भी इसकी छाप अंकित है।

वैष्णव धर्म के विकास एवं प्रसार में पुराणों का विशेष योग रहा है। पुराण वैष्णव धर्म के महत्त्वपूर्ण इतिवृत्त हैं। वैष्णव धर्म की प्रचलित मान्यताओं का मूल बीज पुराणों में निहित है। राधाकृष्ण के स्वरूप, लीला रहस्य तथा पूजा विधान की भिन्न-भिन्न धारणाओं एवं मान्यताओं को लेकर निम्बार्क, राधा वल्लभ, गौड़ीय वल्लभ आदि प्राचीन एवं अवान्तरकालीन वैष्णव सम्प्रदायों की रचना का आधार ब्रह्मवैवर्त, पद्म तथा भागवत आदि पुराण ही हैं। वैष्णव सिद्धान्तों का विस्तृत प्रतिपादन पुराणों में हुआ है। अतः मध्ययुगीन वैष्णव धर्म सम्प्रदायों के सिद्धान्त एवं साहित्य का अनुशीलन करने के लिए पुराणों का अवलोकन करना अत्यावश्यक है।

आधुनिक विचाराधारानुसार पुराणों का रचनाकाल ईसा पूर्व पहली दूसरी शताब्दी से ईसा छठी शताब्दी तक माना जाता है। पुराणों की रचना श्री कृष्ण द्वैपायन

ने की है। लगभग आधे पुराणों का सम्बन्ध वैष्णव धर्म से है। मत्स्य, वामन, वाराह, कूर्मादि पुराणों का नामोल्लेख विष्णु के इन विभिन्न अवतारों के नामों पर होने से स्पष्ट है कि पौराणिक युग में विष्णु के अवतार की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। इन पुराणों के अतिरिक्त ब्रह्मवैवर्त, हरिवंश, विष्णु, पद्म तथा भागवत पुराण का निर्माण तो वैष्णव धर्म के दर्शन एवं भक्ति तत्त्व का विस्तृत विवेचन एवं प्रतिपादन करने हेतु ही किया गया था। राधाकृष्ण स्वरूप की प्रतिष्ठा एवं उनकी लीला का वर्णन ब्रह्मवैवर्त पुराण में मिलता है। वल्लभ, राधाबल्लभ, गौड़ीय आदि वैष्णव सम्प्रदायों में राधा सम्बन्धी जिन साधनाओं एवं राधातत्त्व की मान्यताओं का भविष्य में प्रवर्तन हुआ उनका मूलाधार यही पुराण है। राधावाद का मूल ब्रह्मवैवर्त की क्रोड़ में निहित है। यहाँ राधा शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ का प्रकाशन करते हुए कृष्ण जन्म की भाँति राधा के जन्म का भी वर्णन किया है। राधा निर्वाणदात्री है[1] रास विधा यिनि है तथा भगवान् कृष्ण की आह्लादिनी होने से वह रास में उनका आलिंगन करती है।[2] उसका जन्म श्रीदामा के शाप से हुआ है।[3] तथा वह कृष्ण की स्वकीया है।[4] विष्णु पुराण अवान्तरकालीन वैष्णव सिद्धान्तों का मूल है। विष्णु नाम से अभिहित होने से ही लगता है कि यहाँ इस स्वरूप का विस्तृत विवेचन हुआ है। यहाँ विष्णु के सगुण निर्गुण उभय स्वरूपों तथा उनकी मुख्य तीन शक्तियों का वर्णन किया गया है। इन शक्तियों के द्वारा सृष्टि-सम्पादन किया जाता है। यहाँ विष्णु सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक तथा मूर्त-अमूर्त सभी कुछ है, उन्हीं से समस्त सृष्टि उद्भूत, स्थित और ओतप्रोत है।[5] यहाँ योग-उपासना और भक्ति के भजन कीर्तिनाम तत्त्वों की समवन्यात्मक-साधना को महत्त्व दिया गया है।[6] पद्म पुराण में वैष्णव धर्म के व्यावहारिक स्वरूप, आचार-विचार, नित्य-कर्म, तीर्थ-व्रत, पूजा आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है।

---

1. राधेत्येचं संसिद्ध राकारो दानवाचक:।
   स्वयं निर्वाण दान या सा राधा परिकीर्तिता।। (ब्रह्मवैवर्त 223-कृ.ज.अ.17)
2. रा च रासे च त्रयनाद् धा एवं धारणादेही।
   हरेनालिंगनादा तेन राधा प्रकीर्तिता।। (वही 224 कृ.ज.अ.17)
3. वही
4. वही
5. तत्र सर्वमिदं प्रोतमीतं चेपाखिलं जगत्।
   ततो जगत् जगतृ तस्मिन स जगचाखिलं मुने।। वि.पु. 1-22-64
6. अवशेनापि यन्त्रामिन कीर्तिते सर्वपातकै:।
   पुमान् विमुच्यते सद्य: सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव।।
   यन्नामकीर्तनं त्त्र्या विलायनमनुत्तमम्।
   मैत्रेयाशेषपापान धातूनामिव पावक:।। (वि.पु.6/8/19,20)

भागवत पुराण का रचनाकाल विवादास्पद है, पर यह तो निश्चित है कि इस पुराण की रचना अन्य सतरह पुराणों से अर्वाचीन है। पद्म पुराण के भागवत महात्म्य खण्ड के अनुसार भागवत की रचना के समय वेद, वेदान्त-शास्त्र, मन्त्र संहिता तथा सतरह पुराण विद्यमान थे।[1] यहाँ भक्ति तत्त्वों का इतना विशद् प्रतिपदन हुआ है कि इसे भक्ति शास्त्र का विश्व कोश कहना उपयुक्त होगा। भक्ति-सम्प्रदाय में इसे श्रुति के समान पावन समझा जाता है तथा इसे विशेष आदर देने के लिए इसके नामोचारण से पूर्व श्रीमत् का विशेष प्रयुक्त किया जाता है। वैष्णव भक्ति का आधार श्रीमद्भागवत् पुराण ही है, इसलिए वैष्णव पण्डितों ने इसका गहन अध्ययन किया है, परिणामतः इस ग्रन्थ को टीकाओं का एक विस्तृत भण्डार निर्मित हो गया है।[2]

भागवत में प्रेमाभक्ति को ही व्यवहार पक्ष में स्वीकारा है। यद्यपि साधना पक्ष में ज्ञान-कर्म समन्वित उपासना का महत्त्व बतलाया है तथापि प्रेमाभक्ति का विशेष प्रतिपादन करके उसे यहाँ सर्वोत्कृष्ट सिद्ध किया गया है। भागवतानुसार अहैतुकी भक्ति-ज्ञान से श्रेष्ठ है, अतः ज्ञानीजन भी श्रीकृष्ण की रूप माधुरी के अवलम्बन से प्रेमाभक्ति में निमग्न होते हैं।[3]

भक्ति निरूपण के साथ ही यहाँ भगवान्, प्रकृति, जगत तथा जीव की दार्शनिक व्याख्या भी गई है। यहाँ विष्णु के साकार-निराकार उभय रूपों का निरूपण हुआ है। साकार रूप चार प्रकार कामाना गया है—पुरुष, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र। विष्णु ही निर्गुण ब्रह्म का विशुद्ध रूप है तथा निर्गुण परब्रह्म ही पुरुष माने गये हैं।[4] परमतत्त्व ब्रह्म में अनन्त शक्तियाँ अन्तर्निहित हैं तथा ये शक्तियाँ जब व्यक्तावस्था में अभिव्यक्ति पाती

---

1. वेदान्तानि च वेदाश्च मन्त्रास्तन्त्राणि संहिता।
   दशसप्तः पुराणानि सहस्राणि तदाऽऽययुः।। (पद्मपुराण उत्तरखण्ड 189-194)
2. श्री बलदेव उपाध्याय ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ भागवत सम्प्रदाय में इन टीकाओं का उल्लेख करते हुये निम्न सूची दी है—(1) श्रीधर स्वामी की 'भावार्थ दीपिका' शंकर के अद्वैतवाद के आधार पर। (2) सुदर्शन सूरि की शुकपक्षीया, (3) वीर राघव की भागवत चन्द्रिका (विशिष्टा द्वैत की टीकायें), (4) विजयध्वज की पदरत्नावली (द्वैतमतानुसार), (5) बल्लभाचार्य कृत 'सुबोधिनी' (वल्लभमताधृत अथवा शद्धाद्वैत के अनुसार), (6) शुकदेवाचार्य कृत 'सिवनत प्रदीप' (निम्बार्कमतानुसार), (7) सनातन गोस्वामी कृत 'बृहद् वैष्णव तोषिणी', (8) जीव गोस्वामी क्रम सन्दर्भ, (9) विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत 'सारर्थदर्शिनी (चैतन्य मतानुसार)
3. आत्मारामा हि मुनयो निग्रन्था: अप्युरुक्रमे।। कुर्वन्त्यहेतुकी भक्तिमित्थं भूतगुणो हरि:।। (भाग 1/7/10)
4. आद्योऽवतार पुरुषः परस्य (भाग 2/6/41)

है तो ब्रह्म को 'भगवान्' कहा जाता है। ये शक्तियाँ तीन हैं—स्वरूप शक्ति, माया शक्ति तथा जीव शक्ति।

अत: पुराण वैष्णव धर्म, दर्शन एवं भक्ति की गहन निधि हैं। ये ही अर्वाचीन वैष्णव धर्म की पृष्ठभूमि हैं। मध्ययुगीन भक्त-सन्त कवियों एवं वैष्णवाचार्यों न पौराणिक वैष्णव-धर्म को ग्रहण किया है तथा पौराणिक आधार पर ही उन्होंने रामकृष्ण-भक्ति दर्शन एवं साहित्य का निर्माण किया है। निम्बार्क, रामानुज, मध्व, वल्लभ, प्रभृति वैष्णवाचार्यों ने पौराणिक आधार पर ही अपने-अपने विशिष्ट भक्ति सम्प्रदायों का प्रवर्तन किया है। परशुरामदेव की रचनाओं पर भी पुराणों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। सूर, तुलसी ने भी पुराणों से ही प्रेरणा ली है। वल्लभ, गौड़ीय, राधावल्लभ, टाटी आदि सम्प्रदायों के रूप में आज वैष्णव धर्म का जो नवीनतम रूप दृष्टिगोचर हो रहा है उनकी मान्यताओं का बीज भी पुराणों में निहित है। इस प्रकार मध्य युगीन भक्ति आन्दोलन पर पुराणों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है।

(2) दक्षिण की भक्ति भावना

वैष्णव भक्ति की अजस्त्र धारा जो वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मणों, संहिताओं, पुराणों के मार्ग से प्रवाहित होती हुई अपना विशिष्ट स्वरूप बना चुकी थी, समयोपरान्त राज्याश्रय के अभाव में बौद्ध-जैन, धर्मरूपी विशाल प्रस्तर-प्राचीरों से घिरकर रुक गई थी। यह दक्षिणापति में द्राविड़ों का आश्रय प्राप्त कर पुन: अबाधित गति से प्रवाहित होने लगी। इस प्रकार उत्तरापथ की राजनीतिक अव्यवस्था के समय द्राविड़ों ने आर्य संस्कृति और धर्म की रक्षा करते हुए उसके विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। आन्ध्र, चालुक्य तथा पल्लववंशी द्रविड़ राजाओं तथा पाण्ड्य, चोल, केरल, के सुदूर दाक्षिणात्य नरेशों से भारतीय संस्कृति एवं धर्म को बड़ा संरक्षण मिला है। अशोक ने दक्षिण में बौद्ध धर्म के प्रसार हेतु प्रयत्न किये परन्तु सातवाहन ने दक्षिणापि में वैदिक-धर्म के पोषण एवं प्रसार को बाधित नहीं होने दिया। भागवत धर्म की प्राचीन वासुदेवोपासना तथा सात्वत भक्ति दक्षिण के महीशूर प्रदेश में बहुत पहिले ही प्रचारित की जा चुकी थी। अशोक के पश्चात् आन्ध्रवंशीय नृपों ने ईसा पूर्व 225 से 225 ईस्वी तक वैष्णव-धर्म को आश्रय दिया। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप दक्षिण से बौद्ध धर्म का पूर्णतया निष्कासन हो गया। पाणिनि के सूत्रों में चोल-पाण्ड्य तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पाण्ड्य आदि विभिन्न शब्दों के उल्लेखों से प्रकट होता है कि उस समय तक उस दक्षिणी राज्य आर्य संस्कृति और साहित्य के पृष्ठ पोषक थे। वाकाटक, चालुक्य, राष्ट्रकूट नरेशों ने भी वैष्णव धर्म को आश्रय दिया है। इसी प्रकार

चोल-मण्डल तट पर भी बेंगी के शिलालेखों से प्रकट होता है कि ईसा की 4-5 वीं शताब्दी में पल्लव वंश में भी भागवत धर्म का प्रचार था।[1]

ईसा की चौथी शताब्दी में लगभग सम्पूर्ण भारत में गुप्त वंश का शासन हो गया जिससे लगभग 250 वर्षों तक भारतीय संस्कृति को अभूतपूर्व संरक्षण मिला। वैदिक संस्कृति, साहित्य, कला, विज्ञान और धर्म का यह स्वर्ण युग ही था। वैष्णव पुराणों की रचना इसी युग में पूर्ण हुई। इसी समय महाभारत, भागवत पुराण, रामायणादि धार्मिक ग्रन्थों के आधार पर पांचरात्र, शैवागम, तन्त्र, साहित्य का निर्माण हुआ। गुप्तवंश के प्रभाव से दक्षिण का सुदूर केरल राज्य भी वैदिक धर्म का प्रमुख केन्द्र बन गया।[2] अत: गुप्त शासकों के इन सत्यप्रयत्नों से शैव, शाक्त, वैष्णवादि वैदिक-धर्म-सम्प्रदायों का पुनरुत्थान हुआ।

ह्वेनसांग के अनुसार हर्षवर्धन के काल में ब्राह्मण धर्म की अपेक्षा बौद्ध-जैन-धर्म उन्नत अवस्था में थे। हर्ष के समय उत्तरापथ में गोड़ाधिपति शशांक को छोड़कर ब्राह्मण धर्म का कोई भी कट्टर पक्षपाती नहीं था। ऐसी विषम परिस्थितियों में दाक्षिणात्य पल्लववंशी राजा नरसिंह वर्मन ने पौराणिक वैष्णव धर्म का प्रसार किया। इन्हीं दिनों शैव-धर्म के उपासक पुलकेशिन द्वितीय ने अश्वमेघ यज्ञ किया और उसने ब्राह्मण धर्म का भी पुनरुत्थान किया। सातवीं आठवीं शताबदी में चालुक्य और पल्लववंशीय नरेशों ने वैदिक धर्म को आश्रय दिया। ईसा की पहली शताब्दी से दक्षिण में शैव-वैष्णव मतों के साथ बौद्ध-जैन धर्मों का भी सामान्य प्रचार था पर ज्यों ही विजयनगर के नवोदित राजवंश पनपने त्यों ही वहाँ पूर्णतया हिन्दू धर्म छा गया।[3] दक्षिणापथ के इतिहास में, ईसा की आठवीं-शताब्दी में व्यापक रूप से राजनैतिक और धार्मिक परिवर्तन हुए,[4] फलत: यहाँ आठवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी तक वैदिक संस्कृति और भागवत धर्म का प्राबल्य बना रहा। मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन में आचार्य-युग का आरम्भ यही से हुआ। इन्हीं आचार्यों ने वैष्णव परम्परा को पुनर्जीवित किया। शैव-वैष्णव धर्माचार्यों ने पौराणिक सगुण प्रेमाभक्ति का प्रबल प्रचार किया। आचार्यों द्वारा प्रतिपादित उपासना का यही स्वरूप अनुकूल वातावरण पाकर पुन: समस्त उत्तरापथ में विद्युत गति से छा गया।

---

1. इण्डियन एण्टिक्वेरी भाग-5, पृ. 51/176
2. The coming of the Brahmanism to the south of India, J.,R.A.S.-By Gocindacharya.
3. Historical sketehes of Decan, Volume 2ndf, 3rd-by K.V. Subrahmanya Aiyer, and South Indian History-By S.K. Aiyangar.
4. वही

वैष्णव-धर्म के रक्षण-पोषण प्रसारण एवं पुनरुत्थापन में पूर्वोक्त तथ्यों के आधार पर दक्षिण का विशेष योगदान रहा है, इसी कारण अर्वाचीन वैष्णव धर्म को दक्षिण-भारत की देन कहा जाता है। भागवत पुराण के भागवत माहात्म्य नामक परिशिष्ट में द्रविड़-देश में भक्ति के उद्भव होने की प्रासंगिक कथा का उल्लेख हुआ है—

उत्पन्ना द्राविड़े साहं वृद्धि कर्णाटके गता।
क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता।।
तत्र घोरकलेर्योगात् पाखण्ड़ै: खण्डिताङ्गका।
दुर्बलाहं चिर याता पुत्राभ्यां सह मन्दताम्।।
वृन्दापवनं पुन: प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी।
जाताहं युवती सम्यक् श्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम्।[1]

यद्यपि यह माहात्म्य अर्वाचीन तथा प्रक्षिप्त प्रतीत होता है, परन्तु दक्षिण का भक्ति आन्दोलन उपेक्षित नहीं किया जा सकता। द्रविड़ देश के 'आलवार' ही परवर्ती आचार्यों द्वारा प्रतिपादित दाक्षिणात्य भक्ति दर्शन के विधायक, वैष्णव धर्म के उद्धारक और उसकी अभिनवता से सूत्रधार हैं।[2] निम्न जनश्रुति भी इसी तथ्य को प्रकट कर रही है—

भगती द्राविड़ ऊपजी लाये रामानन्द।
परगट किया कबीर ने सप्त द्वीप नवखण्ड।।

परन्तु यह कह देना सर्वथा असंगत होगा कि यह आन्दोलन दक्षिण की ही देन है तथा उसका उद्भव वहीं हुआ है। वैष्णव धर्म का यह अभिनव स्वरूप न तो दक्षिण से आया था और न उसका उद्भव पुराण में ही हुआ है वरन् वह तो अत्यधिक प्राचीन

---

1. श्रीमद्भागवत् माहात्म्य अध्याय 1 श्लोक 48-50
2. Then in Bhagawat-Mahatmya a late appendix to the? Bhagawat Puran, there is an episode which bears onb this question but which can not be understood unless we distinguish carefully between ordinary bhakti and the bhakti of the Bhagawa Puran. In this episode bhakti incarnate as a young woman, say I was born in Dravida' now tosay that the bhakti of the Shvetashwat upanishad, the Gita and the early puran as was born in Dravid would be absured, but if we realise that, in the appendix to the Bhagawat, bhakti necessarily means the passionate and many sided devotien of the great, Puran, there is no difficulty and it becomes clear that the work asserts that this Bhakti arose in Tamilnadu (An out line of religious literature of India.-By Farquhar Page 232.)

है।[1] वस्तुत: वेदकालीन भक्ति-भावना का परम्परागत रूप ही मध्ययुग में आकर अपने नवीनतम रूप में अभिव्यक्त हुआ है, पर यह अवश्य स्वीकार किया जायेगा कि इसके अभिनव स्वरूप का प्रचलन व्यापक रूप से आलवारों द्वारा ही किया गया, तथा हम इसी दृष्टि से उन्हें इस अर्वाचीन वैष्णव धर्म के आद्याचार्य एवं प्रवर्तक मानते हैं।

भागवत धर्म का स्वरूप आलवारों से पूर्व ही निश्चित हो गया था। वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मणों तथा पुराणों की कृष्णोपासना ही आलवारों की उपासना का आधार बनी। दाक्षिणात्य आचार्यों ने शैवागम के सिद्धान्तों को अपनाया तथा उन्होंने बौद्ध-जैन धर्म की अहिंसा, इच्छानिवृत्ति, अपरिग्रह, इन्द्रिय-निग्रह, आत्मातीता, देहनश्वरता, आत्मा की एकता और समानता आदि सिद्धान्तों, तपतीर्थ, मूर्ति-पूजा, उपवासादि साधनाओं को भी स्वीकारा।[2]

भक्ति भावना की मधुर सरिता प्रवाहित करने वाले दक्षिण के ये सन्त गीतिकार दो प्रकार के थे—आडियार (शैव सन्त) तथा आलवार (वैष्णव सन्त)। इनके गीतों में भावों और विचारों का कोई अन्तर नहीं था। इनके गीत मानवमात्र के हृदय को रसमय करने वाले थे। इनके द्वारा रचित मधुर काव्य ने जनता में छाये हुए नैराश्य को दूर कर सरसता का संचार किया। इनकी प्रेमाभक्ति के सरस प्रवाह से सारा समाज आत्मविभोर हो उठा और बौद्ध जैन धर्म के प्रति अपनी बची खुची श्रद्धा को भी खो बैठा। आराध्यदेव के प्रेम में तन्मय होकर भक्त अनोखी साज-सज्जा स सजे मदिरों में मधुर कण्ठों से अध्यात्म प्रीति के गीत अलापने लगे। नृत्य-संगीत भक्ति के अनुपम

---

1. It does not appear that this new Vaishnavism came from South or was due to the teaching of the Vaishnaya Bhagawat Puran (History of Medival Indian Vol. 3rd by C.V. Vaidya Page 414.
2. For they took over from Budhism its devotionalism, its sence of the transitoriness of the world its conception of human worthlessness, its suppression of desires and asceticism as also its ritual, the worship of idols and stupas or lingas, temples, pligrimages, fasts and monastic rules and its idea of spiritual equality of all castes, from jainism they took its ethical tone and its respect for animal life. + + the assimilation of these ideas into pauranic theology and the pervasion of the whole with warm human feelings was the achievement of the saintly human makers of Tamillnad the celebrated `Adiyars' (The Saiva Saints)-and the `Alwars' (Vaisnava saitts) who flourished between the seventh and 12th centuries (Influenbce of Islam on Indian culture; by Dr. Tara Chand Page 86-87).

अंग बन गये।[1] इनकी प्रेम साधना से अटूट रागात्मकता होने से यही भक्ति भावना मध्ययुगीन प्रेम-लक्षणा भक्ति का अन्यतम कारण बनी तथा परवर्ती आचार्यों ने इसकी प्रेरणा से ही भक्ति मार्ग में प्रेम को साध्य साधन के रूप में स्वीकारा और वैष्णव भक्ति के दार्शनिक-सम्प्रदायों का प्रवर्तन किया।[2] भागवत पुराण की प्रपत्तिपरक भक्ति का प्रचलन आलवारों में था। भगवान् के विभूतिपरक गुणानुवाद तथा लीला वर्णन करने के साथ ही वे भगवान् की अनन्य शरण में दृढ़ विश्वास रखने वाले थे।[3] प्रेम के लौकिक रूप की स्वीकृति से नायक नायिका की भावना का भी उदय हुआ जिससे दाम्पत्यरति प्रधान कान्ता-भक्ति का मधुर स्वरूप निर्मित हुआ। आलवारों में इस माधुर्य-भक्ति का प्रचलन सूफी-प्रेम साधना तथा बौद्ध मत की सहजयान शाखा की काम-केलि उपासना के प्रभाव स्वरूप माना जाता है।[4]

इन्होंने भगवत प्रेम और कृपा प्राप्ति के लिए अपने गीतों में, इष्टदेव के प्रति पूज्य बुद्धि एवं श्रद्धा की पावन भावना के साथ तथा हृदय की प्रीति, प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, सौहार्द से समन्वित, अत्यन्त मधुर राग अलापा था।[5]

शैव भक्त कवियों में माणक्कवाचकर, तिरुज्ञानसम्बन्दर, अप्पर तथा सुन्दरर का प्रमुख स्थान है माणिक्काचकर की कविताओं का संग्रह 'तिरुवाचकम्' (पवित्र वाणी) उपनिषदों के समान पवित्र माना जाता है, तथा इसके गीतों में माधुर्य रस की प्रधानता होने से कहा जाता है कि जिसका हृदय तिरुवाचकम् से द्रवित न होता हो तो उसका

---

1. संघोत्तर काल में बौद्ध और जैन धर्मों का जो व्यापक प्रचार हुआ इसके परिणाम स्वरूप वैदिक धर्म की भित्तियाँ ढह गईं। संघोत्तर काल में जो नैराश्य एवं जीवन विमुखता जनता में छा गई थी, उसके फलस्वरूप प्रेमकाव्यों एवं ललित कलाओं के भी प्रति लोग उदासीन हो गये। नृत्य, संगीत एवं नाटक आदि कलाएँ जीवन के प्रति अनुराग बढ़ाने के कारण हेय समझी जाने लगी। ऐसे समय में भक्त कवियों ने गेय छन्दों में ईश्वरीय-प्रेम की कविताएँ रचकर प्रेम-कव्य को नया जीवन प्रदान किया, साथ ही मन्दिरों में नृत्य एवं स्वाँग की परम्परा इस युग में चल पड़ी, जिससे भारत की ये महान् कलायें सुरक्षित रह सकीं। जनता में छाये हुए नैराश्य को दूर करके मानव हृदय में सरसता का संचार करने में इन सन्त कवियों की देन अद्वितीय रही है। (तमिल और उसका साहित्य—पूर्ण सौम सुन्दरम्—सम्पादक क्षेमचन्द्र-सुमन भक्ति काल पृ. 49)
2. सूर और उनका साहित्य डॉ. हरवंश लाल शर्मा, पृ. 85
3. Hymns Alwars by J.S.M. Hooper Page 18.
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 178
5. The fact of these songs full of living faith and devotion was great and in stantaneous. South India needed a Personalyod and assurance of immortility and a call to prayer. (Dr. Pope Opcit Page 36).

हृदय फिर किसी भी सरस काव्य से प्रभावित नहीं हो सकता।[1] इनका अन्य ग्रन्थ तिरुक्केवैयारा है जिसमें सूफी मत की भाँति परमात्मा और जीवात्मा को क्रमशः प्रेमिका और प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है। शेष तीन 'आडियारों' की रचनायें 'तेवारम' नाम से संकलित हैं। 'तेवारम' के प्रथम भक्त कवि अप्रपरा राजा महेन्द्र वर्मन के समकालीन थे जिन्हें भाषा की सरसता के कारण 'तिरुनावुक्करशर' (श्री वागीश) भी कहा जाता है। इनका काव्य रहस्यवादी है जिसमें विरह की प्रधानता है। शैव सन्त तिरुज्ञान सम्बन्दर के काव्य में शैशव-कालीन कौतूहल, प्रेम और आनन्द की स्निग्ध धारा प्रवाहित हुई है। माणिक्कवाचकर में आत्मनिवेदन की प्रधानता है, अप्पर में दास्य-भाव की ओर सम्बन्दर में इनसे परे वात्सल्य भाव का आधिक्य है। 'सुन्दर' सख्यभाव के कवि हैं।[2] अन्य शैव संत तिरूमूलर तथा कारेकाल अम्मेयार के नाम भी उल्लेखनीय हैं। जिनकी रचनाएँ तिरूमन्दिरम् (पवित्र मन्त्र) तथा कयिलैतिक बन्दादि के नाम से प्रख्यात हैं। माणिक्करवाचकर को के.ए. नीलकण्ठ ईसा की चतुर्थ शताब्दी में मानते हैं, जे.यू. पोप ईसा की आठवीं शताब्दी में, इस प्रकार इनका जीवन काल विवादास्पद होते हुए भी यह तो निश्चित ही है कि आप ईसा की आठवीं शताब्दी तक अत्यन्त प्रसिद्ध हो चुके थे।[3] तामिल साहित्य के कम्बन काल में (लगभग 985 से 1013 ई. तक) चोलवंशीय केरल राजा कुले शेखरालवार के समय तंजोर निवासी 'नम्बिआण्डार' ने शैव-भक्ति साहित्य का ग्यारह भागों में संकलन किया जो तिरूमुरारि[4] के नाम से प्रख्यात है। इसके प्रथम सात संग्रह देवरम् कहलाते हैं जिनका धार्मिक अवसरों पर पाठ किया जाता है। आठवाँ माणिक्कवाचकर का तिरूइचकम नवा तिरूइसैइया, दसवाँ तिरूमूलर है तथा अन्तिम वक्किरार और नम्बिआण्डार पद संग्रह है।

दक्षिण के वैष्णव सन्त कवि आलवार नाम से प्रख्यात हैं जो बारह माने गये हैं तथा जिनके द्वारा रचित चार सहस्त्र गेय पदों का संग्रह नालियार दिव्य प्रबन्धम् कहलाता है। इसका संकलन कम्बल काल में नाद मुनि द्वारा किया गया। आलवारों में पोयूगै आलवार पूदत्तालवार तथा पेयालवार ये तीन वैष्णव मुदलाल्वार नाम से आद्य माने जाते हैं तथा इनकी रचनाएँ तिरुवन्दादि कहलाती हैं। पेरियालवार[5] वात्सल्य रस की स्निग्ध भक्तिधारा बहाने वाले हैं, जिनका आदिर्भाव ईसा की छठी शताब्दी में माना

---

1. तिरूवाचकत्तुवकुरूगान् और वाचकत्तुक्कुम उरगान्।
2. भागवत सम्प्रदाय—बलदेव उपाध्याय
3. भागवत सम्प्रदाय—बलदेव उपाध्याय
4. भगवतप्रेम के पुष्पहार
5. विष्णुचित्त।

जाता है। आपने कृष्ण की बाल क्रीड़ाओं को लेकर तथा यशोदा के सरल मातृहृदय का आधार बनाकर मधुर भक्तिधारा बहा दी। शिशु कृष्ण की अगणित मधु लीलाएँ चित्ताकर्षक झाँकियाँ बाल सुलभ मुखाकृतियाँ तथा यशोदा के मातृ हृदयोद्गार, आशा-चिन्ता, लाड़-यार, पुत्र-बहलाव की अनेकानेक उक्तियाँ आदि को कवि ने मार्मिक शब्दों में चित्रित किया है।[1] 'पेरियालवार' की पोष्य पुत्री 'आण्डाल'[2] सोलह वर्ष की अवस्था तक अविवाहित रही तत्पश्चात् वह सशरीर अपने आराध्य प्रियतम श्रीरंग विष्णु में लीन हो गई। माधुर्य और शृंगार रस से ओत-प्रोत इनकी प्रेमपरक रचनाएँ नाचियार तिरुमोलि तथा तिरुप्पावै नाम से प्रख्यात हैं। विशुद्ध-प्रेम और विरह-मिलन की उत्कृष्ट शृंगार-परक मधुर-अनुभूतियाँ तथा अलौकिक एवं गूढ़तम प्रेम तत्त्व से भरी आण्डाल की ये रचनाएँ ही वैष्णावाचार्यों एवं भक्तों की प्रेममय सिद्ध हुई।[3] आचार्य शुक्ल ने माधुर्य भक्ति के प्रारूप का संकेत करते हुए लिखा है दक्षिण में अन्दाल इसी प्रकार की प्रसिद्ध भक्तिन हो गई हैं जिनका जन्म संवत् 773 में हुआ था। अन्दाल के पद द्रविड भाषा में तिरुप्पावह नामक पुस्तक में मिलते हैं। अन्दाल एक स्थान पर कहती है—अब मैं पूर्ण यौवन को प्राप्त हूँ और स्वामी कृष्ण के अतिरिक्त किसी अन्य को अपना पति नहीं बना सकती। इस भाव की उपासना यदि कुछ दिन चले तो उसमें गुह्य और रहस्य की प्रवृत्ति हो ही जायेगी। रहस्यवादी सूफियों की उपासना भी माधुर्य भाव की थी मुसलमानी जमाने में इन सूफियों का प्रभाव देश की भक्ति भावना के स्वरूप पर बहुत कुछ पड़ा। माधुर्य भाव को प्रोत्साहन मिला। माधुर्य भाव की जो उपासना चली आ रही थी उसमें सूफियों के प्रभाव से आभ्यन्तर मिलन मूर्छा की भी रहस्यमयी योजना हुई।[4] सम्भव है कि दक्षिण की इस परम्परा पर सूफी मत की प्रेम साधना का प्रभाव पड़ा हो परन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि माधुर्य रस की यह उपासना विजातीय तत्त्व नहीं है। आण्डाल की रचनाओं से प्रभावित

---

1. तमिल प्रदेश की माताएँ सैंकडों वर्षों से बच्चों को खिलाते पिलाते सुलाते प्यार करते समय जो मधुर लोक गीत गाया करती थी, उनकी साहित्यिक रूप देकर पेरियालवार ने तमिल काव्य की महत्ती सेवा की। पिल्लेतमिल कहलाने वाले इन गीतों की शैली को बाद में सैकड़ो तमिल कवियों ने अपनाया। कान्हा के शिशु रूप का वर्णन करे पेरियालवार ने जनता में सरसता की मधुर धारा प्रवाहित की और प्रत्येक बच्चे में ईश्वर के दर्शन करने की महत्ती शिक्षा दी। उनकी भाषा में गंगा का सा प्रवाह है और भाव अगाध भी है, सुबोध भी। (तमिल और उसका साहित्य-पूर्णसोम सुन्दरम् सं. क्षेमचन्द्र सुमन।)
2. कोदई तथा रंगना की गोदा।
3. तमिल और उसका साहित्य। वही
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य शुक्ल पृ. 178

हो परवर्ती भक्तों ने उपासना में गोपीभाव को प्रधानता दी। आण्डाल की भक्ति भावना में हमें प्रेम की पराकाष्ठा के दर्शन होते हैं। आण्डाल का मन विष्णु के सर्वाङ्ग सुन्दर स्वरूप पर मोहित हो गया है। वह प्रियतम से मिलने के लिए पेरियालवार की कुटिया से निकल पड़ती है। वह आकाश में आच्छादित मेघों को सम्बोधित करती हुई दया की याचना करती है। नीले कालीन की भाँति आकाश में बिछे हुए हे मेघो! मुक्ता निधि बरसाने वाले हे दानियों। तुम्हीं बताओ; सुन्दर साँवरे की बात क्या रही? हृदय में कामाग्नि जल रही है और मलय पवन के रूप में बाहर भी अग्नि धारा बह रही है। इस आधी रात में मैं इस तरह दोनों ओर से झुलस रही हूँ। मेरी इस दशा पर तनिक तरस खाओ।[1] ऐसे प्रेम-विरहोद्गार वैष्णव काव्यों में सर्वत्र देखे जाते हैं।

...आलवार' की रचनाओं में माधुर्य और दास्य भाव की प्रधानता है।
...र्शन का गहन विवेचन प्रस्तुत किया। ईसा की 10वीं शताब्दी
...लवार' की रचनाओं द्वारा वात्सल्य एवं करूण रस प्रधान
...आपने संस्कृत में भी मुकुन्द माल नामक ग्रन्थ में कृष्ण
...ओं में राम कृष्ण का लीला वर्णन व्यापक रूप से
...महाकवि कम्बन ने वाल्मीकि रामायण के आधार
...त विशाल रामकाव्य की रचना की।[2]

...चार्यों ने आलवारों की सरल भक्ति से प्रभावित हो
...हीं आचार्यों द्वारा प्रेमाभक्ति तत्त्वों का सैद्धान्तिक
...ष्टाद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैत आदि विभिन सम्प्रदायों का

...दक धर्म की निर्मम हिंसावृत्ति की प्रबल प्रतिक्रिया के रूप में गौतम बुद्ध ने त्याग, आदर्श, नैतिकता के आधार पर अहिंसात्मक धर्म की नींव डाली। बुद्ध ने अपने चार अमूल्य आर्य सिद्धान्तों के आधार पर निर्वाण का नवीन मार्ग सुझाया। अहिंसा,

---

1. तमिल और उसका साहित्य-भक्ति काल पृ. 64 से उद्धृत।
2. दृष्टव्य कम्बन रामायण एक अध्ययन लेखक श्री व.वे. सुब्रह्मण्य अय्यर। तमिल संघम् नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित।
3. आलवार युग के अनन्तर भक्ति आन्दोलन के इतिहास में आता है। आचार्य युग। + + इस समय के संस्कृतज्ञ विद्वान्ों ने तमिल जनता में विष्णु भक्ति के प्रचार का श्लाघनीय उद्योग किया, ये आचार्य कहलाते थे इन्होंने आलवारों की भक्ति के साथ वेद प्रतिपादित ज्ञान तथा कर्म का सुन्दर समन्वय किया। (श्री बलदेव उपाध्याय-भागवत सम्प्रदाय-दक्षिण के सम्प्रदाय, पृ. 199)

प्रेम, समानता, सरलता, व्यावहारिकता के सिद्धान्तों को लेकर प्रचलित बौद्ध धर्म ने बड़ी सफलता प्राप्त की, तथा यह समस्त भारत में विद्युत गति से छा गया। इसी बीच आर्य संस्कृति के समन्वयात्मक दृष्टिकोण ने बोद्ध धर्म की विशेषताओं को आत्मसात् कर लिया। बौद्ध-जैन धर्म के बाह्य पूजा विधान, मन्दिर, मूर्ति-स्थापना, लिंगपूजा, तीर्थव्रत आदि वैष्णव, शैव धर्मों में प्रचलित हुए।[1] अहिंसा की स्वीकृति मिली और गौतम बुद्ध को विष्णु का अवतार मान लिया गया। इस प्रकार वैष्णव धर्म पुन: विकासोन्मुख होकर लोकप्रियता प्राप्त कर सका।[2]

अस्तित्त्व बनाये रखने के लिए बौद्ध धर्म को वैदिक धर्म के समान बनाने का प्रयास भी किया गया। बौद्ध धर्म दो शाखाओं में बंट गया। 'महायान' सम्प्रदाय ने दार्शनिक पक्ष को प्रधानता दी परन्तु हीनयान शाखा अब भी व्यावहारिक सिद्धान्तों पर चलती रही। महायान शाखा ने वैदिक अवतारवाद को स्वीकारा तथा बुद्ध के विभिन्न अवतारों की कल्पना की। इसने मन्त्र-तन्त्र को भी मान्यता प्रदान की जिससे मन्त्रयान शाखा का प्रवर्तन हुआ। इसी मन्त्रयानी शाखा ने हठयौगिक क्रियाओं को अपनाया। इस वज्रयान शाखा के प्रवर्तक नाथ सम्प्रदाय के चौरासीसिद्ध माने गये। यही शाखा अवान्तरकालीन सहजयान सम्प्रदाय के रूप में प्रचलित हुई। अन्तत: बौद्ध धर्म भारत भूमि से विलीन हो गया। साधना के क्षेत्र में प्रेम तत्त्व की प्रधानता देने हेतु शुष्क-तार्किक दर्शनों का अन्त कर दिया गया। अब शून्य का स्थान 'प्रज्ञा' ने ले लिया और करुणा का 'उपाय' ने और यह 'प्रज्ञोपाय' निर्वाण का साधन बन गया। आगे चलकर 'प्रज्ञा' स्त्री का प्रतीक बनी और उपाय 'पुरुष' का तथा केलि-महासुख की अनेक दशाएँ युगनद्ध की अश्लील मूर्तियों में चित्रित की जाने लगी। बौद्ध मत की यही सहजयान साधना स्थूल श्रृंगारिकता के कारण ऐन्द्रिय बनकर वामाचार का कारण सिद्ध हुई।

(4) नाथों का योग मार्ग

नव समप्रदाय के आदि प्रवर्तक महाशिव होने से इसका सम्बन्ध शैव धर्म से अधिक रहा है। नाथ-परम्परा का आदि उद्गम वेदों से माना जाता है। पतंजलि ने लगभग ईसा-पूर्व तीसरी शताबदी में 'योग-दर्शन' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया था। गौतम बुद्ध और सिकन्दर महान् के समय में भी इस सम्प्रदाय के प्रचवलन सम्बन्धी प्रमाण मिलते हैं। नाथों की व्यवस्थित परम्परा मत्स्येन्द्र नाथ से प्राप्त होती है। गोरखनाथ इन्हीं के शिष्य थे। डॉ. पिताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने गौरखनाथ का आविर्भाव

---

1. Influence of Islam on Indian culture, Dr. Tara Chand, P. 86
2. History of Mediaeval India Vol. III by C.V. Vaidya P. 413

काल विक्रम की 10–11 वीं शताब्दी में माना है। उन्होंने परम्परागत योग–सिद्धान्तों से हठयोग का सूत्रपात किया तथा कनफट योगियों के सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया।[1]

नाथमत ही सिद्धमत, योगमार्ग, अवधूत सम्प्रदाय आदि नामों से प्रचलित हुआ तथा यही सम्प्रदाय बौद्ध धर्म की पूर्वोक्त सहजयान वज्रयान शाखाओं में भी प्रतिष्ठित हुआ। नाथों से पूर्व सिद्धों की मद्य–मांस–मैथुनादि से समन्वित साधना तथा कौलकापालिक वामचारियों की कृतियाँ–त्रिपुरसुन्दरी की भोग विलास पूर्ण उपासना जनता की नैतिकता और सदाचारिता का अन्त कर रही थी। इसी समय गोरखनाथ ने नाथ पंथ की स्थापना की जिसमें मद्य–मांस–मैथुनादि का निषेध कर हठयोग, शारीरिक–मानसिक–शुद्धि एवं सदाचार को साधना का सार बतलाया गया।

नाथ शब्द मुक्ति दिलाने वाला है, अनादि धर्म का वाचक है। नाथ पंथी बिन्दु और नाद में से नाद को नाथांश या ईश्वरांश और बिन्दु को शीरांग मानते हैं। इनके योग से ही सृष्टि होती है तथा योग साधना द्वारा नाथ स्वरूप में लय हो जाने से मुक्ति की प्राप्ति होती है। नाथ ओंकार शब्द को समस्त वेद ज्ञान के तुल्य मानते हैं। नाथ पंथियों के अनुसार गगन मण्डल में औंधे मुँह का अमृत क्रुण्ड है, जहाँ अबाधित अमृत स्राव होता रहता है[2] जिसकी प्राप्ति के लिए क्रमश: नैतिक आचरणों दृढ़ता, गुरु–कृपा, वैराग्य तथा इन्द्रिय–निग्रह, प्राण साधना एवं मन–साधना की अपेक्षा होती है। नाथ साधना पद्धति में हठयोग का प्रमुख स्थान है। योगिक क्रियाओं द्वारा शरीर के नौ द्वारों एवं चौसठ संधियों का वायु मार्ग बाधित कर सुषुप्त–अधोमुखी कुण्डलिनी को जागृत कर ऊर्ध्वमुखी किया जाता है जिसके प्रभाव से साधक अनहद–नाद सुनने लगता है। जब यह नाद मूलाधार चक्र से उठकर सहस्त्रार में लय होता है तो अन्तत: योगी खेचरीमुद्रा द्वारा जिह्वा अलैट कर अमृत पीता है तथा अमरत्व प्राप्त कर लेता है।[3]

भक्ति आन्दोलन पर इन सिद्धान्तों एवं साधनाओं का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा। गोरखनाथ की उपासना ने 'निरंजन–निर्गुण' आदि मतों को जन्म दिया। सन्तों पर नाथों

---

1. Gorakh Nath and the Kanphatta yogies–An article by W. Briggs/Published in religious life India Series.
2. कबीर गगन मण्डल से औधा कुंआ तह अमृत का वासा।
   सगुरां होय तै झर झर पिया निगुरां जाय पियासा।।
3. कबीर—अवधू गगन मण्डल घर कीजै।
   अमृत झरै सदा सुख उपजै बंक नालि रस पीजै।।
   मूल बाँधि सर गगन समाना सुषमन यों तन लागी।
   काम क्रोध दोउ भया पलीला तहाँ जोगणी जागी।।

एवं हठयोगियों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा।[1] समय पाकर मध्ययुगीन वैष्णव धर्म असमानता, सामाजिक-संकीर्णता के दलदल में फँसने लगा तथा उसमें बाह्य आडम्बरों का प्रवेश हो गया, तब इन्हीं मध्ययुगीन निर्गुण-सन्तों की वाणियाँ कल्याणकारी सिद्ध हुईं। वैष्णव भक्तों तथा आचार्यों ने भी वैष्णव भक्ति मार्ग से कथित बुराइयों का निष्कासन करने तथा उसे परिष्कृत करने हेतु निर्गुण-सम्प्रदायों के इन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का स्वागत किया। परशुरामदेवाचार्य का वाणी-साहित्य भी नाथ-सम्प्रदायों से प्रभावित हुआ है।[2] वैष्णव धर्म की प्रेम साधना ने नाथमत एवं निर्गुण-सम्प्रदाय को भी प्रभावित किया था। वैष्णवों की माधुर्य भावना ने निर्गुणियों में प्रेम-परम-विरहकोटिक रहस्यवाद को जन्म दिया। नाथ-योगी सम्प्रदाय ने सूफी सम्प्रदाय को भी प्रभावित किया था। सूफियों ने यहाँ आकर नाथ-बौद्ध धर्म में प्रचलित सिद्धान्तों पर योगात्मक रहस्यवाद को अपनाया तथा नाथ-साधना की सिद्धावस्था के आधार पर इन्होंने आलमे-नासूत (भौतिक जगत्) आलमे-मलकूत (चित्त जगत्) आलमें-जबरूद (आनमय जगत्) आलमे लाहूत (सत्य जगत्) तथा आलमे होहूत (रहस्यपूर्ण जगत्) आदि पाँच आलमों (पदों) की कल्पना की थी। इसी सिद्धावस्था को वे 'बका' और 'फना' कहने लगे।[3]

(5) सूफी मत

'सूफी' शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख सोरिया के जाहिद अबूहसन की रचनाओं में मिलता है।[4] इसकी उत्पत्ति के विषय में अनेक मत हैं। कई इसे मदीना के सामने बने हुए चबूतरे 'सुफ्फा' से सम्बन्धित करते हैं तो कई 'सूफ' अर्थात् ऊन से प्रचलित मानते हैं।[5] कुछ भी हो सूफी मत अरब के प्राचीन इस्लाम धर्म की शाखा है। इस्लाम धर्म के साधनामार्ग में प्रमुख रूप से चार प्रकार की साधनाओं का विधान है—हकीकत (ज्ञान मार्ग) तरीकत (भक्तिमार्ग) शरीयत (कर्म मार्ग) तथा मारफत (आत्मिक प्रेम मार्ग)। 'मारफत' मार्ग का अनुसरण करने वाले सूफी कहलाते हैं। सूफियों में चिश्चितया कादरिया, सुहरवर्दिया तथा नक्शबन्दिया नामक चार सम्प्रदाय

---

1. कबीर ने तो योगियों के साथ अपना सम्बन्ध स्पष्टतया व्यक्त किया है—
   गौरख, भरथरि, गोपीचन्दा।
   तेहिमन सो मिलि करहिं अनन्दा।।
   अकल निरंजन सकल सरीरा।
   तेहि मन सों मिलि रह्या कबीरा।।
2. द्रष्टव्य—परशुराम वाणी, ग्रन्थ।
3. डॉ. हरवंशलाल शर्मा—सूर और उनका साहित्य, पृ. 70
4. अवरिफल मआरिफ (अंग्रेजी अनुवाद), पृ. 1
5. कबीर का रहस्यवाद पृ. 19, डॉ. रामकुमार वर्मा

हैं। सूफी मत की प्रमुख विशेषता परमात्मा के प्रति अनन्य प्रेम रखना है, और इनके दर्शन का आधार अद्वैत मूलक सर्वात्मवाद है।[1] डॉ. पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने अरब में सूफी मत की उत्पत्ति इस्लाम पर बौद्ध-धर्म के प्रभाव स्वरूप मानी है।[2] कुछ भी हो सूफीमत का अद्वैत मूलकर्म सर्वात्मवाद निश्चित ही भारतीय दर्शन की देन है। सूफियों का 'फना' भी बौद्ध निर्वाण का ही दूसरा रूप है, अन्तर केवल इतना है कि यह निर्वाण की भाँति स्वयं साध्य न होकर द्वैतपरक भावना के ऊपर 'बका' अथवा 'अपरोक्षानुभूति' की स्थिति का साधन है। सूफी फकीर बायबीद ने 'फना' का यह सिद्धान्त अबुअली से सिन्ध में सीखा था। अबूअली प्राणायाम (पास-ए-अन-फास) भी जानते थे। सूफियों पर भारतीय संस्कृति का क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ा जिससे उनके दिन से मूर्ति पूजा का विरोध भी मिट गया और वे 'बुत' के परदे में भी खुदा को देखने लगे।[3] सूफी रहस्यवाद भावात्मक था। उसमें प्रेम की प्रधानता थी, परन्तु साथ ही कथित प्राचीन संसर्ग से उसमें बौद्ध-शैव नाथों के साधनात्मक रहस्यवाद के तत्त्व भी विद्यमान थे। उसने भारतीय साधनात्मक रहस्य को बड़ी तत्परता से ग्रहण किया।[4]

भारत में सूफीमत का प्रचार 'अबुलहसन-हुज-हुज्जरी' के ग्रंथ कश्फुन मरुतूब द्वारा हुआ इससे पूर्व उमय्या खानदान के समय भारत में बाबा फखरूद्दीन, सूफी सैयद महमूद बन्दानिवाज आदि सूफी सन्तों का आदर होने लगा था। राबिया जूल-जूल तथा मन्सूरूल हल्लाज आदि प्रख्यात सूफी प्रेम-साधकों के आख्यान प्रचारित हुए।

सूफी कवियों ने लौकिक प्रेमाख्यानों द्वारा सूफी प्रेम-साधना-सिद्धान्तों का प्रचार किया। सूफियों ने अपने विशुद्ध आचरण, प्रेमोपासना, सर्वात्मवाद द्वारा हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का असाधारण प्रयास किया। सूफीमत साधना से प्रेमाभक्ति को भी प्रोत्साहन मिला दक्षिण से माधुर्य भाव की जो वैष्णव उपासना प्रशस्त होकर चली

---

1. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, पृ.18-19
2. अरब और भारत का व्यापार सम्बन्ध ईसा के 1086 वर्ष पूर्व से है। बौद्ध-धर्म ने अशोक के राजस्व काल में भारत की पश्चिमोत्तर सीमा को पार कर लिया था। महायान धर्म ने भक्ति योग, दर्शन शास्त्र को बहुत कुछ अपना लिया था। ई. सन् 712 में अरबों ने सिन्ध विजय की। अरब विजेता भारत से केवल लूटपाट का माल ही नहीं ले गए, प्रगतयुत भारतीय संस्कृति में उन्हें जो कुछ सुन्दर और कल्याणकरी मिला उससे भी उन्होंने लाभ उठाया। इसी शताब्दी में अरब में सूफी मत का उदय हुआ। डॉ. बडथ्वाल हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ. 17
3. वही, पृ. 20
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-सूरदास-35

आ रही थी, उसमें सूफियों के प्रभाव से आभ्यान्तर मिलन मूर्छा की भी रहस्यमयी योजना हुई।[1]

निष्कर्ष यह है कि बौद्ध-जैन-धर्मों से प्रभावित वैष्णावाचार्यों ने शूद्रोद्धार हेतु प्रपत्ति शरणागति सिद्धान्त को व्यापक रूप से अपनाया था। मुस्लिम सम्पर्ककाल में सूफियों ने भी वैष्णव धर्म पर प्रभाव डाला था।

(6) सामाजिक, साहित्यिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ

साहित्यिक परिस्थितियाँ

मध्य युग के प्रेमाभक्ति काव्यों की रचना मुक्तक गीति-पदों में हुई है। मुक्तकगीति-परम्परा यहाँ आते-आते अत्यन्त लोकप्रिय बन गई थी, अत: भक्तों ने अपने आराध्य के गुणानुवाद एवं लीलागान का माध्यम इसी को स्वीकार किया। गीति-कव्य में सुकुमारता के लिए संगीतात्मकता तथा शान्त शृंगार वात्सल्य आदि कोमलरसों का समावेश आवश्यक होता है। मध्ययुगीन वैष्णव भक्तों ने राधाकृष्ण की माधुर्योपासना में प्रेम को साध्य साधन रूप में स्वीकार किया था। प्रेमा-भक्ति में शृंगार वात्सल्य सख्य दास्य आदि कोमल भावों को स्थान दिया गया था। साथ ही गेय पदों में भगवान के अलौकिक चरित्र ऐश्वर्य के कीर्तन करने की प्रथा भी वैष्णवों द्वारा स्वीकृत हुई थी। इस प्रकार के भक्ति विधान के लिए गीति पद्धति से श्रेयस्कर हो सकी। लोकगीति ही साहित्यिक गीति पदों का प्रारूप रहा है। अस्तु देश की काव्यधारा के मूल प्राकृतिक स्वरूप का परिचय हमें चिरकाल से चले आते हुए इन्हीं गीतों में मिल जाता है।[2] महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर तथा मुक्ताबाई के भक्ति पद, राजस्थान में मीरां के भजन मालवा में चन्द्रसखी के गीत तथा नामदेव, सदन, पीपा, रैदास, कबीर आदि सन्तों के तानपूरे पर गेय पद लोक गीतों की परम्परा में आज भी विद्यमान हैं। भक्ति की रागात्मक अनुभूतियाँ भावुक हृदय वाले स्त्री-पुरुषों द्वारा आराधना, विश्राम, पर्वादि के अवसरों पर गाये जाने वाले लोक-गीतों के रूप में प्रकट होती रही थी। अत: भक्ति के लोक-गीतों का प्रचलन उनके साहित्यिक गीतों से प्राचीन है।

हिन्दी के भक्ति परक गीतिकाव्य परम्परा संस्कृत साहित्य की ऋणी है। सामवेद विशाल गेय काव्य है जिसमें संगीतात्मक मन्त्रों में सरस स्तुतियाँ उपलब्ध होती हैं। गीता कर्मयोग व भक्ति का गेय काव्य है। वाल्मीकि रामायण को भी गेय काव्य कहना चाहिए। बौद्ध साहित्य की थेरीगाथाओं में हार्दिक राग और उत्साह से वैराग्य के गीत

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास-रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 178
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 165

गाये गये हैं। बौद्धधर्म के सहलिया तथा वाउल सम्प्रदाय में भक्ति प्रधान गीतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। नाथों, योगियों की आदि-वाणियों में भी गीतात्मकता के उदाहरण लक्षित हैं। हिन्दी साहित्य का आदिकाल ऐसे गीतों का स्वर्णयुग कहा जा सकता है।

वैष्णव भक्तों की गेय पद शैली का आदि उद्गम जयदेव का गीत गोविन्द है। जयदेव से यह गीति परम्परा विद्यापति और चण्डीदास को प्राप्त हुई। विद्यापति के पदों में लालित्य, माधुर्य एवं उक्ति-वैचित्र्य के साथ ही अद्भुत संगीतात्ममकता विद्यमान है। लोकभाषा में रचना होने से इनके गीत-पदों में जयदेव से अधिक माधुर्य एवं कमनीयता है, पर वे अलंकार प्रदर्शन, रस-चित्रण, नायिका-भेद-वर्णन आदि काव्य विधानों में भाव एवं कला दोनों की ही दृष्टि से पूर्णतया संस्कृति गीतिकार जयदेव से प्रभावित हैं। यद्यपि डॉ. श्यामसुन्दरदास ने विद्यापति पर निम्बार्क और विष्णु स्वामी का प्रभाव बतलाया है।[1] तथापि उन पर इनसे कहीं अधिक संस्कृत के शृंगार-काव्य का प्रभाव लक्षित होता है। उनके राधाकृष्ण लोक-रक्षक एवं लोकरंजक न होकर लौकिक नायक-नायिका प्रतीत होते हैं।

हिन्दी की मध्ययुगीन वैष्णव-गीति परम्परा पर भागवत-पुराण का अधिक प्रभाव है। इसलिए राधाकृष्ण, प्रेम-क्रीड़ा-गान अलौकिक और आध्यात्मिक प्रेम की ओर उन्मुख है। 'सम्भवत:' दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में भागवत परम्परा से भिन्न भी कोई लीला-गान की शास्त्रीय परम्परा थी। जयदेव का गीत गोविन्द पूर्ण रूप से भागवत परम्परा का गीत नहीं, उसमें राधा प्रमुख गोपी है, जो भागवत में अपरिचित है फिर गीत-गोविन्द का रास बसन्त रास है, जबकि भागवत का शरद रास।[2] इतना अन्तर होने पर भी जयदेव विद्यापति वैष्णव गीति-परम्परा के आद्याचार्य माने ही जायेंगे।

सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ

सम्वत् 800 से संवत् 1400 तक का काल भारत में सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक क्रान्ति का युग था। भारत की शस्य-श्यामला भूमि ने अरबों को लूट पाट के लिए ललचाया। साथ ही यहाँ की राजनैतिक विच्छिन्नता तथा सामाजिक विशृंखलता ने उनमें इस्लामी राज्य स्थापना की कामना उत्पन्न की। अत: धर्म प्रसार एवं राज्य संस्थापन दोनों के लिए धर्मान्ध इस्लामी नेताओं ने शासकों को प्रेरित किया। महमूद-गजनवी और मोहम्मदगौरी के आक्रमणों ने भारतीय संस्कृति एवं वैभव को मटियामेट कर दिया। अलबरूनी के कथनानुसार ऐसे विनाशकारी काण्ड हुए जिससे देश का वैभव धूल में मिल गया और हिन्दुओं के प्राचीन ऐश्वर्य की

---

1. हिन्दी भाषा और साहित्य—डॉ. श्यामसुन्दरदास, पृ. 406
2. हिन्दी साहित्य—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 167

कहानी सिर्फ लोगों के मुँह पर रह गई।[1] मुहम्मद-बिन-अख्त्यार ने बिहार में नरमेध के साथ ही बौद्ध बिहार के पुस्तकालय के बृहद-शास्त्र संग्रह की अग्नि में आहुति दे दी।[2] फिरोजशाह तुगलक ने एक ब्राह्मण को जीवित जला दिया था क्योंकि वह खुले में हिन्दू धर्मानुसार पूजा कर रहा था।[3] सिकन्दर लोदी ने उलेमाओं की सम्मति से बुद्ढ़न ब्राह्मण को, हिन्दू-धर्म को इस्लाम धर्म के समान महान् और पवित्र बताने पर मरवा दिया।[4] हिन्दुओं को राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। उच्चपद मुसलमानों के लिए सुरक्षित थे। बलपूर्वक मुसलमान बनाया जाता था। हिन्दुओं के लिए बादशाहक इच्छा ही कानून थी, उन पर अगणित कर लगा दिये गये थे, ताकि ये आर्थिक परवशता से स्वतन्त्र होने की सोच भी न सकें। अलाउद्दीन खिलजी के समय हिन्दू अपनी कमाई का आधा भाग कर के रूप में देते थे।[5] उनको घोड़े पर सवार होने, शस्त्र रखने, भव्य-वस्त्र पहिनने एवं पान आदि खाने पर भी दण्डित किया जाता था।[6] हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों की दृष्टि में भक्ति आन्दोलन का मूल कारण यही अराजकता और दुर्व्यवस्था है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव-गर्व और उत्साह के लिए वह स्थान न रह गया। उनके सामने ही उनके देव मन्दिर गिराये जाते थे, देव मूर्तियाँ तोड़ी जाती थी। पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। .... अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की भक्ति और करूण की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?[7] दक्षिण भारत में वैष्णव भक्ति की जो अबोध धारा प्रवाहित हो रही थी वह उत्तरी भारत में भी प्रवेश पाने लगी। परिस्थितियों ने उसके प्रसार को तीव्रतर कर दिया।

उदारवादी निर्गुण सन्तों ने सुधारवादी दृष्टिकोण से हिन्दू मुस्लिम समन्वय का सरस वातावरण तैयार किया। साथ ही दोनों धर्मों की बुराइयों का निराकरण किया। इस सम्मिलित आयोजन में हिन्दू और सूफी मत के उदारवादी सन्त थे। उत्तरी भारत की इन परिस्थितियों में शंकर के अद्वैतवाद, नाथमत के हठयोग, सूफियों तथा वैष्णवों की सरल प्रेमोपासना को लेकर निर्गुण पंथ ने भक्ति से शून्य जनता का उद्धार किया।

---

1. History of mediaeval India. By Dr. Ishwari Pd.Page 921.
2. तबकाते नासिरी भाग-1, पृ. 552 रेबर्टी द्वारा सम्पादित।
3. Student's History of India-By Smith P. 126.
4. History of mediaeval India By P. 48 and 182.
5. डॉ. ईश्वरी प्रसाद भारतीय इति. पृ. 465-71
6. तारीखे फीरोजशाही पृ. 288 तथा History of mediaeval India.
7. **रामचन्द्र शुक्ल**—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 60

निर्गुण सन्तों ने मुस्लिम शासकों की कठोर नीति के प्रति व्यापक रूप से आन्दोलन किया तथा समन्वय के प्रयत्नों से स्थायी शान्ति का वातावरण बनाया। इस प्रकार इन्होंने सगुण प्रेमोपासना का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। लोगों ने त्रस्त हृदय को निराकार ब्रह्म से न तो आत्मिक सन्तोष ही मिला और न रक्षा का ही अवलम्ब मिला। अतः भगवान के उस लोक रक्षक ओर लोक रंजक स्वरूप की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी, जिसकी अनन्य शरण में जाने से परित्राण मिले तथा जिसकी एकान्तिक भक्ति में सारा समाज आत्मग्लानि को भूलकर तन्मय हो जाय। ऐसे समय निम्बार्क, रामानुज, मध्वाचार्य प्रभृति दार्शनिकों द्वारा प्रतिष्ठित वैष्णव भक्ति का स्वरूप लोक ग्राह्य हुआ। रामानुज के शिष्य रामानन्द ने रामभक्ति की तथा बल्लभाचार्य, हितहरिवंश, हरिदासादि ने ब्रज में कृष्ण भक्ति की सरल धारा बहा दी। चैतन्य ने बंगाल को राधाकृष्ण की युगल भक्तिधारा से आप्लावित कर दिया।

प्रेमाभक्ति निर्गुणोपासना में प्रवेश कर कबीर, दादू आदि की सरस वाणियों में अभिव्यक्त हुई। बंगाल में वह जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास के सरस मधुर गीतों में ध्वनित हो उठी। तुलसी ने राम भक्ति और लीला का अत्यन्त मर्यादित रूप उपस्थित किया। सूर ने कृष्ण लीला का अतिशय मधुर एवं स्वच्छन्द स्वरूप स्थिर किया। श्री परशुरामदेवाचार्य भी उच्चकोटि के भक्त एवं वैष्णावाचार्य थे, जिन्होंने इसी युग में मरुधरा में वैष्णवभक्ति सुरसरिता की अजस्र धारा प्रवाहित की।



पंचम-अध्याय

राजस्थान में निम्बार्क-सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में आचार्य महाकवि परशुरामदेव एवं निम्बार्कीय प्रतिनिधि हिन्दी कवि

खण्ड : अ

1. राजस्थान में निम्बार्क-सम्प्रदाय : प्रतिष्ठापन एवं विकास

खंडैला में ठीकरी, अणपूछी पहिचाणि।
भजन उजागर प्रससाम, प्रगट प्रेम तैं जाणि।।[1]

हंस भगवान् चौबीस अवतारों में परिगणित है, वह अध्यात्म ज्ञान के ब्रह्माण्ड में सर्व प्रथम प्रवर्तक हैं। इन्हें निम्बार्काचार्य-परम्परा में सर्वप्रथम परिगणित किया गया है। नीर-क्षीर-विवेक के कारण श्वेत धवल वर्णाकृत मुक्ता सदृश यह स्वरूप परम वन्दनीय है। इसी से ब्रह्मा को भी ज्ञान सुलभ हुआ। यहाँ तक तो यह पूर्णतया स्वीकार्य है ही, किन्तु ब्रह्मा के मानस पुत्र सनकसनन्दन सनातन सनतकुमार तथा देवर्षि नारद भी निम्बार्क परम्पराओं में मूल रूप में अभिनन्दित एवं वन्दित हैं। श्री ब्रह्मा ने राजस्थान क्षेत्र तीर्थगुरु पुष्कर में सृष्टि यज्ञ का अनुष्ठान पूर्ण किया। यह सभी शास्त्रों, पुराणों आदि में उल्लिखित है। इससे यह ध्वनित होना स्वाभाविक है कि सनकादिक एवं देवर्षि नारद ब्रह्मापुत्र होने के कारण चाहे वे मानस सृष्टि के ही अंग हों, पुष्कर, ब्रह्म, अन्त:करण चतुष्टय, मन आदि के व्यक्त स्वरूप में स्वीकार किये, कराये जा सकते हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय को सनकादिक सम्प्रदाय के नाम से भी पहचान प्राप्त है, तब इन तथ्यों को पुष्कर से समन्वित करना एवं पुष्कर का राजस्थान से समन्वित होना एक सुदृढ़ विचार्य पक्ष है। इस तथ्य की चर्चा अन्य विद्वानों ने भी समय-समय पर की है। राजस्थान के सन्दर्भ में तनिक विचारणीय अवश्य है। पुष्कर को सम्पूर्ण मान्यताएँ प्राप्त हैं और वह राजस्थान का अंग है वह भी सुदृढ़ है।

वशिष्ठ का आश्रम पुष्कर के ही समीप आबू पर्वत में, कर्दम ऋर्षि भी सिद्धपुर में निकट ही है, अरुन्धती का सम्बन्ध भी इसी शृंखला से है। इस प्रकार सम्पूर्ण परिवेश

---

1. परशुराम सागर

विषय के सन्निकट कर आलोचना के योग्य है। भगवान् नियमानन्द वैदूर्यपत्तन मूँगीपेठन महाराष्ट्र के अंगभूत दक्षिण से प्रकट हैं। जन्मस्थिति, निम्बार्क चरित्र इत्यादि सहायक प्रमाण हैं। माता-पिता, अरुण ऋषि तथा जयन्ती ऋषिका के साथ भ्रमण प्रसंग में ब्रज आगमन, गोवर्धन तलहटी में यमुना किनारे निम्ब वृक्षों के झुरमुट में आश्रम स्थिति, यह रचना, देवर्षि नारद का आगमन, दीक्षा एवं सर्वेश्वर स्वरूप प्रसाद ग्रहण आदि प्रमाणिक तथ्य विश्व विदित है।

राजस्थान में निम्बार्क सम्प्रदाय के भौतिक प्रवेश का द्वितीय चरण निम्बार्काचार्य स्वामी परशुराम देवाचार्यजी से आरम्भ किया जाए तो युक्ति संगत है।

''जंगल देश के लोग सब परशुराम किये पारषद्।[1]''

राजस्थान यवन संस्कृति के आक्रमण का प्रमुख केन्द्र रहा है। यवन शासकों के साथ उनके पीरों आदि का भी प्रभाव राजस्थान एवं इसके समीपवर्ती राज्य उत्तरप्रदेश पर रहा है। इससे सम्बन्धित अनेक घटनाएँ ताबीजों, आसुरी अपचारों आदि की घटनाओं के समाधान में हरिव्यासदेवाचार्य जी महाराज, परशुरामदेवाचार्यजी महाराज, स्वभूराम देवाचार्यजी महाराज की कई घटनाओं में उपलब्ध है। जिन्होंने पाखण्ड और पाखण्डियों को तहसनहस ही नहीं किया, ध्वस्त भी किया तथापि अपने अलौकिक चमत्कारों से वैष्णवी महिमा शक्ति को सुप्रतिष्ठित भी किया। इस परिगणना में केशवकांशमीरि भट्टाचार्य का परिगणन भी प्रासंगिक है। श्रद्धेय गुरुदेव हरिव्यास देवाचार्य जी महाराज ने राजस्थान एवं सम्पूर्ण मानव जाति के उद्धार हेतु परशुराम देवाचार्य जी महाराज को **राजस्थान (राजपूताना)** भेजा और यह उनका कर्मक्षेत्र बन गया, ब्रज से, मथुरा से राजस्थान में प्रवेश भरतपुर, कामा आदि के पथ से होता रहा है, किन्तु जयपुर भी निम्बार्क सम्प्रदाय का सबल केन्द्र रहा, इसे नकारा नहीं जा सकता। इस पर और शोध खोज, अन्वेषण प्रतीक्षित है। यों भ्रमण करते-करते किशनगढ़ राज्य के वन प्रदेश में आचार्यश्री का आगमन, स्थिति, सम्प्रदाय विस्तार, कार्य विस्तार, चमत्कारों की लम्बी शृंखला बहुश्रुत है। आचार्यश्री द्वारा निम्बार्काचार्य पीठ की स्थापना आदि राजस्थान में निम्बार्क सम्प्रदाय की उपस्थिति के तत्कालीन पुष्ट प्रमाण हैं। पुष्कर में परशुराम देवाचार्य जी की समाधि, मीरां के गिरधर गोपाल का श्री विग्रह (पुष्कर स्थिति मन्दिर में) परशुराम सागर की प्रति सलेमाबाद तथा उदयपुर में उपलब्ध होना, परशुराम देवाचार्य जी महाराज के चित्र हाल के कलम से जिनमें अनेक चित्र भी अंकित हैं। अन्य स्थानों के साथ साथ परशुरामद्वारा जयपुर तथा उदयपुर में भी उपलब्ध हैं। बड़ी माला का एक अंग जो परशुराम देवाचार्य जी महाराज

---

1. नाभादासकृत भक्तमाल से उद्धृत।

की धूणी पर उपलब्ध है। उदयपुर में भी विद्यमान है। राजस्थान में परशुराम देवाचार्य जी महाराज की शिष्य शृंखला में विरक्त एवं गृहस्थों के गांव-गांव में सैकड़ों स्थान होंगे, जिन्हें निम्बार्क एवं निमावतों के नाम से पहचान प्राप्त है। निम्बार्काचार्य परम्परा में 37 वें आचार्य हरिवंश देवाचार्य जी ने भी राजस्थान में सम्प्रदाय का विस्तार किया। आपके ही शिष्य ब्रजभूषण जी महाराज ने हस्तेड़ा में स्थान बनाया, जो बड़े मन्दिर के नाम से विख्यात हैं। यहाँ के जागीरदार इसे अपना गुरुस्थान मानते हैं। जनता भी बहुत आदर सम्मान अर्पित करती है। किशनगढ़-रेनवाल कृष्ण बिहारी जी का बड़ा मन्दिर भी सम्प्रदाय में बहुप्रतिष्ठित है तथा हरिवंश देवाचार्य जी महाराज के शिष्य परम्परा आ अंग है। यहाँ वर्तमान में महन्त श्री हरिवल्लभदास जी महाराज विराजमान हैं।

निम्बार्क सम्प्रदाय से सम्बद्ध मठ-मन्दिर

गोपाल मन्दिर, रेनवाल
अस्थल आश्रम, उदयपुर
बाईजीराज का कुण्ड
राजाजी की छतरी, डूंगरपुर
मेयो कॉलेज रघुनाथ मन्दिर, अजमेर
पुराना लक्ष्मीनारायण मन्दिर, अजमेर
चारभुजा का मन्दिर, कायस्थ मोहल्ला, अजमेर
सत्यानारायण मन्दिर, अजमेर
नया लक्ष्मीनारायण मन्दिर, अजमेर
नृसिंह मन्दिर होलीदड़ा, अजमेर
गोपाल मन्दिर, चला
पीताम्बर की गाल, चला
लूणवा स्थान
गोपाल मन्दिर, पलसाना
राधामाधव मन्दिर, श्रीमाधोपुर
भादी मंदिर, मीठड़ी
वशिष्ठ आश्रम, माउण्ड आबू
पाटनारायण, गिरवर सिरोही
रामझरोखा, सिरोही
राजगुरु स्थान, सिरोही
द्वारिकाधीश मन्दिर, रोहिड़ा
शनि मन्दिर, सिरोही
आबूरोड का स्थान

होद मन्दिर, श्रीमाधोपुर (सीकर)
दुल्हपुरा मन्दिर
नीम का थाना छावनी, सीकर
उदयपुर शेखावाटी, मन्दिर
चेतनादास जी की बावड़ी लौहार्गल
रूपजी का मन्दिर पीपाड़, जोधपुर
गोपालद्वारा पीपाड़, जोधपुर
निमोलगोपाल द्वारा, जोधपुर
गोलद्वारा, बिहरोल
गोपालद्वारा, जोधपुर
बाईजीराज का कुण्ड, जोधपुर
नौलखा बाग, जोधपुर
गोवर्धननाथ जी, फलौदी
गोपालद्वारा थोब, बालोतरा
गोपालद्वारा, बालोतरा
ब्रजराजजी का मन्दिर, लावा
गोपालजी का मन्दिर, डिग्गी
श्रीकल्याण मन्दिर, बस्सी
गोपाल मन्दिर, आंधीधोराई
गोविन्ददेवजी का मन्दिर, सामोत
बिहारीजी का मन्दिर, भरतपुर
श्रीजी मन्दिर, भरतपुर
नृसिंह मन्दिर, कामवन
गोपाल मन्दिर, विमल कुण्ड, कामवन
मुरलीमनोहरजी का मन्दिर कामवन
गोपाल मन्दिर, गोहाना
आदिबद्री स्थान, जिला भरतपुर
पुँछरी स्थान, भरतपुर
नीझराँ स्थान, जयपुर-अवलर
शहपुरा स्थान, रामनिवास बाग, अलवर
गोपाल मन्दिर (गोपालगढ़) त्रिवेणी, जयपुर
हनुमान मन्दिर, काँवट
दाऊजी का मन्दिर शाहपुरा (मेवाड़)

गोपालद्वारा, दूधाधारी भीलवाड़ा
गोपालद्वारा सांगानेर, भीलवाड़ा
मिलवाला मन्दिर, भीलवाड़ा
नृसिंह द्वारा गंगापुर, भीलवाड़ा
गोपालद्वारा पोटला, भीलवाड़ा
गोपालद्वारा मातृ कुण्डिया, चित्तौड़
गोपाल द्वारा, कपासन
रघुनाथद्वारा, उदयपुर
गोपालद्वारा आरणी, भीलवाड़ा
नृसिंह द्वारा माण्डल (जिला, भीलवाड़ा)
गोपाल मन्दिर, देवलिया, प्रतापगढ़
छोटी सादड़ी, मेवाड,
गोपालद्वारा जूसरी
गोपालद्वारा, कानोड, मेवाड़
जगदीश मन्दिर, सलूम्बर, मेवाड़
नृसिंह मन्दिर, भीण्डर, मेवाड़
गोपाल मन्दिर, काँकरोली, मेवाड़

इस प्रकार राजस्थान में निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रवेश परशुराम देवाचार्य जी महाराज के समय से स्वीकार करना औचित्यपूर्ण है। पूरे राजस्थान में इसकी शाखाएँ प्रशाखाएँ फेली हुई हैं। इन सबका मूल अखिल भारतीय निम्बार्काचार्य पीठ (परशुरामपुरी), सलेमाबाद उद्गम है, जिसके वर्तमान **आचार्य जगद्गुरु श्री श्रीजी महाराज राधासर्वेश्वररशण देवाचार्यजी महाराज हैं।** जिन्होंने राजस्थान में सैकड़ों धर्म यात्राएं कर हजारों आध्यात्मिक प्रवचन उपदेश प्रदान कर अनेकों ग्रन्थ लिखकर अपनी परमोत्कृष्ट साधुता से, पाण्डित्य, कवित्व, सहृदयता, आदर्शों, करुणामयी भावनाओं से निम्बार्क-सम्प्रदाय को राजस्थान में सुप्रतिष्ठित कर दिया है।

2. आचार्य परशुराम देव : व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचयात्मक अनुशीलन

निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियों और आचार्यों में श्रीहरव्यासदेव जी का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके द्वारा निम्बार्क सम्प्रदाय की सर्वतोमुखी उन्नति का सूत्रपात हुआ। सम्प्रदाय की उपासना प्रणाली, आचार प्रणाली, रूप रसोपासना, भक्ति, वैभव एवं विस्तार और साम्प्रदायिक परम्परा के साथ अपने उद्भट प्रताप, वृहद ऐश्वर्य एवं अलौकिक सिद्धि शक्ति द्वारा उन्होंने न केवल मानव वर्ग वरन् इतरमानव देव–देवी–गण पर भी अपनी महामानवता का सिक्का जमाया था। पशु बलि, हिंसा आदि सामाजिक निम्न प्रवृत्तियों के प्रतिबन्धन के द्वारा उन्होंने जन साधारण में त्याग, औदार्य आदि

वैष्णवीय भावों का प्रसार किया था। श्रीपरशुराम देवजी उन्हीं श्री हरिव्यासदेव जी के शिष्य थे। श्रीपरशुरामदेवजी ने अपने गुरुदेव की मान मर्यादा का विस्तार किया। राजस्थान के 'जङ्गली प्रदेश' में जाकर उन्होंने वहाँ की असंस्कृत जनता को अनन्य भगवद् भक्त बनाया उनमें गुरु निष्ठा, भक्तभाव, प्रेम नेम-मर्यादा, पूजा-उपासना-क्रम, भगवत् चिन्तन एवं धार्मिक ग्रन्थों के पठन-पाठन की परम्पराएँ डाली। उनकी दैनिक चर्या, भाषा-व्यवहार और चिन्तन प्रणाली में युगान्तरकारी परिवर्तन किये। इन्हीं सुधारों के उपरान्त व पार्षदों के समान शिष्ट और सुसंस्कृत बन गये जिनकी प्रशंसा करते-करते नाभाजी नहीं अघाते।[1] इसी कारण महाकवि तुलसीदासजी के समान उनको भी मध्ययुगीन समन्वयवादी संत कहकर प्राय: सम्बोधित किया गया है।[2]

डॉ. ग्रियर्सन ने अपने 'मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' में 'राग कल्पद्रुम' के उल्लेख के आधार पर उन्हें केशव भट्ट और हरिव्यासदेवजी का अनुयायी लिखा है।[3] वास्तव में वे हरिव्यासदेव जी के शिष्य और केशव काश्मीरि जी के पोत्र शिष्य थे। विल्सन ने 'रिलीजियस सैक्ट्स ऑफ दि हिन्दूज' में भी यही अभिमत प्रकट किया है।[4] भागवत सम्पद्राय में श्री बलदेव उपाध्याय ने परशुरामदेव जी की पुष्कर क्षेत्र स्थित समाधि के निकट निर्मित मन्दिर के शिलालेख के आधार पर उनका मृत्यु काल सम्वत 1689 के पूर्व माना है।[5] वास्तव में उनकी मृत्यु इससे कम से कम 10, 12 वर्ष पूर्व हो चुकी होगी। उदय 'परशुरामांक' में श्रीवियोगी विश्वेश्वर ने परशुरामदेवजी के द्वारा किसी सलीमशाह चिस्ती की पराजय की सम्पुष्टि की है जिसके कारण 'सलेमाबाद' नाम पीछे से उस बस्ती को दिया गया जहाँ परमुस्लिम सिद्धों ने परशुरामदेव जी से युद्ध किया था। उन्होंने इनका जन्म 15वीं शताबदी में माना है जो उचित नहीं है।[6] शिवसिंह सरोज में परशुरामदेव जी का संवत 1660 में उपस्थिति काल माना गया है ओर उनको ब्रजवासी कहते हुए श्रीभट्ट एवं हरिव्यासदेव जी का अनुयायी कहा है। परशुरामदेव जी का जन्म यद्यपि जयपुर के आस-पास राजस्थान में हुआ था परन्तु वे वज्र में भी रहे थे इस कारण ब्रजवासी नाम से सम्बोधित हो सकते हैं। उनका यह उपस्थिति काल हो सकता है।[7] निम्बार्क

---

1. जङ्गलीदेश के लोग सब परशुराम किये पारषद . . . भक्तमाल छप्पय सं. 138
2. उत्तरी भारत की संत परम्परा, परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 518
3. मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान, सम्पादक डॉ. किशोरीलाल गुप्त, पृ. 103
4. रिलीजियस सैक्ट्स आव दि हिन्दूज, एच. विल्सन, पृ. 151
5. भागवत सम्प्रदाय, बलदेव उपाध्याय, पृ. 310
6. उदय परशुरामांक, वियोगी विश्वेश्वर, पृ. 16
7. शिवसिंह सरोज, चौ. शिवसिंह सैगर, पृ. 76

माधुरी,[1] मंडल कवि कृत 'जयसिंह सुजस प्रकाश'[2] उत्तरी भारत की संत परम्परा,[3] ब्रज का इतिहास दूसरा भाग,[4] राजस्थानी भाषाऔर साहित्य,[5] मिश्र बन्धु विनोद[6] सर्वेश्वर वृन्दावन धामांक[7] आदि ग्रन्थों में परशुरामदेव जी का उल्लेख है। जिनमें सामान्यत: उनके हरिव्यासदेव जी का शिष्य होने, सलीमशाह को पराजित करने, सलेमाबाद पीठ की स्थापना करने, परशुराम सागर के रचनाकार आदि का उल्लेख है।

(i) जीवन परिचय

युगल शतक[8] की भूमिका में श्री ब्रजवल्लभशरण वेदान्ताचार्य ने इनका जन्म सं. 1500 वि. के लगर्भग और निर्वाण काल सं. 1669 वि. माना है ये दोनों ही संवत उचित प्रतीत नहीं हाते क्योंकि इस प्रकार उनका आयुमान 169 वर्ष हो जाता है। दूसरी बात यह है कि परशुरामदेव जी की एक रचना 'विप्रमती' है जिसका रचना काल उसी ग्रन्थ में संवत 1677 वि. लिखा हुआ हे। अत: इस प्रकार उनका 1677 वि. में उपस्थित रहना सिद्ध होता है। श्री ब्रजवल्लभशरण उक्त संवत को विप्रमती का रचनाकाल नहीं वरन् प्रतिलिपि काल मानते हैं। उनका मत है कि परशुरामदेव जी क नाम का एक पट्टा सं. 1669 वि. का प्राप्त है उसके पीछे का कोई और पट्टा नहीं मिलता, अत: उनका निर्वाण काल भी यही होना चाहिये।

'नाम माहात्म्य' के वाणी अङ्क के अनुसार परशुरामदेवजी का जन्म सं. 1544 वि. में हुआ।[9] उनके जन्म संवत कमा अन्य किसी ग्रन्थ में उल्लेख नहीं है। शिवसिंह सरोज 'मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' में सं. 1603/1660 में उनका उपस्थिति काल भी लिख दिया गया है जो उचित प्रतीत होता है। श्री बल्देव उपाध्याय जी ने उनका निर्वाण काल सं. 1699 के पूर्व माना है। हमारे मत से वह सं. 1680 है। क्योंकि भक्तमाल में जिस रूप में परशुरामदेव जी का वर्णन है उससे भी उनका निर्वाण काल सं. 1680 के आस पास तक पहुँचता है, क्योंकि नाभादास जी ने परशुरामदेव जी के लिए करई, अनुसराई आदि वर्तमानकालिक क्रियाओं का प्रयोग कर उन्हें उनके विस्तृत एवं व्यापक कीर्ति विस्तार का जीवनकाल में सर्वतोमुखी प्रसार होने की

---

1. निम्बार्क माधुरी बिहारीशरण ब्रह्मचारी, पृ. 69
2. जयसाहि सुजस प्रकाश, मंडन कवि कृत, पृ. 27 से 33 तक
3. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ. 518
4. ब्रज का इतिहास, भाग 2, कृष्णदत्त वाजपेयी, पृ. 261
5. राजस्थानी भाषा और साहित्य, मोतीलाल मनारिया, पृ. 188
6. मित्रबन्धु विनोद, भाग–2, पृ. 421
7. सर्वेश्वर वृन्दावन धामांक, पृ. 221
8. युगल शतक, सम्पादक ब्रजवल्लभशरण, निम्बार्क समय समीक्षा, पृ. 7
9. नाम माहात्म्य वाणी अंक, पृ. 37

सूचना दी है॥ मिश्र बन्धुओं ने उनका कविता काल संवत 1687 वि. लिखा है[1] जो उचित नहीं प्रतीत होता, क्योंकि श्री गोपाल दास भाटी के किन्हीं पूर्वज ने परशुरामदेव के जिस समाधि-स्थल का निर्माण कराया था उसका निर्माण काल सं. 1689 अङ्कित है। अत: प्रामाणिक आधारों पर परशुरामजी के सं. 1680 तक विद्यमान रहने की पुष्टि होती है।

अब रही सं. 1544 में उनके जन्मकाल की बात वह भी निराधार नहीं प्रतीत होती। परशुरामदेव जी का जन्म संवत 1544 और मृत्यु संवत 1680 मानने से उनका आयु मान 136 वर्ष ठहरता है, जो ऐसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी के लिए अधिक नहीं है।

(ii) दीक्षा-संस्कार एवं गुरु-कृपा

हरिव्यासदेव जी के अनेक शिष्यों में श्रीरूपरसिकदेव जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'हरिव्यासदेव यशामृत सागर' में उन्होंने श्रीपरशुराम जी के विषय में कई बार संकेत किये जिनसे ऐसा पुष्ट होता है कि गुरुदेव अपने द्वादश शिष्यों में परशुरामदेव जी को सबसे अधिक प्रेम कृपा की दृष्टि से देखते थे। गुरुदेव ने इन्हें 'अष्टादशाक्षर मंत्र' की दीक्षा देकर 'परमासखी' तथा ''परम सहेली' नाम दिया था। रूपरसिकदेव जी परशुराम जी को अत्यन्त श्रद्धाभाव से देखते इन्हें गुरुवत ही मानते थे।

परम सहेली अलबेली आनन्द की।
रूपरसिक बलि जाय चरण अरविन्द की।।

अपने गुरुदेव की मंगल आरती उतारते हुए उनके विशिष्ट परिकर का स्मरण करते हुए उन्होंने परशुरामदेव जी को हरिव्यासदेव जी के नाम उस रंग महल में सेवा चाकरी करते अंकित किया है जहाँ श्रीयुगलकिशोर विराजते हैं।[2] यही तक नहीं श्रीहरिव्यासदेव जी ने अपनी विद्यमानता में श्रीपरशुरामदेव जी को सर्वेश्वर की पूजा प्रदान की थी एवं अपना आचार्य पद प्रदान किया था। हरिव्यासदेव जी के द्वादश शिष्यों के नाम देवान्त हैं। उनमें जिनको आचार्यत्व प्राप्त हुआ उन्हें 'सुदेव' कह कर श्रीरूपरसिकदेव जी ने स्मरण किया है।[3] उन्होंने स्पष्ट कहा है कि श्रीहरिव्यासदेव जी ने पृथ्वी को दशो दिशाओं में जीतकर देवी देव मनुष्य आदि अनेक शिष्य किये और भक्तवत्सल परम प्रतापी आचार्य चरणों के स्पर्श से श्रीपरशुरामदेवजी सुदेव आचार्य हुए। हरिव्यासदेवजी के परम सुपात्र शिष्य (अच्छा छोना) हुए।

---

1. मित्रबन्धु पृ. 421
2. हरिव्यास यशमृत सागर, पृ. 100
3. हरिव्यास यशामृत सागर, पृ. 94

परशुरामदेव जी नेअपने 'परशुराम सागर' में श्रीहरिव्यासदेव जी को ही अपना पूज्य मानकर उनकी वन्दना की है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि शिष्य का कुल और उसकी जाति सब कुछ उसके गुरु ही होते हैं। मेरी जाति कुल, वर्ण सब कुछ उन्हीं के दिये हुए हैं।

भगतवंश जन परसरा श्रीगुरु श्रीहरिव्यास।
जाति वरण कुल सब किया साखि सदा निज दास।।[1]
हम कीने जिन राम जन सोय हमारा बंस।
यही विचारो परसुरा जाके उर गुरु अंस।।

(iii) शील स्वभाव

परशुरामदेव जी सम्प्रदाय में 'परमासखी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह श्रीराधाजी की अन्तरंग सखी का नाम है जो उनकी नित्य-विहार लीला में महल की अन्तरीय परिचर्या में योग देने वाली हैं। वे स्वभाव से बहुत मृदुल और दयावान हैं। अनन्य भाव से प्रिया प्रियतम का सहचार करना और प्राणिमात्र के लिए अपने हृदय में दया का स्रोत उमड़ाते रहना यही उनकी विशेषता है।[2]

मुसलमान सिद्ध फकीरों से उनको बार-बार संघर्ष करना पड़ा। उन दिनों मुसलमानी राज्य था और पीर फकीरों का जनता में भारी सम्मान था। हिन्दू मुसलमान शासक सम्राट उनके ठिकानों पर जाकर नतमस्तक होते थे। ऐसी दशा में सिद्ध फकीरों के खुले रूप में संघर्ष करना राज विरोध और राज निन्दा का रूपान्तर मात्र था। परशुरामदेवजी ने मस्तिंगशाह की सिद्धियों को ललकारा उसका खुले रूप में विरोध किया और अन्त में उसे पराजित भी किया।[3] इसी मस्तिंगशाह की समाधि आज भी सलेमाबाद से उनके अलौकिक पराक्रम, देवतुल्य साहस और अभूतपूर्व सहनशीला की स्मृति करा रही है।[4] ईश्वर आसक्ति के साथ वे भाग्यवाद में विश्वास करते थे। उनका मत था कि मनुष्य कितना ही प्रयास करे जब जैसा उसके भाग्य में बदा होता है उसका भागी वह अवश्य बनता है। भाग्य अटल, अविचल है।

अपना कीया दूर करि, हरि का कीया देख।
मिटे न काहू के किये, परशुराम हरि लेख।।[5]

---

1. हरिव्यास यशामृत सागर, पृ. 60
2. परशुराम के पंथ में जीव दया विस्तार पर की पीड़ा जाणई, जाणी पर उपकार . . . परशुराम सागरमें दो. 2121
3. मस्कीन शाह की पाँवड़ी, परशुराम की बूठ टीला सूखा खेत में . . .
4. हरिव्यास यशामृत सागर, पृ. 80
5. परशुराम सागर, दोहा, सं. 187

सत्सङ्ग उन्हें अत्यन्त प्रिय था। कुसङ्ग से वे घबराते थे। दुष्ट, दम्भी और दुराचारी लोगों का साथ उन्हें दुखदायी था। परशुराम सागर में अनेक स्थलों की महिमा का गान किया है। तीर्थ, व्रत, तपस्या यद्यपि साधु जीवन के विशेष अङ्ग हैं, परन्तु भगवान् में जब तक सच्ची अनुरक्ति नहीं होती इन सबका कोई महत्त्व नहीं है।[1] लोक दृष्टि से भगवद् चरणानुरक्ति पर बल देते हुए भक्ति के साधक तत्त्वों को वे अपेक्षाकृत उपेक्षण्य ठहराते थे, परन्तु साम्प्रदायिक भावना का प्रतिपादन करते समय वे इनको अत्यन्तावश्यक समझते थे। उनका विश्वास था कि जिस प्रकार दूध में पड़ने वाली काँजी की बून्द सारे दूध को विकृत कर देती है उसी प्रकार कुसङ्ग का एक अंश भी समस्त धर्म का विनाशक होता है।

अंस परायी परसत, सकम धर्म का नास।
टपको काँजी कौ करे, सौ मन दूध विनाश।।[2]

इतना सब होते हुए भी परशुरामदेव जी में धार्मिक सहिष्णुता का अद्भुत भाव विद्यमान था। इस दिशा में वे पूरे संत थे। हिन्दुओं और मुसलमानों को धार्मिक विद्वेष से बचाने के लिए वे निरन्तर चेतावनी देते हुए देखे जाते हैं। कबीर की भाँति हिन्दू मुसलमानों को डाट फटकार कर विद्वेषाग्नि को भड़काने से रोकने का उनका अद्भुत प्रयास देख पड़ता है। इस दृष्टि से उन्हें 'मध्यकालीन युग का शान्ति दूत' कह कर पुकारा जाय तो अनुचित न होगा।[3]

(iv) भ्रमण एवं सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार

श्रीहरिव्यासदेव जी द्वारा परशुराम देव जी को राजस्थान के उत्थान का भार सौंपा गया था उन्हें यह आज्ञा दी गई थी कि देश के विभिन्न भागों में जाकर वहाँ की धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का परिचय प्राप्त करें और उनके अनुरूप ही विशिष्ट भूमि भाग के कार्य-क्रम का निर्धारण करें। निदान परशुरामदेव जी ने भारत के अनेक महत्त्वपूर्ण नगरों का भ्रमण किया जिसका परिज्ञान उनकी रचनाओं से भली-भाँति होता है। वे राजस्थान राज्यान्तर्गत सलेमाबाद नामक स्थान पर स्थायी रूप से रहते थे। वहाँ से बून्दी को गये फिर फतेहपुर सीकरी से आगरे और फिर वहाँ से

---

1. को तीरथ को व्रत करै, तप साधना कराहिं।
   परशुराम हरि के बिना, और ठौर कौ नाहिं।। परशुराम सागर दो. 1387
2. परशुराम सागर, दोहा सं 1694
3. काँजी जरा विचारि लै, कह मन कहाँ मसीत।
   कहाँ नमाज गुदारिये, परसा समझ सुरीत।।
   काया नगर नमाज मन, मनसा मरण मसीत।
   परसा सीस तहाँ नवै, लागै पति सों प्रीति।। परशुराम सागर, दोहा सं. 1619, 20

दिल्ली पहुँचे। दिल्ली से गुजरात, गुजरात से जोधपुर के कच्चे मार्ग से बीजापुर गये, वहाँ से मालवा, जाँगलू, सम्भलपुर, आमेर, रतलाम, अमृतसर, अजमेर होते हुए अपने निवास-स्थान परशुरामपुरी (पुष्कर क्षेत्र) आये। वहाँ से पुन: भ्रमण प्रारम्भ किया तो उत्तर प्रदेश में गङ्गा तट पर स्थित शूगर क्षेत्र (सौरों) में पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने कुछ दिनों तक सुख पूर्वक वास किया।[1] सम्भव है वहाँ पर रह कर उनका गोस्वामी तुलसीदास जी से साक्षात्कार हुआ हो और उनके प्रभाव से ही उनके विचारों में समन्वयवादी दृष्टिकोण का विकास हुआ हो। सौरों में यथेष्ट समय तक निवास करने का उन्होंने स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है और तुलसीदास जी के प्रति उनका प्रमभाव था इसका भी उनके एक अन्य पद से संकेत मिलता है इस कारण यह नितान्त सम्भव है कि तुलसीदासजी की भाँति उन्होंने सगुण, निर्गुण, राम-कृष्ण सम्प्रदाय, हिन्दू मुसलमानी धर्म, विविध दार्शनिक मत एवं वेदान्त आदि का समन्वय कर अपने 'परशुराम सम्प्रदाय' का प्रचलन किया हो।

(v) समकालीन कवियों व महापुरुषों का उल्लेख

परशुरामदेव जी ने अपने समकालीन श्रीहरिव्यास जी की भाँति अपने समकालीन एवं पूर्ववर्ती महापुरुषों के कतिपय नाम गिनाये हैं, जिन्हें वे पूज्य, बुद्धि अथवा प्रेम भाव से देखते थे।[2] इनमें सभी विचारधाराओं के महापुरुष हैं। एक ओर नामदेव, जयदेव, त्रिलोचन आदि सगुणवादी कृष्ण भक्त हैं तो दूसरी और कबीर, सदना, पीपा, सेना, घना आदि निर्गुणवादी। अनन्य रसिक श्री स्वामी हरिदास जी,

---

1. निज वदि बूँदी सीकरी, गयौ तहीं बलै जु अगरौ।
   दिल्ली फिरि गुजरात, जोधपुर गह्यौ जु दगरौ।।
   बीजापुर, मलतानि, जाँगलू सरसै हीयौ।
   संभरि करि आँवेर, तालपुर घर घर कियौ।।
   अम्मरसर, अजमेर, पुरारामसरै, सामुख रह्यौ।
   परशुराम प्रभु राम कूं सोरों वसि करि सुख भयौ।। परशुराम सागर, पृ. सं. 224, छ.सं. 24
2. हरिजन सब परिवार हमारौ।
   जहीं कहुँ सुमिरे जो हरि को हमकों लागत है अति प्यारौ।।
   नामदेव जैदेव, त्रिलोचन, जन कबीर, सघना रैदासा।
   पीपा, पदम, सूर, परमानन्द, सेन, घना सोभा कुल खासा।।
   भीम भुवन हरिदास चत्रभुज, कृष्ण दास आधारा।
   व्यास, तिलोक, दिवाकर द्योगुना, पारयौ हू दिन-दिन हरिप्यारा।
   सोभूराम, जसोधन, धोमी सुमानदास कट हरियो।
   श्रीभट, रीहरिव्यासदेव धरि चेरौ परसराम दृढ़ करियौ।।
   परशुराम सागर पृ. 138 छ.सं. 638

परमानन्ददास, अष्टछाप के सुकवि चतुर्भुजदास, कृष्णदास, श्रीहरिराम व्यास एवं निम्बार्क सम्प्रदाय के अपने गुरु भाई स्वयंभूरामदेव जी गुरुदेव जी एवं दादा गुरु श्रीभट्ट जी का नाम श्रद्धापूर्व स्मरण किया है। यह नितान्त सम्भव है कि उपरोक्त सभी कवियों के काव्य से उन्हें विविध प्रेरणायें प्राप्त हुई हों इन कवियों में से जयदेव, नामदेव, त्रिचनदेव, परमानन्द, सदना, घना, पीपा, सेन, कबीर, रैदास, सूरदास के नाम ग्रन्थ साहब में भी मिलते हैं जिनमें से अधिकांश निर्गुणवादी[1] है। परशुरामदेव जीकी कविता पर इनकी विचारधारा का यथेष्ट प्रभाव देख पड़ता है। इनके अतिरिक्त पद्म कवि, सोम्या, भीम, कृष्ण, तिलोक, दिवाकर धोमी, गुमानदास वे कवि हैं जिनके नाम हिन्दी साहित्य में अपेक्षाकृत अप्रचलित हैं। सम्भवत: वे परशुरामदेवजी के समय में भी छोटे और कम प्रसिद्ध रहे होंगे। परन्तु अपने विशेष सम्पर्क के होने के कारण इन्होंने उनका नामोल्लेख करना आवश्यक समझा हो।

इन कवियों के अतिरिक्त अपने गुरुदेव श्रीहरिव्यासदेव जी एवं श्रीस्वामी हरिदास जी पर उनकी विशेष निष्ठा देख पड़ती है। ये दोनों ही कवि निम्बार्क सम्प्रदाय की रूप रंसोपासना को समृद्ध एवं सुविस्तृत रूप प्रदान करने वाले महान् प्रभावशाली आचार्य और मध्यकालीन संतों में इस दिशा में सबसे अधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। अत: इनके विशेष उल्लेख की आवश्यकता कवि को अनुभव हुई। श्रीहरिव्यासदेव जी का स्मरण करते हुए उन्होंने लिखा है—

भजिये श्रीहरिव्यासदेव जिनि भगति भू पर विस्तारी।
दुती देवरिषि दरस देव लोकनि अधिकारी।।
नर की किति यक बात सुर्ग सुर सेवा आवे।
भगत दूण की हूँस आय भागे सिर नावे।।
देव वन चड़थावल विषै थान अस्थिरता में रहे।
तिन देवी दख्या लई साखि प्रगट सब जग कहै।।[2]

उपरोक्त छन्द में श्रीहरिव्यासदेव जी की अनन्य भगवत्-निष्ठा, उनके अलौकिक प्रताप एवं देववन में देवी को वैष्णवी दीक्षा देने वाली घटना की ओर संकेत किया गया है एक अन्य स्थान पर उन्होंने हरिव्यासदेव जी को संसार के समस्त प्रपंचों से रक्षा करने वाला कहा है।[3]

---

1. भागवत सम्प्रदाय, श्रीबल्देव उपाध्याय, पृ. 330
2. परशुराम सागर, पृ. 226
3. नाटक चेतक, स्वाँग बहु, पृथ्वी बरस अपार। परसा श्रीहरिव्यास बिन, भाजै नहीं प्रहार।। परशुराम सागर, दोहा खण्ड सं. 1224

स्वामी हरिदास जी ने विधि निषेध मर्यादा का त्यागकर किया था। उन्हें सांसारिक आचार-विचार दर्शन एवं लोक प्रपंचों से कोई सरोकार नहीं रहा था। निकुंज बिहारी श्रीश्यामा-श्याम की प्रेमाराधना में निरत रहना उनकी प्रमुख जीवनचर्या थी परशुरामदेव जी ने उनकी इसी रूप में वन्दना की है—

षट दरसन संसार सब, भाव भगति को नाश।
सबते निर्मल देखिये, परशुराम हरिदास।।[1]

स्वामी हरिदास, हरिव्यासदेव जी, स्वामी अग्रदास, महात्मा दादूदयाल एवं उनकी शिष्य परम्परा, कबीर और उनकी शिष्य परम्परा, सूरदास, कृष्णदास, परमानन्ददास एवं टीला जी आदि महात्माओं के व्यक्तित्व एवं काव्य तथा विचारधाराओं का प्राभाव परशुरामदेव जी पर पड़ा था। इनमें से अधिकांश उनके हरिजन परिवार में से हैं। उनके शूकर क्षेत्र के निवास से यह भी सम्भव प्रतीत होता है कि वे महात्मा तुलसीदासजी के राम के मर्यादावादी रूप से आकृष्ट हुए हों।

(vi) परशुरामदेव जी के विविध कवि नाम

परशुरामदेव जी के अनेक छन्दों में रचना की है। छन्दों के अनुरूप उनके अनेक कविनाम हैं। जहाँ पर जिस उपनाम के लिए अवकाश उन्होंने देखा है वहाँ उसी नाम का प्रयोग उन्होंने कर दिया है। 'परसा', 'परसराम', 'परसरा', 'परसुरा' कविनाम उनके बहुत ग्रन्थों में मिलते हैं।

3. आचार्य कवि परशुरामदेव : कृतित्व परिचय

परशुरामदेव की रचनाओं का वर्णन करते हुए पं. बलदेव उपाध्या ने उनकी 13 रचनाओं का नामोल्लेख किया है[2] जो 'परशुराम सागर' के अन्तर्गत हैं। इन सभी रचनाओं को क्रमशः 1. तिथि लीला, 2. वार लीला, 3. बावनी लीला, 4. विप्रमती लीला (सी), 5. नाथ लीला, 6. पदावली, 7. राग रथनाम लीला निधि, 8. साँच लीला निषेध, 9. हरि लीला, 10. लीला समझनी, 11. नक्षत्र लीला, 12. निज रूप लीला, 13. निर्वाण लीला कहकर पुकारा है। यथार्थ में इन लीलाओं को स्वतन्त्र ग्रन्थ नाम देना युक्ति संगत नहीं है, क्योंकि इन सब में तो न तो ग्रन्थ कोटि की व्यापकता है और न वर्ण्य विषय की दृष्टि से उसके परिपालन की मर्यादा का निर्वाह ही है। लीलाओं का आकार प्रकार भी प्रायः इतना कम है कि किसी ग्रन्थ में वर्णित वस्तु के दृष्टिकोण से

---

1. परशुराम सागर, दोहा खण्ड, सम्पादक वियोगी विश्वेश्वर, दो. सं. 1688
2. भागवत सम्प्रदाय, लेखक पं. बल्देव उपाध्याय, पृ. 330, 331

उस पर विचार करना अनधिकार सा प्रतीत होने लगता है। इन ग्रन्थों के लिए कवि ने लीला शब्द का व्यवहार केवल रस पद्धति के कारण ही किया है। इन लीलाओं के संग्रह से युक्त परशुरामसागर एक वृहद ग्रन्थ है जिनमें अनेक विषयों का वर्णन हुआ है। इस ग्रन्थ की लेखक को तीन हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं—

1. निम्बार्क शोध मण्डल, वृन्दावन वाली प्रति;

2. कैलाश चन्द्र शर्मा, सलेमाबाद वाली प्रति;

3. नागरी प्रचारिणी सभा काशी वाली प्रति।

1. निम्बार्क शोध मण्डल, वृन्दावन वाली प्रति का प्रतिलिपि काल सं. 1837 वि. है। अर्वाचीन नागरी लिपि में लिखित यह प्रति सुस्पष्ट एवं सुन्दर अक्षरों में है। इसकी पृष्ठ संख्या 297 है और प्रत्येक पृष्ठ पर 25 पंक्तियाँ हैं जिसमें से प्रत्येक पंक्ति में 40 अक्षर हैं। यह प्रति परशुरामपुरी सलेमाबाद पीठ से लाकर यहाँ पर संकलित की गई है।

2. श्री कैलाशचन्द्र शर्मा, सलेमाबाद वाली प्रति पिछले पचास-साठ वर्षों पूर्व किसी प्राचीन प्रति से नकल की गई मालूम होती है। इस प्रति के अन्त में लिखा है—

इति श्री श्री श्री श्री श्रीस्वामी श्रीपरसरामदेव जी कृत ग्रन्थ राम सागर सम्पूर्ण (संवत 1837) मिति जेठ बदी 6 बुधवासरे लिपि कृत व्यास मनसा राम पठनार्थ बाई अनोपा। इस प्रति में 772 पृष्ठ हैं।

इसी प्रति के बीच में पृष्ठ 647 पर लिखा है—

इति श्री परशुरामदेव जी की वाणी सम्पूर्ण (पौथी संवत 1677 वर्षे)।

उपरोक्त आलेख से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सम्वत् 1677 वि. में परशुरामदेव जी जब विद्यमान थे तब ग्रन्थ का उपर्युक्त भाग पूर्ण हुआ। इससे आगे परशुरामदेव जी ने ग्रन्थ का शेष भाग सम्पूर्ण किया। अत: वे सं. 1677 के पीछे भी विद्यमान रहे थे।

3. नागरी प्रचारिणी सभा काशी वाली प्रति से परशुराम सागर का सम्पादन हो चुका है।

परशुराम सागर के प्रारम्भिक भाग का जिसमें कवि रचित 2006 दोहों का समावेश है।[1]

---

1. श्रीवियोगी विश्वेश्वर प्रबन्धकारी परशुरामपुरी (सलेमाबाद) के द्वारा 1999 में प्रकाशित।

खण्ड : ब

निम्बार्क-सम्प्रदाय के प्रतिनिधि हिन्दी भक्त-कवियों का साहित्यिक-अवदान

श्री श्रीभट्टदेव

श्री भट्ट जी के लौकिक जीवन वृत्तान्त का कहीं कुछ भी प्रामाणिक वर्णन नहीं मिलता। साम्प्रदायिक अनुश्रुति से इतना ही पता चलता है कि इनके पूर्वज पंजाब प्रान्त में हिसार की ओर रहते थे। श्री भट्ट जी से कई पीढ़ी पूर्व वे मथुरा चले आये और यही ध्रुव टीले के समीप स्थायी रूप से रहने लगे थे। ये गौड़ ब्राह्मण थे। श्री भट्ट जी के जन्म और स्थिति का समय भी अनुमान के सहारे ही निश्चित होता है। इनकी रचना में या अन्य कहीं इसका कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। श्री भट्ट जी की एक मात्र कृति 'युगल शतक' है। उसमें केवल उपासना सम्बन्धी वर्णन है। उसके अवलोकन से भी ऐसी किसी बाहरी बात पर प्रकाश नहीं पड़ता।

'युगल शतक' कुछ वर्ष पूर्व तक साम्प्रदायिक वैष्णवों में रहस्य की वस्तु समझा जाता था। अधिकारी भक्त पाठ करने के लिये उसकी प्रतिलिपि कर लेते थे। उसका प्रकाशन अपराध माना जाता था। किन्तु वर्तमान युग के अधिकारी विद्वान् होते हुए भी श्री भट्ट जी के समय आदि का सन्तोषजनक निर्णय नहीं कर सके हैं। 'युगल शतक' की एक प्राचीन प्रति में रचना काल का निर्देशक यह दोहा मिलता है—

नयन बान पुनि राम शशि, गनौ अंक गति वाम।
श्रीभट प्रगटत जुगल सत, यह सम्वत् अभिराम।।[1]

इसके अनुसार युगल शतक का रचना काल सम्वत् 1345 हैं। साम्प्रदायिक विद्वान् इसी को पक्का आधार मानकर श्री भट्ट जी का जन्म काल चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में ठहराते हैं। आधुनिक साहित्यालोचक इसे स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि जिस पुरानी प्रति में उक्त दोहा मिलता है, वह नानपारा जिला बहराइच के एक पुस्तकालय में है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी के अन्वेषक श्री हीरालाल जैन ने उस दोहे में 'राम' के स्थान पर 'राग' पाठ मानकर युगल शतक का रचना काल सम्वत् 1652 ठहराया है। तदनुसार श्री भट्ट जी का जन्म काल श्री वियोगी हरि ने सम्वत् 1595 के आसपास लिखा है।[2] डॉ. रामकुमार वर्मा इनका कविता काल सम्वत् 1622 के लगभग मानते हैं।[3]

---

1. युगल शतक, पृ. 44
2. ब्रजमाधुरी सार, श्री वियोगी हरि, पृ. 108
3. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 754

श्री हरिव्यासदेव जी

निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्त कवियों में साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का जैसा विशद् और सर्वाङ्गपूर्ण विवेचन श्रीहरिव्यास देव जी द्वारा रचित 'महावाणी' में उपलब्ध होता है वैसा सम्प्रदाय की अन्य किसी हिन्दी रचना में नहीं। इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों, उसके भक्ति तत्त्वों, उसकी रीति-नीति और मर्यादा का जितना व्यापक निरूपण एवं तत्सम्बन्धी चित्रण श्री हरिव्यास देव जी की रचनाओं में मिलता है और उनकी जनसाधारण तक पहुँचाने का जितना भगीरथ प्रयास इनका दीख पड़ता है उतना और किसी कवि अथवा आचार्य का नहीं, साम्प्रदायिक सृष्टि का सृजन करने में वे अद्वितीय थे और 'चतुरानन' कह कर पुकारे गये हैं। कवि श्रेणी के दृष्टिकोण से उन्हें 'निम्बार्क सम्प्रदाय का सूरदास' कहा गया है।[1] रसिकता की दृष्टि से उन्हें किशोर-किशोरी के रंगमहल का अगवानी कर्ता और पतितों के उद्धार के लिये उन्हें साक्षात् युगल अवतार की उपाधि दी गई है।[2]

श्रीहरिव्यास देव जी सर्वतोमुखी प्रतिभा के महापुरुष थे। जीव मात्र के लिये उनके हृदय में प्रेम का अगाध स्रोत उमड़ता था। जन कल्याण के लिये वे अपने भक्तवर्ग सहित देश प्रदेश में परिभ्रमण करते और उनकी आत्मा तक प्रभु का अमर संदेश पहुँचाते थे। देश की पशुबलि आदि कुरीतियों के निवारण का उन्होंने स्तुत्य प्रयत्न किया एवं समाज सुधार में अद्भुत योगदान दिया।[3] फिर भी कवि और धर्म प्रचारक दोनों रूपों में जनसाधारण में उनकी उतनी प्रसिद्धि नहीं है जितनी संत रूप में।

श्री हरिव्यास देवाचार्य जी का जन्म मथुरा में हुआ था और अपने जीवन का अधिकांश भाग उन्होंने यहीं पर व्यतीत किया। यहीं वे एक आदि गौड़ ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुए थे। निम्बार्क माधुरी भागवत सम्प्रदाय, निम्बार्क प्रभा, आचार्य-परम्परा परिचय, महावाणी की भूमिका, सुदर्शन आदि ग्रन्थों एवं पत्रों में उन्हें गौड़ ब्राह्मण वंशोद्भव ही माना गया है। साम्प्रदायिकों की भी यही मान्यता है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने इनको 'हरिव्यास मुनि' कह कर सम्बोधित किया है।[4] जो इनकी जाति का परिचायक नहीं वरन् इनके प्रति जनसाधारण की भावनाओं का प्रतीक है।

श्री रूप रसिकदेव

श्री हरिव्यास यशामृत के अमर गायक श्री रूप-रसिक देव जी का निम्बार्क-सम्प्रदाय के वाणीकारों में विशेष स्थान है। श्री रूपरसिकदेव ने केवल हिन्दी भाषा में

---

1. भागवत सम्प्रदाय, बल्देव उपाध्याय, पृ. 329
2. हरिव्यास यशामृत छंद संख्या 14
3. सर्वेश्वर वर्ष 4, अंक 8
4. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. 740

ही रचना की है। उनसे पूर्व के अन्य आचार्यों ने यद्यपि अपनी प्रमुख रचनाएँ हिन्दी में की परन्तु साथ ही देववाणी संस्कृत में भी स्तोत्र टीका आदि कुछ न कुछ अवश्य लिखा था। उनके अभी तक निम्नलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हो सके हैं जिसमें से सभी की हस्तलिखित प्रतियाँ श्री निकुंज वृन्दावन में सुरक्षित हैं।

1. हरिव्यास यशामृत सागर।
2. नित्य-विहार पदावली।
3. वृहदुत्सव मणिमाल।
4. लीलाविंशति।

मिश्र-बन्धु विनोद ने इनकी एक अन्य रचना 'वृन्दावन माधुरी' का भी उल्लेख किया है, जिसका विवरण काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित खोज रिपोर्ट में दिया हुआ है, परन्तु यह कोई स्वतंत्र ग्रन्थ प्रतीत नहीं होता। लीला विंशति के अन्तर्गत जिन पाँच माधुरियों का समावेश है "वृन्दावन माधुरी" भी उनमें से एक है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट से उनकी एक रचना 'कृपा कल्पतरु" का भी पता चला है।

स्वामी श्री हरिदास

स्वामी जी का जन्म वि.सं. 1537 मानना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। ये प्रमुखतः संगीताचार्य एवं युगल माधुर्योपासक कवि हैं।

स्वामी हरिदास विरचित दो छोटी-छोटी रचनाएँ इस समय उपलब्ध हैं। उनमें से एक का नाम है 'केलिमाल' और दूसरी का 'अष्टादश सिद्धान्त के पद' केलिमाल स्वामी जी के संगीत प्रधान पदों का संग्रह है, जिसमें उन्होंने अपने उपास्य देव श्री निकुंज बिहारी का नित्य बिहार स्वरूप अत्यन्त ललित पदावली और मधुर भाव संवलित शैली में अंकित किया है। इसके पदों में संख्या 110 है। इसके पदों में आत्मचेतना-दर्शन, सहचरी भाव, उत्सव वर्णन आदि विषयों का समावेश है परन्तु विशेषता दिव्य शृंगार की ही है। सवामीजी के सम सामयिक रसिकाचार्य श्री हरिव्यासदेव जी द्वारा प्रसारित सखीभाव की उपासना को स्वामी जी ने जो व्यापक रूप दिया उसका इनके अनुगत शिष्यों पर ही नहीं वरन् अन्य सम्प्रदाय के कवियों पर भी गम्भीर प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि अष्ट छाप के कवि, ध्रुवदास, चैतन्य सम्प्रदाय के वल्लभ रसिक, रामराय आदि भक्त कवियों को हम केलिमाल का अनुसरण करते हुए पाते हैं।[1] सहचरी भावान्तर्गत निकुंज उपासना का यह एक अनूठा ग्रन्थ है।

---

1. हरिदास अभिन्दन ग्रन्थ, पृ. 15

श्री विहारिनी देव

इनका जन्म विद्वानों ने 16वीं शती के अन्त में श्रावण शुक्ला तीज को माना है। युगल रसोपासना में अनवरत निमग्न रहते थे।

श्री विहारिनी देव ने विशद् मात्रा में काव्य प्रणयन किया है। उनका विवरण डॉ. शरण बिहारी गोस्वामी ने अपने संकलन के अनुसार निम्न लिखित प्रकारेण दिया है[1] –

उपासना सिद्धान्त और रस सम्बन्धी साखी	673
चौबोला सिद्धान्त	71
कवित्त, सवैया और कुण्डलिया सिद्धान्त	151
सिद्धान्त के पद	179
रास के पद	191

श्री रसिकदेव :

श्रेष्ठ वाणीकार और सुकुवि की दृष्टि से रसिक देव जी की भारी प्रसिद्धि है। देशरणागति सिद्धान्त के प्रबल पोषक थे।

रसिकदेव जी के श्रीबिहारीशरण ने 12 ग्रंथ बतलाये हैं जो सभी भक्ति, पूजा, उपासना एवं शाखा सिद्धान्त परक हैं[2]। यथा: –

1. भक्ति सिद्धान्त मणि, 2. पूजा विलास, 3. सिद्धान्त के पद, 4. रस के पद, 5. रस सिद्धान्त की साखी, 6. कुंज कौतुक, 7. रस सार, 8. गुरु मंगलयश, 9. बाल लीला, 10. ध्यान लीला, 11 बाराह संहिता, और 12 आचार्य-परम्परा। इन ग्रन्थों में 'भक्ति-सिद्धान्त मणि' और रससार का प्रकाशन निम्बार्क शोध मंडल, वृन्दावन द्वारा प्रकाशित सिद्धान्त रत्नाकर के अन्तर्गत हो चुका है और 'ध्यान लीला' निम्बार्क माधुरी में फलित की जा चुकी है परन्तु शेष ग्रन्थ हस्तलिखित प्रतियों के रूप में टट्टी स्थान में सुरक्षित है।

श्री ललित किशोरी देव

श्री ललितकिशोरी जी की रचनाएँ प्रमुखः साम्प्रदायिक हैं। उन्होंने काव्य में निम्बार्क सम्प्रदायान्तर्गत नित्य-विहार की मधुर भावना को प्रमुख रूप से अपनाया है। उसी के अन्तर्गत आने वाले अन्य विषय जैसे वृन्दावन महत्व, सहचरी भाव, युगत स्वरूप का वर्णन, युगल भाव की महत्ता, सिद्धान्त वर्णन, विषय है। उनका काव्य अत्यन्त सरल और सरस है।

---

1. कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव – डॉ. शरण बिहारी गोस्वामी, पृ. 483
2. ललित प्रकाश उत्तरार्द्ध, पृ. 35

ललित किशोरी जी की प्रधान रचना उनकी वाणी ही है। उनकी एक दूसरी रचना 'वचनिका सिद्धान्त' का उल्लेख मिश्र-बन्धुओं ने अपने विनोद में किया है। इस पुस्तक का प्रकाशन टट्टी स्थान के कृपा पात्र श्रीनारायण स्वामी जी ने कराया था। 'वचनिका सिद्धान्त' एक छोटी सी रचना है जिसमें स्वामी ललित किशोरी देव जी ने 133 सूक्तियों का संग्रह है। और अन्त में उन आठ निर्देशों का वर्णन है जो उन्होंने अपने शिष्य श्री ललित मोहिनी देव जी को महल पधारते समय दिये थे।

श्री रसिक गोविन्दशरण देव

ये एक सहृदय, काव्य-रसास्वादन की दिशा के अन्त: प्रविष्ट प्रणेता कवि थे।

आपके द्वारा हिन्दी तथा संस्कृत भाषा में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया गया है, उनमें से मुख्य निम्न हैं —

1. अष्ट देश भाषा, 2. पिंगल ग्रन्थ, 3. समय प्रबन्ध, 4. रसिक गोविन्द, 5. कलियुग रासो, 6. युगल रस-माधुरी, 7. रामायण-सूचनिका, 8. लछिमन चन्द्रिका, 9. रसिक गोविन्दानन्दघन, 10. उत्सव पदावली, 11. रस और सिद्धान्त के पद आदि।

अन्य ग्रन्थों का तो छोटा-छोटा ही कलेवर है किन्तु **पदावली, रसिकगोविन्द** और **रसिकगोविन्दानन्द** ये तीनों ग्रन्थ आकार में उत्तरोत्तर बड़े हैं।

कलियुग रासो में केवल सोलह कवित्त ही हैं, किन्तु इनमें तत्कालीन परिस्थिति का सुन्दर चित्रण किया गया है।

इस पुस्तक के सम्बन्ध में प्राप्त एक रिपोर्ट में कहा गया है कि यह पुस्तक ग्रन्थकार के हाथ से लिखी गई है।[1] इसका रचनाकाल सम्वत् 1865 अनुचित किया गया है।

प्रेम की पीर के कवि : घनानन्द

रीतिकालीन रीतिमुक्त स्वच्छन्द काव्य धारा के रसिक कवि घनानन्द निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित थे। आपका सखीनाम 'बहुगुनी' था, जो इनके द्वारा विरचित वृषभानु-पुर-सुषमा' नामक ग्रन्थ से भी सिद्ध होता है – 'राधा नांव बहुगुनी राख्यो। सोई अरथ हिये अभिलाख्यौ।।[2] उन्होंने निम्बार्कीय युगल रसोपासना सिद्धान्त को दृष्टिगत रख काव्य प्रणयन किया। उनका काव्य 'प्रेम की पीर' का काव्य स्वीकारा जाता है।

---

1. रिपोर्ट ऑफ हिन्दी एम.एस.एस.फार 1906, 7, 8, 12 एम.
2. वृषभानु-पुर-सुषमा ग्रन्थ से समुद्धत

श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लंदन संग्रहालय वाले और वृन्दावन में उपलब्ध हस्तलेखों का उपयोग कर तथा अन्य विकीर्ण सामग्री को एकत्र कर संवत् 2008 में घनानंद ग्रंथावली का प्रकाशन किया है। मिश्र जी का यह कार्य इस दिशा में स्तुत्य है। इस ग्रन्थावली में उपलब्ध ग्रंथों की संख्या इकतालीस है।

घनानन्द की रचनाओं को हम स्थूल रूप से दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। मुक्तक और निबन्ध। मुक्तक के भी कवित्त सवैये और गेयपद नाम के दो वर्गीकरण किये जा सकते हैं। मुक्तक में विशुद्ध प्रेम की अन्तरंग दशाओं का उन्मुक्त चित्रण है। और मनोदशाओं से रंजित काव्य शैली भी मसृण निबंध और हृदयग्राही है, निबन्ध नाम के वर्गीकरण में प्राप्त रचनायें भक्ति सम्बन्धी है और सम्प्रदायगत नियमावली से आबद्ध है। अतएव इन रचनाओं में भाव-प्रेषणीयता का अपेक्षाकृत अभाव एवं ह्रास है। अपनी भेदक विशेषताओं के कारण लगता है कि मुक्तक का प्रणेता कोई एक घनानन्द था और भक्ति समन्वित काव्य का सृजेता कोई दूसरा। किन्तु तथ्य यह है कि दोनों प्रकार की काव्य रचनाओं के रचियता निम्बार्कीय घनानन्द ही हैं। हाँ, प्रवर्तित परिस्थितियों का उनके काव्य पर प्रभाव पड़ जाने से प्रणीत काव्य ग्रंथों का भेदबुद्धि से अन्तर स्वाभाविक हो गया है।

घनानन्द द्वारा प्रणीत रचनाएँ

1. सुजान हित2. कृपाकन्द निबन्ध 3. वियोग बेलि 4. इश्कलता 5. यमुना यश 6. प्रीति पावस 7. प्रेम पत्रिका 8. प्रेम सरोवर 9. ब्रज विलास, 10. सरस बसन्त 11. अनुभवन चन्द्रिका 12. रंग बधाई 13. प्रेम पद्धति 14. ब्रषभान पुर सुषमा 15. गोकुल गीत 16. नाम माधुरी 17. गिरिपूजन 18 विचार सार 19. दानघटा 20. भावना प्रकाश 21. कृष्णा कौमुदी 22. धाम चमत्कार 23. प्रिया प्रसाद 24. बृन्दावन मुद्रा 25. ब्रज स्वरूप 26. गोकुल चरित्र 27. प्रेम पहेली 28. रसना यश 29 गोकुल विनोद 30 ब्रज प्रसाद 31 मुरलिका मोद 32 मनोरथ मंजरी 33 ब्रज त्यौहार 34 गिरि गाथा 35 ब्रज वर्णन 36 छन्दाष्टक 37 त्रिभंगी छन्द 38 कवित्त संग्रह 39 स्फुट 40 पदावली 41 परम हंस वंशावली।

भक्त-कवि नागरी दास :

भक्त प्रवर नागरीदास (कुँवर सावंत सिंह) द्वारा सृजित काव्य-ग्रन्थों के अनुशीलन से ज्ञात होता है, कि वैष्णव-सम्प्रदाय के हिन्दी में काव्य रचना करने वाले भक्त-कवियों में उनका विशिष्ट स्थान है। कवि घनानन्द की भाँति यद्यपि उनका प्रादुर्भाव भी रीतिकाल में हुआ था, किन्तु अपने वंश के परम्पराजन्य संस्कारों वश उन्हें एक ऐसा भक्ति भावनापूर्ण हृदय मिला, जिससे विशुद्ध भक्ति-परक वाणी प्रस्फुटित हुई। ये भक्त पहले एवं कवि बाद में थे।

श्रीनागरीदास द्वारा प्रणीत ग्रन्थों का संकलन 'नागर-समुच्चय' के नाम से उपलब्ध है, यह संकलित ग्रन्थ विक्रम संवत् 1955 चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को ज्ञान सागर प्रेस बम्बई में मुद्रित हुआ था। इस ग्रन्थ का संशोधन एवं सम्पादन कृष्णगढ़ राज्य के कवीश्वर जयलाल द्वारा सम्पन्न हुआ। भक्ति भावना की दृष्टि से यह ग्रन्थ विशेष रूप से पठनीय है। कवियों के लिये अनुकरणीय और अनुसंधाताओं के लिये परम आलोच्य है। मननशील पाठकों को इसके भाव रत्नाकर में गम्भीर अवगाहन के लिये पर्याप्त अवकाश है। इस ग्रन्थ में सम्पादक एवं संशोधन कवीश्वर जयलाल जी ने श्रीनागरीदास जी द्वारा रचित 7 ग्रन्थों का उल्लेख किया है।[1] समस्त मुद्रित पुस्तक तीन सागरों में विभक्त है : 1. वैराग्य सागर 2. सिंगार सागर 3. पद सागर।

श्रीपरशुराम द्वारे के कवियों की काव्य-साधना

श्री परशुरामदेव जी के द्वारे के आचार्यों में श्री परशुरामदेव जी, श्री वृन्दावनदेव जी, श्री गोविन्ददेव जी, श्री गोविन्दशरणदेव एवं सर्वेश्वरशरणदेव जी श्रेष्ठ कवि थे। इनके अतिरिक्त महाराज राजसिंह की पत्नी श्रीमती राजरानी बाँकावती, उनकी पुत्री राजकुमारी सुन्दरिकुँवरि और पुत्र महाराज सावन्तसिंह भक्तकवि नागरीदासजी एवं उनकी पासवान (बनीठनी जी) तथा नागरीदास जी की पौत्री राजकुमारी छत्रकुँवरि, सभी सुकवयित्री थीं, इन्होंने श्रेष्ठ कविताएँ की हैं। इन सभी पर इन आचार्यों का अद्भुत प्रभाव देखा जाता है। महारानी बाँकावती, सुन्दरकुँवरि, नागरीदास जी, एवं बनीठनी जी की वृन्दावन-निष्ठा भी प्रसिद्ध है। इन्होंने वृन्दावन में निवास किया और भगवद्भक्ति में निरत रहते हुए ब्रजवास का आनन्द लिया। महारानी बाँकावती की प्रेरणा से उनके पतिदेव महाराज राजसिंह (कृष्णगढ़ नरेश) ने वृन्दावन में 'नागर-कुंज' का निर्माण कराया था।[2]

महारानी बांकावती

महारानी बाँकावती जी कृष्णगढ़-नरेश महाराजा राजसिंह जी की दूसरी रानी थीं। उनकी पहली रानी श्रीमती चतुरकुमारी का सं. 1776 में देहावसान वृन्दावन में हो गया था। उसके अनन्तर इनका विवाह बाँकावती जी से हुआ।[3] बाँकावती जी लवाण नरेश बांकावत आनन्दसिंह जी की राजकुमारी थीं। इनका ब्रजकुँवरि नाम था। विवाह के अनन्तर बांकावती नाम इनके पिता जी के वंशानुसार पड़ा। श्रीमद्भागवत का मनन करते-करते आपके मन में विशेष स्फूर्ति हुई और आपने उसका पद्यबद्ध अनुवाद 'ब्रजदासी भागवत' नाम से प्रस्तुत किया। इस दिशा में आपको परशुरामपुरी

---

1. नागर समुच्चय, श्रीनागरीदास जी का जीवन चरित्र, सम्पादक कवीश्वर जयलाल, पृ. 24
2. सर्वेश्वर, वृन्दावन धामांक, पृ. 286
3. सर्वेश्वर, वृन्दावन धमांक, पृ. 283

(सलेमाबाद) के आचार्य श्री वृन्दावनदेव जी से विशेष प्रेरणा मिली थी। इनका कविता-काल वि.सं. 1790 के आसपास मानना ठीक होगा।[1]

ब्रजदासी भागवत–बांकावती प्रणीत यह एक विशाल ग्रन्थ है। जिसकी रचना दोहा चौपाइयों में हुई है। यह सुमधुर एवं साहित्यिक ब्रजभाषा में लिखा गया है परन्तु राजस्थान की निवासिनी होने के कारण बीच-बीच में राजस्थानी की शब्दावली का आ जाना स्वाभाविक ही है। यत्र-तत्र बैसवाड़ी के शब्द भी पाये जाते हैं। कविता बड़ी सरस और उत्कृष्ट बन पड़ी है।

बाई सुन्दरीकुँवरि

भक्तिमती बाई सुन्दरीकुँवरि जी कृष्णगढ़ नरेश महाराज राजसिंह (1763-1805 वि.) की पुत्री थीं, इनकी माता का नाम महारानी बाँकावती था। इनका जन्म संवत् 1791 में हुआ था।

सुन्दरीकुँवरि जी के पिता महाराज राजसिंह, पितामह श्री मानसिंह, प्रपितामह श्री रूपसिंह जी कवियों के आश्रयदाता थे। उनके बन्धु महाराज सावन्तसिंह (नागरीदास) जी श्रेष्ठ कवि थे तथा इनकी माता बाँकावती भी काव्य-रचना करती थीं। अत: इन्हें काव्य-रचना का अच्छा अभ्यास हो गया था। सलेमाबाद पीठ के आचार्य श्री वृन्दावनदेव, गोविन्दशरणदेव एवं सर्वेश्वरशरणदेव जी का भी इस पर प्रभाव पड़ा जिससे इनकी वृत्ति युगलकिशोर की मधुर भक्ति की ओर आकर्षित हुई। श्री राधाकृष्ण जी की मधुर लीलाओं का नित्य विहार से सम्बन्धित कविताओं का गान इन्होंने अपनी सरस एवं पीयूषवर्षिणी वाणी में किया। इनके ग्रन्थों की संख्या 12 है।[2] ये रचनाएँ भी साधारण कोटि की नहीं वरन् गम्भीर हैं। मिश्रबन्धुओं ने इनकी रचनाओं को तोष कवि की श्रेणी में रखा है।[3] रचनाओं का नामोल्लेख इस प्रकार हैं-

नेहनिधि, वृन्दावन गोपी महात्म्य, संकेत युगल, रसपुंज, प्रेम सम्पुट, सार संग्रह, गोपी माहात्म्य, भावना प्रकाश, राम रहस्य, पद तथा फुटकर, मित्र-शिक्षा, युगलध्यान।

बाल कृष्ण के धूलधूसरित होने और मिट्टी खाते हुए घुटनों के चलने के प्रसंग की एक स्वभावोक्ति प्रस्तुत है —

रज माँहि मगन कैसौ खेलत है।
सुभग चिकुर तन धूरि धूसरित डेलिक किलक सकेलत है।।
चौंकि चकित चहुँ ओरनि चितवन छिपि माटी मुख मेलत है।
सुनदरि कुँवरि घुटुरुनि दौरत कोटिन छवि पग पेलत है।।

---

1. कृष्णगढ़ राज्य के ऐतिहासिक सूत्र, निम्बार्क शोध-मंडल संग्रहालय, वृन्दावन
2. निम्बार्क माधुरी, ब्रह्मचारी बिहारीशरण, पृ. 594
3. मिश्रबन्धुविनोद, तृतीय भाग, पृ. 724

श्री छत्रकुँवरि

श्री छत्रकुँवरि बाई कृष्णगढ़ाधीश महाराज सरदारसिंह की पुत्री एवं महाराज सावन्तसिंह (नागरीदास) जी की पौत्री थीं। अपनी कुल परम्परा के रूप में कवित्व शक्ति इन्हें पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिली थी। इनका विवाह सं. 1831 विक्रमी में कोठड़े के श्री गोपालसिंह खींची के साथ हुआ। ये निम्बार्क सम्प्रदायान्तर्गत सलेमाबाद पीठ की शिष्या थीं। श्री वृन्दावनदेव जी ने इन्होंने दीक्षा ली थी जिसका स्पष्ट उल्लेख उन्होंने अपने ग्रन्थ 'प्रेम-विनोद' में किया है। इस ग्रन्थ में श्री युगलकिशोर की उज्ज्वल रसपूर्ण लीलाओं का उल्लासमयी वाणी में प्रतिपादन किया गया है।

प्रिया प्रियतम की चौसर क्रीड़ा का एक छन्द दृष्टव्य है —

बाढ़ी चित चाह दोऊ खेलत उमाह भरे,
दसा प्रेम पूर छिल अंग हरसत हैं।
प्रिया दाँव देत पिय झूठें ही रूँगढ कहैं,
गहै पानि पानि रिस मिसै परसत हैं।।
चौपर की बाजी माहिं लागी गति-मति की,
चाल की चहुल मन मौज सरसत हैं।
नैनन में नैन मिले चरचा चरता में रीझ,
रीझवार रीझ तहाँ रंग बरसत हैं।।[1]

श्री बनीठनी

ये महाराज राजसिंह जी के पुत्र राजकुमार सावन्तसिंह (नागरीदास जी) की पासवान (दासी) थीं। सावन्तसिंह जी के छोटे भाई श्री बहादुरसिंह ने जब रूपनगर के राज्य पर कब्जा कर लिया तो वे विरक्तभाव धारण कर वृन्दावनवास करने लगे थे। उस समय श्री बनीठनी जी ने राजपरिवार को त्याग कर महाराज नागरीदास का साथ दिया। वे वृन्दावन में ही रहने लगीं।[2] रसिकबिहारी छाप से वे भगवद्भक्तिपूर्ण रचनाएँ करती थीं। इनकी रचनाओं का संग्रह महाराज नागरीदास जी की कृतियों के साथ 'नागर समुच्चय' में संकलित किया गया है।

---

1. प्रेम विनोद, (हस्त लिखित)
2. रूप नगर नृप राजसिंह जिन सुत नागरिदास।
तिन पुत्र जु सरदारसिंह, होत न यामें जास।। प्रेम विनोद, छत्रकुँवरि कृत।
काव्य दोष कवि हेरिहैं, सो मम नाहिन काज।
हेरहु रहसिहिं रसिकजन, मित्र कुँवर ब्रजराज।
रमिहहिं या रस रसिक जे, ते मुहि कहियो तोहि।
सफल फली आसा यही, यही सुदृढ़ रति होहि। प्रेम विनोद हस्तलिखित

राजस्थान की निवासिनी होने के कारण इनकी भाषा में राजस्थानी के शब्द बहुलता से पाये जाते हैं। यथा —

रंगि रह्या युगल रूप रंगमाँही।
कुंज महल में दर्पन साम्हैं दिया रहै गलबाहीं।।
कदेक संभ्रम ह्वै स्यामा रे नेड़ै स्याम छताहीं।
केदक रीझि रहैं 'रसिकबिहारी' देखि देखि परछाहीं।।

महाकवि परशुराम देवाचार्य परम्परा के प्रमुख आचार्य भक्त (सन्त) कवि

श्री वृन्दावनदेवाचार्य

निम्बार्क सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है कि वृन्दवनदेव जी ने संस्कृत एवं राजस्थानी तथा ब्रजभाषा में कई रचनाएँ कीं परन्तु इस समय उनकी **'गीतामृतगंगा', 'दीक्षामंगल' एवं युगल परिवार चन्द्रिका** आदि ही उपलब्ध हैं। गीतामृतगंगा एक वाणी ग्रन्थ है जिसमें कवि ने विविध विषयों पर लिखा है। उसमें काव्यधारा मंदाकिनी की भांति अबाध गति से बहती है जिसे कवि ने चौदह घाटों में बांधने का प्रयास किया है।[1] ग्रन्थ रचना प्रधानतः पदों में हुई है परन्तु अन्य छन्दों का भी अभाव नहीं है। कवि ने यथावसर दोहों का यथेष्ठ प्रयोग किया है और विभिन्न प्रकार के सवैये भी पदों के बीच-बीच पाये जाते हैं जिनको भी कवि ने पद संज्ञा देकर ही सम्बोधित किया है। **'गीतामृतगंगा' भाषा भाव, काव्य-सौन्दर्य,** शैली, रस-प्रवाह सभी दृष्टियों से प्रौढ़ रचना है, जो कवि जीवन की परिपक्व क्षमता एवं अनुभूति का प्रतिफल है। कवि ने इस ग्रन्थ में कहीं भी सामयिक घटनाओं का वर्णन नहीं किया है और न ग्रन्थ के रचना-काल का ही कोई निर्देश है जिससे समय सम्बन्धी संकेत मिलता हो।[2]

श्री वृन्दावनदेव संगीत के विशेषज्ञ थे, उनका विभिन्न राग-रागनियों एवं संगीतशास्त्र पर अच्छा अधिकार था। कहा जाता है कि उन्होंने कृष्णगढ़ के राजकुमार सावंतसिंह एवं घनानन्द जी को संगीत की शिक्षा भी दी थी।[3] साम्प्रदायिक मर्यादानुसार इस ग्रन्थ में श्री राधाकृष्ण की दाम्पत्यलीला का प्रतिपादन है परन्तु बाल, पौगंड एवं कैशोर-लीलाओं का भी वर्णन हुआ है। कवि ने राधा जी के स्वकीया भाव पर विशेष बल दिया है।

श्री गोविन्ददेवाचार्य

श्री गोविन्ददेवाचार्य श्रेष्ठ महात्मा, विद्वान् और साधनानिष्ठ पुरुष थे। उन्होंने वि. सं. 1800 से 1814 तक बड़ी योग्यता के साथ आचार्य पद का निर्वाह किया। ये

---

1. गीतामृतगंगा की भूमिका, सम्पादक ब्रजवल्लभशरण, पृ. ग।
2. सर्वेश्वर, वृन्दावन धमांक, पृ. 224
3. गीतामृत गंगा, वृन्दावनदेव जी कृत, पृ. 1

सत्कवि भी थे। उनके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है, कि वे बड़ी सरस और भावपूर्ण रचनाएँ किया करते थे जिनका जन साधारण पर बहुत अच्छा प्रभाव होता था।[1] उनके 'जयति चतुर्दश' आदि अनेक फुटकर पद उपलब्ध है, जिनमें श्री राधारमण जी, सम्प्रदाय के आचार्यवर्य, श्री राधिका स्वामिनी जी प्रभृति की वन्दना की गई है। पदों की भाषा मधुर परन्तु संस्कृत तत्सम शब्दों से पूर्ण ब्रजभाषा है।

श्री गोविन्दशरणदेवाचार्य

श्री गोविन्ददेवाचार्य के परलोक गमन के अनन्तर उनके शिष्य श्री गोविन्दशरण देवाचार्य आचार्य पीठासीन हुए।[2] वे सं. 1814 से 1841 वि. तक आचार्य रहे। जिस किसी को उनसे साक्षात्कार करने का अवसर मिलता वह अपने को कृतकृत्य मानता था।[3] जयपुर में आपका प्रधान मन्दिर अद्यावधि 'श्रीजी की मोरी' के नाम से विख्यात है। गोविन्दशरणदेव जी की वाणी का संग्रह निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) में सुरक्षित है। उसमें मंगल बधाई के पद, नीति विषयक काव्य, संसार की असारता, ईश्वर अनुरक्ति एवं शरणागत-धर्म, राधाकृष्ण सौन्दर्य, अष्टयाम सेवा-विधि, साम्प्रदायिकभक्त स्वरूप आदि विषयों पर रचनाएँ हैं। होली का वर्णन उन्होंने बहुत ही सुन्दर किया है।[4]

नित्यविहार के अन्तर्गत अभिसार का वर्णन उन्होंने बड़ी कुशलता से किया है। यथा —

प्रात: काल नन्दलाल बाल उठि बैठे सेज।
सरस रसीली छवि पुंजन कहीं परै।।
खुले कलबार अंक हारन उरझि रहै।
मरगजे वसन अब नई दुति को धरै।।[5]

ध्यातव्य: अन्य प्रणेता आचार्यों के कृतित्व एवं व्यक्तित्व का विवरण 'निम्बार्क-सम्प्रदाय : पीठाचार्य-परम्परा एवं उसका साहित्यिक अवदान' शीर्षकान्तर्गत परिवर्णित है।



1. सर्वेश्वर, वृन्दावन धामांक, पृ. 224
2. सर्वेश्वर, वृन्दावन धामांक, पृ. 224
3. सर्वेश्वर, वृन्दावन धामांक, पृ. 224
4. निम्बार्क माधुरी, ब्रह्मचारी बिहारीशरण, पृ. 183
5. निम्बार्क माधुरी, पृ. 187

षष्ठ-अध्याय

आचार्य महाकवि परशुरामदेव प्रणीत हिन्दी कृतियों का समीक्षात्मक-अध्ययन

1. समालोचना का सामान्य रूप

भरतमुनि का नाट्य शास्त्र सर्वाधिक प्राचीन काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थ है, जिसमें रस-सिद्धान्त, गुण-अलंकारादि का निरूपण हुआ है। पुराणों में भी काव्य-शास्त्र का विवेचन मिलता है। अग्नि पुराण में 15 अलंकारों का विवेचन हुआ है। ईसा की छठी शताब्दी से 12 शताब्दी तक अनेक काव्य-शास्त्रों का निर्माण हुआ। भामह का काव्यालंकार, दण्ड़ीकृत काव्यादर्श, उद्भट का अलंकार-सार-संग्रह, वामन कृत काव्यालंकार-सूत्र, रुद्रट का काव्यालंकार, मम्मट का काव्य प्रकाश, आनन्दवर्धन का ध्वन्यालोक, राजशेखर कृत काव्य-मीमांसा, कुन्तक कृत वक्रोक्ति-जीवितम्, रूय्यक का अलंकार-सर्वस्व, विश्वनाथ का साहित्य-दर्पण, अप्पय दीक्षित का कुवलयानन्द तथा जगन्नाथ कृत रस-गंगाधर आदि प्रसिद्ध काव्य-शास्त्र हैं, जिनमें अलंकार-रस योजना, गुण-वक्रोति आदि काव्य-अंगों की विस्तृत व्याख्या हुई है। काव्य की परिभाषा प्रयोजन एवं उसके गुण-दोषों का विवेचन करते हुये इन काव्याचार्यों ने रस तथा अलंकारों को काव्य में विशेष स्थान प्रदान किया है। प्राय: सभी आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा तथा अलंकार को उसका उत्कर्षक हेतु स्वीकारा है। रीति को ही शैली माना गया है जिसके वैदर्भी-गौड़ी-पांचाली तीन भेद निर्धारित किये गये। मम्मट ने माधुर्य-ओज-प्रसाद ये तीन गुण माने तथा शब्द-रस-अर्थ से सम्बन्धित विविध काव्य-दोषों का विवेचन किया मम्मट के अनुसार काव्य की रचना यश-धन प्राप्ति, व्यवहार-कुशलता, अमंगल-निवारण; तत्काल-अलौकिक-आनन्द की प्राप्ति एक कान्तासम्मित-मधुरोपदेश के लिए की जाती है—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्य: परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।

पाश्चात्य-समालोचना सिद्धान्तों का निरूपण यूनानी विद्वान्ों द्वारा होमर-युग में प्रारम्भ हुआ था। होमर के काव्य में भी काव्योलोचना केअनेक सिद्धान्तों का संकेत

हुआ है। यूनानियों ने सर्वप्रथम साहित्य का सत् की ओर प्रेरित करने वाला बताया। प्लेटो ने साहित्य को उपदेशात्मक मानकर आलोचना के क्षेत्र में आदर्शवाद की स्थापना की। उनके मतानुसार नैतिक और दार्शनिक सत्य पर आधारित कला ही उत्कृष्ट होती है। प्लेटो ने सत्यं-शिवं को प्रधानता देते हुये उसमें सुन्दरं का समन्वय किया था, परन्तु अरस्तु ने शिवम् से अधिक सुन्दरं को महत्त्व दिया तथा कल्पना के आधार पर कला का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार कर कला में रूप सौन्दर्य की प्रतिष्ठा की। रोम के प्रसिद्ध आलोचक हौरेस ने प्लेटों के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुये साहित्य के हित को महत्त्व दिया। आगस्टिन, दांते आदि मध्ययुगीन आलोचकों की विचारधारा कला के रूप-सौष्ठव की ओर झुक गई जिससे काव्यकला केवल बुद्धि विलास हेतु पद्य-कृत कल्पित कथा बन गई। 18वीं शताब्दी में इटली, फ्रांस,जर्मनी, इंग्लैण्ड आदि देशों के आलोचकों ने काव्य शास्त्र के विभिन्न अंगों काव्य की भाषा, आलंकारिकता, रूप-सौष्ठव, पद-योजना, रस-छन्द आदि पर व्यापक विचार किया। गेटे कला और कविता में व्यक्तित्व को प्रधान मानते हैं। उनके मतानुसार शैली ही आन्तरिक जगत् की अभिव्यक्ति है। इन्होंने कविता के क्षेत्र में वास्तविकता को स्थान दिया है तथा कविता का बाह्य जगत से सम्बन्ध बताया है। कान्ट सौन्दर्य के उपासक हैं तथा उपयोगिता से कला को विच्छिन्न एवं असम्बद्ध बतलाते हैं। फ्रांसीसी आलोचकों में बोयल, रेपिन का नाम महत्त्वपूर्ण है। आंग्ल आलोचकों में सिड़ी जॉनसन बॉब आदि उल्लेखनीय हैं। 19वीं शताब्दी में रस्किन, पेटर, कालाईल ने पूर्ववर्ती आलोचना सिद्धान्तों और रोमांसवाद का समन्वय किया तथा आलोचना के नवीन मानदण्ड स्थिर किये। आधुनिक आलोचक क्रोचे और निचर्डस भावों की प्रेषणीयता के अतिरिक्त इन सभी सिद्धान्तों को एक मत से स्वीकार करते हैं।

भारतीय और पाश्चात्य काव्याचार्यों के मतों में विशेष अन्तर नहीं है। पाश्चात्य विद्वान् रागात्मक-तत्त्व, कल्पना, बुद्धि तत्त्व तथा शैली को काव्य के प्रमुख तत्त्व मानते हैं। भारतीय काव्य-शास्त्री भाषा-शैली रस-अलंकार को काव्य तत्त्व मानते हैं। भारतीय आचार्यों ने अनुभूति-अभिव्यक्ति के आधार पर काव्य के भाव एवं कला नामक दो पक्ष माने हैं। अभिव्यक्ति अथवा कला-पक्ष में रीति अथवा शैली का प्राधान्य है परन्तु उसका अनुभूति तथा भाव के साथ अभिन्न सम्बन्ध है। शैली अभिव्यक्ति का ढंग होते हुये भी भाव-वस्तु से निराली नहीं हो सकती। अस्तु भारतीय परम्परानुसार शैली कवि का व्यक्तित्त्व है। व्यक्ति और शैली में उसी प्रकार विभिन्नता होती है जिस प्रकार शक्तिमान और शक्ति में शैली का सीधा सम्बन्ध काव्य की आत्मा रस से होने से शैली का तात्पर्य केवल काव्यकार की भाषा से ही नहीं वरन् रस, अलंकार, रीतियों के गुणों का भी उसमें समावेश है।

परशुरामदेव का काव्योद्देश्य यश-धन अर्जित करना नहीं था। ये वीतरागी महात्मा भक्त थे। भगवान की कृपा प्राप्ति तथा आत्मकल्याणार्थ ही भक्ति-काव्यों का सृजन करते थे जिनका काव्योद्देश्य स्वान्त:सुखाय था। परशुरामदेव ने भी स्वान्त:सुखाय भक्ति काव्य तथा परहिताय संतोचित उपदेश-काव्य की रचना की थी।

2. परशुरामदेव जी की काव्य चेतना की आधार भूमि—

श्रीपरशुरामदेवजी की काव्य रचना एवं उनकी साम्प्रदायिक साधना-निष्ठा को प्रभावित करने वाले विभिन्न बाह्य तत्त्वों पर विचार करने पर पूर्व पीठिका के रूप में हमें निम्नलिखित तत्त्व उनकी विचारधारा पर प्रतिक्रियात्मक रूप से कार्य करते प्रतीत होते हैं। इन्हीं को उनकी काव्यधारा का प्रेरणा स्रोत कहना उपयुक्त होगा।

(i) परशुरामदेव जी का प्रचार क्षेत्र

परशुरामदेव जी का साधना क्षेत्र प्रमुखत: राजस्थान था। विशुद्ध वैष्णव भक्ति के भावों के प्रसार के लिए वहाँ अपेक्षाकृत बहुत कम अवकाश था। कबीर आदि का निर्गुण भावी भक्तिमय प्रचार वहाँ सुलभ था। उनके समकालीन कवि दादूदयाल जी के सम्पर्क से निर्गुण उपासना की प्रेरणा उनको मिली ऐसा सम्भव है।

(ii) मुसलमानी प्रभाव

इनकी काव्य साधना के युग में एवं उसके पूर्व मुसलमान शासकों का प्रभाव प्रत्येक दिशा में व्याप्त था जिसकी एकेश्वरवादी निर्गुण विचारधारा से सभी प्रभावित हो रहे थे। यह काजी, मुल्ला पीर, फकीर और औलियों की प्रभुसत्ता का युग था जिन पर कबीर आदि महान सन्त साधकों की विचारधारा को ग्रहण करके जन-मानस पर नियन्त्रण करना सम्भव था। अत: परशुरामदेवजी को निर्गुणवादी दृष्टिकोण ग्रहण करना पड़ा।

(iii) राम नाम की व्यापकता

निर्गुण एवं सगुण दोनों प्रकार के साधना क्षेत्रों में इस युगमें राम नाम अत्यधिक व्यापक हो रहा था। परशुरामदेव जी ने युग प्रभाव के दोनों रूपों को अपनाने का प्रयास किया।

(iv) राजस्थान के निर्गुणवादी संत एवं गलता के रसिकाचार्यों की रसिक- साधना

स्वामी रामानन्द एवं उनकी शिष्य परम्परा के रसिकजनों से विशेष कर अग्रदास जी का इस दिशा में उन्होंने आभार स्वीकार किया है।

(v) जन्मजात वैष्णव संस्कार एवं दीक्षा

1. निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा;
2. श्री हरिव्यासदेव जी का शिष्यत्व;

3. श्री भट्टजी, स्वामी हरिदास जी आदि के प्रति निष्ठा भाव;

4. सूरदास, परमानन्ददास, कृष्णदास के प्रति पूज्यभाव;

5. सौरों, काशी, मथुरा आदि राम एवं कृष्ण भक्ति के केन्द्र स्थलों में निवास।

(vi) निम्बार्क सम्प्रदाय में निर्गुण-सगुण भाव की उपासना

1. यद्यपि निम्बार्क सम्प्रदाय में सगुण रूप में ही श्री सर्वेश्वर भगवानकी उपासना का विधान है, परन्तु उनमें सत्व, रज, तम तीनों प्राकृत गुणों का सर्वतोभावेन अभाव मानकर उन्हें निर्गुण भी कहा जाता है। इस प्रकार निर्गुण एवं सगुण दोनों प्रकार की उपासना का उल्लेख इस सम्प्रदाय के कवियों ने किया है।
2. भेदाभेद सिद्धान्त
3. श्री राधाकृष्ण की नित्य विहार लीला की प्रधानता।

इस प्रकार परशुराम देव जी के काव्य में हिन्दी साहित्य की प्रमुखतः निर्गुण वादी, राम का मर्यादा वादी एवं रसिक जनों द्वारा सेवित रूप एवं निम्बार्क सम्प्रदाय की रसोपासना विचारधाराओं के सन्निवेश का प्रयास देख पड़ता है।

परशुरामदेव जी के काव्य की विचार धारा की प्रमुख आधार भूमि उनकी निम्बार्क सम्प्रदायान्तर्गत दीक्षा है। वे इस सम्प्रदाय के सबसे अधिक प्रतापी एवं ऐश्वर्यशाली आचार्य हरिव्यासदेव जी के शिष्य थे। हरिव्यास देव जी अन्य सभी वैष्णव सम्प्रदायों के हिन्दी कवियों से पूर्व श्री राधाकृष्ण की रूप रसोपासना प्रणाली के प्रवर्तक थे। अतः परशुराम देव जी के काव्य में भी अपने गुरुदेव की भाँति श्री राधाकृष्ण की माधुर्यमयी परा भक्ति का प्रतिपादन हुआ है। अपने परशुराम सागर में उन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय में आराध्य देव रूप में प्रतिष्ठित परब्रह्म अवतारी श्री सर्वेश्वर की वन्दना की है।[1]

अपने ग्रन्थों में सर्वात्मभाव से श्री राधाकृष्ण की माधुर्य मयी उपासना की प्रतिष्ठा का सर्वोपरि प्रयास उनका देख पउता है। इस कारण उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण को समझने के लिए उनकी तद् विषयक प्रवृत्तियों का समुचित अनुलेखन करने का यथावसर प्रयास किया जायेगा।

---

1. काहू के कोई भजन, काहू के को देव।
   परसा तू कर नेम धरि, सर्वेश्वर की सेव।।
   परशुराम सागर, दोहा खण्ड, दोहा संख्या 465

3. परशुरामदेव : साधना पक्ष, प्रेम तत्त्व निरूपण एवं निम्बार्कीय दृष्टिकोण

(i) साधना पक्ष

परशुरामदेव जी के मत से भगवान् की भक्त वत्सलता और उसका दया दाक्षिण्य ही प्राणिमात्र के कल्याण का आशा चिह्न है। भगवान् अपनी भक्त वत्सलता के कारण ब्याई हुई गाय की तरह पीछे लगे फिरते हैं। अपने शरणागत की रक्षा करना ही उनका प्रमुख उद्देश्य हे। अत: भगवान् के दया दाक्षिण्य को प्राप्त करने के लिए उनका शरणागत होना परमावश्यक है। शरणागत हाकर उनके प्रेम और विश्वास को अर्जित करना अभीष्ट हैं। सच्ची भगवन्निष्ठा अर्थात् अनन्य भाव से प्रभु की भक्ति करके ही उनका विश्वास अर्जित किया जा सकता है। इसके लिए मन, वचन, कर्म से संसार का त्याग करके सभी से उदासीन भाव से रहना चाहिये और भगवान के बिना अपना जीवन निरर्थक मानना चाहिये। इस प्रकार का सच्चा विश्वास होने पर ही वैष्णव संज्ञा हो सकती है।

परस जीवन तब लगे, जब लगि हरि विश्वास।
हरि विश्वास न उपजै, जीवन जन्म निरास।।
मनसा वाचा, हरि भजे, सब तजि रहे उदास।
परसराम तब जानिये, उपज्यौ दृढ़ विश्वास।।[1]

भगवद् भक्ति प्राप्त करने के लिए भय भी आवश्यक तत्त्व है। बिना भय के भगवान् की भक्ति का लाभ नहीं हो सकता क्योंकि जब तक आवागमन तथा सांसारिक क्लेशादि का भय न होगा जीव से उसके मन की विषय वासना नहीं टूट सकती। प्रभु की कृपा के विश्वास रूप निर्भयता और अपने कर्मों की ओर से भय की आशंका इस भय और निर्भय स्थिति में रहने पर ही सच्ची भक्ति प्राप्ति की सम्भावना है। भगवद् भक्ति प्राप्ति के विशिष्ट लक्षणों का उल्लेख भी परशुरामदेव जी ने किया है। भक्ति प्राप्ति के दीनता सर्वात्म भाव से भगवदाश्रयता अभिमान का त्याग सांसारिक विषय विकार का भय एवं स्वर्ग से भगवत्कृपा वर्षा की निरन्तर आशा प्रमुख लक्षण हैं।[2] इन लक्षणों के प्रकट होने पर ही समझना चाहिये कि अब भगवत्कृपा होने वाली है। लोभ, मोह, तृष्णा, त्रिताप, क्रोधादिक से वितृष्ण भगवद् भक्ति की प्रमुख विशेषता है।[3]

---

1. परशुराम सागर, सं. वियोगी विश्वेश्वर, पृ. 46, दोहा संख्या 456
2. परशुराम सागर, सं. वियोगी विश्वेश्वर, पृ. 46, दोहा संख्या 513
3. परशुराम सागर, सं. वियोगी विश्वेश्वर, दोहा संख्या 515

परशुरामदेव जी सर्वेश्वर को ही भगवान् का रूप मानते हैं। उन्हीं की उपासना ही सबको इष्ट होनी चाहिये। जिस पर सर्वेश्वर भगवान् की कृपा होती है वही उनको जान पाता है अन्य कोई नहीं। कोई भक्त किसी की पूजा करता रहे, किसी को कोई देवतुल्य माने परन्तु परशुराम जी की श्रीसर्वेश्वर जी की नियम पूर्वक सेवा करना अभीष्ट है।

काहू के कोई भजन, काहू के को देव।
'परसा' तू करि नेमधरि, सर्वेश्वर की सेव।।[1]

भगवद् साधना का मार्ग बड़ा कठिन है। उसके निमित्त कर्म करने से गृहस्थ से छुटकारा सम्भव हो सकता है।[2] भगवन्नाम चिन्तन अथवा हरि स्मरण वे भगवद् साधना का आवश्यक अंग माने हैं। जीवनोद्धार का यही एक मुख्य साधन है। भगवन् नाम का स्मरण दरिद्रों के दु:ख दूर करने वाला है। उनके नामजप से पाप शरीर से अलग हो जाते हैं। जिन भगवान् राम के चरणों का स्पर्श करके पत्थर की नारी का उद्धार हो गया उसी का नाम जप आवश्यक है। नाम लिख लिखकर पत्थर भी समुद्र पर तैरने लगे थे, अत: भवसागर को पार करने के लिए नाम जप बड़ा आवश्यक है।

सीतानाथ सुजाण अति, सिंधु जल सिला तिरावत।
लिखि लिखि अपनों नांव, आप करतै छिटकावत।।[3]

(ii) प्रेम का स्वरूप

भगवद् प्रेम का विकसित रूप ही भक्ति है। अत: भगवद् भक्ति की प्राप्ति के लिए प्रेमांकुर की स्थिति अत्यन्त आवश्यक है। प्रेम के समबन्ध में परशुरामदेव जी के गुरु श्रीहरिव्यासदेवजी महाराज के विषय में एक कथानक प्रसिद्ध है कि वे जब दीक्षा लेने के लिए ये बज प्रसिद्ध महात्मा श्रीभट्ट जी के निकट गये उन्होंने इनसे प्रश्न किया क्या तुम्हारे मन में किसी के प्रति प्रेम भाव उमड़ता है? तुम्हारा स्नेह पात्र कौन है? कैसा है? इस पर उन्होंने उनको किसी सुन्दरी का नाम संकेत किया। श्रीभट्ट जी ने इससे समझ लिया कि इस युवक के हृदय में प्रेम भाव विद्यमान है और अनुकूल अवसर आने पर उसे उचित दिशा में परिवर्तित किया जा सकता है। अत: हरिव्यासदेव जी को 12 वर्ष तक गोवर्धन की परिक्रमा करने की आज्ञा हुई। अनेक वर्षों तक परिक्रमा एवं व्रत साधना करने पर उनका लौकिक प्रेम प्रभु भक्ति में परिवर्तित हो गया और वे सम्प्रदाय के सबसे अधिक प्रभावशाली आचार्य हुए। परशुरामदेव जी ने प्रेम का अत्यधिक महत्त्व स्वीकार किया है। इनके मतानुसार

---

1. परशुराम सागर, दोहा संख्या 610
2. परशुराम सागर, दोहा संख्या 611
3. परशुराम सागर वियोगी विश्वेश्वर, दोहा संख्या 456

निर्गुण ब्रह्म को सगुण रूप देने वाला प्रेम ही है।[1] प्रेम के बिना निर्गुण अथवा सगुण सभी असफल हैं। बिना प्रेम के कोई कितनी ही साधना करे परन्तु वह भगवान् को स्वीकार नहीं हो सकती। जिन भगवान् ने अपनापन देकर तुमको अपना बनाया है उसे ही अपना बनाना इष्ट है केवल प्रेम द्वारा ही उसे अपना बनाया जा सकता है। उसी से उनका हृदय जीतना सम्भव है।[2] सच्चे प्रेमी के पास प्रत्येक समय प्रभु वास करते हैं। जेसे 9 के पहाड़े में प्रत्येक संख्या का जोड़ केवल 9 ही होता है।

दशरथ जी के प्रेम को परशुराम देव जी ने आदर्श माना है। श्री रामचन्द्र को वे अपने प्राण तुल्य प्रियतम मानते थे। राम जब तक उनके पास थे वे जीवित रहे जैसे ही बिछोह हुआ उन्होंने प्राण विसर्जितकर दिये।[3] इसी प्रकार चकवी का प्रेम भी अत्यन्त श्लाध्य है, क्योंकि वह अपने वियोग काल में अपने प्रेमी चकवे का ही प्रत्येक समय चिन्तन करती रहती है। उससे भी आगे तथ्य यह है कि चकवी के प्रेम में वियोग के लिए अवकाश है, परन्तु भक्त का प्रेम अविरल, निश्चल एवं निरन्तर है।[4] अत: उनमें वियोग के लिए कोई स्थान नहीं। प्रभु से प्रेम करने में रात दिन कुछ नहीं देखना चाहिये। प्रेम की तीव्रता और गम्भीरता में परशुरामदेव जी ने पतंग और दीपक, मीन और जल, हंस और सरोवर, पक्षी और वृक्ष, भौंरा और कमल, पय और पानी, पावस और मोर, चातक और स्वाति जल के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

परशुराम देव जी मतानुसार प्रेम एक मर्यादा है। वह अनुकरण का विषय अथवा अनुकरण की पद्धति नहीं है। प्रेम हृदय से होता है, देखा देखी नहीं। प्रेम स्पर्द्धा का विषय नहीं है।

(iii) प्रेम और नेम

प्रेम का व्रत अनन्य है उनके निर्वाह करने में कोई सांसारिक नियम नहीं चलता क्योंकि प्रेम की गति विलक्षण है। वह निर्वाध रूप से अग्रसरित होता है, अत: नियम के बन्धन में सिकुड़ कर चलना उसके लिए सम्भव नहीं है।[5] जो भक्त पतिव्रता स्त्री की भाँति आराध्य देव का चिन्तन नेम में परिवर्तित कर लेते हैं उनका नेम निश्चय ही वन्दनीय है। उससे भक्ति साधना पर नित नया रंग आता है।[6] उसमें अलौकिक आलोक की सृष्टि होती है। परन्तु प्रेम का नेम जब परम प्रभु के प्रति ही होता है वह उसी समय ग्राह्य है क्योंकि उसकी साधना पतिव्रता स्त्री के समान है। जिस प्रकार

---

1. निम्बार्क माधुरी, पृ. 25 सम्पादक ब्रह्मचारी विहारीशरण।
2. परशुराम सागर, सं. श्री वियोगी विश्वेश्वर, पृ. 31, दोहा सं. 308
3. वही, पृ. 32, दोहा सं. 315
4. वही, दोहा सं. 382
5. परशुराम सागर, सं. श्रीवियोगी विश्वेश्वर, दोहा संख्या 942
6. वही, दोहा संख्या 902

अन्य पुरुष से प्रेम करने वाली स्त्री अभिचारिणी कहलाती है, उसी प्रकार सांसारिक कार्य व्यापारों अथवा अन्य पुरुषों का प्रेम निष्फल है। भगवान का पतिव्रता स्त्री के नेम से चिन्तन करना भक्त मर्यादा है।

(iv) काम, क्रोध और अहङ्कार

काम, क्रोध और अहङ्कार भगवद्भक्ति में बाधक हैं क्योंकि वे भगवान के ऐश्वर्य की प्रतीति करा कर अपनी दीनता का अनुभव कराने की स्थिति उत्पन्न नहीं होने देते। इसी कारण से सभी सम्प्रदायों के साधकों ने इसकी निन्दा की है। स्फटिक शिला में अपना प्रतिबिम्ब देख कर हाथी, उससे लड़ने लग जाता है।[1] सिंह कुएँ में झाँक कर अपनी छाया को दूसरा सिंह जानकर उससे युद्ध करने को कूद पड़ता है।[2] कुत्ता कांच के महल में अपनी आकृति देखकर निरन्तर भूँक-भूँक पड़ता है और प्राण दे डालता है। वह भक्ति का बिनाशक और राम को विस्मरण कराने वाला है। रावण और दुर्योधन ने अहङ्कार करके अपने ज्ञान विवेक का विचार छोड़ दिया। हिरण्यकशिपु ने अहङ्कार करके अपने ज्ञान, विवेक का विचार छोड़ दिया। इसी के वशीभूत होकर प्रह्लाद को अनेक कष्ट दिये। जिस प्रकार पावक काठ से ही निकलता है, परन्तु उसी का विनाशक होता है, वैसे ही क्रोध शरीर को नष्ट कर डालता है। काम तो मनुष्य को नितान्त अन्धा ही कर देता है, अत: इन सभी का त्याग नितान्त अपेक्षित है।

(v) मुसलमानों को शिक्षा

संत कवियों की भाँति परशुरामदेव जी को भी जिन परिस्थितियों में मुसलमानों को धार्मिक सहिष्णुता की प्रेरणा देनी पड़ी थी उनका विश्लेषण हो चुका है। उन्होंने मुसलमानों को बतलाया कि अन्य जीवों को हलाल करने की अपेक्षा अपनी वृत्तियों का दमन करना कहीं श्रेष्ठ है।[3] खुदा राम और ब्रह्म का पर्यायवाची है, वह सब प्रकार पूर्ण है, स्वर्ग का विधायक है, उसे हराम नहीं भाता औलिया भी उसे हलाल की विधियों से प्राप्त कर सकते हैं।[4] जब तक सांसारिक स्वार्थों का त्याग नहीं किया जायेगा बहिश्तर और खुदा का प्राप्त करना असम्भव है (ईश्वर) के केवल दो ही निर्देश हैं प्रथम यह कि जीवित प्राणी को नहीं मारना चाहिये और दूसरा यह कि मुर्दे अर्थात् हराम की वस्तु का उपयोग नहीं करना चाहिये।[5] महात्मा कबीर की भाँति उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों दोनों को घोर अज्ञानता का शिकार कहा है। इस

---

1. वही, दोहा संख्या 1195
2. वही, दोहा संख्या 1196
3. परशुराम सागर, सं. वियोगी विश्वेश्वर दोहा संख्या 1608
4. वही, दोहा संख्या 1611
5. वही, दोहा संख्या 1613

अज्ञानता के कारण वे धर्म के सच्चे स्वरूप को भूल गये हैं और परस्पर विद्वेष भाव बढ़ाते रहते हैं।

(vi) निम्बार्क सम्प्रदायी दृष्टिकोण

श्रीपरशुरामदेव जी से पूर्व मथुरान्तर्गत ध्रुव क्षेत्र में श्री हरिव्यासदेव जी द्वारा रूप रसोपासना के नवोत्थान की बात कही जा चुकी है। अत: श्रीपरशुरामदेव जी की उपासना-साधना प्रणाली सब कुछ निम्बार्क सम्प्रदाय की ही थी। सामयिक परिस्थितियों एवं समाज की दशा का भी गम्भीर अध्ययन करने के अनन्तर उन्होंने अपनी उपासना का स्वरूप अपेक्षाकृत अधिक उदार और सर्वग्राह्य बनाने का प्रयास किया था जिसकी चर्चा उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण पर विचार करते समय की जायेगी।

परशुरामदेव जी की अपने गुरुदेव में असाधारण निष्ठा थी। उन्होंने स्वयं कहा है कि मैंने गुरुदेव की गोविन्द (भगवान्) की भाँति सेवा की है इस बात के स्वयं श्रीवृन्दावन चन्द श्यामसुन्दर साक्षी हैं। गुरु सेवा विषयक उनकी दृढ़ता की इससे भी पुष्टि होती है कि वे गुरु सेवा के एक क्षण को वही महत्त्व देते हैं जो बारहवर्ष तक किसी प्रस्तर मूर्ति का षोडशोपचार करने से होता है।

उन्होंने गुरुदेव की कृपा के वरदान का स्वयं अनुभव करके उनकी दीक्षा को अत्यन्त आनन्द मूलक वर्णन किया है।

(vii) उपासना तत्त्व

परशुरामदेव जी श्रीराधाकृष्ण को अनन्य उपास्य देव मानते हैं। श्रीकृष्ण परात्पर तत्त्व सर्वशक्तिमान् हैं जो अपनी आह्लादिनी शक्ति राधा के साथ नित्य-विहार में निरत रहते हैं। परब्रह्म के अवतार हैं। सर्वेश्वर जी उन्हीं के रूप हैं उन्हीं की सेवा करना सभी को इष्ट है। भगवान का नाम अति पवित्र है। उसका जो स्मरण करता है वही पवित्र हो जाता है। उनका ध्यान भी अत्यन्त सुखदायक है। हरि का स्पर्श भी परम पावन एवं पापमोचक है। हरि स्मरण भी अत्यन्त पावन है जिसके द्वारा गणिका भी पार हो गई।[1]

---

1. पावन हरि को नाउं जिके सुमिरै सोइ पावन।
पावन हरि को ध्यान करिन कोई रहति अपावन।।
पावन हरि को दरस प्रगट सबको सुखरासी।
पावन हरि को परस करन पावन भुजजासी।।
पावन हरि गुनगान हँसि हरि गावन गनिकातिरी।
हरि पद पावन परस राम रज पावन सिलसुद्धेरी।।
परशुराम सागर, सलेमाबाद वाली प्रति, पृ. 231 छन्द सं. 1

उन्हीं परब्रह्म अवतारी हरिनामधारी श्री सर्वेश्वर भगवान की सभी को भक्ति करनी चाहिये। शेष शारदा सभी उनका गुणगान करते हैं। परशुरामदेव जी ने निम्बार्क सम्प्रदायान्तर्गत भक्ति मर्यादानुकूल साधुलक्षण, सेवक लक्षण, ब्राह्मण लक्षण साधु स्वरूप आदि का वर्णन किया है। सब प्रकार के वैभव का त्याग वे संत जीवन के लिए आवश्यक समझते हैं। टूकों पर जीवन निर्वाह एक गूदड़ी, एक कोपीन से युक्त एक फूटे हुए करूवा से दैनिक जीवन की नित्य साधना-निष्ठ साधुओं को वे सच्चा प्रभु भक्त मानते थे।[1] निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्य आचार्यों की भाँति परशुरामदेवजी ने कहनी और कथनी की एकता, अशुभ कर्मों का निषेध, कर्म-काण्ड की निन्दा एवं आशा-तृष्णा को भक्ति मार्ग में बाधा बतलाया है। आशा को उन्होंने जीव रूपी मछली को पकड़ने का काँटा माना है जहाँ तक आशा है वहाँ तक जीव के विनष्ट होने की सम्भावना है। अत: सर्व निष्काम भाव पूर्ण भक्ति ही श्रेष्ठ है।

आसै जहं कहं जीव को, तहाँ जीव को विनास।
होसी जब तक परसुरां, जाणि तही तहं नास।।[2]

4. परशुराम सागर : प्रतिपाद्य विषय

पूर्व पृष्ठों में परशुरामदेव की काव्यगत विचारधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों की ओर संकेत किया जा चुका है। उन संकेतों के आधार पर उनके द्वारा प्रतिपादित भाव सामग्री को क्रमश: निर्गुण एवं सगुण विचारधारा में विभक्त किया जा सकता है। पुन: सगुण विचारधारा के राम और कृष्ण भक्ति विषयक दो विभेद हैं। राम का जो व्यापक रूप परशुरामदेव जी के समय में अथवा उनसे पूर्व जन-साधारण में प्रचलित हो रहा था उन्होंने प्रमुखत: उसी को अपनाने का प्रयास किया है। राम के इस रूप में दोनों प्रकार के भक्तों की भक्ति भावना के अनुरूप जनता में भाव प्रसार हो रहा था। राम का एक स्वरूप निर्गुण ब्रह्म का पर्यायवाची था जो सर्वव्यापी अजर, अमर, रूप रस गुणों से रहित निर्गुण निर्विकार स्वरूप था। राम का दूसरा रूप दाशरथि राम का था। भक्तों के हृदय-अनुरजनी मर्यादावादी परन्तु अलौकिकतामय उनकी कार्यावली लोक और वेद सभी को अपनी ओर प्रत्याशित किये हुए सद्धर्माचरण एवं लोक परायणता की ओर उन्मुक्त करने वाली है। राम के इस सगुण रूप का परशुरामदेवजी ने अत्यन्त आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया है। उनके रूप चित्रण में सोन्दर्य एवं ऐश्वर्य की प्रधानता है। ऐश्वर्य में वे अपनी महामहिमा में विराजमान हैं और जीवन अपनी लघुता में घिरा हुआ उनके नित्यकर्म, नित्यश प्रपत्ति और अखण्ड शरणागति की कामना करता है।

---

1. परशुराम सागर, वियोगी विश्वेश्वर, दोहा संख्या 1596, 7, 8
2. वही, दोहा संख्या 1595

सीता, हनुमान, विभीषण का चित्रण परशुरामदेव जी ने इसी रूप में किया है। राम के माधुर्यमय स्वरूप की उपासना प्राय: गोप्य एवं जनसाधारण में खुले प्रचार की वस्तु न थी, अत: उसका चित्रण उनके काव्य में नहीं देख पड़ता। परशुरामदेव जी ने कृष्ण चरित्र का भी वर्णन किया है। साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से वे प्रमुखत: कृष्ण भक्त कवि ही हैं और श्रीराधा-कृष्ण के माधुर्य भाव के उपासक। उनके सम्प्रदाय में अखिल अनेक ब्रह्माण्ड़ों के अधिनायक सर्व शक्तिमान, परात्पर तत्त्व श्रीकृष्णचन्द्र हैं और राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति हैं। राधा स्वामिनी रूप हैं, अत: श्रीकृष्ण उनकी सर्वरूपेण रुचि रखने में प्रयत्नशील हैं। इन्हीं राधा-कृष्ण की निकुञ्ज अथवा नित्यविहारी लीला साम्प्रदायिक साधकों का सर्वोपरि उपास्य तत्त्व है। असंख्य अगणित जीवात्मा रूप सहचारियाँ इनके नित्य कैंकर्य में निरत हैं। सहचरियों का झाँख, झरोखे में से अपने नित्य उपास्य श्रीराधाकृष्ण का नित्यविहार लीला दर्शन ही अपने अस्तित्व की परम साधना है। सहचरीगण के इस लीला दर्शन के द्वारा उनकी परितृप्ति, आत्म रति, आत्मरमण की स्थिति उत्पन्न होती है। जो माधुर्य भाव की उपासना का चरम लक्ष्य है।[1] परशुरामदेव जी ने नित्य विहार लीला का यत्र-तत्र वर्णन किया है जो उनके साम्प्रदायिक-प्रेरण संस्कारों का प्रतिपालन मात्र है।

नित्यविहार लीला की अपेक्षा उन्होंने ब्रजलीला एवं भगवान के पतितोद्धारक वृत्तों का चित्रण बहुत किया है। नित्यविहार लीला के अन्तर्गत उनके जन्मोत्सव बधाई के पद बालक्रीड़ा, राधा का नख शिख वर्णन, वृन्दावन वर्णन, नित्यविहार, रासवर्णन आदि हैं। नित्यविहार लीलापरक भावों में यद्यपि उनकी प्रवृत्ति संयोग शृङ्गार अत्यन्त मर्यादित हैं। अत: परशुरामदेव जी को विशुद्ध-भक्त कवि कहा जाय तो अनुचित न होगा। उन्होंने प्रत्येक स्थल पर इस प्रकार के वर्णन करते हुए बड़े संयम से काम लिया है अत: निम्बार्क सम्प्रदाय की परम्परागत गोपनीयता की अभिधेयता इनके काव्य के सम्बन्ध में लागू नहीं होती। गोस्वामी तुलसीदास जी की भाँति परशुराम सागर का शृङ्गार अत्यनत शिष्ट एवं समाजोपयोगी है। श्री हरिव्यासदेव, रूपरसिकदेव, रसिकदेव, ललितकिशेरीदेव आदि सखीभाव के उपासक कवियों की भाँति उनकी कविता गोपनीय शृङ्गार की परम्परा का अवलम्बन करती दृष्टिगत नहीं होती। अपनी इस विशेषता के कारण परशुरामदेव जी का व्यक्तित्व निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्य सभी कवियों से सर्वथा भिन्न सा प्रतीत होता है। इस दिशा में हम उन्हें श्रीभट्टजी का यथेष्ट अनुकरण करते हुए पाते हैं।[2]

---

1. राम भक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृ. 2, भुवनेश्वर मिश्र माधव।
2. युगल शतक ब्रजलीला सुख, पृ. 13

यद्यपि निम्बार्क सम्प्रदाय और राधावल्लभ सम्प्रदाय में श्रीराधा जी की स्वामिनी भाव की उपासना की विशेषता है, परन्तु ब्रज लीला वर्णन, प्राय: सभी कृष्णभक्त् कवियों को ग्राह्य रहा है। इसी कारण निम्बार्क, वल्लभ, मध्व और राधावल्लभ सभी के कवियों ने ब्रजलीला का सन्निवेश अपने काव्य मे किया है। सभी सम्प्रदायों में ब्रजलीला अन्तर्गत प्राय: श्रीयुगलकिशोर के मेल मिलाप और तद्विषयक वातावरण की प्रतिष्ठा का प्रयास कवियों द्वारा देखा जाता है। वल्लभ सम्प्रदाय में इस परिस्थिति में उनके कैशोर प्रेम व्यापारों के चित्रण का अवकाश है परन्तु अन्य तीन सम्प्रदायों में उनके माधुर्य परक भावों के प्रमाण की ओर कवियों की प्रवृत्ति देखी जाती है। निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियों के ब्रजलीला चित्रण का यही दृष्टिकोण है। श्रीभट्टजी, श्रीपरशुरामदेव, श्रीरूपरसिकदेव, रसिकदेव, ललितकिशोरीदेव, वृन्दावनदेव और नागरीदास जी का ब्रजलीला वर्णन इसी कोटि का है। परशुराम सागर में ब्रजलीला वर्णन की ठीक यही स्थिति है। इस ग्रन्थ में मंगला, प्रात: दर्शन, ग्वाल, दानलीला, गोपी कृष्ण उलाहना, शृङ्गार, यशोदा उपालम्भ, यशोदा प्रत्युत्तर, मान मोचन, श्रीकृष्ण का किशोर स्वरूप आदि लीलाओं का वर्णन हुआ है। यद्यपि निम्बार्क एवं राधावल्लभ सम्प्रदाय में स्वामिनीजी से स्वकीया भाव की प्रतिष्ठा के कारण मान वर्णन के लिए अवकाश नहीं हैं, परन्तु विरह में एक अद्‌भुत रस है जिसकी अनुभूति के लोभ का संवरण करना शृङ्गारी कवियों के लिए प्राय: कठिन होता है। इसी कारण मान और विरह की स्थिति के सृजन की निमित्त पूर्ण नहीं तो निमित्त हेतुओं की कल्पना की गई। श्री श्रीभट्टजी ने श्रीराधाजी को श्रीकृष्णचन्द्र जी के शरीर की ज्योति में स्वयं का प्रकाश देखकर मान की साधना प्रारम्भ की।[1] श्रीहरिव्यासदेव जी की किशोरजी ने अपनी आरसी (दर्पण) में अपने प्रतिबिम्ब को सपत्नी जानकर श्रीश्यामसुन्दर से बैर ठान दिया।[2] इसी प्रकार विभिन्न कवियों ने विविध अपूर्ण हेतुओं की कल्पना कर स्वकीया भाव में भी मान की प्रतिष्ठा की है। परशुरामदेव जी का मान वर्णन केवल परम्परा का पालन मात्र है। उन्होंने मान मोचन का वर्णन केवल अत्यन्त संक्षिप्त और प्राय: अपूर्ण किया है। अनुचित विस्तार करने का प्रयास उनका नहीं देख पड़ता और न वह सब भाव सामग्री ही संकलित करने का उनका प्रयत्न है जो इस प्रकार के भाव चित्रण के लिए अपेक्षित होती है। उनके मान वर्णन के आलम्बन बड़े अस्पष्ट, विभावादि बड़े सूक्ष्म एवं प्रेरणायें नितान्त अपूर्ण हैं।[3] मान के अतिरिक्त वियोग का

---

1. रसिकिन मान किये रस रास—युगल शतक पृ. 10
2. महावाणी, पृ. 79
3. परशुराम सागर, सिंगार की बीड़ी छन्द संख्या 10

दूसरा कारण प्रवास है। श्रीकृष्ण जी के मथुरा चले जाने के कारण गोपीजन का चित्त अत्यन्त व्याकुल है। उनके वियोग में गोपियों की घर-घर बुरी दशा है। वर्षा आ गई है। मैत्री सम्मिलित परिपोषक ऋतु दशा व्यापार पूर्ण वेग से उपस्थित हो रहे हैं। उमड़ती, घुमड़ती, मेघमाला, गर्जन-तर्जन से युक्त समूह, चमकती बिजली की आकस्मिक कौंध, नदियों का कल-कल स्वर, कोयल की मस्त कुहुक भला किस प्रेमी के हृदय को नहीं कोंध देती। परन्तु गोपियों का पेमी, वह प्रेमी जिससे स्वप्न में भी धोखे की आशा न थी अवधि पूरी हो जाने पर भी वापिस न आया। गोपियों के मन में विविध संकल्प विकल्प उठने लगे। आखिर लौट कर क्यों नहीं आये—

श्री सजनी हरि अबहू न घर आये।
जाय बसे कहुँ दूरि देस मैं सु या सुरति सबै बिसतये।
तहाँ नहिं वरषा रूति सिखर सुर्ग में मेघन वरिषण पाये।।
तहाँ नहिं दामिनि चमकति निसि आतुर घन गरजत न सुहाये।
'परशुराम' प्रभु चलती वेर हम पाय,लागि पहुँचाये।।[1]

विरह वर्णन के उपरोक्त् प्रसंग में सूरदासजी की विविध त्रतुओं की उद्दीपन विभाव की दृष्टि से वर्णन करने की प्रणाली का अनुगमन देख पड़ता है। तुलसीदासजी ने भी कृष्ण गीतावली में इस प्रकार के प्रयोग अपनाये हैं। परशुरामदेव जी के समकालीन एवं उत्तरवर्ती कवियों में यह प्रवृति उत्तरोत्तर अधिक विकसित होती गई है।

परशुरामदेवजी ने इसी विरह वर्णन के प्रसंग में गोपी उद्धव संवाद का भी वर्णन किया है। यह प्रसंग श्रीमद्भागवत के आधार पर सभी कृष्ण भक्त कवियों ने अपनाया है क्योंकि श्रीमद्भागवततो सभी वैष्णव भक्तकवियों का आधार ग्रन्थ है। यहाँ तक कि अनन्य राम भक्त गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी अपनी कृष्ण गीतावली में ही नहीं वरन् कवितावली में भी गोपी उद्धव संवाद को उदारता से स्थान दिया है। परशुरामदेव जी ने इस प्रसंग का निर्वाह बड़ी कुशलता से किया है। भावों की मनोरम अभिव्यक्ति, भाषा की प्रवाह शीलता, व्यंग एवं शब्द शक्तियों की अनूठी प्रयोगात्मकता, प्रेमी के हृदय की सच्ची अनुभूति और उससे प्रसूत सुकुमार भावों की प्रेषणयता कुछ ऐस विशेषतायें हैं जो उन्हें उच्चकोटि के आसन पर बिठाने में समर्थ हैं।

मधुकर प्रीति तुम्हारी जानी।
जो कछु अन्तर हुती तुम्हार प्रगट भई मुख बानी।
धाय मिली आतुर बूझत कारण लागत अति प्यारे।।

---

1. परशुराम सागर, पृ. 659, छन्द संख्या 120, सलेमाबाद वाली प्रति।

मानू बुध्यारथ कै धूँ फल पाये खाये जात न खारे।
ज्यौं सरिता नीर निवारण विण वहि जहाँ तहाँ गयौ विलाय।
अब पलखौ प्रेम सिंधु जन परसा मिलै कूण में जाय।।

इसी प्रकार अनेक सुन्दर भाव उन्होंने इस प्रसंग में रखे हैं। पूर्व उल्लेखानुसार श्रीपरशुरामदेव जी का निर्गुण वादी कवि संतों से विशेष सम्पर्क रहा था, जिसके परिणाम स्वरूप उनके काव्य की विचारधारा सबसे ऊँचे स्वर में बोलती हुई दिखलाई देती है। निर्गुणोपासना परक विषयों पर उन्होंने विस्तार से रचना की है। परशुराम सागर के अन्तर्गत जिन लीलाओं की रचना का वर्णन किया गया है वे प्राय: निर्गुण सन्त हृदय से निकली प्रतीत होती हैं। सतगुरु महिमा, सत्संग का महत्त्व, कुसंग के दुष्परिणाम, ब्रह्म को अपने अन्दर ढूढ़ने की प्रवृत्ति, जाति पांति के भेदभाव का त्याग, राम निर्गुण ब्रह्म और गोविन्द की एकता, धर्माडम्बरों की तीव्र आलोचना कपटाचरण, सुरति ध्यान, कर्म की निन्दा, संसार का विनाशकारी प्रभाव उसकी अनित्यता आदि विषयों पर उन्होंने विशेष रूप से लिखा है। परशुरामदेव जी के काव्य को समझने के लिए उनके निर्गुण सम्प्रदायगत विचारों को समझना अत्यन्त आवश्यक है। उनकी संत काव्यमयी प्रवृत्तियों का अध्ययन किये बिना उनकी सगुणलीला विशेषतया निकुंज लीला की मार्मिकता का यथा तथ्य ज्ञान प्राप्त करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। कारण यह है कि उनकी निर्गुण प्रवृत्ति वह आधार शिला है जिस पर शनै: शनै: उनकी नित्यविहार लीला का भव्य प्रासाद निर्मित करने का उनका प्रयास देख पड़ता है। उनके अनुसार निर्गुण ब्रह्म ही उपास्य तत्त्व है। प्रेम के प्रभाव से वह निर्गुण स्वरूप ब्रह्म सगुण रूप में विचरता हुआ, भक्तों को विभिन्न लीलासुख प्रदान करता देख पड़ता है।[1]

निर्गुण और सगुण के विचार से परे परशुरामदेव जी ने कुछ शुद्ध भक्तिमय प्रसंगों पर बड़ी सफलता से रचनायें की हैं। ऐसे सन्दर्भों में भगवान् की भक्त वत्सलता विषयक उनकी प्रह्लाद भक्त लीला, सुदामा चरित्र, गज-ग्राह, गणिका उद्धार, संतोष की महिमा, निष्फल वैभव की चर्चा, दशावतार, साधुचर्या, साधु लक्षण, सेवक लक्षण, भक्त और संसार, भगवान की खोज, ईश्वर स्वरूप, काम क्रोध, अहंकार माया आदि

---

1. परसा मानै प्रीति हरि, माने ज्ञान न जोर।
निर्गुन सेवे सगुन को, करिहै माखनचोर।।
प्रीति बिना निर्गुण न कछु और सगुण वेकाम।
परसा मानै प्रीति को, सेवा शालिग्राम।।
परशुराम सागर दोहा खण्ड, पृ. 32, छं. सं. 308-9

अनेक ऐसे ही विषयों पर उन्होंने लेखनी चलाई है। भक्त महिमा वर्णन करते हुए वे नहीं अघाते सेना नाई, धन्ना जाट, रैदास चर्मकार, पीपा क्षत्रिय से वे विशेष प्रभावित देख पड़ते हैं। उनका कई स्थलों पर नामोल्लेख करने के अतिरिक्त उन्होंने इनका अलग-अलग पदों में स्मरण किया है। इनके सरल सात्विक जीवन, संत वृत्ति आदि के कारण राजस्थान की जनता के हृदय में उनके प्रति विशेष श्रद्धाभाव इनके समय में अवश्य रहा होगा। अत: परशुरामदेव जी ने इनके माध्यम का लाभ लेकर अपनी बात वहाँ की जनता तक पहुँचाने में सुविधा का अनुभव किया होगा। सेना, कबीर का नाम उन्हें विशेष प्रिय है। पीपा की भी उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

सेन भक्ति हरि कौं अति भावत।
जाके हेति आमता नृप कौं हरि आरती दिखावत।।[1]
रिझायौ कृषणकबीरै गाय।
भगत कथा भगवंत सिरोमनि श्रवनि सुनी चिलाय।।[2]

दीनता और विनय भक्त का आभूषण है। परशुरामदेवजी ने दैन्य और विनय विषयक अनेक पद कहे हैं जो उनके शील और प्रेममय हृदय की झाँकी है।

कबहूँ मैं हरि प्रीतम संभरयौ।
स्वामी परों भरोसै तेरैं जनम जुवाँ ज्यों हार्यौ।।

उपरोक्त विवेचन से यह पूर्ण रूपेण स्पष्ट है कि परशुरामदेव जी का संत रूप उनके साम्प्रदायिक आचार्य रूप से कहीं अधिक प्रभावशाली है। उन्होंने अपने समय में प्रचलित सभी काव्य भावनाओं और साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों का अनुशीलन करने के अनन्तर कबीर और तुलसी की भाँति तत्कालीन अनेक विचार धाराओं के समन्वय द्वारा ही अपने काव्य की रूप रेखा निश्चित की थी। यह समन्वयवादी दृष्टिकोण उनके क्षेत्र में उनकी अपनी महान विशेषता मानी जानी चाहिये।

5. परशुराम सागर : काव्य वैशिष्ट्य

परशुराम-सागर भक्ति उन्मेषकारी सुन्दर रचना है। इसका विषयात्मक ढाँचा सम्प्रदाय की उपासना पद्धति के अनुसार है, परन्तु कवि पर बाह्य प्रभावों का इतना अधिक आग्रह रहा है कि उक्त ग्रन्थ अपनी प्रवृत्तियों में केवल निम्बार्क सम्प्रदायी न होकर एक सामान्य भक्ति परक ग्रन्थ हो गया है। अन्तर के भावों में जब अत्यन्त तीव्रता आती है तो भक्त की वाणी से जो कुछ निकलता है वह साहित्य का स्थायी एवं आकर्षक रूप होता है। प्रेम भक्ति के द्वारा ही दिव्य भावावेश में रूपान्तरित होता है। अत: परशुरामदेव के काव्य में रस के दृष्टिकोण से जो सरसता उपलब्ध है उसे

---

1. परशुराम सागर, छन्द संख्या, 63, पृ. 592, सलेमाबाद वाली प्रति
2. परशुराम सागर, छन्द संख्या 64, पृ. 593

काव्योत्कर्ष के अन्तर्गत नहीं वरन् भावोत्कर्ष के अन्तर्गत ही मानना पड़ेगा। वे भावुक सन्त थे अतः उनके काव्य में कला की अपेक्षा भावों की प्रेषणीयता पर ही अधिक बल दिया गया है। इस ग्रन्थ में प्रमुखतया दिव्य शृङ्गार का रूप प्रस्तुत होना चाहिए था, परन्तु भक्ति के सामान्य अङ्गों में विस्तृत चित्रण के कारण इस ग्रन्थ में शान्त एवं भक्ति रस के सभी अङ्गों का विशद् वर्णन हुआ है। भक्त तत्त्व, उपासना पद्धति, नाम प्रभाव, भक्त महतमा, प्रेम तत्त्व, ब्रह्म तत्त्व भगवान के सगुण निर्गुण रूपों का विवेचन, वदीक्षा, गुरु वन्दना, वैराग्य, ज्ञान और भक्ति, कर्म की निन्दा ईश्वर तत्त्व, भक्ति का साधना पक्ष एवं दार्शनिक विवेचन, गोपी, सखी एवं सहचरी भाव का विवेचन, उपदेश आदि विषयों का वर्णन भक्ति विवेचन के अन्तर्गत होने के कारण प्रायः शान्त रस के अन्तर्गत ही माने जायेंगे। श्रीराधा कृष्ण के नित्य बिहारी स्वरूप का उनका वर्णन अपेक्षाकृत दुर्बल है, फिर भी वृन्दावन वर्णन, बाल लीला वर्णन, राधा जी का नख शिख वर्णन, दान लीला, मान लीला नित्य विहार आदि नित्य वसन्त वर्णन, वर्षा वर्णन, गोवर्द्धन पर्वत वर्णन, होली, श्रीकृष्ण में माधुर्य भक्ति रस का उन्होंने सुन्दर रूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। स्वकीया भाव से पूर्ण शृङ्गार के इन वर्णनों को उज्ज्वल रस के अन्तर्गत ही लेना होगा। सुदामा चरित्र, प्रह्लाद चरित्र, गज ग्राह, बावनी लीला राम महिमा आदि विशुद्ध भक्ति परक होने के कारण शान्त रस की कोटि में ही स्थान पा सकेंगे। परन्तु विरहावस्था का वर्णन, कृष्ण सन्देश, गोपी उद्धव सम्वाद, गोपियों का विरह निवेदन, वियोग शृङ्गार के अन्तर्गत होने के कारण इनके वर्णनों को श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध का अनुकरण ही कहना चाहिए। भगवान राम का ओज गुणमय पतितोद्धारक रूप, उनकी शरणागत रक्षा, विरूद वर्णन, ऐश्वर्य भक्ति हैं तथा सीता एवं हनुमान की वार्ता में भाव-भक्ति फूट-फूटकर उमड़ती प्रतीत होती है।

अब माता मन जिनहि डुलावा।
धीरज धरौ भजौ सोई सति करि पति चिततैं न भुलावौ।।
विछुरन विरह वियोगी सुरति धरि अब तन कौं न जरावौ।
सोइ दुःख हरन करण-कारण प्रभु सुमिरि-सुमिरि सुख पावौ।।
जाकै पति रघुनाथ महाबल ताहि कहा पछितावौ।
परशुराम प्रभु प्रगट करौ अब मागौं आइ बधावौ।।[1]

सीता माता को इस प्रकार धैर्य देने वाले हनुमान को साहस और शौर्य की एकाएकी सहज अनुभूति होने लगती है। रावण की क्रूरता, उसकी अधर्म परायणता और सीता की विवशता की विकराल विभीषिका उनके मन में एक साथ उत्साह पूर्ण वीर भावों का प्रसार करने लगती है। इस स्थल पर वीर रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है—

---

1. परशुराम-सागर, सलेमाबाद वाली प्रति, पृ. 568

सोइ अब न पलटि पति बरत लजाऊँ।
परिहरि निज रघुनाथ महाबल हूँ न असुर आगे सिर नाऊँ।।
क्रोध अग्नि की झाल प्रगट करी दिन यक में बहुलंक जराऊँ।
करौ कनक पुर छार-छार नहीं ता ठाहर की धूरि उड़ाऊँ।।
शिव सेवा कीन्हें कौ जो फल सौ फल तुमकौ हूँ अबहि दिखाऊँ।
मारि असुर संघारि पलक मैं शिव कारणि सिर भेंट चढ़ाऊँ।।
एक दससीस बीस भुज अवहीं खण्ड-खण्ड करि प्रेत पठाऊँ।
परशुराम प्रभु राम सुमङ्गल देखि प्रगट पौरूष् जस गाऊँ।।[1]

नित्य विहार के अन्तर्गत रास वर्णन परम्परागत हैं। यद्यपि परशुरामदेव जी का यह वर्णन संयोग शृङ्गार की परिधि के ही अन्तर्गत है और उस पर रस पंचाध्यायी के प्रेम वर्णन की यथेष्ट छाप दृष्टिगत होती है—

मङ्गल देखिये हौ जहाँ हरि आनन्द स्वरूप।
निरखि-निरखि नख-सिख सुख उपजत वन राजत ब्रजभूप।।
जहाँ विविध समीर चलत-नित निर्मल मन, वांछित-सुखकारी।
तहाँ द्रुम गहिर सघन वन छाया विरहत वधू-विहारी।।[2]

परन्तु विशुद्ध नित्य-विहार के संयोग शृङ्गार मूल कतिपय छन्द उनकी रचना में प्राप्त हैं जो उनकी साम्प्रदायिक निष्ठा के प्रतीक कहे जा सकते हैं—

पौढ़िये नन्द-नन्दन राय।
सुख सेज सुन्दर स्याम प्रीतम राधिका उर लाय।
चोवा चन्दन अङ्ग लेपन कुसुम सेज बनाय।
परशराम प्रभु खनि आनन्द जन सुखदाय।।[3]

गोपियों ने उद्धव जी से जो विरह वार्ता की है वह वियोग शृङ्गार परक है। परशु-रामदेवजी ने इस विषय को लेकर अनेक छन्द रचे हैं जिनका कोई क्रम नहीं है। जब कभी कवि चेतना को थोड़ा अवकाश मिलता है वह गोपी उद्धव सम्वाद को तुरन्त उठा लेती है। समस्त ग्रन्थ में अनेक बार इस विषय का दो-दो, चार-चार बार प्रतिपादन हुआ है।

उधौ भली भई तुम आये।
हरि प्रीतम की कथा अनुपम हम चाहति तुम ल्याये।।[4]

---

1. परशुराम-सागर, सलेमाबाद वाली प्रति, पृ. 566
2. परशु राम सागर (सलेमाबाद वाली प्रति)
3. परशुराम-सागर, सलेमाबाद वाली प्रति, पृ. 682
4. वही, पृ. 631

गोपियो के साथ कवि की आत्मा विरहिणी गोपियों के स्वर में स्वर मिलाय प्रत्येक क्षण फड़फड़ाती प्रतीत होती है। इस स्थल पर उसकी उक्तियाँ विशुद्ध भक्ति मूलक होने के कारण शान्त रस के अन्तर्गत ही मानी जा सकती हैं। कवि स्वयं गोपियों के बीच में बैठा हुआ उनमें से ही किसी गोपी की वाणी में कह रहा है—

मधुप न मिलत माधौ मोहि।
हेत की हरि कथा अपणी क्यों कहत है तोहि।।
ज्यौं विविध सति ब्रह्मण्ड औसर पलट देत न छेह।
वरष मास दुपात निशि दिन करउत कासौं नेह।।[1]

परशुरामदेव और अलंकार योजना

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में सन्त-भक्तों को अलंकार के लक्षण ग्रन्थों का प्रणयन करना अभीष्ट न था। इस काल में अलंकार-प्रियता की प्रवृत्ति किसी भी काव्य में प्रकट नहीं होती। परन्तु भक्त कवि अलंकारों से अनभिज्ञ हो ऐसा भी कहना भूल होगी। विद्यापति, सूर, नन्ददास, तुलसी आदि की भक्ति-रचनाओं में अनेक अलंकारों का सफल प्रयोग हुआ है। अष्टछाप कवियों में नन्दददास का स्थान इसी दृष्टि से उच्च माना जाता था। प्रसिद्ध ही है—'और सब गढ़िया नन्ददास जड़िया।' कबीर, मीरां आदि की भी रचनाएँ अलंकृति से अछूती नहीं रही हैं। अलंकारों से सुसज्जित उनकी सूक्तियाँ प्रभावोत्पादक हो जाती थीं। रीतिकालीन कवियों की भाँति भक्तिकालीन काव्यकारों का उद्देश्य अलंकारों का लक्षण प्रकट करना न था। उनके ग्रन्थों में तो अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग ही हुआ है जिनसे उनकी रचनाओं में सुन्दरता आ गई है। परशुरामदेव के साहित्य में भी अलंकारों की यही प्रवृत्ति लक्षित होती है। परशुरामसागर में कई अलंकारों का सफल प्रयोग हुआ है।

अनुप्रास

अनुप्रास अलंकार स्थान 2 पर परशुरामसागर में प्रयुक्त हुआ है। अनुप्रास के छेक, वृत्ति, श्रुति आदि जितने भेद आचार्यों ने निरूपित किये हैं उनके उदाहरण परशुरामसागर में देखे जा सकते हैं। अनुप्रासों की प्रयास-रहित स्वाभाविक योजना यहाँ हुई है—

जीव कौं जंजाल जाल, खाय जाय है सुकाल,
है न कोई रछियाल, वादि ही बिलाय हैं।
इन्द्री कैं स्वारथि स्वादि, योंही वस्यो जात वादि,
आदर न अन्त आदि, दादि हूँ न पाय हैं।

---

1. परशुराम सागर, पृ. 753, छन्द संख्या 5

धाय गह्यों जम धारि, लियो है पछारि मारि,
डारि कैं कठोर खार, धार मैं बहाइ हैं।
प्रान परवसि पयो, जम कै जंजीरि जयो,
परसा सो भाँहि गयो, कूंण धौं छुड़ाय हैं।[1]
परसा कुल भजि बहि गये, बूड़ि भरम भव माँहि।
राम विकुल कुल भेंटि करि, हरि जनर प्रेम समाँहि।।[2]

श्लेष

बगुली बीणै मछिका, फिरि फिरि भौजल माँहि।
मान सरोवर प्रसराम, हंस मुकत फल खाँहि।[3]
भेख बराबरि प्रसराम,गुण कौ जुदौ बखा।
सीधो मिलसी नीर सौ, मिलै न फटिक पखाण।[4]

शब्द-अर्थ पर आश्रित रहने वाले तथा अर्थ चमत्कार प्रकट करने वाले अलंकारों को आचार्यों ने अर्थालंकार कहा है। अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक अलंकार प्रधान माने जाते हैं। सादृश्यमूलक अलंकारों का प्राण उपमालंकार है। सादृश्य अलंकारों में सदृशता कहीं उक्ति भेद से वाच्य होती है और कहीं व्यंग्य से। सादृश्य ही उपमा है जहाँ उपमेय उपमान का विधान होता है तथा उनकी विधि ही चमत्कारक होती है। सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग परशुरामसागर में अनेक स्थानों पर हुआ है। उपमा अलंकार का परशुराम-सागर में बाहुल्य है। परशुरामदेव ने परम्परागत उपमानों का प्रयोग किया है। चातक, मृग, मधुरिख, भ्रमर आदि उपमान स्थान-स्थान पर दिखाई पड़ते हैं-

उपमा

सुणि प्रीतम तुम सौं कहौं तैं मोह्यो मन मेरौ हो मोहन। टेक
ज्यौं चात्रग चिति रूति वसैं यौं हम उर धारि सुमिरन हो मोहन।
लग्यो सनेह सदा रहै सो नाहिंन विसरत हो मोहन।
नाद लीन मृग ज्यों आपण मौं सूंपि दयौ सबहि हो मोहन।
यौ हमरौं मन ता तन कौं लिए मोह्यो जात जहीं हो मोहन।
ज्यौं मधुरिख मधु कारणैं सर्वस सौपि दियो हो मोहन।

---

1. परबोध को जोड़ो – क.ग्र.परशु.
2. वहीं, 61 वां.ग्र.परशु.
3. वहीं, 98 वा.ग्र.
4. वहीं, 96 वा.ग्र.

यौ रसिया रस सौ रस्यौ जिनि मन दै मौलि लयो हो मोहन।
ज्यौं अलि कुसुम सुवास सौ बेध्यो लागि भजत हो मोहन।
यौं मन लोभी रस लेन कूँ हरि चरण कमल न तजत हो मोहन।[1]

महात्मा कबीर की भाँति परशुरामदेव जी का उद्देश्य जन-साधारण में एक और तो प्रेम-भाव उत्पन्न कर पारस्परिक विद्वेष दूर करना था और दूसरी ओर भगवान राम और श्रीकृष्ण की सगुण लीलाओं का गानकर उनमें भक्ति-भावना का प्रसार करना था। अत: कला उनके काव्य का साध्य नहीं केवल साधन थी। सीधी, सरल, स्पष्ट भक्ति में अपने भावों का अभिव्यक्त करना मात्र ही उनको इष्ट था। स्वाभाविक रूप से काव्य सौन्दर्य की जो उद्भावनायें उनके काव्य में सम्भव हो सकती थीं उन्होंने उनको ही ग्रहण करके सन्तोष किया है। यही कारण है कि सूर और तुलसी की भाँति काव्य सौष्ठव और माधुर्य की उत्पत्ति का न तो उनका प्रयास ही देख पड़ता है और न उसका आग्रह ही। कबीर की भाँति उदाहरण, दृष्टान्त और उपमा उनके काव्य में भरे पड़े हैं। सूर के से लम्बे रूपक लिखने में वे सिद्ध हस्त नहीं थे। अत: रूपकों का प्राय: अभाव है। सांग रूपक उन्होंने बहुत कम लिखे हैं। निरङ्ग रूपकों की अधिकता है। निदर्शना, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास और अन्योक्तियाँ उनके काव्य में पाये जाते हैं।

रूपक

काया खेत किसान मन, धीरज हरि को नाउं।
साधु सवद वरिखा मई, परसा सहज कमाउं।।[2]
मुख बाँवी जिह्वा भुजङ्ग, वाणी जो विष झाल।
परशुराम हरि भजन बिन, बकिबो केवल काल।।[3]

उत्प्रेक्षा

तब ही सब आनन्द हमारें।
जब ही रामचन्द्र चिन्तामनि वनकौ तजि निज भुवन पधारें।।
उज्ज्वल धवल प्रेम-पुर मण्डल उमगि नव तन मन न सँभारें।
मानौं सिंधु सनमुख वरिषा लै नीर भेंट सिंधुनी सिधारें।।[4]

अन्योक्ति

सूधे मारग मिरगड़ौ चात्यौ जाय निसंक।
प्रभु सौं सनमुख परशुराम, कहा जगत की संक।।[5]

---

1. 5 राग सारंग गे.प. परशु.
2. परशुराम सागर, पृ. 108
3. वही, पृ. 125
4. परशुराम सागर, सलेमाबाद वाली प्रति, पृ. 572
5. परशुराम सागर, वियोगी विश्वेश्वर, दोहा संख्या 738

निदर्शन

परशुराम सौ दिन सुफल, जिहि कीजै सत्सङ्ग।
सङ्ग न कीजिये जाहि दिन, सौ निफैल रस भङ्ग।।[1]

उदाहरण

ज्यौं वरिखा बिनु परशुराम जीव दुःखी सुख नाहिं।
त्यों प्राणी हरि नाम बिनु आवै फिर मरि जाहिं।।[2]

दृष्टान्त

अभी राज विनु परशुराम, शोभा लहै न रैन।
नर ऐसौ हरि भगति बिनु, ज्योति नहीं जा नैन।।[3]

छन्द विधान

गति, यति, लय, मात्रा, वर्ण, गण, चरणादि की, निश्चित व्यवस्था से जो रचना प्रकट की जाती है वह छन्दोबद्ध कही जाती है। अस्तु, कविता में प्रयुक्त होने वाले वर्ण, मात्रा, यति आदि के संघटन को छन्द कहते हैं। ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त में छन्दोत्पत्ति ईश्वर द्वारा बताई गई है। छन्द की गणना वेद के प्रमुख छः अंगों में की गई है—छन्द, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष और निरुक्त में छन्द को आदि पुरुष का चरण माना गया है—'छन्दः पादौ तु वेदस्य'। सामवेद के निदान सूत्र में छन्द का विशेष वर्णन हुआ है। छन्दशास्त्र का विस्तृत प्रतिपादन पिंगलाचार्य द्वारा हुआ तथा तभी से इसे पिंगल कहा गया। पिंगलाचार्य ने वैदिक तथा प्राकृत दोनों प्रकार के छन्दों का निरूपण किया है। वृत्तरत्नाकर, श्रुतिबोध, छन्दोमञ्जरी आदि पिंगल शास्त्र के अन्य प्राचीन ग्रन्थ हैं। हिन्दी भाषा में चिन्तामणि त्रिपाठी का छन्द विचार मतिरामकृत छन्द-सारपिंगल, भिखारीदास का छन्दार्णव तथा छन्द प्रकाश, पद्माकर का छन्दमञ्जरी, भानु कवि का रूपविलासपिंगल, जगन्नाथ प्रसाद भानु का छन्द प्रभाकर, रामनरेश त्रिपाठी कृत पद्य-रचना, परमानन्द का पिंगल-पीयूष उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं।

छन्दोबद्ध रचना भावानुभूति को उकसाने वाली तथा रसोत्कर्षक होती है। छन्द भी इस प्रकार रस-उत्कर्ष के सहायक तत्त्व हैं। संगीत के क्षेत्र में जिस प्रकार विशिष्ट राग-रागिनी समय विशेष पर अधिक प्रभावोत्पादक होती है उसी प्रकार विशिष्ट छन्द-विधान से कविता भी समय विशेष पर अधिक प्रभावशाली बन जाती है। हिन्दी में शान्त-करूण-मधुर रस की कविता के लिए मन्द्राकान्ता, द्रुतविलम्बित, शिखरिणी, मालिनी, मतगयंद, कवित्त, वीर-रौद्र-भयानक के लिए त्रिभंगी,

---

1. परशुराम सागर वियोगी विश्वेश्वर, दोहा संख्या 122
2. वही, दोहा सं. 1086
3. वही, दोहा संख्या 1087

भुजंगप्रयात, वंशस्थ आदि को अधिक उपयुक्त माना है। नीति उपदेश के लिए छप्पय कुण्डलिया, दोहा, रोला, सोरठा, चौपई, चौपाई का प्रयोग हुआ है। भक्तिकाल में सवैया, कवित्त, चौपाई, दोहा आदि छन्दों का अधिक प्रचलन रहा है तथा आधुनिक युग में ताटंक, वीर, अखिल, पद्धिटिका विशेष रूप से प्रचलित हैं। यों छन्द-मुक्त कविता भी प्रभावशालिनी बन जाती है। भावुक हृदय से कविता के स्रोत स्वत: ही उमड़ पड़ते हैं। वाल्मीकि के हृदय से क्रौंच-वध के कारण ही करुणरस की काव्यधारा फूट पडी थी। संस्कृत कवियों ने भी छन्द-मुक्त-काव्य परम्परा का निर्वाह किया है।

सर फिलिप सिड़नी ने लिखा है 'जिस प्रकार चोगा पहनकर कोईव्यक्ति वकील नहीं बन सकता उसी प्रकार छन्दों के अस्तित्व से कविता की उत्पत्ति सम्भव नहीं है।' परन्तु काव्य में छन्द का अस्तित्व उसी प्रकार है जिस प्रकार कि संगीत में राग-स्वर की सत्ता है। महाराज भोज ने कण्ठाभरण में कहा है—

निर्दोषं गुणवत् काव्यमलंकारैरलंकृतम्।
रमात्मकं कवि: कुर्वन् कीर्ति-प्रीतिं च विन्दति।

अर्थात् रसात्मक, दोषरहित, गुण अलंकार सहित कविता करने वाला कीर्तिवान् और सबका प्रेमी बन जाता है। गुणादि की भाँति ही छन्द और काव्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कवि पन्त के अनुसार—'कविता और छन्द में घनिष्ठ सम्बन्ध है कविता हमारे प्राणों का संगीत है छन्द हृत्कंपन। कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते हैं जिसके बिना वह अपनी ही बन्धनहीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है उसी प्रकार छन्द भी अपने नियन्त्रण से राग का स्पन्दन-कम्पन तथा वेग प्रदान कर; निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल; सजल कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं वाणी अनियन्त्रित हो जाती हैं, तालयुक्त हो जाती है। उसके स्वर में प्राणायाम रोमों में स्फूर्ति आ जाती है; राग से असम्बद्ध झंकारे एक वृत्त में बँध जाती है; उनमें परिपूर्णता आ जाती है। अत: छन्द कविता का अनिवार्य तत्त्व है। छन्द परम्परानुसार उनका काव्य दोहा, चौपाई, सवैया आदि छन्दों से निर्मित हुआ है। छन्द योजना के अनुसार परशुरामसागर के चार खण्ड हैं—

1. दोहे में रचित 'वाणी-ग्रन्थ'।
2. कवित्त-सवैया आदि में रचित चरितावलियाँ।
3. दोहा, चौपाई, चौपई में रचित 'लीलाएँ'।
4. लयात्मक—गेय पदावली।

(क) वाणी-ग्रन्थ—परशुरामदेव का साखी-ग्रन्थ दोहा छन्द में लिखा गया है। यहाँ 250 जोड़े हैं, जिनमें दोहों की संख्या 2218 हैं। छन्द कला की दृष्टि से दोहे उत्कृष्ट कोटि के हैं।

(ख) चरितावलियाँ—परशुरामसागर के दूसरे-खण्डमें दशावतार-रघुनाथ-श्रीकृष्ण-अवतारचरित, सुदामा-प्रह्लाद भक्त चरित आदि ग्रन्थ संगृहीत हैं। इस खण्ड में वर्णिक तथा मात्रिक छन्दों का विधान है। मुख्य रूप से घनाक्षरी दण्डक; दुर्मिल (चन्द्रकला) मत्तगयंद (इंदव) मदिरा आदि सवैया-छन्दों का प्रयोग हुआ है। मात्रिक छन्दों में दोहा, उल्लाला (अर्धसम) तथा छप्पय (विषम) को ही अपनाया गया है। यहाँ हम इन छन्दों के कतिपय उदाहरण देते हैं—

मात्रिक अर्धसम :

दोहा (लक्षण 13, 11 = 24 मात्राएँ तथा चरणान्त में लघु)

भारत अठारह अष्टकुल, नवकुल सायरसात।
नदी जु न वसै जीव जग, जनमत जमी समात।।[1]

(लक्षण 15, 13 = 28 मात्राएँ, सम चरणों में 13 तथा विष में 15)।

परसा प्रभु की माया बड़ी, जिनपि कीनों जेर जिहान।
केई त्रीया केई राज मद, केई छल करि मान।।[2]

मात्रिक विषय—छप्पय छन्द में प्रथम चार चरण रोला के तथा अन्तिम दो चरण उल्लाला के होते हैं। इस छन्द का प्रयोग अथ-छन्द-कवित्त, प्रथम छंद, गजग्राह नामक ग्रन्थों में हुआ है। लगभग 70 छप्पय इन ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। गजग्राह के अतिरिक्त ग्रन्थों में छप्पय का विधान अव्यवस्थित है। 'प्रथम छन्द' ग्रन्थ पूर्ण रूपेण इसी छन्द में लिखा हुआ है। छन्द कुछ अंशों में अस्त व्यस्त हैं। प्रतीत होता है कि लिपि करते समय थोड़ी बहुत असावधानी रही है। छप्पय का उदाहरण—

कहूँ चराई गाय, कहूँ गिरवर कर धारै।
कहूँ पूरय चीर, कहूँ गज ग्राह उबारै।
कहूँ कहूँ बहु भेष, हेति भगतनि कैं धारै।
कहूँ कहूँ सुरकाज, सारि बहु असुर संघारै।
करी सकल की टहल हरि (हरी) जहि,
जहि जिनि जिनि (हरि हरि) कही।
परसा प्रभू हमरो कह्यो, करत (न)
नपाहितं (क्यौं) धीरौ रही।।

---

1. क.ग्रं. परशु. उल्लाला
2. परवोध-क.ग्र. परशु.

वर्णिक छन्द (सम)—वर्णिक छन्दों का प्रयोग दशावतार, रघुनाथ श्रीकृष्ण चरित, प्रह्लाद-सुदामा चरित आदि ग्रन्थों में हुआ है। दशावतार ग्रन्थ के शीर्षक पर ही ग्रन्थकार ने 'सवैया' छन्द का नामोल्लेख किया है। कतिपय सवैया छन्दों के उदाहरण देखिये।

सवैया—23 से 26 तक वर्णों की संख्या वाले वर्णिक छन्द सवैया की कोटि में रखे जाते हैं। इनमें मदिरा, सुरेन्द्रवज्रा, सुमुखी, इन्दव (मत्तगयंद) मालिनी, गंगोदक, दुर्मिल (चन्द्रकला), अरसात, किरीट, मकरन्द (वास) सुन्दरी आदि प्रमुख सवैया छन्द गिने जाते हैं। परशुरामदेव के इन ग्रन्थों में दुर्मिल अथवा चन्द्रकला सवैया का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। यहाँ लगभग 50 दुर्मिल सवैया उपलब्ध होते हैं। दुर्मिल (चन्द्रकला) लक्षण आठ सगण; वर्ण-संख्या 24 यथा—

रघुनाथ कहै अबकै न मिटै मुख तैं निकरी तबतैं जु सही।
मिल्यौ जबि आय पर्‌यो निज पाय तही हित तांकि वदै न कही।
सबकी दु:ख टारि जु बात विचारि निर्भै करि लंक निसंक दई।
प्रसराम कहै प्रभुराम सही जँकि त्याग कि टेक सदा निबही।।[1]

सवैयाछन्दविधान की दृष्टि से 'श्रीकृष्ण चरित' ग्रन्थ अनुपम है। यहाँ भी दुर्मिल सवैया विशेष रूप से गृहीत हुआ है। यथा—

प्रगटै नन्दनन्दन ग्वाल लिए जित ही तित प्रीत सुधाय गहीं।
बनमाँहिं रुकी न बसाय कछू अति संकट औघ्ट घाट जहीं।
करियै कहा और उपाय न कौ हरि ठाड़े हुतै सबि आइ तहीं।
परसा सुख सिंधु समागम होइ सलिला सखी संग छाँडि बही।।[2]

इसी प्रकार विशुद्ध एवं स्वतन्त्र रूप में दुर्मिल सवेया या प्रयोग नृफल विभै (5, 10, 13 आदि) रघुनाथ चरित, श्री कृष्णचरित, प्रहलादचरित में अनेक स्थलों पर हुआ है।

मत्तगयन्द

(मालिनी, इन्दव) लक्षण सात भगण और अन्त में दो गुरु तथा वर्ण संख्या 23 यथा—

इन ग्रन्थों में मत्तगयंद के कतिपय प्रयोग उपलब्ध हैं, परन्तु छन्द विधान कुछ अव्यवस्थित सा है। निम्न उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

---

1. रघुनाथ चरित – क.ग्र. परशु.
2. श्रीकृष्णचरित – क.ग्र. परशु.

आज कौ (कुँ) आज कछु करि कारिज काल्हि कौ (कुँ) काल्हि सुधारि है (ह) सोई।।

आज कौ (कुँ) काज सुधरि न जान्यो (ण) तौ (त) काल्हि कै (कुँ) काज कहा सुख होई।।

आज कौ (कुँ) काज सर्यां सुख पाइय काल्हि कै (कुँ) काजसौं (सुँ) काज न कोई

काल्हि कि आस कसी परसा जन आज तां (कुँ) राज कहे सब कोई।।[1]

सुन्दरी सवैया के भी एक एकाध उदाहरण दीख पड़ते हैं। सुन्दरी सवैया में आठ सगण; अन्तिमगुरु तथा कुल वर्ण 25 होते हैं—

तजि स्वारथ स्वाद विवाद बिषै रस रामहि राम रम्यो जहि भावै।
विसरै नहिं नाम निमेष भर्यो भगता भगवंत निरन्तर गावै।
निरभै जन भाव भगति लियै अपनौं नित नेम मनंम दुरावै।
परसा जनजीवनि जाँणि सही अपनौं मन राम बिना भरमावै।। (नृ.वि.)

रस विवेचन—परशुराम देव के काव्य में संयोग से अधिक विरह भावना का प्रकाशन हुआ है। नारद ने विरह-भक्ति को 'परमविरहासक्ति' कहा है। निर्गुण-भक्ति-मार्ग में वह साधना की परमावस्था कही गई है तथा सगुण-मार्ग में भी विरह-कोटिक दाम्पत्य-भक्ति कोअधिक महत्त्व दिया जाता है। भागवतोक्त गोपीभक्ति में भी विरह की प्रधानता है। श्रीकृष्ण गोपियों को संयोग लीलाओं का आनन्द-प्रदान कर उनसे इसीलिए विलग हो जाते हैं कि उनकी संयोगजनित आसक्ति, मोह, काम-वासना विरहाग्नि में जलकर स्वर्णवत निर्मल एवं कांतिमान हो जायँ। इसी विरह-भक्ति की अनन्य-भावना, प्रेम-गाम्भीय के समक्ष उद्धव जैसे ज्ञानी भक्त को भी परास्त होना पड़ा। हम यहाँ यह कहना चाहते हैं कि परशुरामदेव के निर्गुण सगुण दोनों प्रकार के भक्तिपक्षों में विरह-भावना की प्रधानता है। उनके विरह पदों में वे स्वयं एक विरहणी के रूप में चित्रित हुए हैं उनकी विरह-भावना में गहन-पीड़ा, तीव्रता-वेदना, कारूण्य, आत्मसमर्पण, कातरता, दैन्य आदि सभी प्रकट हुए हैं। उनकी गोपी-विरह-भक्ति का विवेचन भ्रमरगीत प्रसंग में हुआ है, जो विप्रलंभ शृंगार की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है।

वियोग-शृंगार की दृष्टि से प्रस्तुत पद अवलोकनीय है। श्रीकृष्ण गोपियों को छोड़कर मथुरा चले गये हैं। उनका चित्त भी उन्हीं के साथ है। चित्तचोर मोहन प्रीति बन्धन को तृण की भाँति तोड़कर निर्मम बन गये हैं। अब गोपियों के प्राण उनके पति

1. नृफल विभै क.ग्र. परशु.

बिना पलभर भी जीवित न रह सकेंगे। वे अपने अभिमानी मन को कोसती हैं। जो मन आज उनकी स्मृति के उन्माद में वन-कुंजादि में कृष्ण को ढूँढ रहा है पहले श्याम को मनाकर प्रेम बन्धन में न बाँध सका। इस प्रकार का पश्चात्ताप करती हुई वे कृष्ण का ध्यान करती हैं। यहाँ विप्रलम्भ शृंगार रस की सुन्दर व्यंजना हुई है—

ले गये मोहन मन कौं चोरि।
अब रहन न प्राण निमस ता पति विण भई विकल मति मोरि। टेक
करत विलास रास रुचि रचि हित कर सों कर जोरि।
सु तजत न लागि बिरंब दिनक मैं माह तिणां ज्यौं तोरि।।
हूँ मुरझि परि बेहाललाल बिण भई भ्रम वसि खोरि।
मिट्यौ न मन अभिमानमनावत सक्यो न स्याम बहोरि।।
अब इतवत ढूँढूत वन वेलि द्रुम साखा फल फोरि।
सों सुखसिंधु न पावत सलिता सूकत बीचि बल छोरि।।
धरि-धरि ध्यान संभारत सोचत लोचत नैन निहोरि।
परसराम प्रभु पकरि न राखै बाँधि सुप्रेम की डोरि।।[1]

यहाँ कृष्ण आलम्बन हैं और गोपियाँ रति की आश्रय हैं। 'करत विलास रास रुचि रचि हित कर सौं कर जोरि' से व्यंजित पिय की चेष्टाओं की स्मृति उद्दीपन है। मुरझि परि बेहाल लाल बिन से व्यंजित उदासी तथा धरि धरि ध्यान संभारत सोचत लोचत नैन नहोरी से व्यंजित उन्माद में आँखें मूँदना, चिन्तन करना तथा एकट देखना अनुभाव है। राहत न प्राण निमस से व्यंजित मरण तजत न लगि बिरंब छिनक मैं मोह तिणां ज्यों तोरि से व्यंजित 'ग्लानि' संचारी भाव है। इस प्रकार विभावादि से पुष्ट रति स्थायीभाव की यहाँ शृंगार रस में सिद्धि हुई है।

श्याम के बिना गोपियों को घर वन कुछ भी नहीं सुहाते। संयोग के समय जो प्रकृति के उपकरण सुखदायी जान पड़ते थे वही आज वियोग में वेदना को तीव्रतर कर रहे हैं। प्रकृति का क्रम ही पलट गया है। मेघ, पिक, चातक, मयूर उनकी हृदय-व्यथा का वर्धन कर रहे हैं। अब ता इन बैरियों से बचना दुर्लभ है। श्याम को कोई जाकर उनकी इस दारुणावस्था का ज्ञान करा दे पर ऐसा कोई सहायक भी नहीं दीख पड़ता जा उनकी व्यथा को बँटा ले। वियोग शृंगार का कितना सुन्दर चित्रण हुआ है—

मोहन लाल हो मोहि चितवत दिन जाई।
कब, देखिहूँ हरि स्याम प्यारो।

---

1. 48 रा.साँ.गे.प.

जोई हूतो तन प्राण हमारो।
तां बिनां हम दु:खितनदिनगण तैं रैनि बिहाई। टेक
घण मेघ सबल उमगि आय। वरिखै जल सकल छाये दामिनी मुसकाय।
धीरे-धीरे घरबन रहत न सुहाय। मोहि स्याम संदेस न कहै कोय।
सलिता बहै द्रुम मैं दूरि, बोलत चात्रण सुनाय टेरि।
बोलहिं पिक मोर मधुर गावै। ब्रजवासिनी सुर सोभाय न सुहावै।
होत है तन मन प्राण खीन। तुम बिन अब पिय जनम हीन।
होत है तन मन प्राण खीन। तुम बिन अब पिय जनम हीन।
परसराम इहि बार गाय। प्रभु कबहूँ मिलागे आय।।[1]

यहाँ आलम्बन है श्रीकृष्ण और गोपियाँ है रति की आश्रय। चात्रण, पिक, मोर, मेघ आदि प्रकृति के उपकरण उद्दीपन हैं। 'जोई हूतो तन प्राण प्यारे' से दिव्य गुण-गान तथा 'हम दु:खितन दिनगण तैं रैनि बिह्राई' से व्यंजित देन्य-दशा अनुभाव है 'होत है तन प्राण खीन' से व्यंजित व्याध संचारी भाव है। अत: विरह श्रृंगार की सांगोपांग व्यंजना हुई है।

प्रकृति के उद्दीपन-चित्रण में श्रृंगार के वियोग पक्ष का मार्मिक वर्णन हुआ है। इस दृष्टि से 'स्याम सघन वर्षा रूति आई' नामक निम्न पद अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है—

स्याम सघन वर्षा रूति आई।
देखि घटना घनधोरि चहुँदिसि पावस प्रीति सवाई।
बोलत मोर बूँद विष लागत हरि बिन कहु न सुहाई।
कवण आधार जीवैं हम विरहनि पति पतियाँ हूँ न पठाई।।
तुम अति चतुर सुजान सिरोमनि हम्ह अधम अजात कहाई।
परसराम प्रभु तजि सबि औगुन मिलि मोहन सुखदाई।।[2]

प्रकृति चित्रण

प्रकृति मानव की आदि सहचरी है। मानव सृष्टि की उषवेला में जब सर्वप्रथम बार निहारा होगा तो उसे प्रकृति का ही साहचर्य एवं सहयोग प्राप्त हुआ होगा। इस प्रकार अनादि काल से प्रकृति और मानव का घनिष्ठ एवं अविच्छिन्न सम्बन्ध होने के कारण प्रारम्भ से ही कवि द्वारा प्रकृति की अवतारण साहित्य में भी होती आई है। वैदिक ऋचाओं में उषा, मरुत, इन्द्र, वरूण, सूर्य आदि प्रकृति के विविधरूपों का

---

1. परशुराम सागर से समुद्धत
2. परशुराम सागर 6 मल्हार गे.प.

स्तुत्य-वर्णन हुआ है। इन उपयोगी तत्त्वों का ज्ञान एवं सौन्दर्य बोध होते ही मानव हृदय ने आश्चर्यान्वित होकर प्रकृति की भावपूर्ण वन्दना की है। महाकाव्य में प्रकृति की अवतारणा वाल्मीकीय रामायण एवं महाभारत से मानी जाती है। यहाँ प्रकृति के मनोहर चित्र उपस्थित किये गये हैं। प्रकृति और मानव जीवन का तादातम्य संस्कृत काव्यों में प्रकट हुआ है।

हिन्दी के आदिकालीन साहित्य में संस्कृत के महाकाव्यों का सा प्रकृति वर्णन हमें चन्दरवरदाई के पृथ्वीराज रासो में दिखाई पड़ता है। विद्यापति-जायसी ने प्रकृति के उद्दीपन रूप को विशेष रूप से अपनाया है। भक्तिकाल में सूर, तुलसी आदि अनेकानेक कवियों ने प्रकृति का सुन्दर वर्णन किया है, यहाँ प्रकृति के आलम्बन, उद्दीपन आलंकारिक एवं उपदेशात्मक चित्रण ही प्रचुर मात्रा में हुए हैं। रीतिकाल में प्रकृति चित्रण केवल उद्दीपन के रूप में प्रकट हुआ। सेनापति का क्लिष्ट ऋतु वर्णन उल्लेखनीय है। केशवकृत रामचन्दिका का प्रकृति वर्णन वास्तव में संस्कृत महाकाव्यों की पद्धति का है।

साहित्याचार्यों एवं आलोचकों ने प्रकृति चित्रण कई प्रकार का माना है।

(1) **आलम्बन**—यथातथ्य रूप में प्रकृति का चित्रण है। (2) **मानवीकरण**—प्रकृति में मानवीय भावनाओं एवं व्यापारों का आरोपण। (3) पृष्ठभूमि के रूप में मानवीय भावनाओं एवं कार्यों के अनुकूल प्रतिकूल प्रकृति चित्रण (4) बिम्ब प्रतिबिम्बरूपमें मानवीय भावनाओं एवं कार्यकलापों के सादृश्य प्राकृतिक व्यापारों का चित्रण (5) प्रतीकात्मक रूप-भावसाम्य के आधार पर प्रकृति के उपादानों को प्रतीक मान कर चित्रण करना (6) उद्दीपन-संयोग वियोगावस्थाओं में नायक-नायिका के भावों को उद्दीप्त करने वाला प्रकृति चित्रण। (7) उपदेशात्मक, (8) आलंकारिक, (9) रहस्यात्मक, (10) दूत अथवा सन्देशवाहक के रूप में प्रकृति चित्रण। परशुरामदेव का रचनाकाल हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल था। भक्त कवियों ने प्रकृति के आलम्बन, उद्दीपन तथा आलंकारिक चित्रण को ही अपनाया है। भक्तों को जहाँ कहीं अवसर मिला उन्होंने अपने आराध्य के दिव्य-धाम-क्रीड़ास्थल की प्रकृति-शोभा का अनुपम वर्णन किया है।

गोवर्धन यमुनाकगार, वर्षा-बसन्त में वृन्दावन की बहार आदि के अनेक वर्णन इसी प्रकार से प्रकट हुए हैं। प्रकृति के इस आलम्बन रूप को शुद्ध प्रकृति चित्रण भी कहा गया है तथा इसके कोमल एवं रौद्र दो रूप माने गये हैं। भक्त कवियों के आलम्बन चित्रण में प्रकृति के रम्य रूप के दर्शन होते हैं। राधाकृष्ण का नित्य विहार, गोपी विहार, रास क्रीड़ा, जलविहार आदि विभिन्न लीलाओं के चित्रण में प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण हुआ है। रास की शरद विभावरी का चित्रण अनुपम है। झूला,

हिंडोला, होली–फाग आदि के वर्णन इसी कोटि के हैं। गोपियों के विरह वर्णन में प्रकृति का उद्दीपनकारी रूप उल्लेखनीय है। श्रृंगार एवं नखशिख वर्णन में प्रकृति का अलंकारिक चित्रण हुआ है।

परशुरामदेव ने आलम्बन रूप में प्रकृति–चित्रण किया है। प्राकृतिक दृश्य, व्यापार, उसके रूप रग, कार्य–कलाप एवं परिस्थितियों के सूक्ष्म संश्लिष्ट एवं सांगोपांग वर्णन द्वारा पाठक के हृदय में प्रकृति–अनुराग, साहचर्य एवं नैसर्गिक आनन्द का उद्बोधन कर देना ही प्रकृति का आलम्बन वर्णन कहा जाता है। यहाँ बसन्त–विलास–लीला का वर्णन करते हुये परशुरामदेव ने प्रकृति का आलम्बन चित्रण किया है। बसन्त मास में नव पल्लव, किसलय से सजे तरु वन की शोभा बढ़ा रहे हैं। कोकिल भ्रमर का नाद हो रहा है। सब दिशायें सोरी–सुगन्ध से परिपूर्ण हैं। धरती पर आनन्द की वर्षा हो रही है। हरिकंत के साथ नव नागरियाँ नव–नव प्रकार से विलास करती हुई नव–नव रस लूट रही हैं। उनका आनन्द अलौकिक अनन्त और असीम हैं—

वन फूले अति सोभहिं आयो री सखी मास बसन्त।
नानारंग वास नवी नवी नव नव तर पल्लव विगसन्त। टेर
नव नव सुर कोकिल बोलहिं गुंजित अति मधुकर मैमंत।
पंखी बहु वाणी चवै गुण गण नव नव गावै सुर संत।।
नव नव किसलै दल बीनहीं नव नागरी कर भरि वरिखंत।
नव नव संगति नव नहे सों नव नागर नव रस विलसंत।।
रति नाइक रूति विहरहीं राजित अति तामै हरिकंत।
परसराम प्रभु भजि लीजै हरि सुख सब सौभा कौ अंत।।[1]

प्रकृति प्रति पल नव–नव–रंग, साज–सज्जा–सौन्दर्य धारण करती रहती है। क्षण–क्षण में उसके पुरातन वेश, आँगिक परिधान बदलते रहते हैं। भारत की प्रकृति इस दृष्टि से अपनी विशिष्टता रखती है। ग्रीष्म, वर्षा, शरद, शिशिर, हेमन्त, बसन्त में उसका नवीन श्रृंगार एवं अनोखी सज्जा से उसका सौन्दर्य कौमार्य निखर उठता है षट् ऋतुएँ बारह मास का कालयापन करती हैं। क्रमश: दो मास में एक ऋतु बाल्य, कौमार्य, जरा की इन तीन अवस्थाओं को पार करती है। इस प्रकार यहाँ प्रत्येक मास में प्रकृति का नवीन रूप देखने को मिलता है। अत: यहाँ के कवियों की लालसा प्रतिमास की प्रकृति सुन्दरी का चित्रण करने की ओर भी रही है। संस्कृत साहित्य की भाँति हिन्दी का साहित्य भी प्रकृति के षट्–मासी, बारहमासी चित्रणों से भरा पूरा है। विद्यापति जायसी, सूर, सेनापति, बिहारी आदि के काव्य इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

---

1. परशुराम सागर, 7 राग सारंग, गे.पे.

परशुरामदेव के मल्हार पदों में बारह-मासपद्धति का प्रकृति चित्रण किया गया है। बिरहण गोपियों का विरह वर्णन करते समय कवि ने प्रकृति का आलम्बन–उद्दीपन रूप ग्रहण किया है। भादो आसोज का मास वर्णन अवलोकनीय है—

सखि वरिषत भादूँरी मास सर सलिता जल पूरिया।
उर विहंसत हरि चीत नैन चुवत चपलनि चूरिया।
चपला चहूँ दिसी अधिक चमकति मधुर सुर धणहर करै।
मोर कोकिल चवै चारंग विरहनी को बल हुरै।
हरि न प्रीतम निकटि अति दुख दरद हरन सुदूरिया।
परसा प्रभु बिन सुख न सोभा भादू रूति जलपूरिया। विश्राम।
सखी प्रगट भयोरी आसौज हरिन अवधि आय भीर दई।
विलपत हम हरि हीण भुवराजित गहवर भई।
भई मुक्ति जल मिलि सकल सोभित सुफल द्रुम वेलि सुखी।
विथा अपनी कहै काँसू अबल हम हरि बिन दुःखी।
पंख देखत दिन वितीत अवधि बदि आसौज लूँ।
करत प्रभु कीआस परसा प्रान तन वासयौ जलू विश्राम।।[1]

यहाँ प्रकृति का उद्दीपन रूप विशेष रूप से गृहीत है। जब प्रकृति का आलम्बन रूप मन में अन्तर्हित भाव एवं मनोदशा को उद्दीप्त करने लगता है तो वह चित्रण उद्दीपन रूप में माना जाता है। यहाँ कवि प्रकृति के अनेक उपमानों व्यापारों एवं अलंकारों के सहारे मनोदशा के साम्य वैषम्य चित्र उपस्थित कर व्यक्त भाव को उद्दीप्त करता है।

काव्य शैली और काव्य-भाषा

परशुरामदेव जी नेअपने समय में प्रचलित सभी काव्य शैलियों पर अपना अधिकार दिखलाया है। उनका परशुराम सागर इन काव्य शैलियों के उदाहरणों से परिपूर्ण है। उनके समय में निम्नलिखित काव्य शैलियों का प्रचलन था।

1. वीरगाथा काल की छप्पय पद्धति।
2. निर्गुणी कवियों की दोहा शैली एवं प्रणाली।
3. प्रेम गाथाकारों की दोहा चौपाई पद्धति।
4. चारण भाटों की कवित्त सवैया शैली।
5. कृष्ण भक्त कवियों की पद शैली।

---

1. परशुराम सागर विश्राम, 2 राग मल्हार, गे.प.

उन्होंने भगवान राम का कीति गानकरने के प्रसङ्ग में वीरगाथा काल की छप्पय पद्धति का प्रयोग किया है।[1] निगुण कवियों की शैली तो यत्र-तत्र अत्यन्त व्यापक और विस्तृत रूप से अपनायी गई है।[2] इसके छन्दों की मात्रा सबसे अधिक है। हरि लीला बाल लीला एवं सिद्धान्त वर्णन में दोहा चौपाई शैली का उपयोग किया है। सुदामा चरित्र राम महिमा, भक्ति की व्यापकता आदि प्रसङ्गों में चारण भाटों की कविता सवैया शैली में वर्णन किये हैं।[3] सूर प्रभृति कृष्ण भक्त कवियों की पद शैली उस समय सबसे अधिक प्रचलित रही होगी इस कारण गोपी उपालम्म भगवान् का शौर्य गान, ब्रजलीला, सीता हनुमान सम्वाद सत्सङ्ग, साम्प्रदायक आचार आदि प्रसङ्गों में यह शैली प्रयुक्त की गई है।[4] शैली के सम्बन्ध में भी उनका समन्वयात्मक दृष्टिकोण रहा है।

काव्य भाषा

काव्य भाषा की दृष्टि से भी परशुरामदेव जी महान् कवि हैं। उनके समय में ब्रज भाषा और अवधी दोनों ही काव्य भाषा के पद पर आरूढ़ थीं। कुछ ही पूर्व महाकवि जायसी अपने प्रेमाख्यानी काव्य 'पद्मावत' की रचना प्रारम्भ कर चुके थे[5] और रामचरितमानस और परशुराम सागर की बहुत कुछ रचना साथ-साथ हुई। सोरौं अयोध्या और काशी में निवास करते हुए तुलसीदास जी मानस, गीतावली, कृष्ण गीतावली विनय पत्रिका की रचनायें पश्चिमी हिन्दी में कर रहे थे और जायसी अपने काव्य के लिए पूर्वी हिन्दी का एक प्रचलित रूप अपना चुके थे। परशुरामदेव जी का निवास स्थान एवं प्रचार स्थल तुलसीदास जी के भाषा क्षेत्र के निकट पड़ता था। अत: उन्होंने भी पश्चिमी हिन्दी के सभी रूपों को अपने काव्य में प्रयुक्त किया है। ब्रजभाषा पर उनका अपूर्व अधिकार था यह परशुराम सागर के विविध प्रसङ्गों से भली-भाँति प्रकट होता है। ब्रजभाषा क्षेत्र में उस समय में पिंगल में रचनायें हो रही थीं। इसी का एक दूसरा रूप राजस्थानी में था जिसे राजस्थान के कविगण प्रयुक्त कर रहे थे। परशुरामदेव जी नेअपने प्रथम छन्द के जोड़ा, नाथ लीला, निजरूप लीला का अधिकांश भाग राजस्थानी में ही लिखा। इस प्रकार ब्रजभाषा और राजस्थानी दोनों भाषाओं का प्रयोग उन्होंने किया है। यही तक नहीं मुसलमान शासकों के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण उस समय धीरे-धीरे उर्दू का भी प्रसार था। हिन्दू और मुसलमानों में

---

1. परशुराम सागर, सलेमाबाद वाली प्रति, पृ. 38, पद संख्या 375
2. परशुराम सागर, वियोगी विश्वेश्वर, दोहा संख्या 719, 723
3. परशुराम सागर, सलेमाबाद वाली प्रति, पृ. 385-386
4. रशुराम सागर, सुदामा चरित्र की जोड़ी, छन्द संख्या 6
5. परशुराम सागर, सुदामा चरित्र की जोड़ी, पृ. 754, छन्द संख्या 8, 11

समन्वय की दृष्टि से वे हिन्दी के साथ उर्दू का समन्वय भी आवश्यक समझते थे, अतः उर्दू से प्रभावित ऐसे शब्द उन्होंने लिखे हैं जिनके द्वारा उन्होंने मुसलमानी धर्मोपासना की पारिभाषिक शब्दावली के द्वारा अपने उपास सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। खड़ी बोली के शब्दों को यत्र-तत्र उन्होंने अपनाया है।

परशुरामदेव जी की भाषा का सामान्य ढाँचा यद्यपि ब्रज का है, परन्तु उसमें राजस्थानी, उर्दू, खड़ी बोली और अवधी के शब्दों को उदारता से अपनाया गया है। उनकी कुछ रचनाओं को तो विशुद्ध राजस्थानी अथवा उर्दू की रचनायें कहा जा सकता है। उनके शब्द चयन में तत्सम शब्दों की अपेक्षा तद्भव शब्दों का विशेष प्रयोग हुआ है। देशज शब्द भी बराबर आते रहे हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त उर्दू और राजस्थानी के कुछ शब्द यहाँ पर प्रस्तुत किये जाते हैं।

उर्दू शब्द—

बहिश्त, खुदा, मुसलमान, मीर, कलमा, हक, जमीं, आसमान, दलाला, दोजब, अताहक हक, हलाल, हराम, खुदाम, बरहाल, करदी, दरगाह, दीन, औलिया, दर जोरे गरीबी सुन्नति काजी, मसीत, नमाज, गुदारिये, माहमीरा, महरवा, सेखतहाँ, सिरदार, वे परदाँ, दर्द, दिल, दरिया, दीदार, ददिस, आमिल, हिन्दू और तुरुक, चिराग।

राजस्थानी शब्द

आवरण नाण, जाणी, कीया., जासी, राख्याँ, चेत्याँ, आपणां, कहयाँ, सुणयाँ, बड़ी तरणां, परवाण, सेवतां, पिवाणी, त्यौलाभ, पाण्, नेड़ौ, विनाणी, भिरगड़ी, रहसी आदि।

तद्भव

पेय, हिरदय, परसराम, परसा, नाउं, करता, खलक, मारग, करम, हंखि, सोका, जासुर, हिलचो, निफैल, खीर, अगिनि, रता, परभाति, दध्रि तऊ, जुगिजुगि, नित, सुनेम, भगति, दारिद्र, सनेह, जनम, पग, सेवक, जगनाथ, बाँदर, सागर, धनतरि, नेह, सिंध, मृगवाग, जामा, छत्र, सुर्ग, समै, दगध, आध्, मेलौ, कहाँ।

परशुरामदेव जी ने भावों की अभिव्यक्ति सीधे सरल ढंग से की है। भाषा का बोलचाल का जैसा रूप उन्होंने जन साधारण में प्रचलित पाया उसे वैसे ही रूप में ग्रहण करने में उन्होंने संकोच नहीं किया है। राजस्थान के जंगली लोगों के बीच उन्हें अपना अमर काव्य सन्देश देना था इस कारण ब्रजभाषा के बीच राजस्थानी के शब्दों को भी उन्होंने अपनी काव्य भाषा में स्थान दिया है। इस भाषा की कुछ विशुद्ध रचनायें भी उन्होंने की है। राम और कृष्णोपासना के प्रसंगों का वर्णन करते समय उन्होंने भाषा विशुद्ध एवं सौष्ठव पूर्ण रूप ग्रहण किया है। उनकी भाषा में मुहावरों और लोकोक्तियों

का प्रयोग यथेष्ट मात्रा में परन्तु नितान्त स्वाभाविक रूप में हुआ है। उनके अनेक प्रयोग तो सूक्तियों में परिणत हो गये हैं और तुलसी तथा कबीर की भाँति जन–साधारण की जिह्वा पर नाचते हुए प्रतीत होते हैं।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ

1. पानी पर पाषाण। (दोहा संख्या 383)
2. होय न कबहूँ परशराम बिन ब्याई कैं दूध। (दोहा संख्या 1302)
3. परशुराम नर देह धरि सर्‌यौ न एकौ काम।
   दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम।। (दोहा संख्या 1278)
4. परशुराम देखत गयो, पाणी बहि मुलतान।
5. गुण सागर गोपाल विण, को तारे भवपार। (दोहा संख्या 1520)
6. सवै करी बस आपणी, लीने परे लिखाय।
   छूटै रङ्क न छत्रपति, काल सबन को खाय।। (दोहा संख्या 1216)
7. मैं मेरी में बहि गये कै राणा कै राय। (दोहा संख्या 1282)
8. सूरा डरै न मरण मय,कायर कृपण उराहिं।। (दोहा संख्या 80)

भाषा सौष्ठव, कोमल कांत पदावली, काव्य स्वराज्य की दृष्टि से उनकी रचनाओं में से कई एक खरी नहीं ठहरतीं। उन्होंने अपनी सभी रचनाओं को मुक्तक शैली में लिखा है। सत्संग, गुरु महिमा, ईश्वर स्मरण, संसार की असारता आदि कई एक ऐसे प्रसंग हैं जिन पर बार–बार पाठकों को आकर्षित करते हुए भी कवि अघाता नहीं। इन प्रसंगों का कोई क्रम कवि ने नहीं रखा। यही बात गोपी और उद्धव सम्वाद के विषय में भी कही जाती है। गोपियों के विरह को स्वानुभूति परम मानकर इस प्रसंग पर जो रचनायें की हैं वे क्रमबद्ध न होते हुए भी रुचिकर हुई हैं। भगवान् राम की दानशीलता, उनकी भक्तवत्सलता, शरणागत की रक्षा, उनका पतितोद्धारक रूप आदि प्रसंग बड़े ही रुचिकर बन पड़े हैं। इसी प्रकार सुदामा चरित्र, प्रह्लाद चरित्र, श्रीकृष्ण जी की बाल लीला, वर्षा बसन्त, होली आदि के वर्णन भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन पड़े हैं।

परशुराम सागर वास्तव में एक सागर है जिसके मन्थन के लिए इष्ट धैर्य, अवकाश की अपेक्षा है। उसमें अनेक बहुमूल्य रत्न भी भरे पड़े हैं और साथ ही कंकर, पत्थर एवं धौंधे भी जिन सब का अवसर की अनुकूलता से अलग–अलग उपयोग है।

परशुरामदेव जी का जन्म ठीक सं. 1450 के लगभग है। उन्होंने खोज में प्राप्त यहाँ के आधार पर उनका जन्म स्थान (वर्तमान) बावली ठीकरियाँ गाँव जिला सीकर

राजस्थान माना है।[1] उनका जन्म गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ था। सलेमाबाद पीठ के आचार्य होने से उनका गौड़ ब्राह्मण होना निश्चित है। उन्होंने मथुरा ध्रुवटीला क्षेत्र में श्रीहरिव्यासदेव जी से दीक्षा ली थी और उनके निज लीला प्रवेश करने पर सं. 1520 वि. के लगभग आचार्य पद ग्रहण किया। परशुरामदेव जी की एकमात्र रचना परशुरामसागर एक वृहद ग्रन्थ है जिसके 4 खण्ड हैं। प्रथम (वाणी) खण्ड में जोड़े तथा 2225 दोहे हैं। दूसरे खण्ड चरितावली में 304 विविध छन्द हैं। तृतीय खण्ड लीलातंत्र के 13 ग्रन्थ हैं जिनमें 1970 विविध छन्द हैं और चतुर्थ खण्ड पदावली में 630 गेय पद हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार 'परशुरामदेव का साहित्य निर्गुण और सगुण दो रूपों में हैं।' सगुण काव्य क्षेत्र में उनकी गणना भगवत परम्परा के भक्त कवि सूर, नन्ददासादि में की जाती है। इनकी भाषा मध्यकालीन राजस्थानी है। यहाँ मध्यपूर्वी और पश्चिमोत्तरी राजस्थान की भाषा मारवाड़ी, ढूँढ़ाडी, ब्रज का सुन्दर प्रयोग हुआ है। इस प्रकार इनका साहित्य राजस्थान का गौरव है।

6. परशुरामदेव की समन्वय भावना

परशुरामदेवजी गोस्वामी तुलसीदास जी के समकालीन थे और उनके समान ही भगवान के सगुण, राम-कृष्ण रूपों के उपासक थे। उनके सामने एक विचित्र परिस्थिति थी। सारा समाज जीर्णशीर्ण हो चुका था कुसंस्कारों का समावेश हो गया था।[2]

अत: श्रीपरशुरामदेव जी को ऐसे समाज का संगठन करना था जो एक नहीं अनेक विरोधी तत्त्वों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का शिकार था जिसमें एक नहीं अनेक मतवाद प्रचलित थे और उनके साथ अगणित उपासना पद्धतियाँ एवं विचारधारायें भी। इन सभीतत्त्वों से समझौता करके राजस्थान के जनसमुदाय के अनुरूप एक सामान्य उपासना मार्ग की उन्होंने स्थापना की जो आगे चलकर परसरामी शाखा सम्प्रदाय कहलाया।[3] यह 'परसरामीय सम्प्रदाय' क्या था अपने प्रवर्तन कालीन मत मतान्तरों से समझौते के आधार पर परसुरामदेव जी के अपने सम्प्रदाय का दूसरे सम्प्रदायों एवं पन्थों सहित एक विशिष्ट समन्वय विधान था। परशुरामदेव जी निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी थे और उनके मुख्य सिद्धान्त भी प्राय: उनके पीछे तक उसी प्रकार प्रभावित रहते आये। किन्तु अपने स्रोत से वे कई बातों में प्रथक जा पड़े थे। संतमत तथा अन्य सम्प्रदायों के समन्वय की शक्ति उनके व्यक्तित्व की एक विशेषता है जो उन्हें अपने समकालीन कवियों और महात्माओं से बहुत ऊँचा सिद्ध करने में सहायक है। राम

---

1. आचार्य परशुराम देव : व्यक्तित्व एवं कृतित्व अनुसंधेता, डॉ. राम प्रसाद शर्मा
2. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा परशराम चतुर्वेदी, पृ. 518
3. उत्तरी भारत की वंश परम्परा, परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 518

और कृष्ण में उन्होंने किसी प्रकार का भेदभाव नहीं माना वरन् दोनों को एक रूप एक तत्त्व कह कर उनके समन्वय का प्रयास किया है।[1] इन दोनों में किसी प्रकार का भेदभाव करने वालों को 'मूढ़' और 'मतिहीन' संज्ञा बतलाकर उन्होंने अपने निर्णय पर मजबूत ताला भी लगा दिया है।[2] इसी प्रकार निर्गुण और सगुण का भी उन्होंने समन्वय करने का प्रयास किया है।[3] और फिर राम कृष्ण, निर्गुण सगुण सभी का एक 'हरि' नाम में समन्वय करके जो रामनाम का पर्यायवाची है उनके द्वारा निर्गुण और सगुणवादी सभी पंथों और सम्प्रदायों को एक विशाल जनसमूह के अन्तर्गत लाने को उनका सत्प्रयास भी देख पड़ता है। अलग-अलग उपासना विधियों का समन्वय करके उनके बीच आये दिन होने वाली खटपट के लिए उन्होंने तनिक भी अवकाश नहीं रहने दिया है। मर्यादावतारी राम के सन्मुख सिर झुकाने, श्रीकृष्ण जी का 'हरि' नाम लेकर जाप करने और निर्गुण ब्रह्म की हृदय से न बिसारने की उन्होंने अलग-अलग व्यवस्था दें दी है।[4] भेदाभद के राम कृष्ण, निर्गुण, सगुण अनेक रूप हैं। वास्तवमें तत्त्व एक ही है, अतः सभी को एक मानकर उनका स्मरण करना आवश्यक है।[5]



1. परशुराम सागर, वियोगी विश्वेश्वर, दोहा सं. 358
2. परशुराम सागर वियोगी विश्वेश्वर, दोहा सं. 362
3. परशुराम सागर वियोगी विश्वेश्वर, दोहा सं. 366
4. परशुराम सागर, वियोगी विश्वेश्वर, दोहा सं. 369
5. परशुराम सागर, वियोगी विश्वेश्वर, दोहा सं. 353

सप्तम-अध्याय

वर्तमान जगद्गुरु कवि श्रीराधासर्वेश्वर शरणदेवाचार्य के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचयात्मक-अनुशीलन

खण्ड : अ - व्यक्तित्व-परिचय

1. जन्म और शैशवास्था

आपका जन्म विक्रम सम्वत् 1986 वैशाख शुक्ला प्रतिपदा, शुक्रवार, कृत्तिका नक्षत्र तदनुसार **दिनांक 10 मई सन् 1929 ईस्वी** में श्रीनिम्बार्कतीर्थ (परशुरामपुरी) सलेमाबाद-किशनगढ़, अजमेर (राजस्थान) निवासी परम-पावन गौड़ ब्राह्मण वंश के एक परिवार में प्रातः 5 बजकर 54 मिनट पर हुआ था।

आपकी माताश्री का नाम **श्रीस्वणलता (सोनीबाई)** और पिता श्री का नाम **श्रीरामनाथ शर्मा गौड़** था। यह समस्त परिवार श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय परम्परानुयायी परम वैष्णव रहा था। प्राक्तन पुण्य कर्मानुसार किसी भागयशाली दम्पती को ही ऐसे महापुरुषों को जन्म देने एवं लालने-पालन का सुयोग प्राप्त होता है।

जिस वसुन्धरा पर ऐसे महापुरुषों का जन्म होता है, वह वसुन्धरा तथा उनका कुल (परिवार), माता-पिता एवं उनके स्वर्गस्थ पितृगण आदि परम धन्य हो जाते हैं। आपका बाल्यकालीन प्रचलित (बोलता) नाम **रतन लाल** था। यद्यपि कृत्तिका नक्षत्र के तृतीय चरण में जन्म होने के कारण आपका जन्म नाम **'उत्तमचन्द'** रखा गया था, तथापि नामकरण के दिन पीठ के व्यास पं. श्रीगोरधनलालजी द्वारा यह बोलता नाम रतनलाल रखा जाने के कारण सब रतनलाल ही कहते थे। एक दिन की बात है—आपके जन्म-स्थान पर एक अज्ञात वैष्णव जटाधारी महात्म भिक्षा-वृत्ति के बहाने आये। माताजी ने बालक रतनलाल को गोद में लिए हुये श्रद्धापूर्वक उठकर उन्हें भिक्षा दी। माताजी की गोद में हंसते हुऐ बालक रतन को देखकर प्रसन्न मुद्रा में महात्माजी ने कहा—माता! तुम्हारा यह पुत्र अत्यन्त तेजस्वी एक रत्न है, आगे चलकर यह बालक एक अच्छे (उत्तम) पद को प्राप्त करेगा। इस शुभाशीर्वाद को श्रवणकर माताजी बड़ी प्रसन्न हुई। महात्माजी पधार गये, तब उनके चले जाने के बाद माताजी को तुरन्त स्मरण हो आया कि हो न हो ये महात्मा श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के संस्थापक

श्रीपरशुरामदेवाचार्य (श्रीस्वामी) जी महाराज ही होंगे, जो इस बालक को आशीर्वाद देने हेतु पधारे हैं।

बालकपन से ही आपका लौकिक खेल-खिलौनों में मन न जाकर स्वाभाविक रूप से धार्मिक कार्यों जैसे भगवान् श्रीराधामाधव की मङ्गला, शृंगार एवं सायंकालीन आरती के दर्शन तथा स्तुति संकीर्तनादि में सम्मिलित होने तथा पुजारी श्रीरघुनाथदासजी से श्रीलड्डूगोपालजी की सेवा प्राप्त कर दैनिक सेवा करने आदि में ही प्रवृत्ति रहती थी। जिस प्रकार प्राची दिशा में सूर्योदय से पूर्व ही अरुणोदय-वेला में एक प्रकाशमयीलालिमा की दिव्य छटा दिखाई देने लगती है, ठीक उसी प्रकार---"होनहार बिरवान के होत चीकने पात" वाली कहावत के अनुसार भगवत्कृपापात्र सद्गुण सम्पन्न महापुरुषों की भी उनके बालकपन में ही प्रतिभा झलकने लगती है। श्रीनिम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) के सुयोग्य विद्वान् ज्योतिषी पं. श्रीलादूरामजी व्यास द्वारा निर्मित आपकी जन्म-कुण्डली का फलादेश जन्म से लेकर आज पर्यन्त ज्यों का त्यों मिलता हुआ आ रहा है।

2. दीक्षा; युवराजपदाभिषेक एवं आरम्भिकी शिक्षा

वैष्णव घराने में उत्पन्न हुये बालक घर में अपने माता-पिता एवं बन्धु-बान्धवों का शिष्टाचारपूर्वक रहन-सहन, आचार-विचार, पाठ-पूजन एवं धर्म-कर्मादि सभी नियमों को जैसा देखते हें, उसी प्रकार उनके हृदय पटल पर वैसे ही संस्कार जम जाते हैं और पुर वे ''**यन्नवे भाजने लग्न: संस्कारो नान्यथा भवेत्**" के अनुसार बालकपन से लेकर आजीवन पर्यन्त अमिट बन जाते हैं। आपके बालकपन से ही आप में इन सदाचार सद्विचार सम्बन्धी भावों को देखकर अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु **निम्बार्काचार्यपीठाधिपति 'श्रीजी' श्रीबालकृष्णशरणदेवाचार्यजी महाराज** बड़े प्रसन्न होते थे।

हिन्दुसूर्य उदयपुर नरेश महाराणा श्रीभोपालसिंहजी के आह्वान और स्थलाधीश महन्त श्रीगंगादासजी की विनीत प्रार्थना पर विक्रम सम्वत् 1994 वैशाख शु. तृतीया को भूतपूर्व आचार्यश्री का उदयपुर में पदार्पण हुआ। आपकी समारोहपूर्ण यह एक आदर्श यात्रा हुई थी। पं. श्री अमोलक रामजी, पं. श्रीगणपति शास्त्री, अ.भा. श्रीनिम्बार्क महासभा के मन्त्री श्रीनन्दकुमार शरणजी ब्रह्मचारी तथा श्रीदामोदर स्वामी की रसमण्डली एवं अधिकारी मनोहरदासजी आदि वृन्दावनस्थ परिकर भी साथ था। निकट भविष्य में आने वाले कुम्भ अवसर पर आचार्य श्रीकेवृन्दावनस्थ परिकर भी साथ था। निकट भविष्य में आने वाले कुम्भ अवसर पर आचार्यश्री के वृन्दावन में पदार्पण का प्रस्ताव उदयपुर में ही पारित हुआ। महाराणा साहब ने इसका हार्दिक अनुमोदन किया और सेवा-शुश्रूषा की भी आपने अभ्यर्थना की। आचार्यश्री की

अत्यन्त वृद्धावस्था थी, भावी उत्तराधिकारी मनोनीत नहीं किया गया था, जो मनोनीत किये गये थे, दैव उनके अनुकूल नहीं था, वस्तुत: वे इस पद के योग्य भी नहीं थे। सम्प्रदाय के विशिष्ट महन्तसन्त और सेवक भक्तगण इसलिए चिन्तित थे। आतुरतापूर्वक आचार्यश्री से निवेदन करते रहते थे, उस समय आचार्यपीठ के प्रबन्धक अधिकारी भी नहीं रहे, अत: कुम्भ अवसर पर वृन्दावन-यात्रा के सम्बन्ध में संकल्प-विकल्प चल रहा था। दैवयोग से निम्बार्क महासभा के कार्यकर्त्ता पं. श्रीब्रजवल्लभशरणजी आचार्यश्री के दर्शनार्थ मार्गशीर्ष मास में आचार्यपीठ पहुँचे, आचार्यश्री बड़े प्रसन्न हुए, विचार-विमर्श के अनन्तर आचायश्री के अनुरोधपूर्ण आदेश से आप ठहरे और वृन्दावन-यात्रा में आचार्यश्री के साथ ही रहे। कुम्भ पर्व सानन्द सम्पन्न हुआ। उसी समय सभी महन्तसन्तों के अनुरोध से आचार्यश्री ने पं. श्रीलाड़िलीशरणजी और श्रीनरहरिदासजी की अधिकारी पद पर नियुक्ति की और भावी उत्तराधिकारी भी सोच-समझकर जहाँ तक हो शीघ्र ही नियुक्त किया जाये, वह सर्वसम्मति से निश्चित हुआ।

दो वर्ष (वि.सं. 1995-96) अकालों की स्थिति और दोनों अधिकारियों के अनमेल के कारण सफलता नहीं मिल सकी। वि.सं. 1997 वैशाख शु. प्रतिपदा को आचार्यश्री ने पं. श्रीब्रजवल्लभशरण को अधिकारी पद पर नियुक्त किया, उस समय उदयपुर महन्तजी के आदेशानुसार समय-समय पर वियोगी विश्वेश्वरजी भी आचार्यपीठ आते-जाते थे—विचार-विमर्श होता था, सभी ने 11 वर्षीय बालक चि. रतनलालजी को आचार्यपीठ के भावी उत्तराधिकारी पद की नियुक्ति का प्रस्ताव आचार्यश्री के समक्ष प्रस्तुत किया, इस प्रस्ताव से किशनगढ़ राज्य के दीवान पंचौली श्रीकेशरीसिंहजी भी सहमत थे। तब आपकी जन्म-कुण्डली देख, प्रतिभासम्पन्न जान आपके माता-पिता से सत्परामर्श कर विक्रम सं. 1997 के आषढ़ शुक्ला द्वितीया (श्रीरथयात्रा) तदनुसार दिनांक 7 जुलाई, सन् 1940 ईस्वी में उक्त आचार्यश्री ने आपको विधि-विधानपूर्वक पंच संस्कार युक्त विरक्त वैष्णवी-दीक्षा प्रदान कर युवराज पद पर नियुक्त कर दिया और आपकी प्रारम्भिक संस्कृत शिक्षा आरम्भ करा दी गई। उससे पूर्व आपने राजकीय स्थानीय प्राथमिकशाला में चतुर्थ कक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। कुछ समय तक आपने निम्बार्कतीर्थ के व्यास श्रीबजरंगलाल जी से भी अध्ययन किया था, तत्पश्चात् आपके अध्यापनार्थ विरक्त वैष्णव ब्रह्मचारी पण्डित श्रीलाड़िलीशरणजी काव्यतीर्थ को नियुक्त किया था, जो कि बड़े श्री श्रीजी महाराज के भी कृपापात्र (शिष्य) थे।

3. श्रीआचार्यपीठासीनत्व

विक्रम सम्वत् 2000 में अपने श्रीगुरुदेव के गोलोक धाम पधारने पर ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया, दिनांक 5 जून, सन् 1943 में 14 वर्ष की अवस्था में ही आप

श्रीनिम्बार्काचार्य पीठासीन हुये। उस समय सर्वसम्मति से 'श्रीसर्वेश्वर संघ' नामक एक संस्था की स्थापना हुई और उसे किशनगढ़ स्टेट से रजिस्टर्ड भी करवा लिया गया। उसके सभापति चतु: सम्प्रदाय खालसा के श्रीमहन्त धनञ्जयदासजी महाराज वेदान्त न्यायभूषण तर्क-वितर्क तीर्थ (श्रीकाठियाजी) श्रीनिम्बार्काश्रम, श्रीधाम, वृन्दावन और प्रसार मन्त्री अधिकारी श्रीब्रजवल्लभशरणजी वेदान्ताचार्य निर्वाचित हुये। आपकी नाबालिकी के कारण भूतपूर्व श्री 'श्रीजी' महाराज ने पीठप्रबन्धार्थ षड्वर्षीय एक ट्रस्ट भी नियुक्त कर दिया था—उसमें श्रीमहन्त श्रीगङ्गादासजी महाराज स्थलाधीश उदयपुर, श्रीमहन्त श्रीराधिकादासजी महाराज किशनगढ़-रेनवाल (जयपुर) एवं जोधपुर राज्यान्तर्गत खेजड़ला ठिकाने के ठाकुर साहब श्री भैरोंसिंहजी आदि महानुभावों के नाम थे। इन ट्रस्टियों की देख-रेख में श्रीवियोगी विश्वेश्वरजी, श्रीनरहरिदासजी, श्रीब्रजवल्लभशरणजी तथा श्रीलाड़िलीशरणजी इन अधिकारी चतुष्टय महानुभावों एवं वयोवृद्ध पुजारी श्रीरघुनाथदासजी पुजारी श्रीसर्वेश्वरदासजी (चौथूबाबा) पं. श्रीदेवकीनन्दजी, श्रीश्यामसुन्दरदासजी (बाबूजी) पुजारी श्रीबालकदासजी प्रभृति द्वारा पीठ का कार्य-सञ्चालन सुचारु रूप से चलने लगा।

4. अध्ययनकाल एवं सारस्वत साधना

श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के ट्रस्टी महानुभाव तथा अधिकारी-वर्ग के परस्पर सत्परामर्शानुसार आपने श्री **'श्रीजी की बड़ी कुञ्ज'** वृन्दावन में ही निवास करते हुये अध्ययन किया। तत्पश्चात् **श्रीमहन्त श्रीधनञ्जयदासजी महाराज (श्रीकाठियाजी)** की देख-रेख में मन्दिर **श्रीदावानल बिहारी** (दावानलकुण्ड-वृन्दावन) में निवास करते हुये पं. **श्रीलाड़िलीशरणजी, अधिकारी श्रीब्रजबल्लभशरणजी, श्रीवैष्णवदासजी शास्त्री, श्रीरासबिहारीजी गोस्वामी** व्याकरण-साहित्याचार्य तथा **पं. श्रीसोहनलालजी चतुर्वेदी** व्याकरणाचार्य प्रभृति महानुभावों से व्याकरण, न्याय-वेदान्तादि का विधिवत् अध्ययन किया। श्री आचार्यपीठासीन होने से पूर्व नौ वर्ष की अल्पायु में भी स्वयं के **पितृचरण श्रीरामनाथजी शर्मा गौड़ एवं पुजारी श्रीकिशनदासजी** के संरक्षकत्व में श्रीवृन्दावन धामस्थ राजकीय पाठशाला में द्वितीय कक्षा पर्यन्त अध्ययन किया। श्रीधामस्थ पड़रोना वाली कुञ्ज के निकट बजाजा की स्कूल में ही आप श्री का यह अध्ययन सम्पन्न हुआ था।

पीठासीन होने पर श्रीधाम में निवास करते समय अध्ययनकाल में आपकी परिचर्या में वहाँ महात्मा श्रीगोपालदासजी, पुजारी श्रीबालकदासजी, पुजारी श्रीदम्पतीशरण जी, महन्त श्रीरामकृष्णदासजी कामवन, राधावल्लभजी शर्मा, लाड़िलीशरणजी शर्मा, गोपालशरण पर्वतीय तथा कुछ समय के लिए बाबा गोमतीदासजी भी थे।

इस प्रकार वि.सं. 2000 से वि.सं. 2004 पर्यन्त अर्थात् सन् 1943 से 1947 तक श्रीधाम वृन्दावन में ही आप श्री का अध्ययनकाल व्यतीत हुआ।

5. कार्यक्षेत्र, उपलब्धियाँ एवं योगदान

कुरुक्षेत्र के साधु-सम्मेलन में पदार्पण

इस अध्ययनकाल की अवधि में ही विक्रम सम्वत् 2001 के श्रावण मास में कुरुक्षेत्र में होने ले **सूर्य सहस्र रश्मि महायाग** के शुभावसर पर आयोजित **अखिल भारीय साधु-सम्मेलन** में श्रीवृन्दावन से ही पधारकर सर्वसम्मति से आपने सभापति पद को समलंकृत किया। उस समय अनन्तश्री-समलंकृत जगद्गुरु **श्रीशंकराचार्य श्रीभारती कृष्णतीर्थजी महाराज श्रीगोवर्धन पीठधीश्वर पुरी** का भी पादार्पण हुआ था। इस प्रकार आपको अध्यक्ष पद पर देखकर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी ने अपने भाषण में सम्मानपूर्वक इन शब्दों में कहा था कि—"**आज हमें बड़ा ही गौरव है कि हम अपने इस साधु समाज के बीच जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यजी को इस बाल्यकालीन किशोरावस्था में ही अध्यक्ष पद पर देख रहे हैं। आप लोग अवस्था पर कोई विचार न करें—तुलसी पत्र या शालिग्राम का श्रीविग्रह छोटा हो या बड़ा, किन्तु उसे महत्त्व में कोई अन्तर नहीं आता।**"

इसी शुभावसर पर आपके शिविर में एक दिन विद्वतसभा का आयोजन भी रखा गया, जिसमें जयपुर महाराजा संस्कृत कॉलेज के अध्यक्ष **महामहोपाध्याय पं. श्रीगिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी पं. श्रीअखिलानन्दजी, कविरत्न अनूपशहर, शास्त्रार्थ महारथी पं. श्रीमाधवाचार्यजी दिल्ली** प्रभृति अनेक विद्वद्वृन्द सम्मिलित थे। सभा समारोह के अन्त में समुपस्थित सभी विद्वज्जनों का श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ की ओर से (आप श्री द्वारा ही) प्रसाद, वस्त्र एवं मुद्रा (दक्षणादि से) सत्कार किया गया।

सर्वप्रथम वृन्दावनके कुम्भ-पर्व पर पदार्पण

विक्रम सम्वत् 2006 के फाल्गुन मास में सर्वप्रथम आपका श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा सहित श्रीधाम वृन्दावन के कुम्भ पर्व पर पर्दापण हुआ था। श्रीबिहारीजी के बगीचे से बैण्डवाद्य, नौबत-निशान पट्टेबाजी, छड़ी, चंवर छत्र मसाल आदि के साथ भगवन्नाम सङ्कीर्तन करते हुए आपकी बड़े समारोहपूर्वक पदाति शोभा-यात्रा श्रीधाम के मुख्य-मुख्य स्थानों में होती हुई—यमुना पुलिन में, जहाँ शिविर लगा हुआ था, सभास्थल (पंडाल) में पहुँचकर एक सभा के रूप में परिणत हो गई। समागत विद्वान्ों के प्रवचन एवं आचार्यश्री के सदुपदेश श्रवण कर भावुक भक्तजन भाव-विभोर हो उठे थे।

प्रारम्भ से कुम्भ की समाप्ति पर्यन्त श्रीसर्वेश्वर प्रभु की पञ्चकालीन सेवा, अखण्ड हरिनाम सङ्कीर्तन, वैष्णव विद्वान्ों द्वारा श्रीगोपाल मन्त्रराज के जाप, श्रीगोपाल महायाग, पं. श्रीगोविन्ददास संत द्वारा श्रीमद्भागवत सप्ताह पारायण, वैष्णव (संत) सेवा

और रात्रि में प्रतिदिन प्रवचन तथा रासलीलानुकरण। इस शुभावसर पर एक दिन बाबा श्रीमाधुरीशरणजी के संयोजकत्व में कई एक रास मण्डलियों द्वारा महारास का भी वृहद् रूप में आयोजन था।

प्रारम्भ-कुम्भ में श्रीनिम्बार्क नगर की स्थापना

विक्रम सम्वत् 2010 के माघ मास में श्रीप्रयागराज के कुम्भ पर्व पर अधिकारी **श्रीवियोगीविश्वेश्वरजी**, अधिकारी **श्रीव्रजवल्लशरणजी** वेदान्ताचार्य तथा **अधिकारी श्रीनरहरिदासजी** श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के अधिकारीत्रय, ब्रह्मचारी श्रीनन्दकुमारशरणजी मन्त्री श्रीनिम्बार्क महासभा वृन्दावन तथा **बाबा श्रीमाधुरीशरणजी** आदि महानुभावों के पारस्परिक पूर्ण सहयोग से **'निम्बार्क-नगर'** की संस्थापना हुई। सरकार से भूमि ली गई, उसके चारों ओर परिधि (हदबन्दी) कर मध्य में विशाल सभा-स्थल (पण्डाल) श्रीसर्वेश्वरजी का मन्दिर, आचार्य कक्ष, रसोई भण्ड़ार, सन्त सेवासदन, चारों ओर समागत सन्त-महानतों के आवास स्थान, अ.भा. श्रीनिम्बार्क महासभा का शिविर, औषधालय, वाचनालय तथा पूछ-ताछ प्रधान कार्यालय आदि-आदि का निर्माण हुआ। नल बिजली आदि सभी का प्रबन्ध कराया गया। तीसरी लाइन में चारों ओर सद्गृहस्थ भक्तजनों के आवास आदि का निर्माण हुआ था। श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा सहित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्री श्रीजी महाराज का पदार्पण हुआ। भक्तप्रवर श्रीटण्डनजी के बंगले के लगभग त्रिवेणी संगम तक तीन मील की दूरी है, वहाँ से प्रात: 8 बजे से आचार्यश्री की भव्य शोभा-यात्रा पदाति प्रारम्भ होकर दिन के 11 बजे श्रीनिम्बार्क-नगर पहुँची। इस शोभा-यात्रा में—अनेक अखाड़ों के श्रीमहन्त नागा अन्य कई स्थानों के सन्त-महन्त छड़ी, चँवर, छत्र, बैण्डवाद्य, नौबत, निशान, पट्टेबाजी आदि के साथ थे तथा सद्गृहस्थ दर्शनार्थी भक्तजनों तथाजयघोष की तुमुल ध्वनि की जा रही थी, शोभा-यात्रा के अद्भुत (परम मनोहर) श्रीनिम्बार्क-नगर में कई भक्तजनों ने पूरे माघ मास निवास करते हुए कल्पवास व्रत किया। प्रतिदिन श्रीसर्वेश्वर प्रभु की पंचकालीन सेवा, अखण्ड हरिनाम संकीर्तन, सनत-सेवा, समागत सन्त-महन्त एव विद्वानों के प्रवचन, आचार्यश्री के सदुपदेश, औषधालय-वाचनालय आदि पारमार्थिक सेवायें पूरे माघ मास चलकर यह आयोजन सानन्द सम्पन्न हुआ।

आचार्यश्री के शिविर का श्रीनिम्बार्क नगर नाम इसी कुम्भ से प्रचलित हुआ। तत्पश्चात् प्रत्येक कुम्भ पर नगर-निर्माण होता आ रहा है, वह वि.सं. 2036 के नासिक कुम्भ तक इन नगरों की संख्या 16 तक हो चुकी थी। सभी कुम्भ पर्वों पर बराबर भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु एवं आचार्यश्री का पदार्पण होता है। प्रत्येक कुम्भ में श्रीनिम्बार्क-नगर के भव्य पण्डाल में प्रात: 6 बजे से लेकर रात्रि के 11 बजे तक मङ्गला, शृङ्गार, कथा, प्रवचन, नाम-संकीर्तन, रात्रि में रासलीला, रामलीला आदि

विविध कार्यक्रम निरन्तर चलते ही रहते हैं। सहस्त्रों की संख्या में भक्तजनों की उपस्थिति रहती है। श्रीनिम्बार्क-नगर में आचार्यश्री के साथ कई एक संत-महन्त एवं सैंकड़ो भक्त-परिवार सुविधापूर्वक ठहरते हैं।

श्रीनिम्बार्क-नगर खालसा की महन्ताई भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु एवं आचार्यश्री के तत्त्वावधान में समस्त भेष की ओर से अ.भा.श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के अधिकारी श्रीवियोगीविश्वेश्वरजी को विगत नासिक कुम्भ के शुभावसर पर प्रदान की गई थी। एक युग अर्थात् 12 वर्ष तक आपन सुचारु रूप से श्रीनिम्बार्क-नगर का कार्य-संचालन किया, किन्तु 1974 के प्रयाग कुम्भ में उनके अस्वस्थ हो जान पर एवं वृद्धावस्था में अधिक दौड़-धूप न होने के कारण आचार्यश्री ने सेवाभावी भक्तों की एक '**कुम्भ प्रबन्ध समिति**' बना दी है। इसी कुम्भ प्रबन्ध समिति के द्वारा अब सब कार्य-संचालन हो रहा है।

चित्रकूट भक्ति-सम्मेलन में पर्दापण

विक्रम सम्वत् 2012 के आश्विन मास के शुक्लपक्ष में **सन्त श्रीकृपालुदासजी** द्वारा आयोजित भक्ति-सम्मेलन में आप श्री का श्रीचित्रकूट भी पदार्पण हुआ। वहाँ श्रीमन्दाकिनी के परम पावन तट पर संस्थित तुमसरवाली धर्मशाला में विराजना हुआ। श्रीसर्वेश्वर प्रभु का अभिषक-दर्शन तथा पंचकालीन सेवा में दर्शनार्थी भक्तजनों की प्रतिदिन अपार भीड़ लगी ही रहती थी।

इस बृहत्सम्मेलन में एक दिवस आश्विन शुक्ला पूर्णिमा दिनांक 31-10 सन् 1955 को श्री शुभाषीर्वादात्मक शुभ-सन्देशों से समुपस्थित सभी भक्तजनों को अनुपम मार्गदर्शन मिला।

भक्ति-सम्मेलन सानन्द सम्पन्न होने के पश्चात् श्रीकामगिरि परिक्रमा के अनन्तर श्रीनिम्बार्कीय चोपड़ा स्थान से आपश्री ने अपने परिकर तथा अनेक सन्तों के साथ पदाति यात्रा प्रारम्भ कर स्फटिक-शिला, अनुसूया, गुप्त गोदावरी, हनुमानधारा तथा भरतकूप आदि तीर्थ स्थानों की यात्रा सुसम्पन्न की। आपके साथ इस यात्रा में पीठ के **तीनों अधिकारी** एवं **बाबा श्रीमाधुरीशरणजी** प्रभृति अनेक महानुभाव भी सम्मिलित थे।

7 नवम्बर, 1966 के गोरक्षा आन्दोलन हेतु दिल्ली में पदार्पण

वि.सं. 2023 के कार्तिक मास 'गोरक्षा महाभियान समिति' दिल्ली द्वारा आयोजित गोरक्षा आन्दोलन दिल्ली में भी आपश्री का कार्तिक कृष्ण 9 सोमवार, दिनांक 7 नवम्बर सन् 1966 को सैंकड़ों सन्तों को साथ लेकर दिल्ली पदार्पण हुआ।

इसके पूर्व आपने अपने क्षेत्र, जैसे—किशनगढ़, अजमेर, ब्यावर तथा जयपुर आदि कई एक नगरों में गोरक्षा हेतु भ्रमण कर प्रचुर प्रचार-प्रसार भी किया।

इसी प्रकार अपने ही एक स्व-साम्प्रदायिक स्थान मापलधारी अखाड़ा, वृन्दावन के महन्त श्रीकमलदासजी भी वहाँ से कई एक महात्माओं को साथ लेकर दिल्ली आये और उन्होंने अपने प्राणों का भी बलिदान कर दिया तथा सदा के लिए अपना नाम अमर कर गये।

इस आन्दोलन में सभी मत-मतान्तरों को विस्मृत कर गो-प्रेमी भक्तजन, लगभग पन्द्रह लाख की संख्या में उपस्थित होकर 'न भूतो न भविष्यति' वाली कहावत को चरितार्थ कर रहे थे।

गोरक्षार्थ किये जाने वाले अनशन व्रत पर गम्भीर स्थिति होने पर जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीनिरंजनदेव तीर्थजी से मिलने हेतु श्रीगोवर्धनपीठ, पुरी में आपश्री का पदार्पण एक महत्त्वपूर्ण घटना रही है।

7 नवम्बर, सन् 1966 में दिल्ली के गोरक्षा आन्दोलन होने के पश्चात् श्री गोवर्धनपुरी पीठाधीश्वर अनन्तश्रीसमलंकृत जगद्गुरु शंङ्कराचार्य श्रीस्वामी निरञ्जनदेवतीर्थजी ने गोरक्षार्थ अनशन व्रत ले लिया था, उसके 21वें ही दिन पश्चात् उनकी गम्भीर स्थिति के समाचार श्रवण कर आपश्री का उनसे मिलने हेतु पुरी पधारना हुआ। मार्गशीर्ष कृ. सोमवती अमावस्था सं. 2023 दिनांक 12 दिसम्बर को आप उनसे मिले और कुशल मंगल समाचार पूछने पर जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्यजी ने महाराजश्री से इतनी दूर पधारने के कष्ट का भी विनम्र उल्लेख किया था।

आपश्री के साथ उस समय पं. श्रीमुरलीधरजी शास्त्री, नवलकिशोरजी व्यास तथा महात्मा श्रीशुकदेवदासजी सङ्गीताचार्य भी थे।

पुरी से लौटते हुये सम्बलपुर (उड़ीसा) में संवाददाताओं की एक गोष्ठी में आपने गोरक्षा सम्बन्धी विचार व्यक्त किये तथा यहाँ से नागपुर, अमरावती, आकोला, खाँमगाँव, धूलिया, सैन्धवा एवं इन्दौर आदि विशिष्ट नगरों में गोरक्षा पर ही जन-समुदाय को प्रेरणा देते हुए आपश्री का श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ लौटना हुआ। यहाँ से पुन: श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी के अनशनकाल में उनसे गोरक्षा सम्बन्धी विशेष विचार-विमर्श करने हेतु आपश्री का श्रीधाम वृन्दावन पधारना हुआ।

अखिल भारतीय श्री सनातन-धर्म सम्मेलन

जगद्गुरु श्री हरिव्यास षठ शताब्दी महोत्सव के उपलक्ष्य में विक्रम सम्वत् 2031 के चैत्र कृ. तृतीय रविवार से चैत्र कृ. सप्तमी गुरुवार तद्नुसार दि. 30 मार्च से दिनांक 3 अप्रैल, सन् 1975 पर्यन्त अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, सलेमाबाद (अजमेर) राजस्थान में आपश्री के तत्त्वावधान में ही अ.भा. विराट् सनातन धर्म-सम्मेलन का पञ्चदिवसीय बृहद् आयोजन अनेक धार्मिक कार्यक्रमों के साथ बड़े समारोहपूर्वक सानन्द सम्पन्न हुआ।

इस सम्मेलनान्तर्गत सुदर्शन महायाग, वैष्णव धर्म सम्मेलन, हिन्दू संस्कृति सम्मेलन, शिक्षा सम्मेलन, देवस्थान सुरक्षा सम्मेलन, गोरक्षा सम्मेलन और महिला सम्मेलन एवं नवनिर्मित भव्य गोशाला का उद्घाटन, ग्रन्थ-विमोचन प्रभृति धार्मिक समारोह सम्पन्न हुए।

इस शुभावसर पर चारों पीठों के जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य, चतुःसम्प्रदाय पीठाधीवर जगद्गुरु श्रीवैष्णावाचार्य, विभिन्न सम्प्रदायों के धर्माचार्य और धर्म-सम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज एवं अनेक सन्त-महन्त, मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर, अनी अखाड़ों के श्रीमहन्त तथा विश्व-विख्यात विद्वान् और विदुषी महिलायें तथा अनेक धार्मिक-सांस्कृतिक कविगण भी पधारे थे।

पंच दिवसीय इस परम पुनीत कुम्भ सदृश महान् पर्व पर समस्त धर्माचार्यों का एकत्रित हो एक मञ्च पर विचार-विनिमय करने का भारत में यह पहला ही दृश्य था।

अतएव **'न भूतो न भविष्यति'** वाली सदुक्ति को चरितार्थ करने वाला यह पंच दिवसीय अ.भा. विराट् सनातन धर्म सम्मेलन अपने ढङ्ग का एक निराला ही था।

उक्त सम्मेलन में राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्रीहरदेव जोशी, राजमाता सिंधिया ग्वालियर, महाराणा साहब उदयपुर तथा नेपाल नरेश के प्रतिनिधित्व में उनके नायब बड़े राजगुरु पं. श्रीजूनानाथजी आदि-आदि महानुभाव भी पधारे थे।

भारत भ्रमण और धर्म प्रचार-प्रसार

आपने पीठासीन होने के पश्चात् (वि.सं. 2000 के बाद) 14 वर्ष की अवस्था से ही निज आराध्यदेव श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा एवं परिकर सहित देश के विभिन्न भागों में धर्मयात्रायें कीं। जैसे—जयपुर, जोधपुर, अजमेर-पुष्कर, भीलवाड़ा, उदयपुर, इन्दौर, पूना, बम्बई, सोलापुर, इचलकरंजी, गोवा, मद्रास, हैदराबाद,आकोला, नागपुर, अजमदाबाद, दिल्ली, हरिद्वार, इलाहाबाद, अयोध्या, बनारस, कलकत्ता, पुरी, उज्जैन, द्वारका, मथुरा-वृन्दावन व कोटा प्रभृति इनके आस-पास के छोटे-बड़े कई स्थानों में अनेक बार भ्रमण कर अपने दिव्य उपदेशों सन्देशों द्वारा भारतीय संस्कृति तथा वैष्णव धर्म की जागृति की है।

इस प्रकार इस दीर्घकालीन 60 वर्ष के परिभ्रमण में सहस्रों की संख्या में धर्मप्राण जनता ने आपसे दीक्षा-शिक्षा ग्रहण कर आपके दिव्य सदुपदेशों द्वारा अनुपम लाभ सम्प्राप्त किया है।

श्रीनिम्बार्क-दर्शन एवं साम्प्रदायिक सिद्धान्त व उपासना सम्बन्धी प्रचार-प्रसार भी आपके आचार्यत्व में विशिष्ट व्यवस्था के साथ सुचारु रूप से होता रहा है। निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) की जन्माष्टमी-नन्द महोत्सव (ऐतिहासिक-धार्मिक वृहद् मेला), निम्बार्क सत्संग भवन के श्रीराधासर्वेश्वर मन्दिर (मदनगंज) की श्रीराधाष्टम्,

श्रीपरशुरामद्वारा (श्रीपुष्करराज) श्रीनिम्बार्क-जयन्ती, श्रीनिम्बार्क कोट (अजमेर) की श्रीमद्भागवत जयन्ती आपकी सत्प्रेरणा का ही सत्फल है।

इसी प्रकार श्री श्रीजी मन्दिर (श्री श्रीजी महाराज की बड़ी कुञ्ज) प्रताप बाजार वृन्दावन में दैनिक सत्संग और श्रावण शुक्लपक्ष में आपश्री के तत्त्वावधान में झूलनोत्सव बड़े समारोहपूर्वक सुसम्पन्न हो रहे हैं। आप श्री के कृपा प्रसाद से ही अब **'श्रीसर्वेश्वर'** शोधपूर्ण मासिक-पत्र वृन्दावन से तथा **'श्रीनिम्बार्क'** पाक्षिक-पत्र श्रीनिम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) से विधिवत् प्रकाशित हो रहे हैं। इन दोनों ही पत्रों ने निम्बार्क साहित्य शोध का अभूतपूर्व कार्य किया है। **श्रीसर्वेश्वर** मासिक-पत्र के विशेषाङ्क-रूप में—श्रीनिम्बार्क-अङ्क, श्रीवृन्दावनाङ्क, श्रीयुगल-शतक, श्रीमहावाणी, रसोपासनाअङ्क श्रीनागरिदास वाणी अंक ब्रजलीला-अङ्क आदि अनेक अङ्क और **'श्रीनिम्बार्क'** पाक्षिक-पत्र के **'श्रीसर्वेश्वर-अङ्क'** श्रीब्रजयात्रा-अङ्क आदि तथा **'श्रीनिम्बार्क ग्रन्थमाला'** प्रभृति साहित्य सम्पादनादि के सम्प्रदाय को महती प्रसिद्धि मिली है। निर्माण की दृष्टि से भी आपश्री के कार्यकाल में बहुत काम हुए हैं। जैसे—दोनों विद्यालयों के भवन, गोशाला, श्रीसर्वेश्वर उद्यान (बगीचा) पूरे मन्दिर का जीर्णोद्धार, श्रीस्वामीजी महाराज की तप:स्थली का नया प्रारूप, आचार्य-पंचायतन स्थापना, श्रीराधामाधवजी का चौक, आचार्य कक्ष, छात्रावास आदि कई निर्माण कार्य हुए हैं। इसके अतिरिक्त श्रीविजयगोपालजी के मन्दिर का जीर्णोद्धार, विद्युत प्रकाश, कुंओं पर बिजली की मशीन फिटिंग, ट्रेक्टर, मोटर तथा खातोली ग्राम के फाँटे से लेकर श्रीनिम्बार्कतीर्थ तक पक्की डामर रोड एवं दूरभाष तथा पोस्ट-ऑफिस आदि-आदि अनेक कार्य आपश्री के कार्यकाल में सुसम्पन्न हुए हैं।

आचार्यपीठ से सम्बन्धित अन्य स्थानों पर भी वैसे—**मदनगंज का भव्य श्रीराधासर्वेश्वर मन्दिर**, अजमेर का **श्रीनिम्बार्क कोट**, पुष्करराज के **श्रीपरशुरामद्वारे** का नवीन रूप, **झीटिया** स्थान में **श्रीगोपाल मन्दिर** का नव-निर्माण एवं कुओं पर बिजली फिटिंग और श्रीवृन्दावन के कई कुञ्जों का जीर्णोद्धार आप श्री के समय में ही हुआ है। ब्रजमण्डल स्थित गिरिराज श्रीगोवर्धन की उपत्यका में श्रीनिम्बग्राम की सुप्रसिद्ध अति प्राचीन श्रीनिम्बार्क तप:स्थली का जीर्णोद्धार एवं विशालतम नव-मन्दिर निर्माण की महत्त्वपूर्ण योजना भी आपश्री के तत्त्वावधान में प्रारम्भ हुई है। श्रीसर्वेश्वर प्रेस श्रीवृन्दावन एव श्रीनिम्बार्क मुद्रणालय, निम्बार्कतीर्थ सलेमाबाद (अजमेर) इन दोनों प्रेसों की स्थापना भी आपश्री के समय में ही हुई है।

श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय एवं **श्रीनिम्बार्क दर्शन विद्यालय श्रीनिम्बार्कतीर्थ**, सलेमाबाद (अजमेर) की विशिष्ट आदर्श शिक्षण संस्थायं हैं—जहाँ प्राचीन गुरुकुल प्रणाली का नि:शुल्क छात्रावास, आपश्री की देख-रेख में चल रहा है। वहाँ के छात्र भारतीय संस्कतृ का आदर्श जीवन सीखते हैं। आपने **संस्कृत** और

संस्कृति के लिए जो क्रियात्मक योगदान दिया है, वह सर्वथा अनुकरण्य है। श्रीसर्वेश्वर आराधना, गोपालन, भारतीय संस्कृति का संरक्षण, सनातन-वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार, मानवमात्र का कल्याण, साधु-समाज का संगठन सनतों ओर विद्वानों की सेवा ही आपके जीवन की मुख्य साधनाएँ हैं। इन्हीं उद्देश्यों की सम्पूर्ति हेतु आपकी कई बार राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश, गुजरात प्रभृति प्रान्तों में भारत व्यापी यात्रायें हुई हैं। श्रीनिम्बार्काचार्य स्पेशल ट्रेन द्वारा तीन धाम सप्तपुरी की यात्रा के अतिरिक्त आपकी चित्रकूट एवं गङ्गासागर यात्रा और बदरी-केदारनाथ यात्रा भी विशेषत: उल्लेखनीय हैं।

संस्कृत में न्याय-व्याकरण एवं वेदान्तादि के गम्भीर अध्ययन के साथ-साथ संगीत, आयुर्वेद, हिन्दी, बंगला, राजस्थानी आदि भाषाओं की जानकारी पूर्वक आप एक कुशल धर्मोपदेशक ही नहीं, अपितु विविध ग्रन्थों के रचयिता भी हैं—संस्कृत एवं हिन्दी इन दोनों भाषाओं की काव्य-रचना में आपका सहज समान अधिकार है।

खण्ड : ब - कृतित्व-सामान्यानुशीलन

(क) संस्कृत - कृतियाँ

(1) पद्य साहित्य

(i) भारत-भारती वैभवम् (राष्ट्रीय काव्य)
(ii) युगलगीति-शतकम् (गीति-काव्य)
(iii) निकुंज-सौरभम्

(2) स्तोत्र-साहित्य

(i) श्रीस्तवरत्नाञ्जलि: (पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध)
(ii) श्रीयुगल स्तवविंशति:
(iii) श्रीराधामाधव-शतकम्
(iv) श्रीसर्वेश्वरशतकम्
(v) श्रीजानकीवल्लभस्तव:
(vi) श्रीनिम्बार्कगोपीजनवल्लभाष्टकम्
(vii) श्रीहनुमन्महाष्टकम्
(viii) श्रीनिम्बार्कस्तवार्चनम्
(ix) श्रीराधा-शतकम्
(x) श्रीवृन्दावन-सौरभम्
(xi) श्रीमाधवप्रपन्नाष्टकम्
(xii) श्रीराधाराधनम्
(xiii) श्रीपरशुराम-स्तवावली

(xiv) श्रीमन्त्रराज-प्रदीपार्थ

(xv) श्रीगोशतकम्

(3) गद्य-साहित्य

(i) श्रीनिम्बार्क-चरितम्

(4) व्याख्या कार्य

(i) श्रीभगवन्निम्बार्क कृत **'प्रातः स्तवराज'** पर **'युगलतत्त्वप्रकाशिका'** नामक संस्कृत व्याख्या।

(ii) श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य प्रणीत **'वेदान्तकामधेनु-दशश्लोकी'** पर **'नवनीत-सुधा'** संस्कृत-व्याख्या।

(ख) हिन्दी कृतियाँ

(1) पद्य साहित्य

(i) राधामाधव रस विलास (दस सर्गात्मक महाकाव्य)

(ii) श्रीसर्वेश्वर सुधा-बिन्दु (श्रीराधासर्वेश्वर-शतक)—(गीति-कव्य)

(iii) भारत-कल्पतरु (राष्ट्रीयता से परिपूर्ण काव्य)

(iv) विवेक-वल्ली (समसामयिक प्रेरणास्पद काव्य)

(v) श्रीराधासर्वेश्वरमंजरी (स्तोत्र काव्य)

(vi) छात्र-विवेक-दर्शन (प्रेरणास्प्रद काव्य)

(vii) भारत-वीर-गौरव (वीररस संवलित काव्य)

(viii) राधा सर्वेश्वरालोक (निम्बार्कीय युगल रसोपासना सिद्धान्तानुसार विरचित काव्य)

(ix) राधा-आराधना (राधा विषयक काव्य)

(2) गद्य साहित्य

(i) उपदेश-दर्शन (आचार्यश्री के प्रवचनों का संकलन)

(ii) हिन्दु-संगठन (सामयिक उद्‌बोधन)

उक्त हिन्दी रचनाओं का समीक्षात्मक-अध्ययन अष्टम-अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार पूर्वोक्त विवेचन से अनन्तश्रीविभूषित श्री 'श्रीजी' महाराज के प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिज्ञान उनके श्री सर्वेश्वर प्रभु के अंशावतार को परिपुष्ट करना है।

संस्कृत-कृतियों में प्रतिपादित विषय

(1) भारत-भारती वैभवम्—भारतभूमि, वैशिष्ट्य, सनातन वैदिक-संस्कृति एवं उसकी प्राण-पोषिका देववाणी संस्कृत ही इस ग्रन्थ की आत्मा है। इस ग्रन्थ में 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की भावना सशक्त वाणी के भारत राष्ट्र के रक्षणार्थ प्राचीन संस्कृति तथा उसकी प्राणाधार संस्कृत के संरक्षण, संवर्धन का आह्वान किया है। इस काव्य में राग एवं लययुक्त कोमलकान्त कमनीय संस्कृत पदावली द्वारा भारत-भारती की भावपूर्ण वन्दना में सर्वोपरि राष्ट्रभक्ति की भागीरथी प्रवाहित है।

इस महनीय राष्ट्रीय ग्रन्थ के उपदेशकों, अभिभावकों तथा गुरुजनों का कर्त्तव्य, देवस्थान सुरक्षा, राष्ट्र सुरक्षा, गोरक्षा, वैदिक-संस्कृति एवं वैदिक वाङ्मय की रक्षा, मद्य-द्यूतानि निषेध, भ्रष्टाचार निरोध, ईश्वरभक्ति, चरित्र-निर्माण, उद्देश्यपूर्ण शिक्षा, वन एवं वन्यजीवों का संरक्षण, राष्ट्रघातक विध्वंसकारी विस्फोटक अणु-अस्त्रों पर प्रतिबन्ध, जलवायु प्रदूषणावरोध आदि विविध विषयों के प्रभावी वर्णन द्वारा प्रबल जनचेतना लक्षित है। गकारत्रयी (गीतागङ्गागावश्च) को राष्ट्र की आत्मा मानते हुए इस काव्य में भावात्मक, एकता की प्रेरणा प्रदान की गई है। सुसंस्कृत, सरल, सुललित काव्य-सौष्ठवपूर्ण यह मौलिक रचना नितान्त युगानुकूल व नवचेतनाप्रद होने से राष्ट्र भक्ति माला का सुरभित सरसिज है।

(2) युगलगीति-शतकम्—यह काव्य प्रियाप्रियतम युगलकिशोर श्रीश्यामाश्याम की मधुर एवं सरसोपासना का द्योतक रमणीय गीति-काव्य है। इस काव्य में श्रीआचार्यवन्दना के अनन्तर लगभग 15 छन्दों में श्रीवृन्दावनधाम में श्रीयमुना, सात छन्दों में श्री गिरिराज, दो वृत्तों में गौ और दो छन्दों में मुरली का वर्णन है, शेष सभी छन्दों में प्रियाप्रियतम युगल किशोर श्रीश्यामाश्यामजू की केलिक्रीड़ाओं का श्रृंगारपरक कमनीय वर्णन है। यह शतक अनुष्टुप्, उपजाति, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, मालिनी, शिखरिणी ... आदि प्रमुख वृत्तों में निबद्ध है। इस शतक की भाषा प्रसाद माधुर्य गुणों से मण्डित, रस एवं भावानुकूल है।

(3) निकुञ्जसौरभम्—इस लघुकाय काव्य में वृन्दावनधाम के कुञ्जनिकुञ्ज-वृन्द में सुशोभित युगलकिशोर वृन्दावनबिहारी श्रीराधामाधव की अलौकिक एवं विशुद्ध रसमयी कुञ्जनिकुञ्ज केलिक्रीड़ाओं का वर्णन है।

कलेवर की दृष्टि से यह काव्य लघुकाय है, पर साहित्यिक-दृष्टि से परमोपादेय है। यह लघुकाव्य **'गागर में सागर'** भर देने वाली सदुक्ति को चरितार्थ करता है। प्रसाद माधुर्य गुणों से मण्डित, सरल संस्कृत में प्रणीत यह लघुकाव्य श्रृंगार रस से सराबोर है। इस काव्य की रीति वैदर्भी है। इसमें प्राकृतिक-सुषभा का चित्रण भी सुरम्य, मनमोहक, रमणीय, कमनीय एवं स्पृहणीय है।

(4) श्रीस्तवरत्नाञ्जलि:—यह स्तवन ग्रन्थ दो भागों में विभक्त हैं – (क) पूर्वार्द्ध, एवं (ख) उत्तरार्द्ध।

पूर्वार्द्ध में 24 स्तव समाहित हैं। इसमें श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के आराध्य वृन्दावन नवनिकुञ्जबिहारी युगलकिशोर श्रीश्यामाश्याम तथा निम्बार्क-सम्प्रदाय के पूर्वाचार्यवर्यों का मंगलमय स्तवन हुआ है।

इस ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में 15 स्तव हैं, इसमें श्रीगणेश, श्रीलक्ष्मी, श्रीहनुमान्, श्रीसीताराम, श्रीशिव, श्रीसरस्वती आदि का भी सर्वहितावह स्तवन हुआ है। ग्रन्थ के आरम्भ से अन्त तक सभी स्तव नाना छन्दों में निबद्ध हैं–इन्द्रवज्रा, उपजाति, वसन्ततिलका, वियोगिनी, अनुष्टुप् प्रभृति विविध छन्द प्रमुख हैं। इस स्तव ग्रन्थ में प्रणेता कवि वर्तमान आचार्यश्री ने अपनी पूर्वाचार्य परम्परा के सिद्धान्तों एवं समन्वयात्मक वैचारिक दृष्टिकोण का ही प्रख्यापन किया है।

(5) श्रीसर्वेश्वर-शतकम्—अनन्त-श्रीविभूषित निम्बार्कपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' महाराज द्वारा विरचित श्रीसर्वेश्वर-शतकम् एक महनीय स्तोत्र ग्रन्थ है। इस स्तोत्र में युगलकिशोर श्रीराधामाधव की समस्त लीलाओं का प्रत्यक्षीकरण है। यह स्तोत्र काव्य भक्तजनानन्द-संवर्धक माधुर्यादि गुणमण्डित अनुपम रसायन सदृश है।

(6) श्रीराधामाधव-शतकम्—यह शतक काव्य वृन्दावन बिहारी प्रियाप्रियतम, युगलकिशोर श्री राधामाधव (श्रीश्यामाश्याम) की अन्तरंग रसोपासना से ओतप्रोत है। अनुष्टुप् छन्द में परिनिबद्ध इस शतक के पूर्वार्द्ध में श्रीनिकुञ्ज की अनेकानेक रसमयी लीलाओं का वर्णन है तथा उत्तरार्द्ध भाग 'राधामाधवमाराध्यं भजेद्वृन्दावनाधिपम्' पाठ के आधार पर भक्त एवं रसिकजनों के लिए परमोपादेय एवं मंगल व शुभकामनार्थ सेवनीय है। स्तोत्र सरल, सरस एवं प्रसाद गुणमण्डित देववाणी (संस्कृत) में रचित है।

(7) श्रीयुगलस्तवविंशति:—यह स्तव-काव्य निम्बार्कीय-स्तोत्र-साहित्य में अपना स्थान रखता है। वर्तमान आचार्यश्री द्वारा रचित इस स्तोत्र के बीस स्तवन हैं। श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय की आचार्य-परम्परा द्वारा रचित स्तोत्र-साहित्य के मानदण्डों के अनुरूप है। इस स्तव-काव्य में युगलकिशोर प्रियाप्रियतम श्रीराधामाधव से सम्बन्धित विविध उपादानों का स्तवन-परक सरल व सरस संस्कृत भाषा में वर्णन है।

(8) श्रीनिम्बार्कस्तवार्चनम्—वर्तमान आचार्यवर्य श्री 'श्रीजी' महाराज ने 'स्वान्त: सुखाय' तथा भावुक भक्तजनों के हितार्थ श्रीहरि (श्रीकृष्ण) की रसमयी लीलाओं से ओतप्रोत परमोपयोगी स्तोत्रों की रचना की है।

'आचार्यं मां विजानीयात्' इस भगवद्वाक्यानुसार आचार्य भी भगवत्तुल्य ही माने गये हैं। अत: भगवान् की भाँति ही आचार्यों का भी स्तोत्रों द्वारा गुणगान अनिवार्य है,

इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए वर्तमान आचार्यश्री ने श्रीसुदर्शनचक्रावतार आद्याचार्य जगद्गुरु श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य जी का इस स्तोत्र में स्तवन किया है। इस स्तोत्र में श्रीचक्रसुदर्शन अष्टविध स्वरूपों में विराजमान होने का वर्णन अतीव सरस एवं मनन योग्य है।

(9) श्रीजानकीवल्लभस्तव:—इस स्तव-ग्रन्थ में वर्तमान आचार्यश्री ने अनन्त करुणावरुणालय, कृपासिन्धु मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम का भक्तिभावपूर्ण स्तवन किया है।

पूज्य प्रणेता आचार्यश्री ने स्व-रचित इस स्तोत्र में श्रीनिम्बार्काभिमत समन्वयात्मक दार्शनिक सिद्धान्त का दिग्दर्शन कराया है। सरल एवं सरस संस्कृत भाषा में रचित यह स्तव-काव्य कुसुमाञ्जलि आचार्यश्री की अनुपमाभिनव कृति है।

(10) श्रीराधा-शतकम्—स्तोत्र-साहित्य परम्परा में वर्तमान आचार्यश्री द्वारा विरचित अभिनव स्तोत्र-कुसुम 'श्रीराधाशतकम्' हाल ही में गुम्फित हुआ है। अनुष्टुप् छन्द में 101 पद्यों द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की परमाह्लदिनी-शक्ति, सर्वोत्कर्षमयी श्रीराधा का दिव्य स्तवन किया गया है।

संस्कृत वाङ्मय एवं हिन्दी-साहित्य में श्रीराधाजी के स्वरूप, स्वभाव तथा उत्कर्ष आदि का जो विपुल वर्णन हुआ है, उसी को अतिसंक्षेप में आपश्री ने 'श्रीराधाशतकम्' में समाहित किया है। आपका यह शतक 'बिन्दु में सिन्धु' की सदुक्ति को चरितार्थ करता है। हिन्दी कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन अष्टम अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।



अष्टम-अध्याय

वर्तमान जगद्गुरु कवि श्री राधा सर्वेश्वर शरणदेवाचार्य द्वारा प्रणीत हिन्दी कृतियों का समीक्षात्मक-अध्ययन

1. राधामाधव रस विलास (महाकाव्य) : समीक्षात्मक अध्ययन

श्रीनिम्बार्कीय निकुंज रसोपासनात्मक स्वरूप एवं परम्परा

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय चतु:सम्प्रदायान्तर्गत अनादि-वैदिक-सनातन- परम्परागत स्वाभाविक द्वैताद्वैत दर्शन पर आधारित सम्प्रदाय है। इसकी निकुंज रसोपासना, सुदर्शनावतार भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य द्वारा सर्वप्रथम उपदिष्ट होने से उन्ही की देन है। यह निकुंज स्वामिनी श्रीराधा प्रधान अंत:पुर-उपासना निम्बार्क सम्प्रदाय की विशिष्ट-सखीभावोपासित गुह्यतम रसोपासना है जिसका मूलाधार श्रीनिम्बार्ककृत वेदान्तकामधेनु दशश्लोकी का निम्न श्लोक है—

अंगे तु वामे वृषभानुजाँ मुदा विराजमानानुरूपसोभगाम्।
सखीसहस्रै: परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।।

निम्बार्क-सम्प्रदाय में व्रजरस केन्द्रित भागवतों का गोपीभाव की उपासना भी व्यापक रूप से मान्य है जो रसोपासक को व्रजरस से निकुंजरस की पराकाष्ठा की ओर ले जाने वाली पृष्ठ भूमि है, जिसके भावावस्था होने पर सखीभाव परक युगल केलिरस प्रियाप्रियतम के लाडलडावन की तत्सुखसुखित्व की अभिलाषा विशुद्ध भावना में परिणत हो जाती है। व्रजरस में श्रीराधाजी के प्रति स्वकीयात्व-परिकीयात्व की दुविधाओं से युगल का सदा सर्वदा अनादि-अखण्ड-एकरस-दाम्पत्य केलि रसानन्द निर्बाध नहीं होता तथा गोपीभावपरक स्वसुख की वांछा से ईश्वरीय-मनोरथ भी बना रहता है, इन्हीं कारणों से सम्भवत: गोपीभाव परम ब्रजरस की चरमोन्नति निकुंज-रसोपासना से सखी या सहचरी भाव में हुई है।

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय निकुंज-रसोपासना का विधायक तत्त्व युगल का नित्यविहार है। रसाचार्यो ने अनादि वैदिक **रसो वै स:** रुति प्रतिपादित रसरूपा-परमानन्द स्वरूप-परब्रह्म-पुरुषोत्तम, परमेश्वर की पूर्णावतार सच्चिदानन्द सर्वेश्वर श्रीकृष्ण और उन्हीं के अनुरूप उनकी परमाह्लादिनी शक्ति श्रीराधाजी के

दाम्पत्यपरक नित्यविहार की अनन्त-अखण्ड एकानुभूति को ही रसिकों का परम लक्ष्य माना है। युगल का यह नित्यविहार, व्रजविहार और वृन्दावनविहार के भेद से अनवरत अनुभूतिगम्य होता है, इन उभयरूपात्मक प्रसंगों में युगलविलास के आनन्द से क्रमशः ब्रजविहाररस और निकुंजविहारस साधित होता है। व्रजविहाररस में गोपीभाव तथा निकुंजरस में सखी-सहचरी भाव से सेवा का विधान है। युगलविहारी-विहारीणीजू के नित्यनूतन वयस में, उनके नित्यनूतन लीलाधाम व्रजवृन्दावन में, उनके लीला परिकरों के नित्यनूतन उत्साह-उमंग और नव नव भावावेश में, उनक नित्य-नूतन लीलारस-प्रसंगों का, अष्टकालिक-विविध ऋतुपरक-अहर्निशचिन्तन-मनन-कीर्तन करते हुए कहीं गोपीभाव से तल्लीन व्रजविहारी का, तो कहीं सखीभाव से नकुंजविहारी का, दर्शनानन्द पाना ही रसोपासना के साधकों का परम रहस्यात्मक लक्ष्य है।

युगलतत्त्व श्रीराधाकृष्ण की लीलाएँ व्रजविहार और वृन्दावन विहार उभयात्मक मानी गई हैं जिनसे परिपुष्ट क्रमशः व्रजरस तथा निकुंजरस के सभी विधान लगभग समान हैं। रसराज शृंगार ही दोनों का मूलाधार रस है, व्रजलीलाओं में शृंगार के संयोग वियोग परक पक्ष मान्य हैं जबकि निकुंज रस में प्रतिपल संयोग का अनवरत अखण्ड विधान है, यहाँ प्रियाप्रियतम युगल दम्पत्ति श्रीराधाकृष्ण का अनवरत सहचरण, निकुंज केलि रमण ही साध्य है। जल क्रीड़ा-दीपोत्सव, शरदचन्द्रोत्सव, होरीफाग-बसन्दा हिंडोरा, ऋतु परक विविध पर्व-त्यौहार-उत्सव के लीलापरक प्रसंग, नखशिख-शृंगार के विषय, रास-महारास, वन विहार आदि सभी प्रसंगों की सरस योजनायें दोनों में मान्य हैं, पर निकुंज रस विहार मे मान-अभिसार, विरह-मिलन, परकीयात्वप्रेम की स्वीकृति मात्र भी नहीं होती, पर वहाँ निकुंजविहारी में, युगलकेलिक्रीड़ाओंके बहुविध लीला प्रसंगों, नित्य नवरस विलास-अवस्थाओं तथा शृंगार की साज-सज्जाओं की बहुलता होती है। दोनों प्रकार की युगललीलाओं में प्रमुख भेद साधक के भाव का है—व्रजरसविहार में गोपीभाव प्रधान होता है जिसकी पराकाष्ठा रास में होती है—जहाँ भक्त गोपीभाव से भगवान् श्रीकृष्ण के स्पर्श आदि की वांछा करता है तथा कान्ताभाव से पतिरूप में श्रीकृष्ण के वरण की अभिलाषी होता है, जितनी गोपियाँ उतने ही रूप धारण कर भगवान् श्रीकृष्ण रास के गोपी विहार प्रसंग में सबका मानेरथ पूर्ण करते हैं।

निकुंजविहार में श्रीवृषभानुनन्दिनी नित्यकिशोरी श्रीराधाजी रस रूप परब्रह्म परमानन्द स्वरूप रसिकेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की परमाह्लादिनी शक्ति तथा अन्तरंगभूता हृदयेश्वरी—ऐसी प्रियाजी भगवान् श्रीकृष्ण की हृदयाराध्या श्रीराधिका हैं क्योंकि युगलरूप में उनके रसरूप की पूर्णता होने से वे सदा सर्वदा रसपोषिका

श्रीराधाजी की कृपावांछा करते हैं। रसिंक के रसभाव में इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण निकुंजविहारी रूप में नित्य राधारमण हैं—

उदधि महामाधुर्य के रसिक दोऊ रसभौंन।
सदा सर्वदा एकरस, राजत राधा रौंन।।[1]

निकुंज रस महल में प्रतिपल निकुंज केलिरस प्रियाप्रियतम लाडलीलाल की, नव नवभावों के उल्लसित हृदय में सहचरी भाव की सेवा में तत्पर रसिकों के लिए निकुंज स्वामिनी श्रीप्रियाजी ही सर्वस्व हैं, सहचारियाँ उन्हीं की चरणाश्रित एकमात्र उन्हीं की कृपाकांक्षिणी होती है, निकुंज-रन्ध्रों से केलिरत प्रियाप्रियतम के तटस्थ भाव से दर्शनों की तल्लीनता ही उनका स्वसुख है। निकुंज-दम्पति के भावानुरूप युगलकेलि सुख का तटस्थ भाव से चिन्तन करते हुए प्रतिपल नवनव निकुंज-क्रीड़ा का विधान करना, स्वामिनी श्रीराधाजी की कृपा से प्राप्त मंजरी-अनुचरी-किंकरी भाव की यह सहचरी सेवा, निकुंज की परिचर्या का निकुंज महल की टहल या किंकरता ही होती है, केवल निकुंज-रन्ध्रों से युगलकेलि-आनन्द की तटस्थ भावानुभूति ही सहचरी का स्वसुख कहा जाता है जो गोपीभाव से भी श्रेष्ठतर माना गया है, क्योंकि इसमें काम का ईश्वर परक भावनात्मक सुख भी निःशेष हो जाता है।

इन उभयात्मक भावों की रसोपासनाएँ अनादि-वैदिक-श्रुति प्रतिपादित-सनातन प्रेमाभक्ति की परम्पराएँ हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय में दोनों ही परम्पराएँ आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य से अद्यावधि व्यवहृत रही हैं। वाणी ग्रन्थों में इनका निर्वाह निर्बाध रूप से परम्परावत् प्रचलित है। व्रजरसोपासना सामान्य से सभी उपासकों के लिए मान्य है तथापि आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य द्वारा प्रवर्तित तथा परमरसिकवर्य्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी महाराज सखी नाम श्रीहरिप्रियाजी कृत श्रीमहावाणीजी द्वारा निरूपित विशिष्ट निकुंज तत्त्व की निम्बार्कीय रसोपासना परमगुह्य अन्तरंग भाव की अत्यन्त मधुर-महनीय-मानसी रसोपासना होने से परमरसिक ही उसके अधिकारी होते हैं। श्रीश्रीभट्टदेवाचार्यजी सखी नाम श्रीहितु कृत आदिवाणी-युगलशतक, श्रीहरिप्रियाजी श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी कृत श्रीमहावाणीजी, श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी कृत श्रीपरशुराम पदावली, श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी कृत-वन्दावनवाणी-गीतामृत गंगा तथा श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजी कृत-गोविन्दवाणी आदि श्रीनिम्बार्काचार्यपीठस्थ आचार्यों के इन प्रामाणिक ग्रन्थों कें व्रजरस और निकुंजरस दोनों का विधिवत् रूप से सरस और काव्यात्मक रस परिपाक हुआ है। श्रीपरशुरामदेवाचार्य के उभय रसात्मक रसोपासक व्यक्तित्व कृतित्व का विश्लेषण पारखी-भक्तमालकार श्रीनाभादासजी ने अत्यन्त स्पष्ट रूप से करते हुए कहा है—

---

1. सि.सु. श्रीमहावाणी

ज्यों चंदन को पवन निम्ब पुनि चंदन करई।
बहुत कामतम निबिड़ उदय दीपन ज्यौं हरई।
श्रीभट्ट पुनि हरिव्यास सन्तमारग अनुसरई।
कथा कीरतन नेम रसन श्रीहरिगुण उच्चरई।।
श्रीगोविन्द भक्ति रोग गति तिलक दाम सद बेद हद।
जाँगली देस के लोग श्रीपरशुराम किये पारषद।।[1]

निम्बार्कीय उभय रसात्मक रसोपासना परम्परा अत्यन्त व्यापक है, भक्ति-रीति कालके अनेक काव्यकारों ने सरस सुमधुर वाणियों की रचनायें की हैं—तथापि यहाँ निम्बाकाचार्यपीठस्थ रसाचार्य की वाणी परम्परा का दिग्दर्शन ही अभीष्ट है।

श्रीराधामाधव रस विलास—प्रस्तुत निकुंज रसोपासनात्मक महाकाव्य **श्रीराधामाधव रस विलास** के प्रणेता, रससिद्ध कवि-रसाचार्य रसिकप्रवर वर्तमान श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री **श्रीजी** महाराज ने यहाँ श्री हरिव्यासदेवाचार्यजी कृत श्रीमहावाणी जी का अनुसरण करते हुए उसकी रसात्मक-काव्यात्मक-आत्मा का वरण रीति-सिद्धि रसात्मक मधुर काव्य कलेवर में परमाह्लाद पूर्ण-वैचित्र्य से किया है। दोहा-छन्द की महाकाव्यात्मक रचना परम्परा में रीतिकालीन रीतिसिद्ध कवि विहारी का नाम सर्वोपरि है। **सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर देखन में छोटे लगें घाव करें गम्भीर**। काव्योक्तिपूर्ण इस कथन से उनके दोहों की मार्मिक अभिव्यंजना के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ की दोहावली विहारी सदृश सटीक और सार्थक-अलंकरण-उक्ति वैचित्र्य से परिपूर्ण होने से मार्मिक है। यहाँ रससिद्ध कवि ने गागरवत् अति लघुछन्दात्मक कलेवर में रीति-रत्यात्मक कलात्मक कवि शैली से, निकुंज केलि रसोपासना के अनन्त-सौन्दर्य-माधुर्य-लावण्य से सुपूरित रसार्णव की अनुपम अवतारणा की है। अति संक्षिप्त सार्थक-सारगर्भित शब्द सौष्ठव में अनुप्रास-यमक-श्लेष-उपमा- रूपक आदि के अलंकरण में लोकोत्तर-प्राकृतिक-सौन्दर्य में आवेष्ठित-छवि का चित्रण चारु चमत्कृतिपूर्ण-परमाह्लादकारी-गूढ़ार्थक-वक्रोक्तिपूर्ण वैदग्ध-वचनों से चलचित्रवत् चित्रांकित है। गहन-गूढ सारभूत-अन्तरंग-शृंगार की उद्भावनात्मक रसात्मक-निकुंज- भक्त् की गागर में सागर-वत्-रस-सम्पूरित विवेचनात्मक यहाँ परम मुग्धकारी है। यह भक्तिरसात्मक-विलक्षणमहाकाव्य **श्रीराधामाधव रस विलास** समादरणीय है।

---

1. श्री नाभादास कृत भक्तमाल।

रचनात्मकपृष्ठभूमि

प्रातः स्तवराज पर युगल तत्त्व प्रकाशिका व्याख्या, युगल-गीतिशतकम्, सर्वेश्वर-सुधाबिन्दु, श्रीस्तवरत्नाञ्जलिः, श्रीराधामाधवशतकम्, श्रीनिकुंजसौरभ, श्रीयुगलस्तवविंशति, श्रीनिम्बार्कगोपीजनवल्लभाष्टकम्, श्रीनिम्बार्कस्तवार्चनम्, नवनीतसुधा, श्री सर्वेश्वरशतकम्, श्री राधाशतकम्, श्री निम्बार्कचरितम्, श्री वृन्दावनसौरभम्, श्री राधासर्वेश्वर मंजरी, श्री माधवप्रपन्नाष्टकम्, आदि निम्बार्कीय रसोपासना के अनेकानेक स्वरचित ग्रन्थों की पृष्ठभूमि के पूर्वाभ्यास से अनेकानेक ग्रन्थों के प्रणेता तथा उभय-रसात्मक सम्प्रति महाकाव्य **श्रीराधामाधव रस विलास** के रचनाकार वर्तमान निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज **निम्बार्कसम्प्रदायाचार्यों की रस परम्परा के मूर्तिमान रसाचार्य हैं जिन्होंने** अनादिवैदिक-श्रुतिप्रतिपादित रसोपासना के श्रीमद्भागवत महापुराण-पद्मपुराण-**ब्रह्मवैवर्तपुराण-ब्रह्मसंहिता-वृहद्गौतमीय तंत्र, सम्मोहन तंत्र आदि परिपोषक ग्रन्थों के सब पूर्वाचार्यों कृत भाष्यों, भक्ति ग्रन्थें-टीकाओं एवं वाणियों के गहन चिन्तन-मनन से साधित, श्रीराधामाधव के चरणारविन्दों की सखीभाव समाराधित अन्तरंग-लोकोत्तर-सुखानुभूतियों से सम्प्राप्य, युगलभक्तिपरक पूर्व लेखन अभ्यास सयुंक्त दिव्य काव्यप्रतिभा पर आधारित विलक्षण-वैदुष्यपूर्ण रससिद्ध कवित्व गरिमा से, जगद्गुरुत्व-समलंकृत रसिकशिरोमणि मूर्धन्य-वर्चस्व से, शरण नामांकित इस रचना के लघुकायिक दोहा छन्द में गागर में सागरवत् लोक कल्याणार्थक महारसमयी श्रीराधामाधव रस विलास के भक्तिरसामृतसिन्धु की सराहनीय अवतरणा की है। यह महाकाव्य निम्बार्कीय निकुंज-भक्ति का महाभाष्य है।**

मंगलाचरण

श्रीराधामाधव रस विलास के दो पक्ष हैं—प्रथमतः छह सर्गों में श्रीराधामाधव का सांगोपांग रसविलास वर्णन तदनन्तर चार सर्गों में सैद्धान्तिक निरूपण किया है। मंगलाचरण में सर्वप्रथमतः निम्बार्क परम्परागत भगवदीय विग्रहों की गुरुनिष्ठा सहित वन्दनाएँ की गई हैं जो सम्प्रदाय के प्राचीनतम पौराणिक महात्म्य का प्रतिपादन करती है। सर्वोपरि परिनिष्ठा स श्रीसनकादिक परमसेव्य देवर्षिवर श्रीनारदजी द्वारा प्रदत्त, आद्याचार्य सुदर्शनावतार श्रीनिम्बार्क भगवान् द्वारा परिसेवित परमेष्ट दक्षिण चक्रांकित सूक्ष्मातिसूक्ष्म गुंजाफल सदृश शालग्रामविग्रह श्रीसर्वेश्वर भगवान् के स्मरणपूर्वक, उन्हीं के युगल स्वरूप में अवतरित आचार्यपीठ के ठाकुर श्रीराधामाधवजी की भावपूर्ण वन्दना की गई है, तदानन्तर श्रीनिम्बार्क साम्प्रदायिक परम्परानुसार श्रीहंस भगवानद्वारा श्रीसनकसनन्दनादि-देवर्षि नारद तथा आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य सहित, तत्कालीन कलाक्रमानुसार नवविसकित वर्तमान में एकमात्र अ.भा. जगद्गुरु श्री-निम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ-सलेमाबाद (राज.) के संस्थापक

श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज एवं उनके गुरुवर्य्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज की वन्दना भी की गई है। ग्रन्थ का प्रथम सर्ग आद्योपान्त व्रजभाव से ओत-प्रोत व्रजरसनिष्ठा का है। व्रजविहार के दिव्य केलिस्थलों-लीलाधामों-पावनतीर्थों का भावपूर्ण स्मरण-चिन्तन-मानसिक वन्दन से व्रजभाव की सरस अभिव्यक्ति हुई है। अपरिमेय-अनन्त-प्राकृतिक-सांस्कृतिक- धार्मिक आध्यात्मिक वैशिष्ट्य-विभूषित विश्ववंद्य देवभूमि भारत वसुधा में अवस्थित व्रजमण्डल सर्वोपरि भाव से वन्दनीय है क्योंकि यह व्रजभूमि **रसो वैस:** रसरूप-परात्पर परब्रह्म-परमेश्वर-पूर्ण पुरुषोत्तम सच्चिदानन्दघन सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की लीला भूमि है। व्रज रसोपासक के सर्वस्व यशोदानन्दन-नन्दलाल- गोपीजनवल्लभ-गोवर्धनधारी-गोपाल,युगलविहारी श्यामाश्याम रासेश्वर श्रीकृष्ण के लीलास्थल-उपवन-विधिधतीर्थ वरसाना-नन्दगाँव-गोवर्धन-प्रेमसरोवर-कुसुम सरोवर- मानसी गंगादि का यहाँ मानसिक अनुरागपूर्ण किया गया स्मरण ही व्रजरस पोषक-निष्ठा है। प्रसंग संलग्न उल्लेखनीय वर्णन आद्याचार्य श्रीनिम्बार्क तथा उनकी तप:स्थली-आद्यपीठ निम्बग्राम का है जो पौराणिक दृष्टि से भी पुष्ट महनीय निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रामाणिक इतिहास है—

गोवर्धन के अति निकट, सुन्दर निम्बग्राम।
निम्बारक भगवन् का 'शरण' अलौकिक धाम।
चक्र सुदर्शन के सुभग, शोभित शुभ अवतार।
जगद्‌गुरू निम्बार्कवर, दर्शन 'शरण' विहार।।
सर्वेश्वर प्रभु अर्चना, सुरर्षि नारद प्राप्त।
सनकादिक सेवित प्रभु, 'शरण' निम्बार्क आप्त।।
सुदर्शन चक्रराज के, नियमानन्द अवतार।
श्रीनिम्बारक नाम शुभ, विधिमुख 'शरण' उचार।
श्रीब्रह्मा यति रूप का, शुभ आतिथ्य सूर्यास्त।
दरशाया रवि निम्बतरु, शंका 'शरण' अपास्त।।
अथ वेदानत पारिजात, सोरभ भाष्य विलोक।
बह्मसूत्र का भाष्य यह, 'शरण' श्रेष्ठ इह लोक।।
द्वैताद्वैत सिद्धानत है, स्वाभाविक श्रुति सार।
राधाकृष्ण उपासना, 'शरण' सरस शृंगार।।
वृन्दारण्य निकुंज रस, समुपासत निम्बार्क।
तप:पूत जिन साधना, 'शरण' प्रकट विश्वार्क।।[1]

---

1. राधा माधव रस विलास (महा काव्य) से समुद्धत।

इसी क्रम में श्रीनिम्बार्काचार्य परम्परा को गौरवान्वित करने वाले आदिवाणी–महावाणी–रसोपासनात्मक महिमा से मण्डित पूर्वाचार्य श्रीश्रीभट्टदेव एवं श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्यजी से सम्बन्धित पौराणिक इतिहास का निम्न ज्वलन्त घटनाक्रम भी उल्लेख है। इन वन्दनीय पूर्वाचार्यों ने हिन्दू–धर्म–वैष्णवी–उपासना, सनातन–संस्कृति, पावन तीर्थों–उत्तमश्लोक–साधुसुधीजनों के संरक्षणार्थ तथा परित्राणार्थ जो यावनी–संघर्षों का चमत्कारिक–समुचित–समाधान किया वह अत्यन्त प्रेरणादायी–ऐतिहासिक–संस्मरण चिरस्मरणीय है, जो '**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे**'-गीतोक्त–वचन से इन आचार्यों की भगवान् के अवतारों में प्रतिष्ठा करता है—

मथुरा में विश्राम घाट, यमुना तीर पतीर।
चतुर्वेद द्विजवर निकर, 'शरण' संतजन भीर।
नारद टीला मधुपुरी, परमाचार्य निवास।
श्रीनिम्बार्क परम्परा, 'शरण' तरणिजा पास।।
केशवकाश्मीरिभट्टजी, श्रीभट श्रीहरिव्यास।
राधाकृष्ण उपासना, 'शरण' हृदय नित वास।।
रचना केशवभट्टश्री, प्रभावृति प्रख्यात।
आदिवाणी युगलशतक श्रीभट 'शरण' प्रख्यात।।
महावाणी रससिन्धु, रचना श्रीहरिव्यास।
ललित युगल प्रिय केलि रस, 'शरण' रसेश विलास।।
तान्त्रिक यवन काजी ने, विश्राम घाट के पास।
यंत्र लगाया विचित्रतम, 'शरण' हिन्दूता ह्रास।।
जो हिन्दू उस यंत्र के, समीप होकर जाय।
यवन रूप तत्काल हो, 'शरण' सभी असहाय।।
समस्त व्रजजन प्रार्थना, सुनकर किया वियार।
केशवकाश्मीरिभट्ट ने, 'शरण' यंत्र परिहार।।
वैष्णव यंत्र प्रभाव से, यवन शक्त संहार।
यवन हिन्दूत्व रूप में, 'शरण' सहज संचार।।
काजी क्रोधावेश में, भैंसा रूप प्रसार।
दृष्टि मात्र पाशाणमय, 'शरण' किया निस्सार।।[1]

व्रजभाव में अहर्निश निमग्न, व्रजरसरसिकों के अभीष लीलावतारी परब्रह्म परमानन्द स्वरूप रसेश्वर श्रीकृष्ण यहाँ यशोदा के लाड़ले–कन्हैया–नवनीतप्रिय–

---

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य) से।

नन्दनन्दन–घनश्याम–ब्रजमोहन–ब्रजचन्द–गोपीजनवल्लभ–माखनचोर–नटनागर–वेणुवादक–मदनगो पाल, असुरउद्धारक–दीनदयाल–ब्रजरक्षक–प्रणतपाल– धेनुचारी–गोपविहारी–गोवर्धनधारी–गोविन्दगोपाल–कुंजविहारी–रासविहारी–लाडलीलाल–राधारमण, भक्तमनोहारी–युगलविहारी श्यामाश्याम हैं। ऐसे परमाराध्य के कोटिकामदर्परूप, अनन्तानन्त–सौन्दर्य–लावण्य–माधुर्य–कारूण्यविभाषित, दिव्यगुणालंकृत– लीला–स्वरूप का मनोयोग पूर्वक मनन– चिन्तन–स्मरण–भजन– कीर्तन करते हुये उनके निरन्तर लीलास्वादन का निगमादि–प्रतिपादित युगलकृपासाध्य परमलक्ष्य यहाँ उपदिष्ट हुआ है जो ब्रजनिष्ठा से ही सुलभ है—

निगमशास्त्र मत अनुसरण, आप्त वचन अवधार।
ब्रज रजनिष्ठा हरि भजन, 'शरण' यही है सार।।
श्रीब्रजरज शिर पर धरौ, कटै निखिल अघ रासि।
कृपा सतत श्रीयुगलवर, 'शरण' परम अभिलासि।।
ब्रज वसुधा शुभ वास हो, चिनतन राधेश्याम।
प्रतिपल मंगल गान कर, 'शरण' लतनि विश्राम।।[1]

कृष्णस्तु भगवान स्वयम्—रसपरब्रह्म-श्रीकृष्ण, सकलनियन्ता सर्वेश्वर, ब्रह्मा–शंकर–इन्द्र–प्रभृति–अमरगन्धर्व वन्दित, ऋषि–मुनि–यति–योगियों के परमाराध्य, अनिवर्चनीय रसो वैसः—आनन्दब्रह्म, रसाब्धि–स्वरूप, परात्पर– परब्रह्म, जगज्जन्मादि हेतु–पुराण–पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, अनन्त–भवाब्धिसमाश्रय अनन्तकरुणाकोष–अनन्तकल्याणगुणादि शास्त्र सम्मत विशेषणों से युक्त श्रीकृष्ण के परमैश्वर्य का गुणानुवाद करते हुए ब्रजरस–अधिष्ठाता–परमसिद्ध–भावुक कवि हृदय ने ब्रजरस के परम–आलम्बन हेतु रसो वैसः का हृदयहारी अलौकिक अनुपम चित्रण किया है। वे अनन्तानन्त–रस–सौन्दर्य–लावण्य– माधुर्य– कारूण्य–कृपारूप हैं, उनका भक्तमनाहारी–अनुग्रह–विग्रहकारी–प्रेमार्णव–रसरूप है—ऐसे रसिकेश्वर सर्वेश्वर ब्रजेश– ब्रजरमण–गोपाल का यह रूपचित्रण–अत्यन्त ललित–कलित–सुमधुर–अनुपम–सरस–कलात्मक–नखशिख– शृंगार से सुसज्जित–आलंकारिक–नित्यनूतन है जो कोमलकान्त–मधुर दोहावली में आवेष्ठित, चित्ताकर्षक–यथार्थतः मूर्तिमान् कृष्णमय रूपचित्रण, दिव्यानुभूत–सिद्ध–साध्य–अनवरत दर्शनीय–लोकोत्तर और अनिवर्चनीय है—

नूतन नवरत्नावली, शोभित श्रीवनमाल।
मणिमुक्तामय कनक मुकुट, 'शरण' कृष्णगोपाल।।
मकराकृति नवकनकमय, कुंडल विलसत श्याम।
नव गुंजा वैजयन्ती, 'शरण' माल्य अभिराम।।

---

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य) से समुद्धत।

मयूर पिच्छ अभिराजत, मुरलीधर गोपाल।
वेणु बजावत वृन्दावन, 'शरण' श्रवण व्रजबाल।।
श्रृंगी-लकुट-मनमोहक, राजत श्रीघनश्याम।
लीला विहारि ललहित रस, 'शरण' लसत ब्रजधाम।
विलसत भुजा बाजुवंध, शोभित सुकण्ठहार।
नवल कंचुकी जरकशी, 'शरण' कृष्ण बलिहार।।
पदाम्बुज धारण पादुका, कनक कसीदा पीत।
श्रीसर्वेश्वर व्रजरमण, 'शरण' दरश प्रिय शत।।[1]

श्रीवृन्दावन भाव

परममनोरथपूर्ण-परमलक्ष्याभीष्ट-वृन्दावनस्थ-निकुंजभाववेष्टित-सर्वोच्चरसोपासना की चिराभिलषित-रसानुभूति के प्रति, प्रबलतम रसावेग से उच्चतम-अत: प्रेरणा की परमदिव्याभिव्यक्ति ही **श्रीराधामाधव रस विलास** में वृन्दावन-भाव-शीर्षक का अभिवर्णित परम-रहस्यात्मक विषय है, जो वस्तुत: निकुंज भाव के रसाचार्य रसोपासना के अनवरत निकुंज-रस-परिपोषक-रसिकशिरोमणि-रससिद्ध कवि हृदय के अन्तरंग युगलरसकेलि-रसानन्द की **स्वानुभूति प्रत्यक्ष-दर्शनाभूति है। परसा जलधर प्रेम का, मेह परिबरस्या आय। अन्तरंगी रसात्मा, हरिभरि बनराय।** सन्तों के कल्मषरहित-निर्मलशुद्धपरमानुरगा-हृदय का दिव्य-उज्ज्वल प्रकाश पारदर्शी होता है—यह प्रामाणिक कथन है, अत: यह प्रसंग-आध्यात्मिक शुचिता से परिमार्जित सहज-गुरुनिष्ठ-परमरसिक कवि की निर्मलतम वीतरागी मानसिक काया पर, युगल की अहैतुकी कृपा से, मेघों द्वारा युगल प्रेमरसामृतसिन्धु-निसृत-निर्झरित-रसवर्षण से आप्लावित रोम-रोम संसिक्त आत्मा की सर्वकल्याणकारी परम-मुग्धकारी वाणी है।

निम्बार्कीय निकुंज-रसोपासना का रहस्यात्मक स्वरूप निम्बार्काचार्य द्वारा वेदान्तकामधेनु एवं पात: स्तवराज में उपदिष्ट था श्रीश्रीट्ट-श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी द्वारा विकसित-प्रतिपादित परम गुह्य अंत:पुर उपासना का है। योगपीठ श्रीधामवृन्दावन में ही युगल का लोकोत्तर-निकुंज-छवि-सुसज्जित-अंतपुरस्थ दिव्यमहल है, यह रसिकों का सर्वोपरि-स्थल गोलोक-वैकुण्ठ धाम से श्रेष्ठतर-देवदुर्लभ रसिकों का ही परमाश्रय है, यह अलौकिक धर्म रसिकों की राजधानी है, रसिकविहारी श्रीकृष्ण यहाँ के रसिक राजेश्वर हैं, रसिक-विहारिणी-परमाह्लादिनी-रस-अधिष्ठात्री-श्रीस्वामिनी-परम्प्रिया श्रीराधाजी यहाँ की परम राजमहिषी राजरानी हैं, ललितादिक

1. रस विलास (महाकाव्य) से समुद्धत।

अन्तरंग अष्टसखियों, सहचरी-सेवापरायण-रसिकभक्त, श्रीवृन्दादेवी, रवितनया-सौरी-रसोत्प्रेरित प्रतिपल-कलित कलकलनिनादिनी श्रीयमुनाजी, नित्यनूतन-द्रुमवेलियाँ-पशुपक्षी- भ्रमर-कमलपुष्पादि-चारु चन्द्र-चकोर-कोकिल-मयूर आदि लीलाधाम श्रीवृन्दावन का चराचर लीलापरिवेश आदि सभी रसिकरूप से निकुंज-सेवा-तल्लीन हैं। नित्यनिकुंजबिहारी-विहारिणीजू का केलिस्थल, वहाँ का सखी-सहचरी-रूप में रसिकों का सेवासंलग्न लीला परिकर, नव युगल दिव्य दम्पत्ति की निकुंजरसलीलाओं के विविधविधान-लीलापरिवेश आदि सभी रसपोषक तत्त्व, लीलाविस्तारक रसरूप परब्रह्म-परमानन्द स्वरूप युगल तत्त्व के ही दिव्य स्वरूप हैं जो युगल दम्पत्ति के भावानुसार उनकी निकुंजकेलि का नवनव उत्साह से प्रतिपल नूतन विधान करते हैं, तथा तटस्थ भाव से परमानन्द के रसास्वादन का गुणानुवाद ही जिनकीअभिलषित सुखानुभूति है। अनन्य धर्मनिष्ठा से अभिव्यक्त वृन्दावन योगपीठ के अनादिवैदिक-श्रुति सम्मत सनातन निकुंज-रस-तत्त्व का ऐसा सैद्धान्तिक भावपूर्ण निरूपण निम्बार्कीय निकुंज रसोपासना का सार है। परम रसिकवर्य्य परमाचार्य सखी नामा श्रीहरिप्रिया श्रीहरिव्यासदेवाचार्य कृत श्रीमहावाणी में यह परम वैशिष्ट्य विभूषित साँगोपाँगक रूप से निरूपित हुआ है। श्रीमहावाणी निहित- मधुरातिमधुर निकुंज-रससिक्त-रसोपासना सम्प्रदाय के रससिद्ध कवियों द्वारा अनुसरित हुई है—कृष्णगढ नरेश साँवतसिंह उपनाम श्रीनागरीदासजी के प्रसिद्ध पद वृन्दावन रसिक रजधानी में—इसी भाव का भावपूर्ण प्रतिपादन हुआ है। रससिद्ध आचार्य श्री श्रीजी महाराज द्वारा ललितकलित-सरसवाणी में विरचित वृन्दावन-निकुंजोपासना का महनीय ग्रन्थ-**श्रीराधामाधव रस विलास** सहृदय कवि का वाग्विलास नहीं वरन् यह तो श्रीमहावाणीजी का सरस-सुन्दर-मूर्तिमान् स्वरूप है, मौलिक-भावों से परिपूर्ण-स्वानुभूतिपरक तथापि श्रीमहावाणीजी के अनुरूप-चमत्कारिक अनुसृति के रूपम निम्बार्की, रसपरक पूर्वाचार्यों द्वारा प्रतिपादित-प्रामाणिक-महाकाव्यात्मक रसानुभूति है जो प्रत्यक्षत: अवलोकनीय है-

धाम शिरोमणि श्रेष्ठतम, श्रीवृन्दावन धाम।
विहरत कुंज-निकुंज में, 'शरण'राधिकाश्याम।।
अष्टसखीजन संसेवित, शोभित श्यामाश्याम।
राजत मोहन महल में, 'शरण' परम अभिराम।।
अष्ट सखीजन रंगदेवी, सुदेवी सरस ललाम।
ललिता-विशाखा-चम्पिका, 'शरण' प्रणत निष्काम।।
चित्रा तंगविद्या सखी, इन्दुलेखा प्रणाम।
युगलसेवा अभिरत सदा, 'शरण' शरण अविराम।।
कोटि-कोटि सखीपुंज है, सेवारत श्रीधाम।

कलित कुंज विलसत रुचिर, 'शरण'राधिका श्याम।।
निर्मल यमुना धार है, निकुंज श्याम तमाल।
राधामाधव सह सखी, 'शरण' केलि तरु ताल।।
श्रीवन तृण तर हरितमा, यमुना बहत गम्भीर।
विविध सरोवर दरश प्रिय, 'शरण' सुमंगल तीर।।[1]

निकुंजलीला की ऐसी योगपीठ श्रीधाम-वृन्दावन की कनक वसुन्धरा तथासमस्त लाकोत्तर लीलावैभव-परिकर **रसो वै सः** इतिप्रतिपादित सच्चिदानन्द-रसरूप-परमानन्द स्वरूप परब्रह्म-परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण का ही रसविस्तृत-चिन्मन-स्वरूप है—जहाँ अनिवर्चनीय युगलकेलि का नानामणि-जटित-स्वर्ण-सिंहासन-विभूषित दिव्य-महल है जहाँ का प्रतिपल रसवर्षण-युगललीलानन्द, सखीभावपूरित, निष्काम-तटस्थता से अनुभूति गम्य है—

श्रीवृन्दावन शुभ धरा, सतचित आनन्द रूप।
नाना मणिमय रतन जटित, 'शरण' दिव्य छवि धूप।।
वरषत मंजुल युगल रस, श्रीवृन्दावन कुंज।
विलसत सेवा सहचरी, 'शरण' अनवरत भुंज।।
मोहन-महल-निकुंज में, स्वर्ण सिंहासन भव्य।
शोभित श्यामाश्याम शुभ, 'शरण' दरश अति नव्य।।
श्रीवन धरण कनकमय, चिन्मय-दिव्य स्वरूप।
प्रियालाल विलसत सदा, 'शरण' अलौकिक रूप।।[2]

निम्बार्कीय-निकुंज-रसोपासना में निकुंज-स्वामिनी श्रीराधा का प्राधान्य है। प्रियाजी ही रस की अधिष्ठात्री-निरतिशय-आनन्द-स्वरूप, अनन्त-रूप-सौन्दर्य-लावण्य-माधुर्य-मण्डित-अनन्तानन्त गुणालंकृता प्रेमस्वरूप-परमाह्लादिनी-आद्यशक्तिरूपा हैं, रसराज-शृंगार के प्रेमामृतरसार्णव-स्वरूप श्यामा श्रीराधाजी में ही अनेक श्रेष्ठातिश्रेष्ठ-शचि-सुन्दर दायक-सरिताएँ समाविष्ट हैं। श्रीराधाजी रस और प्रेम की चरम-अभिव्यक्ति हैं निकुंज-रस-शृंगार के सर्वोच्च नायक श्रीकृष्ण भी ऐसे ही अनन्त-रूप-रस-सौन्दर्य-माधुर्य-लावण्यगुणगणालंकृत शुचि-सर्वोच्चता स्वरूप हैं जिनमें रस और प्रेम की पराकाष्ठा है। वे ही रसरूप परब्रह्म सच्चिदानन्द सर्वेश्वर श्रीकृष्ण अपनी अन्तरंगभूता आद्याशक्ति-परमाह्लादिनी-अनुरूप-सौभाग्यशालिनी नित्यकिशोरी श्रीस्वामिनी-वामाँगिनी-प्रियाजी श्रीराधाजी के साथ ही नित्यविहार करते हैं, दम्पत्ति-राधारमण का स्वकीयात्व श्रुति प्रतिपादित-अनादि है, श्रीराधासर्वेश्वरी-

---

1. राधा माधव रस विलास।
2. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।

श्रीकृष्णसर्वेश्वर हैं, रसक्रीडा हेतु उनका प्रकट युगलस्वरूप है तथा व सदा सर्वदा एकरस- अभिन्न-सनातन-अनादि परमतत्त्व हैं। अत: श्रीराधा रसरूप परब्रह्म की रसपोषिका- रस- अधिष्ठात्री-परमाह्लादिनी-आद्याशक्ति-परमेश्वरी- नित्यकिशोर नित्य-निकुंज-केलिरसविस्तारिणी निकुंज-स्वामिनी होने से वृन्दावनेश्वरी हैं, सच्चिदानन्द-परब्रह्म-श्रीकृष्ण-वृन्दावनविहारी-रसिकेश्वर- नित्यविहारी-नित्यकिशेर पूर्ण ब्रह्मलीला पुरुषोत्तम हैं तथापि वे लीडलीलाल- राधारमण होने से रसविस्तारिणी प्रियाजी के कृपाकांक्षी होते हैं, इसलिए श्रीराधाजी उनकी परमाराध्या-प्रेमाशक्ति हैं—ऐसी निकुंज-स्वामिनी का निम्बार्क- साम्प्रदायिक-निकुंज रसोपासना में प्राधान्य है, जिनकी कृपा से निकुंज-प्रवेश साध्य है, रसिक भी परमाराध्या श्रीराधाजी के ही कृपाकांक्षी हैं, **अब तो कृपा करो श्रीराधा** का दैन्यभव उनकी अभीष्ट साधना है, तभी श्रीराधाजी की परम कृपा से ही उनको सहचरी-सखी भावनिष्ठ-सेवा-समर्पण का सौभाग्य प्राप्त होता है—अत: सखी-सहचरी-अनुचरी सभी किंकरियाँश्रीराधाजी के चरणानुराग की सेविकायें हैं।

श्रीराधामाधव रस विलास में निकुंज-स्वामिनी श्रीराधाजी का ऐसा ही परमदिव्य प्राधान्य है, उनके चराचर-व्याप्त-सर्वेश्वरी-परमेश्वरी-विश्व-मोहिनी-प्रेमविमोहिनी-म्हाह्लादशक्ति-स्वरूप का निरूपण तथा उनकी रसमयी निकुंज-भक्ति का विषय के अनुरूप ललित-कलित-मधुरवाणी की चित्रोपमता से उनके मनोहारी युगलप्रेम का प्रगाढ़तम प्रतिपादन हुआ है, रसेश्वरी प्रियाजी के दर्शन की उत्कृष्ट-अभिलाषा-तनमयता-तीव्रतर-लालसा- अनन्तोतलास- परिपूरित सखी प्रेमाश्रित भवाभिव्यक्ति दर्शनीय है—

कुंज-कुंज प्रतिकुंज में, कुंज वीथि में गुंज।
जयराध जयराधिके, 'शरण' निनद खग पुंज।।
आलिकुल खगकुल सरस तरु,. कलरव राधानाम।
करत मुदित मन-चारुतम, 'शरण' कुंज वन धाम।।
तरुलतिका अरू डाल पर, पत्र पुष्प पर नाम।
राधे-राधे-राधिके, पुनि-पुनि 'शरण' प्रणाम।।
राधायद अनुरक्ति हो, कृष्ण भजन अनुराग।
वृन्दावन नित वास लस, 'शरण' सदा सुख भाग।।[1]

रससिद्धकवि का निकुंज-भावावेष्ठित अप्राकृत-वृन्दावन वर्णन, सरसप्रकृति की लता-कुंजाच्छादित-चित्रोपम-चित्रात्मक-ऋतुचित्रणात्मक-अभिव्यंजना,

---

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।

अनुप्रास-पुनरुक्तिप्रकाश, शब्द-सार्थक-समाहारसामासिक भाषा-सौन्दर्य की दिव्यता दर्शनीय हैं, चराचर की युगल के प्रति सहचरीनिष्ठा भी अवलोकनीय है—

वृन्दाविपिन अवनि मध्य, अतिशय प्रशस्त भूमि।
यशगल लीला विहार वन, 'शरण' लता तरुण्मि।।
मंजुल निर्झर झर-झरत, परत चारु जल धार।
स्वतः सुभी प्रकाश रूप, 'शरण' धाम सुख सार।
श्रीवृन्दावन सकल ऋतु, राजत आठों याम।
युगल कृपारत सभी ऋतु, 'शरण' सेवाप्त काम।।[1]

चित्रांकन-शैली में द्रष्टव्य है लोकोत्तर श्रीधामवृन्दावन में अनुपम-दिव्य-वर्षाविहार की निकुंजसेवा का यह विधान, जहाँ नवाम्बुद श्यामघटा की रिमझिम, घनघोरअ घटा में चपला-चमत्कृति, दामिनी-दमक, दादुर-झींगर, मधु-रस, कोकल कुंजन, कीर-सारिका-हंस-वक्र-कलरव की सरसता से उत्प्रेरित रसोल्लास से रसावेशित सखियाँ युगलरस क्रीड़ा के शुभ संकेत से अभिलषित होकर झूला सेवा की तत्परता में तल्लीन हैं, रससिद्ध सहचरी-सेवा के परमार्थ प्रस्तुत सेवाविधान में दिव्य वर्षाविहार तदनन्तर झूलनविहार-रस से अनुप्राणित हो, परमरसकेलि की सुखानुभूति अभिव्यक्त कर रहे हैं। कुशल चित्रकार के लिए यह वर्षाविहार एक अनूठा भावचित्र है—काव्यकलात्मक चित्रांकन का ऐसा उदाहरण दुर्लभ है। यहाँ भाषा शैली का सौष्ठव-प्रसादता-शब्द की लाक्षणिकता-चित्रोपमता-वर्णन-तारतम्य में सर्वांग-सुपूर्णता, वर्षा की चित्ताकर्षक चमत्कृतिपूर्ण चित्रांकता, प्रकृति का सूक्ष्मावलोकन, विषयानुकूल-संस्कृतनिष्ठ- शुचिता, आनुप्रासिकता-शब्द-सार्थक- ध्वन्यारमकता-प्रकृति के प्रति-सजीव- सौन्दर्यानुभूति आदि विशेषताओं से परिपूर्ण आकाश तथा भूमिपटल पर अंकित इस वर्षाविहार का काव्यात्मक-निकुंज-रसात्मक वर्णन अलौकिक और अद्वितीय है—

निखिल गगन में नव-अम्बुद, श्याम घटा शुभ छाय।
वर्षत जलधर ऋतु सुभग, 'शरण' अवनि सरसाय।
चंचल-चपला-चमत्कृति, देखत मन हरषाय।
दामिनी दमकत घन घटा, 'शरण' प्रचुर वरषाय।।
दादुर पुनि पुनि घोर रव, करत सतत निशिभोर।
वरषत सरसत वन धरा, 'शरण' घटा घनघोर।।
कोकिल कूजत सघन वन, श्रीवृन्दावन धाम।
वर्षत अम्बुद युगलवर, मुदित 'शरण' अविराम।।

---

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।

कीर-सारिका-हंस-वक्र, कलरव अति अभिराम।
चटक झिंगुर तितलियाँ, 'शरण' नाद अभिराम।।
अद्‌भुत वर्षा ऋतु यह, छाई परम उमंग।
श्रीवृन्दावन युगलवर, 'शरण' मुदित हिय रंग।।[1]

ऐसी सुरम्य वृन्दावनस्थ-वर्षाविहार वेला में सखियों द्वारा लोकोत्तर झूला-सेवा का दिव्य दृश्य अति-दोलायमान-रसाभिसिक्त-युगल छवि का तत्सुखित्व भावपूरित हाव-भाव-अनुभावपूर्ण, सुभग प्रीति का उत्प्रेरक तथा नयनाभिराम काव्यचित्र अत्यन्त मनोहारी है—

झूलाकदम्ब डार पर, मंजुल रेशम डोर।
झूलत श्यामाश्याम पिय, 'शरण' निकुंज हिलोर।।
नव श्यामल कादम्बिनी, वर्षत प्रिय जलधार।
झुलवत ललना ललनजू, 'शरण' सखि रसनार।।
विहसि विहसि प्रिय लाडली, विहरत नन्दकुमार।
झूलत परस्पर सुख लसि, 'शरण' अनन्त अपार।
झूला-मंगल झूलई, राधामाधव धाम।
श्रीवन आभा छागई, 'शरण' भजन श्रीश्याम।।[2]

महारास प्रकरण

रसो वै सः सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण के संसर्ग से उनकी लीलाओं में जो रससमूह प्रकट हो—वही रास है—श्रीधर स्वामी के अनुसार **रसानां समूहो रासः**। श्रीमद् महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य कृत सुबोधिनी टीकानुसार भी रास का मल रस है, रसप्रादुर्भाव हेतु नृत्य के समावेश में मानसिक रसाभिव्यक्ति होने से उस मानसिक रस का उद्‌गम देहजनित अनुभव से नहीं होता यथा—**रसस्याभिव्यक्तिर्यस्माददितिरस प्रादुर्भावार्थ भेद नृत्यं रास क्रीड़ायां मनसो रसोद्‌गमो न तु देहस्य**—अस्तु रसनिग्रह श्रीकृष्ण की इस दिव्यलीला की पूर्णता-अंगसंगोद्भूत लौकिक विषयानन्द से भिन्न निष्काम हाती है। **बहुनर्तकी युक्तो नृत्य विशेषो रासः**। में सच्चिदानन्द रसरूप श्रीकृष्ण के रसविग्रह की रसविस्तृति है—**रमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्ब विभ्रमः** अथात् जैसे नन्हा सा शिशु दर्पण किंवा जल में पड़े अपने प्रतिबिम्ब के साथ खेलता है—वैसे ही रमेश भगवान् ने व्रजसुन्दरियों में रमण किया है। श्रीमद्‌भागवत के प्राणतत्त्व रस-पंचाध्यायी प्रसंग में शरद् विभावरी ने पूर्णचन्द्रिमा से अनुरंजित लतापुष्पादिक प्रफुल्लित वनविपिन में रसरूप भगवान् श्रीकृष्ण की योगमाया वेणुवादन रसोद्दीपन से

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।
2. वही

प्रेमातुर गोपियों के संग रासलीला का सांगोपांग विधान वर्णित है। श्रीकृष्ण मधुर चितवन, मन्दस्मितानन—अपने दिव्य महारास रस विहार से गोपियों से उज्ज्वल प्रेमभाव का उद्दीपन कर उन्हें आनन्दित कर देते हैं। (10/9/45-46) पूर्णब्रह्म सनातन रसरूप रसिकेश्वर रसपरब्रह्म अखिलरसामृतसिन्धु सच्चिदानन्द भगवान् की यह चिदानन्दमयी दिव्य-क्रीड़ा **रास** है जिसमें व्रजरसविहार की चरम परिणति होती है, पर इस व्रजरसाधार रासलीला के गोपीभाव में ईश्वरपरक रसवांछा होने से मधुर भक्ति के रसाचार्यों ने सखीभावपरक निकुंज-रसाधारभूत महारास की महनीयता प्रतिपादित की है। यहाँ तो निकुंज-महल मे विराजमान युगलविहारी प्रियाप्रियतम-दम्पत्ति के रसमयी क्रीड़ा-अभिलषित संकेत से राधारमण के लाड़लडावन-मनमोदनार्थ- केलिरसानुमोदक-रस-संवर्धनात्मक-सेवारूपेण रसोद्दीपन-निमित्त, शरदचन्द्रविभावरी के शुभावसर पर रसरूप दम्पत्ति विग्रह के समक्ष सखी-समूह द्वारा सुसज्जित- शृंगाररसभिभूत गुणानुवाद-उल्लसित-सखीभाव की तटस्थ सुखानुभूति से संयोजित लास्य-रासनृत्य ही अचिन्त्यलोकात्तर-नित्य- वृन्दावनस्थ-निकुंज-महारास है। **श्रीराधामाधव रस विलास** में युगल की अचिन्त्य रासलीला-वृन्दावनस्थ निकुंज-रस की चरम परिणति की परिचायक है जो नित्यनूतन विधान से परमोच्च-उदात्त-भाव से सखी समूह द्वारा संयोजित, ताल-मृदंगादि वाद्यों द्वारा निनादित मधुर-गुणानुवाद पूर्वक निकुंजस्थ महारासनृत्य होता ही है। रससिद्ध कवि हृदय से निसृत सखी-सेवार्पित-रास-रासेश्वरी के सान्निध्य में तन्मयतापूर्ण चराचर विमोहक-रसवर्षण की व्यापक-लाकोत्तर रहस्यानुभूति से इस निकुंज-रसोपासनात्मक महाकाव्य के महारासामृतसिन्धु से निष्कामलोकोत्तर अनन्तानन्त परमानन्द प्रकट हुआ है—

लास्य केलिरत सखीजन, विलसत परम ललाम।
कलित कुंज में युगलवर, 'शरण' मुदित अभिराम।
लीला अचिन्त्य युगल की, यह लोकोत्तर नित्य।
वृन्दावन लहत नित, 'शरण' भजो आरित्य।।
श्रीवृन्दावन धाम चल, करो वहॉ का वास।
रासविहारी रासरस, 'शरण' गहो बन दास।।
रासविहारी रासरस, लीला नित आस्वाद।
वृन्दावन यमुना दरश, 'शरण' दूर भवपाद।।
श्रीधाम वसुधा कोटि मणि, चिन्मय दिवय प्रकाश।
युगल लीला लावण्यमय, 'शरण' अनन्त विकाश।।
स्वत: प्रकाश स्वरूप है, श्रीवृन्दावन धाम।
अगाध सुधारस वारिधि, 'शरण' भजो श्रीश्याम।।
श्रीनिकुंज वन वाटिका, युगल चरण नख ज्योति।

जगमग जगमग कोटि शशि, 'शरण' माल्यमणमोति।।
श्रीवृन्दावन कुंज मध, नृत्यत सखी समूह।
युगल विराजत-सिंहासन, 'शरण' विलय प्रत्यूह।।[1]

श्रीराधामाधवरसविलास ग्रंथ में वर्णितनिकुंज-महारास निकुंजस्वामिनी-रसविस्तारिणी प्रियाजी के प्रति चराचर में व्याप्त सखी-सहचरियों के परमोच्च-प्राधान्य-भाव से कृपाभावकांक्षित-तृषित-दैन्यभाव-अनुराग से प्रियाचरणों के अनन्याश्रय से तथा युगल-दम्पति के अचिन्त्य-केलि रस विलास-चिन्तन से अनुप्राणित है—

श्रीवृन्दावन कुंज में, चंचल खंजन-पुंज।
श्रीराधा अवलोकन करैं, 'शरण' सुमंजु कुंज।।
राधे-राधे रटत हैं, शुकाँगना अति हर्ष।
प्रणमत रटती सारिका, 'शरण' दरश अभितर्ष।।
मंजुल शोभा स्थल कमल, मधुप करत गुंजार।
राधा-राधा कीर्तन, मंगल 'शरण' बहार।।[2]

प्रस्तुत-निकुंज-भक्ति रसात्मक महाकाव्य के प्रणेता रसाचार्य-सखी-भाव-सम्पूरित- राधाभक्ति के रससिद्ध कवि-हृदय ने ऐसे निकुंज-महारास में निकुंजवल्लभा-निकुंजवल्लभ श्रीराधामाधव-दम्पति के ललित लीला विलास-रस की प्रत्यक्षत:सुखानुभूति की है—ऐसी लोकोत्तर-स्वानुभूत- अनिवर्चनीय श्रीधामनिष्ठा सहित केलिरसानन्द की रसाभिव्यक्ति स्पष्ट झलकती है—

सख सुनर्तनकाल में, विविध वाद्य निनाद।
युगल लाल अति उल्लसित, 'शरण' लेत आस्वाद।।
अनन्त सख समूह का, अभिनव राद्धी नृत्य।
राधामाधव विहसि लखि, 'शरण'उदित शुभ कृत्य।।
राधासर्वेश्वरी प्रिया, सर्वेश्वर घनश्याम।
सखी पुंज सुप्रसाद, 'शरण' दान रसधाम।।
निकुंज वल्लभा राधा, निकुंजवल्लभ श्याम।
युगल बसै हियै में सदा, 'शरण' परम सुखधाम।।[3]

श्रीवृन्दावन-रस-राजस्व का यह लोकोत्तर परमानन्द अति गुह्य-अतिगूढ़-रहस्यात्मक-वर्णनातीत हैं, जो केवल सखीभाव-समर्पणात्मक तटस्थ-सुखानुभूति की

---

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।
2. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।
3. राधा माधव रस विलास से।

रसिक सिद्धि एवं परमोच्च भाव से श्रीप्रियाजी की कृपासधना से ही अनुभूतिगम्य है। अत: यहाँ अद्‌भुत कवि कौशल से युगल की अहैतुकी कृपा से साध्य–रसिकों की सखी–सेवा–तत्परता से संप्राप्य, युगल के परम–अनुग्रहकारक– आश्रित भाव को उपदिष्ट करते हुए निम्बार्क–परम्परागत निकुंज रसोपासनात्मक दम्पती की परमानन्दयिनी वृन्दावन–रसासिक्त–मधुर–भाव की निष्काम भक्ति प्रतिपादित की गई है, क्योंकि अखिल ब्रह्माण्ड युगलरस से ही आच्छादित है, सचराचर का यही मधुर–रस परमानन्द–परम्प्रकाश है, उसमें संचरित प्राणों का परमरहस्य है, प्राकृत–अप्राकृत जग–जंगम–जगत् इसी लोकोत्तर परमानुग्रह–रसोन्माद में तन्मय–प्रतिपल–उत्कंठित उल्लसित तथा रंसावेष्ट है, लता–तृण–सरसरोवर–पशुपक्षी हंस–वक्र–मधुप–खग–मृग–जल वायु–तरंग– सुरभित– पवन, धवल–चन्द्रिका एवं रसिकों का सरल सहज ह्रदय आदि सभी परमदिव्य वृन्दावनस्थ की यगुल तत्त्व–प्रणति में प्रतिपल संलग्न हैं, युगल भावपूरित युगलरस की ऐसी दिव्य–रहस्यात्मक–निष्ठा ही प्रस्तुत महाकाव्य का मूलाधार प्राणतत्त्व है, इसी अनिवर्चनीय–नितान्त दुर्लभ–वृन्दावन रस की सरस–मधुरातिमधुर– साँगोपाँगिक रसाभिव्यक्ति ही इस भक्ति रसामृत सिन्धु–महाकाव्य का मूल प्रयोजन एवं अद्वितीय–काव्य हेतु है, रसाचार्य धर्म–निष्ठ–रससिद्धता से इस रचना–अभीष्ट में अत्यन्त सफल हुये हैं। अत: राधाभाव—प्राधान्य अनन्तानन्त–परमानन्द की सखीभाव–सम्पूरित युगल निकुंज रसोपासना के वृन्दावन भाव का सर्वोपरि मधुर महाकाव्य प्रतिपादित द्रष्टव्य है—

वृन्दावन रस रहस्य का, वर्णन परम अशक्य।
यह रस दुर्लभ है परम, 'शरण' अनुग्रह शक्य।।
झुकि झुकि शाखा धाम तरु, छुवत अवनि निशिवार।
श्रीवनरज संस्पर्श करि, 'शरण' लहत सुखसार।।
युगल चरण संस्पर्श शुभ, श्रीवन पावन धूलि।
सकल लता तरु पुंज भी, 'शरण' सकल वनफूलि।।
मधुप हंस बक पंक्तियाँ, मंडरावत आकाश।
श्रीराधा मुख उच्चरत, 'शरण' हृदय प्रकाश।।
लता तरुण पर श्रीराधे, राधे सौरि प्रतीर।
श्रीवन अवनि श्रीराध्, निगदत 'शरण' समीर।।[1]

---

1. राधा माधव रस विलास।

पुण्यसलिला श्रीयमुना

श्रीराधामाधव **रस विलास** ग्रन्थ में, वृन्दावन-रस के चरमोत्कर्षक निकुंज-महारास से संलग्न प्रकरण में, पुण्यसलिला-रवितनया-सौरि **रसो वै स:** परात्पर-तत्त्व-पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं की सूत्रधारिणी-संवर्धनी-मंगलदायिनी-परमदिव्यानन्द-कुक्षी-परमविद्यारूपिणी-स्वकीय महामाया-सूर्य- तनुजा, प्रतिपल-प्रेमान्मादिनी, कलकल निनादिनी-श्यामछवि आच्छादित कालिन्दी श्रीयमुना महारानी का लीला माहात्म्य प्रतिपादित हुआ है। व्रज-वृन्दावन-रस के उभय-रसोपासक सभी वैष्णव-सम्प्रदायी रससिद्ध-रसिक- कवियों ने श्रीयमुनाजी की इसी आध्यात्मिक-लीलात्मक-महनीयता के प्रतिपादनार्थ यमुनाष्टक- यमुनाशतक नामांकित भावपूर्ण-कंलात्मक-स्तुतिपरक ग्रन्थों का प्रणयन किया है, नित्यविहारी-विहारीणीजू श्यामाश्यामरसरूप-परब्रह्म- सच्चिदानन्द- सर्वेश्वर- लीलापुरुषेत्तम श्रीकृष्ण एवं उन्हीं के अनुरूप उनकी वामाँगिनी सर्वेश्वरी-परमाह्लादिनी-रस-अधिष्ठात्री-निकुंज-स्वामिनी-वृन्दावनेश्वरी-यूथेश्वरी श्रीराधाजी की उभय-रसात्मक भावपूरित युगलरस की समस्त दिव्य-लीलाओं के लोकोत्तर विधान-लीलारसविस्तार एवं रसोत्कर्ष, स्वकीय श्रीकृष्णवल्लभा-पट्टमहिषी-लीलासम्पूर्णा श्रीयमुनाजी की शुभ्र-ज्योत्स्ना-अनुरंजित, मणिमय-तटघाट-सज्जित, सघन-कदम्ब-तटतरुतमालतिमिरांकित-कमलांकित-जलतरंगों में प्रतिबिम्बित, मेघाच्छादित-लतापताप्रसूनावेष्ठित, सुमन-सुगन्धित-सुमधुर-परिमल-सुरभित-पवनालोडित एवं खगमृग-कोकिल-मयूर-मधुप-शुकसारिका-कलरव-कोमलकान्त श्रीमहिमान्वित, सुस्निग्ध-सुसिक्त-सिक्ता-रजकण विभूषित, नवमेघरसवर्षित-सद्य:-जलकणपूरित तथा कमलकणिकाओं से मन्द-मन्द-मंथर-मंथर-लहरायमान-रसोत्कर्षोल्लसित-रसावेष्ठित-अतिउमंगित, दिव्यातिदिव्य-अप्राकृत-पवित्र-क्रीड़ा से अवतरित-संवर्धित-संवलित एवं सम्पूरित है।

देवदुर्लभ-भूमि-भारत की इहलौकिक धरा पर, वृन्दावनधामावस्थित श्रीयमुनाजी के दव्य क्रोड़ में युगल की मंगलमयी दिव्य क्रीड़ाओं-रसलीलाओं का रसिकों के हितार्थ सौख्य-सुखात्मक-तटस्थभाव प्रेरित निष्काम-दर्शन हेतु प्रत्यक्षत: अवतरण हुआ हैं, श्रीयमुनाजी के नित्यनूतन-मंगलमय-पुलिन पर नित्यनूतन-वयस् तथा नित्यनूतन लीलापरिवेश में नवनव रसोत्साह-रसोत्कर्ष और रसोमंग से उल्लसित सहचरियों के सेवाविधान से निकुंज विहारी-विहारिणीजू का दिवय नौका विहार-जलक्रीड़ा-वनविहार-रास-महारास, कन्दुककेलि-वेणुवादन- धेनुचारण आदि का व्रजनिकुंज-उभयात्मक लीलाओं का निम्बार्कीय वाण्यों में वर्णित चित्रण यहाँ पर भी-परम्परानुसार चित्रित किया गया है। युगल का दिव्य अनवरत नौकाविहार

श्रीराधामाधव रस विलास का सम्बन्धित लीलारूपीरस सुसिद्ध कवि हृदय की काव्यकलात्मक चित्रोपम शैली में दर्शनीय है—

यमुना मंगल पुलिन पर, मंगल रूप विलोक।
नित नवललना ललन वर, 'शरण' दराश इहलोक।।
यमुना धार गम्भीरतम, नौका शेभित श्याम।
सखी सहित श्रीराधिका, विहरत 'शरण' अकाम।।
पावन यमुना पुलिन पर, पुलिन विहारी श्याम।
राधासहविहरत सतत, 'शरण' भजत व्रजवाम।।[1]

रविजा-रवितनया-कालिन्दी-सौरि आदि नामांकित श्रीयमुनामहारानीजी की दिव्य-लीलाभूमि रसो वै सः परब्रह्म सच्चिदानन्द रसिकेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की रसात्मक स्वरूप है, रसमयी-रहस्यात्मक यमुनाजी की दिव्यक्रोड़ा-श्रुति अप्रतिम-लोकोत्तर-प्रकृति-सौन्दर्य-माधुर्य-मण्डित है वह रसामृत सिन्धु **रसा वै सः** के अप्राकृत लीलामय स्वरूप की दिव्याभा से मण्डितहै, वह मीन-कच्छप-मकर-निकर, कोकिल-वर-चातक-भ्रमर-शुक-सारिका-मयूर, सुरम्य धेनुमण्डल, हंस-बतख-सारस-बकुल, रक्तोत्पलकलिपुंज-घाट-थाट मेघ निर्झरित आदि से संयुक्त दिव्याकर्षक वमोहक मुग्धकारी है, श्रीयमुनाजी का यह लीलापरिकर युगललीला के दिव्य रहस्यात्मक रस से परिशोभित उल्लसित होकर लीलास्वादन में अनवरत निमग्न है—

मीनकच्छप मकर निकर, रविजा करत निवास।
युगलभाव रस परिभरित, 'शरण' दरश अभिलास।।
वृन्दावन यमुना पुलिन, कोकिल कूजत कीर।
मयूर चातक सारिका, 'शरण' झरत नव नीर।।
श्रीवन यमुना बहत नित, बंसीवट तट घाट।
माधव मंजुल वेणुरव, 'शरण' झरत रस थाट।।
हंस सारस वतक पुंज, बकादि यमुना तीर।
मंजुल कलरव अति सुखद, 'शरण' सुपावन नीर।।
सौरि-सुपावन बालुका, क्रीड़त धेनु अपार।
सुशोभित पृष्ठभाग में, 'शरण' कृष्ण कुमार।।[2]

---

1. राधा माधव रस विलास से।
2. राधा माधव रस विलास।

कलिन्दी जलधार में सुशोभित रक्तोत्पल-कलिपुंज यह चित्रात्मक दर्शन-सानुप्रासिक-ध्वन्यात्मक-पुनरुक्ति प्रकाश आदि अलंकारों से अत्यन्त चित्ताकर्षक है—

कालिन्दी जलधार में रक्तोत्पल कलि पुंज।
लघु लघु चटक् फुटक सुख, 'शरण' चारु अलि गुंज।।[1]

यमुनाजी का आध्यात्मिक माहात्म्य, सहचरीनिष्ठा परम्परागत भाव से प्रतिपादित हुई है—

यमुना कल्मष हारिणी, देत युगल अनुराग।
गंगा संगम धारिण्, 'शरण' त्रिवेणी प्रयाग।।
यमुना दर्शन लालसा, करते निर्जर नित्य।
व्रजवसुधा विचरण करैं, 'शरण' लसत शुभ कृत्य।।
कालिन्दी कमनीयता, अद्भुत परम अपार।
सदा आनन्ददायिनी, 'शरण' प्रशस्ति प्रसार।।[2]

यमुनाजी का वलयाकार-स्वरूप परमदिव्य है क्योंकि रसिकों का रसधाम श्रीवृन्दावन योगपीठ यहीं अवस्थित है जिसके नित्य नूतन लीला परिवेश का अनवरत-संवर्धन युगल-लीला सूत्रधारिण श्रीयमुनाजी चरमानुरागभाव से प्रतिपल करती रहती है, जहाँ परब्रह्म परमानन्द **रसो वै सः** नित्य विहारी-विहारिणी श्रीराधामाधव का अनादि-अनन्त-अनवरत सखी-परिसेवित निकुंज विलास नित्य नूतन-विधान से निरन्तर-निर्बाध होता है—

अचिन्त्य विद्वद् रूप है, श्रीवृन्दावन धाम।
यमुना वलयाकार में, अतिशय 'शरण' ललाम।।
प्रिया राधिका सख सह, विलसत परमानन्द।
यमुना सुन्दर प्रिय पुलिन, प्रमुदित 'शरण' मुकुन्द।।[3]

काव्यकलात्मक-कलित-ललित-सुमधुर-चित्रांकित शैली में चित्रित, यमुनाजी की दिव्य प्रकृति-छवि का समलंकृत पलपल परिवर्तित-प्रकाश-परावर्तन का चंचल-जलमण्डत, सूक्ष्मातिसूक्ष्म-सजीव-चित्र, चलचित्रवत-नयनाभिराम- चित्ताकर्षक बन पड़ा है, कमलांकित-तरंगित-स्वच्छ-यमुना-जल में कनकहीरक मुक्तामणि-संघटक का झलमल-झलमल-चलायमान-प्रतिबिम्बित तथा लहरों से संयुक्त यह प्रकृति चित्रण

---

1. राधा माधव रस विलास।
2. राधा माधव रस विलास से।
3. राधा माधव रस विलास से।

कवि कौशल, सानुप्रास-चित्रात्मक-चारुचमत्कृति- यमकालंकार-वर्ण्य-वक्रोति से परमाह्लादकारी-रसवृष्टि का अनुपम अद्वितीय उदाहरण है—

श्वेत नील अरूणोत्पल, सुमन-पंक्ति अभिराम।
कलिन्दनन्दिनी पुलिन पर, 'शरण' विलोकत श्याम।।
झलमल-झलमल झलमलत, मुक्तामण मयघाट।
कनक रचित हीरक जटित, 'शरण' तरणिजा थाट।।[1]

निकुंज-रस

निकुंजरसोपासनात्मक युगल दम्पती रसविलास की सखी भक्ति की चरमपरिणति के इस प्रकरण अनुसार अनादि-वैदिक-परम्परानुगत **रसो वै स:** रुति प्रतिपादित

आद्याचार्य श्रीनिम्बार्क भगवान् के मुखरविन्द से **वेदान्त-कामधेनु** के निकुंज रसोपासनात्मक श्लोक **अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूप सौभगाम्। सखिसहस्त्रैः परिसेवतां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।** उपदेष्टित, तदनन्तर श्रीभट्ट-श्रीहरिव्यासादि पूर्वाचार्यों द्वारा प्रतिपादित, रसरूप परब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप रसिकेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के अनुरूप उनकी अन्तरंगभूता आधारशक्ति परमाह्लादिनी रस-अधिष्ठात्री-परमानन्द-प्रेमरस स्वरूपिणी निकुंज स्वामिनी नित्यकिशेरी श्रीराधाजी ही **श्रीराधामाधव रस विलास ग्रन्थ** के प्रणेता श्रीनिम्बार्कपीठाधीश्वर श्री श्रीजी महाराज की इष्ट-आराध्या है, सर्वोच्च भाव से उन्हीं का परमाराधन उनका अभीष्ट है। इसके मंगलाचरण में वे रसरूप नवदम्पती, नित्यनिकुंजविहारी विहारिणीजू श्रीराधाकृष्ण के आदि-अनादि एकरस सर्वदा-सनातन रसरूप परब्रह्म दम्पती का जो रसक्रीड़ा हेतु एकप्राण द्वै देह के दिव्यरूप में अनन्तानन्त रसार्णव, रूप, परममाधुर्य-लावण्य-सौन्दर्य-सौशल्य युक्त विलक्ष्ण छवि से परम रसालरसमय दिव्यनिकुंज-महल में विराजमान हैं, श्रीहितु हरिप्रियाजी सहित अनेक सहचरी-सखी-किंकरी समूह द्वारा परिसेवित हैं, प्रतिपल नवनवविधान, उल्लास और उमंग से प्रेरित, अतृष्ण-निष्काम-तटस्थभाव की निकुंज- केलिक्रीड़ारत श्यामाश्याम की सुखानुभूति से अभिसिक्त, सखीभाव से सचराचर में व्यापत निकुंज-भावपूर्ण पूर्वाचार्य गुरु-निष्ठा-स्मरणपूर्वक श्रीराधाजी के परमाराधन से युगलचरणों का स्मरण-कीर्तन-चिन्तन-गुणगान का उपदेश देते हैं—

भजो रटो श्रीराधिका, जयजय मंगलरूप।
अलवेली रससिन्धु है, 'शरण' लखै रस भूप।।

---

1. राधा माधव रस विलास से।

प्रिया राधिका रसभरी, रसिकरसिलो श्याम।
यह जोरीगुणआगरी, 'शरण' भजो इह ठाम।।
रसमय रसाल कुंज में, शुक मुख राधा नाम।
प्रतिपल उचरत मधुरतम, श्रीशुक 'शरण' प्रणाम।।
सखी श्रेष्ठ श्रीहरिप्रिया, सेवा प्रतिपल ध्यान।
युगल-भावना निरत नित, 'शरण' युगल गुणगान।।
परम सख हितु अनवरत, युगल सुयश नित गान।
राधामाधव पद कमल, 'शरण' सतत अवभान।।
सख सहचरी मंजरी, अली किंकरी भेद।
युगल सेवा सतत निरत, 'शरण' वदत नित वेद।।
ललित लीला निकुंज की, विलसत राधाकृष्णा।
युगल सेवार्थ सहचरी, तत्पर 'शरण' अतृष्णा।।[1]

निकुंज-रति-भक्ति में युगल की प्रेम लीलामाधुरी के प्रति सखीभाव में परमासक्ति का होना परमावश्यक है। तटस्थता से निरनतर प्रगतिपल प्रेम-लीलामाधुरी के चिनतन-मनन-स्मरण-दर्शन तथ भावपूर्ण गुणानुवाद से लीला- नन्द-आस्वाद सखी की निष्काम अनुभूति करना ही संख्यात्मक पराभक्ति की चरमावस्था है, यही भावावस्था सखी भाव के रसिकों की परमानन्द अवस्था है, जिसमें सेवा नैरन्तर्य से दम्पती सेवा विधायक के सान्निध्य का अनवरत सुख साधित होता है। यहाँ केलिरत श्रीयुगललालललन के वर्णनातीत-अचिन्त्य विलास सुख हेतु तन्मयता पूर्वक चिन्तन तथा तत्परता पूर्वक सखी भावपूर्ण सेवा समर्पण ही प्रमुख है। अत: निकुंज प्रेम लीलामाधुरी की भावावस्था में युगल चरणों की निकुंज सेवा के भाव से उनकी लीलावस्था के रसोन्मादहेतु तन्मंयता पूर्वक चिन्तन तथा तत्परता पूर्वक सखी भावपूर्ण सेवा समर्पण ही प्रमुख है। अत: निकुंज प्रेम लीलामाधुरी की भावावस्था में युगल चरणों की उन्मेषहेतु तन्मयता पूर्वक चिन्तन तथा तत्परता पूर्वकसखी भावपूर्ण सेवा समर्पण ही प्रमुख है। अत: निकुंज प्रेम लीलामाधुरी की भावावस्था में युगल चरणों की रसावेश के संकेतानुसार केलि-विधान करते हुए रंगस्थली में उनके अहर्निश प्रतिपल सान्निध्य सुख से केलि साक्ष्य सखियों का हर्षित होना ही सहचरी भाव की परमासक्ति का अन्तभूर्त आनन्द है, जिसकी रसामृत सिन्धुसिक्त अनन्त सुखानुभूति का चराचर में लोकोत्तर-विमोहक प्रभाव यहाँ रहस्यामक प्रतिपादित किया गया है—

प्रेमपयोधि रसतरंग, सीकर भीजत आलि।
धन्य-धन्य जय जय भनत, 'शरण' बजत कर तालि।।

---

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।

चली भली अलि पुंज है, कुंज गली रस भुंज।
रसस्थली कदली कली, 'शरण' कलित खग पुंज।।
सभी सखी सुखसिंधु में, गाहत सरस हिलोर।
यह सुख वर्णन अति अशक्य, 'शरण' सकल सिरमोर।।
मत्तमयूरी मुदित मन, युगल प्रसादी लेत।
भाग्य सराहत रसिक जन, 'शरण' परमसुख देत।।[1]

रूपमाधुरी–रूपासक्तिप्रेमाभक्त का मूलाधार है, प्रियतम आराध्य चित्तकर्षक रूप उनके प्रति प्रेम का आलम्बन होता है, रूप–गुण के आधार बिना मनोनिग्रह पूर्वक प्रिय ध्यान–चिन्तन–स्मरण और उनका गुणानुवाद असम्भव है, निरालम्ब ध्यान में चंचल मन का अपरिहार्य स्थावर्य साधित नहीं होता है, अत: प्रिया–प्रियतम के मनोनिग्रहपूर्वक रूप–गुणात्मक–चिन्तन–मनन युगल की निकुंज की निकुंज भक्ति में भी अपरिहार्य रूप से मान्य है, यहाँ युगल की रूपमाधुरी के प्रति अनवरत चिन्तन–मनन–गुणानुवाद कीर्तन की सखीभावपरक तन्मयतासक्ति को उसकी निष्काम–रसानुभूति का मूलाधार माना गया है। निकुंज–सेवा में संलग्न सहचरियाँ दिव्य–महल में विराजमान श्रीयुगल के रूप ध्यान में प्रतिपल तन्मय–तल्लीन रहती है। **श्रीराधामाधव रस विलास** में युगल की रूपमाधुरी का अलौकिक वर्णन हुआ है। निकुंजविहारी विहारिणीजू श्यामाश्याम प्रियाप्रियतम के रूप में निकुंज महल में विराजमान हैं, नित्य किशोरकिशोरी का रूपलावण्य वर्णनातीत है, अनन्तानन्त रूपगुणालंकृत–सौन्दर्य–माधुर्य–लावण्य– सौकुमार्य– सौशिल्य तथा परमशुचिता से संयुक्त उनकी रूपमाधुरी दर्शनीय है। नख–शिख श्रृंगार से सुसज्जित, ललित कलित–सुरभित–सुवासित सुमन–आभूषणों से विभूषित, अलौकिक दिव्य लोकोत्तर परस्पर प्रियाप्रियतम भाव से सम्पूरित, नित्यनूतनवयस में विनिन्दक सद्गुणालंकृत हैं, खजनलोचना परमाह्लादिनी निकुंज स्वामिनी श्यामा श्रीराधाजी के नीलाम्बरपरिधान से संलग्न श्यामदामिनी दमक–पीताम्बर–आभा से संवासित घनदामिनी संयोग से परमदिव्य छवियुक्त सुशोभित हैं। युगल स्वरूप की ऐसी निकुंजरूप माधुरी दर्शनीय है, अविराम परम वन्दनीय है—

वकुल कुसुम नव मालती, सुरभित मंजुल हार।
युगल प्रियाप्रिय शोभित हैं, 'शरण' दरश अभिराम।।
चंचल खंजन लोचना, राधाप्रिय श्रीधाम।
नीलाम्बर राजित रुचिर, 'शरण' प्रणति अविराम।

---

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।

दामिनी छटा विनिन्दक, पीताम्बर परिधान।
शोभित श्यामाश्याम छवि, 'शरण' अकथ अनुमान।।[1]

मधुर-शृंगार-रस-राजत्व से मण्डित, युगल छवि की रूपमाधुरी का रस- प्रेम की पराकाष्ठा समपन्न यह सुरम्य-रसरूप, आलंकारिक-शृंगारिक- रीतिरसात्मक-नखशिख-श्रीसंयुक्त,काव्यलंकारों से उपमा-रूपक-उत्प्रेक्षा रूपकातिशयोक्ति, अनुप्रास, वर्ण्यवक्रोक्ति-भ्रांतिमान आदि से समलंकृत, परमाह्लादकारी मंगलमय रूप ही रीति-रसात्मक रसोपासना का मूलाधार है। ऐसे परम सुन्दर युगल रूप के प्रति कल्मषरहित निष्काम रूपासक्ति होना पराभक्ति-निकुंज-रसात्मक भक्ति का परमभाव है। मधुर-रसात्मक काव्य परम्परा में ऐसा सुसंस्कृतनिष्ठ भाषावेष्ठित-रूपासक्तिपूर्ण-नखशिखाभूषणों से विभूषित, शृंगार परम्परागत वर्णन दुर्लभ है, **श्रीराधामाधव रस विलास** की रूपगुणात्मक- आलंकारिक- दिव्यभावात्मक-परमासक्ति की यह युगल छवि अत्यन्त चित्ताकर्षक एवं आभूषण परिधान की चारुचमत्कृति से संवलित-सुशोभित होने से अति परमाह्लादकारी है, रसरूप परब्रह्म परमेश्वर-रसेश्वर-सर्वेश्वर रसीले श्रीकृष्ण तथा रसरूप परब्रह्म की परमेश्वरी-रसेश्वरी-रसभरी-सर्वेश्वरी-रसीली श्रीराधाजी अति माधुर्यपूर्ण रूप का यह परमैश्वर्य-परममाधुर्यपूर्णरूप परम वन्दनीय है—

किंकणि शोभित पद कमल, वक्षस्थल मणिहार।
अनुपम राधा दरश है, 'शरण' चरण आधार।
कनक चन्द्रिका मणि जटित, शिर छवि किरण अनूप।
श्रीराधासर्वेश्वरी, अर्पण 'शरण' अपूप।।
कुण्डल मंजुल झलमलत, अगनित शशि सम आभ।
राधा दरश करत सखी, 'शरण' अलभ्य सुलाभ।।
कंठहार हीरक जटित, सुन्दर मुक्तामाल।
श्रीराधा रसिकेश्वरी, 'शरण' हंस गति-चाल।।
नीलाम्बर धारण लसत, हस्त कमल नीलाब्ज।
प्रिया राधिका रसभरी, 'शरण' हार श्वेताब्ज।।
स्वर्णाभूषण अलंकृत, अनुपम चरण सरोज।
रासेश्वर श्रीकृष्ण हैं, 'शरण' भजो हर राज।।
फेंटकसी कटि देश में, शेभित सुभग पीताभ।
पीताम्बर धारण किये, 'शरण' श्याम दिव्याभ।।[2]

---

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य) प्रणेता श्री राधा सर्वेश्वर शरण देवाचार्य।
2. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।

उपर्युक्त रूपमाधुर्य-युगलछवि में अत्यन्त शोभायमान अलबेली-अनूठी-विलक्षण-रसभरी नित्यकिशोरी रसिकेश्वरी श्रीराधाजी तथा रसरूप अलबेले-अनूठे-विलक्षण रसिकेश्वर नित्यकिशोर-निकुंज क्रीड़ारत श्यामाश्याम एवं उनकी दिव्ययुगल-लीलारसविस्तारिणी-विधायिनी दिव्यलीला परिवेश से समलंकृत अलबेली-रसभरी श्रीयमुना-महारानी का दिव्यलाकोत्तर स्वरूप एवं वृन्दावनश्रीधाम के दिव्य निकुंज महल में निर्बाध-नैरन्तर्य रूप से संचरित युगल **रसो वै सः** की रहस्यात्मक मधुर केलि विलासात्मक परम दिव्य लीलाएँ रसिकों के परमसुख की मूल है जिसके लिए वे गोलाक से भी श्रेष्ठ वृन्दावन धाम-वास की कृपाकांक्षास्वामिनी श्रीराधाजी से करते हैं, निम्बार्कीय निकुंज रसोपासनात्मक सखी भक्ति के यही प्रमुख विधायक तत्त्व हैं—

अलबेली श्रीराधिका, अलवेलो श्रीश्याम।
अलबेली हीतरणिजा, 'शरण' श्रेष्ठ वनधाम।।

श्रीनिम्बार्कीय राधातत्त्व अलौकिक और अनन्त है, सहचरी भाव से समर्चित निकुंजोपासना में निकुंज स्वामिनी रस-अधिष्ठात्री श्रीराधिकाजी का ही सर्वोपरि प्राधान्य है, रससम्पूर्णता की वांछा से स्वयं रसरूप परात्पर-परब्रह्म सच्चिदानन्द रसिकेश्वर-सर्वेश्वर श्रीकृष्ण उनकी परमाह्लादिनी-रसविधायिनी-अन्तर्भूता-आद्याशक्ति सर्वेश्वरी रसिकेश्वरी श्रीराधाजी का ही परमाराधन करते हैं, सर्वेश्वरी रसरूप श्रीराधिकाजी उनकी हृदयेश्वरी परमेश्वरी-परमाराध्या है, परब्रह्म-परमानन्द श्रीकृष्ण श्रीराधिकाजी के ध्यान तन्मय है, परम वीतरागी सहचरी भाव के रसिकों के मुख से राधा नाम का प्रथम अक्षर रा निकलते ही परम करुणार्णव श्रीकृष्ण सावधान हो जाते हैं तथा धा का उच्चारण होते ही वे भक्तकल्यार्थ तत्क्षण आतुरतापूर्वक धावित हो सन्मुख प्रकट हो जाती हैं, श्रीराधिकाजी का दिव्य-अलौकिक-कृपाकांक्षापूर्ण-परमविमोहन-वशीकरण का पौराणिक महात्म्य यहाँ प्रतिपादित हुआ है-

रा उच्चारण करत ही, सावधान श्रीकृष्ण।
धा निगदत धावत भये, 'शरण' अतीव अतृष्ण।।

अतः पराभक्ति रसप्रदायिनी-रसिकवल्लभा प्रियतमा, जीवनदायिनी-सुधाप्रदायिनी-श्रीकृष्ण-जीवनाधार परमाह्लादिनी नित्यनिकुंजेश्वरी-विपिनेश्वरी श्रीराधा-राधा राधिका का अनवरत सखीभावपूर्ण भजन-कीर्तन-स्मरण-चिन्तन ही श्रेष्ठतम रसोपासना है, श्रीराधाभक्ति की परमतन्मयासक्ति की ये स्वानुभूतिपूर्ण दिव्यमार्मिक-सरस-प्रासंगिक-अभिव्यंजनाएँ, सर्वांग-संपूरित-सखीभाव-परक-परमभावास्था की परमगुह्य-मनोरथमयी-अभिलषित-परमेष्ट-संतृप्ति की मनोदशा में अन्तर्भूत-परमानन्द को करने वाली है, जिसके रसार्णव में निमग्न सिद्ध-साधक-रसाचार्य कवि हृदय का रोम-रोम श्रीराधामय हो गया है। अतः यहाँ अनादि

तिपादितनिगमसनातनी-निम्बार्कीय-निकुंजरसोपासनात्मक परम्परानुसार, रसरूप-परब्रह्म-परमानन्द स्वरूपश्रीकृष्ण की रसात्मक पराभक्ति प्रदायिनी श्रीराधाजी की, शरणागतिभाव के अनन्यप्रगाढतम आश्रय से सखीभाव की निष्काम निकुंजभक्ति की प्रपत्तिपरक-परमनिष्ठा से नामरूपगुणात्मक-चिन्तन-मनन-स्मरण-कीर्तन की तन्मयासक्ति से संयुक्त अनवरत रूपेण परमेष्ट आराधना का मार्मिक एवं श्रेष्ठतम प्रतिपादन हुआ है—

राधा राधा राधिका, राधानाम उच्चार।
राधा राधा अनवरत, 'शरण' चित्त अवधार।।
राधा जीवन दायिनी, सुभक्त शरण्य आप।
कल्पवल्ली स्वरूपिनी, 'शरण' हरण संताप।।
सकल शास्त्र का सार यह, श्रीराधा नित जाप।
करो निरन्तर भक्तियुक्त, 'शरण' करै निष्पाप।।
रसिक वल्लभा प्रियतमा, राधा रसमय नाम।।
कोटि-कोटि नत प्रणति है, 'शरण' स्मरण निष्काम।।
राधा सुधा प्रदायिनी, कृष्ण जीवनाधार।
नवनित्य निकुंजेश्त्ररी, 'शरण' भजैं रुतिसार।।
राधा जय जय राधिके, प्रिया राधिके नित्य।
श्रीराधाविपिनेश्वरी, 'शरण' भजैं आरित्य।।
पराभक्ति रस दायिनी, रसिकेश्वर आराध्य।
सखीवृन्द समुपासना, 'शरण' करत आस्वाद्य।।[1]

राधा जीवन प्रदायिनी, कल्पवल्ली, सकलशास्त्र का सार, रसिकवल्लभा-प्रियतमा, राधासुधाप्रदायिनी, कृष्णजीवनाधार, निकुंजेश्वरी-विपिनेश्वरी, पराभक्ति रसप्रदायिनी आदि राधा विषयक पौराणिक विशेषणों से श्रीराधातत्त्व का यथेष्ट परम्परागत विश्लेषण हुआ है। अत: निकुंज-प्रकरण श्रीराधाभक्ति से ओत-प्रोत है, **श्रीराधामाधव रस विलास** का यही प्रकरण परमलक्ष्याभीष्ट-प्रयोजन है, यही इस भक्ति रसामृतसिन्धु का मूलाधार गहनतम मधुर अन्तरंग स्थल है, जहाँ प्रतिपल रसभक्ति अगणित अनन्त जाज्वल्यमान दिव्य मणिमुक्ताओं का सृजन हो रहा है।

अष्टयाम-सेवा

निम्बार्कीय निकुंज-सेवाक्रम में सखीनिष्ठा से परिपूर्ण **श्रीराधामाधवरस विलास** का अष्टकालिक सेवाविधान श्रीहरिव्यासदेवाचार्य कृत श्रीमहावाणीजी की

---

1. श्री राधा माधव रस विलास, प्रणेता, श्री श्री जी महाराज।

परम्परानुगत, सरस-सांगोपांगिक तथा विस्तृत है। ब्राह्ममुहूर्त से शयन पर्यन्त निकुंज-क्रीड़ारत श्यामाश्याम की दिव्य चेष्टाओं का ध्यान करना, मंगला, शृंगार, भोग आरती के सुअवसरों पर युगल के प्रति प्रतिपल-अनुरागपूर्ण सेवा का चिन्तन-मनन-गुणानुवाद-कीर्तन-भजन एवं राजभोग का अनुराग सहित, तत्परता से समर्पण, तदर्थ तटस्थभाव की सुखानुभूतिपूर्ण तीव्र-लालसा-उमंग- उल्लास-उन्माद से सम्प्रेरित, दम्पती के निकुंज-लीलाविलास का विधान करते हुए, युगलचरणों की अष्टकालिक सेवा पूजा से उनका ही अनवरत सान्निध्य प्राप्त करना सहचरी सेवा का सुखसार है। इस अष्टकालिक सेवाक्रम के रसासिक्त सुमधुर प्रहरों में, प्रियाप्रियतम की केलिसुख चेष्टाओं में संलग्न सहचरी, दम्पती-रस-विलास के नवनव-रसोत्कर्ष-उल्लास रसावेष्ट उमंग का सुकोमल-सुमधुर भावनाओं से, श्रीयुगल का शृंगार-भोग-मान-मनुहार-अनुनय- विनय-मधुरहास-संगीत विलास से, उनका लाडलड़ावन करना ही परमरहस्यात्मक-गुह्यतम-अन्तरंग-आनन्द का दिव्य-सखी भाव है, ऐसा माधुर्य रसावेष्ठित युगल प्रियालाल की मधुर-रसोपासना निवृत्ति परक-दिव्य भावात्मक परमानन्द की परमसाधना है—जिसका अनिवर्चनीय रसास्वादन परम रसिकवर्य्य वीतराग रसिकजनों का ही विषय है। ऐसी परमानन्ददायिनी अष्टकालिक-निकुंज-सेवा, अनन्य-माधुर्य-भावपूर्ण-युगलनिष्ठा के रससम्पूरित हृदय से, रसाचार्य-रससिद्ध कवि शिरोमणि ने **श्रीराधामाधव रस विलास** में अत्यन्त सरसता से अभिव्यंजित की है, जिनकी रसानुभूति वृन्दावनवास के आरित-भाव से निकुंज-सुख की अनवरत कामना करना रसिकों का परमह्लादकारी परम सौभाग्य है।

परम दिव्य-निकुंज-महल में विराजमान सुखनिद्रा-निमग्न श्यामाश्याम श्रीराधामाधव के मंगला प्रहर की सेवा का सुख है जहाँ निकुंज प्रविष्ट सखी-सहचरियाँ, सुमंगल वाद्य वादनपूर्वक युगलरूप गुणानुवाद में तत्पर होकर शयन कुंज से उत्थापन-जागरण का निवेदन करती हैं, सुमंगल-विभावरी की सुप्रभात वेला में श्रीयुगल को मधुरजलपान-मंगलाभोग, तदनन्तर मंगल-सुभग नीराजन भावपूर्ण पुष्पाँजलि के समर्पण सुख से सरसित-हर्षित-परमानन्दित होती है—

मंगल मधुर वाद्यवृन्द, वादन रत अलिवृन्द।
युगल अनूप गुणगान मुद, 'शरण' प्रियाप्रिय चन्द।।
अर्पित मंगल भोग कर, हुआ मधुर जल पान।
नीराजन सखिजन करत, 'शरण' लसत जय गान।।[1]

श्रीराधामाधव रस विलास—रसाश्रित शरण नामाङ्कित रसाचार्यजी का अनिवर्चनीय आनन्दातिरेक अष्टकालिक सेवा-सुखों के युगल-सान्निध्य से ओत-प्रोत

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।

हुआ है। मंगला-सेवा संलग्न-स्नान केलि प्रहर की युगल जलक्रीड़ा में सेवासुखविधान में मनमुदित सभी सखीजन दिव्य-सरोवर-कुंज में करकमलों में कराम्बुज-युगलछवि का ध्यान एवं उसके कुंज रंध्रों से दर्शन उनके भावुक हृदय को रसासिक्त एवं परमाह्लादकारी रसानन्द में निमग्न कर देता है, मंगलकारी लीला की इस सखीसुखानुभूति का विलक्षण उदाहरण है—

सात्विक शुद्ध प्रभात में, विहग करत गुंजार।
स्थान कुंज में प्रियाप्रिय, 'शरण' नहान विहार।।
दिव्य सरोवर कुंज में, विलसत मंगल स्नान।
राधामाधव मुदित मन, 'शरण' विहार विमान।।
शोभित पंकज करकमल, केलि-करत सर बीच।
कुंज सखजनदरश रत, 'शरण्' मुदित हिय सींच।।

इसी क्रम में युगल की शृंगार सेवा का सुख विधान भी सरस-सुखद चित्ताकर्षक है जहाँ केशर-चन्दन सुभग तिलक-ऊर्ध्वपुण्ड्र-भाल में श्याम बिन्दु युक्त निम्बार्कीय तिलक तुलसीमाल-तुलसीकंठी सुशोभित शृंगार-वैशिष्ट्य उल्लेखनीय है—

विविध चारुतम स्नान करि, शुभ शृंगार धराय।
पटशृंगार-आभूषण, 'शरण' सुखद विलसाय।।
केशरचन्दन तिलक शुभ, ऊर्ध्वपुण्ड्र है भाल।
श्यामबिन्दु छवि तिलक बिच, तुलसी 'शरण' सुमाल।।
तुलसी कंठी युगल प्रिय, शोभित कंठ प्रदेश।
अति सुन्दरश्रीमुख दरश, 'शरण' मुदित दिनेश।।[1]

दर्पण-सेवा, विविध मधुर पदार्थें का नव सरस शृंगार भोग, आचमन, सुभग शृंगार आरती का सुखसेवानन्द तदुपरान्त सखी यूथ सहित युगल का श्रीवन विहार सुख दर्शनीय है, कदम्ब-जम्बू-रसाल कुंज में आयोजित वीणा मृदंग-वाद्य। का गान युगल को पुलकित कर रहा है—

सखी यूथ सह युगलवर, श्रीवन श्यामाश्याम।
करत विहार निकुंज-वन, 'शरण'द्रुमालि ललाम।।
कदम्ब-जम्बू-कुंजवन, रसाल शीतल छाय।
मृदंग वीणा ध्वनि श्रवण, 'शरण' युगल पुलकाय।।

अष्टकालीक सेवा प्रसंग में राजभोग का अत्यन्त सरस-सुमधुर विधान है, सखियाँ युगलचरणों में छप्पन भोग-छत्तीसों व्यंजनों से सम्पूरित श्रद्धा समर्पित

---

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।

राजभोग—नैवेद्य आरोगने का अनुनय विनय-मान-मनुहार का सुखद भाव करती है। अनेकानेक प्रकारेण निर्मित-सुसज्जित मधुर मिष्ठान्न, शाक-सामग्री-मेवा मिष्ठान्न, लावण्य युक्त अनेक नमकीन-सेव्यभोग तदनन्तर अनेक मधुरातिमधुर फलमेवा तथा एला-लंवगादि समन्वित ताम्बूल-सेवा का भावपूर्ण समर्पण दर्शनीय बन पड़े है। श्री श्रीजी महाराज की अनन्य कृपा से पीठ द्वारा संचालित सभी देव मन्दिरों में आज भी यथार्थत: आयोजित लोकोत्तर-रसानन्द संयुक्त ऐसा राजभोग का सौभाग्य रसिक भक्तों को दिव्योत्सवों के अवसरों पर प्राय: होता रहता है।

राजभोग आरती, मध्याह्न शयन, अपराह्न-उत्थान भोग, अपराह्न वन विहार-सन्ध्या आरती, व्यारू भोग का क्रमिक सेवासुख वर्णित हुआ है। व्यारू भोग का लोकोत्तर सुख-विधान दर्शनीय है—

कंचर चौकीयुगलवर, शोभित श्यामाश्याम।
व्यारु भोग आरोगहिं, 'शरण' कुंजवन धाम।।
दूध मलाई खीर पुड़ी-लड्डू मोहन भोग।
मेवा केशर मिश्रित है, 'शरण' मधुरतम योग।।
रस-आस्वाद लै-आरोगत, व्यारु भोग अपार।।
विविध-व्यंजन सुन्दरतम, 'शरण' बहत रसधार।।[1]

अष्टकालिक सेवा की सम्पूर्ति शयन-सेवा आरती प्रहर में समाविष्ट हो जाती है और सीख समूह द्वारा सज्जित रसविलास-सज्जासंयुक्त दिव्य-निभृति-निकुंज में युगल का प्रवेश कराया जाता है जिसके सखीसुख की पराकाष्ठा का अनुभूत आनन्दपरिलक्षित होता है—

सेवा सज विधि सुन्दर, विधिवत मध्य निकुंज।
कर सुसज्जित निजी कुंज, 'शरण' चली सखि पुंज।।

उत्सव-वर्णन

श्रीराधामाधवरसविलास में वर्णित वर्षपर्यन्त के उत्सवमाला में, ऋतुपर्वादिक क्रमविधान से समायोजित, वसन्त महोत्सव, होरी-दोल-पुष्प शृंगार-वनविहार, अक्षय तृतीया-चन्दन शृंगारादि महोत्सव, रथयात्रा, वर्षाविहार-झूलनोत्सव, पवित्राधारण्-रक्षाबन्धन, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीराधाष्टमी, साँझी-विजया-दशमी, शरद्-पूर्णिमा महोत्सव, दीपाली-अन्नकूट आदि विविध-रसोत्सवों के सुरम्य-प्रकृति-संश्लिष्ट, चित्रात्मक-काव्यकलात्मक तथा श्यामाश्याम के निकुंज-रसात्मक-दिव्यानन्द

---

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।

मधुरतम वर्णन दर्शनीय है। रसरूप परमानन्द स्वरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण का लोकोत्तर रूप मधुमास ही सर्वत्र व्रज-वृन्दावन में परिव्याप्त है।

समस्त व्रज हि वसन्त है, समग्र वसन्त राज।
वसन्त जयति जय वसन्त, 'शरण्' वसन्त सुकाज।।

निकुंज भक्ति के लीला विधानों में लीलास्थल-लीलापरिवेश-लीलापरिकर-लीलावतारी युगल लीलाविस्तारिणी यमुनाजी सभी रसरूप परमानन्द स्वरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण के ही रसविस्तृत रूप है, श्रीरसेश्वर ही विविध रूप में रमण करते हैं, वसन्तोत्सव का यही रहस्यात्मक लोकोत्तर श्रीकृष्ण स्वरूप यहाँ प्रतिपादित है—

वसन्त राधा वन वसन्त, मोहन माधव श्याम।
वसन्त यमुना व्रजधरा, 'शरण' वसन्त ललाम।।
भावुक रसिक वसन्त हैं, वसन्त व्रज जन बाल।
वसन्तध्वज फहरात नित, 'शरण' वसन्त सुमाल।।[1]

होरी महोत्सव

वसन्त महोत्सव की भावपूर्ण रसात्मक-उत्प्रेरणा, उदात्त-रसोत्कर्ष की चरमस्थिति में परमोल्लसित, राग-अनुराग फाग धमार आदि के मृदंग-ढोल-ढफ-चंगादि वाद्यों के तुमुल ध्वनि से निनादित, मेघाच्छादित अबीर-गुलाल के अम्बार बन कर होरी-फाग-दोलोत्सव रूप में होती है होरी है—**आज बिरज में होरी है रसिया** के अनुसार सुमधुर संगी-नृत्य की लय में वरसाना-नन्दगाँव-वृन्दावन में सुसज्जित झाँकियों की महोत्सव-आयोजना में मुखरित हो उठती है। रसरूप श्रीराधाकृष्ण की रसात्मक भक्ति के रूप में चराचर लीलापरिकर-लीला परिवेश आकंठ संपूरित रसानन्द में तल्लीन हो जाता है। निकुंजमहल में सखियों द्वारा आयोजित **श्रीराधामाधवरसविलास** ग्रन्थ के इन दिव्य रसोत्सवों के नित्यविहार में हास-परिहास मन्दस्मितानन के हावभाव-अनुभवों में व्यस्त रंग पुष्प वर्षण के लोकोत्तर परमोद्दीप्तकारी विधान से श्यामाश्याम की युगल क्रीड़ा के परमाह्लादकारी रसार्णव की परम भावनात्मक रसिकों की खी सहचरी सेवासाध्य सुखानुभूति एवं संतृप्ति का महावाण्वत् अनिवर्चनीय उद्घाटन हुआ है, इन दर्शनीय महोत्सवों की रसानुभूति हृदय में अवधारणीय तथा अनवरत स्मरणीय है, हो हो होरी—के रसानन्द कीवर्ण्य-वक्रोक्ति चमत्कृति अनुपम है—

राधामाधव युगलवर, लसत होरि उल्लास।
सखी सहेली सहचरी, 'शरण' करत परिहास।।

---

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।

हो होहोरी उच्चस्वर, करत परस्पर केलि।
युगल लाल अति मुदित मन, प्रणमत 'शरण' नवेलि।।
भर भर थाल गुलाल के, विविध कुसुम कलि रासि।
भर पिचकारी रंगभरी, 'शरण' होरि परिहासि।।
साखी यूथ सह राधिका, सख पुंज सह श्याम।
होरि परस्पर खेलत हैं, 'शरण' कुंज अभिराम।।
कुंज कुंज प्रति कुंज में, अबिर घटा आकास।
रस रंग धार बहत प्रिय, 'शरण' विलोप प्रकास।।
रसिक-सन्त भी होरि में, झूमत कर जयकार।
महावाणी पद निर्झरत, 'शरण' मंगलाचार।।[1]

दोल महोत्सव

वृन्दावनस्थ निकुंज महल में होरी उत्सव संलग्न दोलझूलन विहार का युगल सुखविलास हेतु सखियों द्वारा भव्य आयोजन किया जाता है, सुवासित पुष्पों से स्वर्णिम मणिमय दिव्य दोल-झूला पुष्पों से सजाकर, दिव्य शृंगार शेभित श्यामाश्याम को विराजमान किया जाता है—सखियाँ भाव मनुहार अनुनय विनय से पुष्प समर्पण करती है, पिचकारी से रंग छिटकती हुई अनेक रंगी गुलालअबीर की वृष्टि करती हैं, मृदंग-वीणा वाद्य के लयात्मक नृत्य विधान से प्रियाप्रियतम का मनमोहन लाडलडावन तदनन्तर भोग समर्पण तथ आरती का भावात्मक सेवा योजन होता है, ऐसे दोल-महोत्सव के दिव्यानन्द से श्रीधाम का सचराचर लीला परिवेश भी परमानन्दानुभूति में निमग्न है—

दोल दोलत युगलवर, सेवा रत सखिवृन्द।
दिव्य सौरभ विविध पुष्प, 'शरण' भृंग अरविन्द।।
दोला चहुँदिसि लता तरु, निनदत कोकिल कीर।
मयूर केको सारिका, 'शरण' निनाद-गभीर।।[2]

श्रीराधामाधवरसविलास में इसी सहचरी सेवाक्रम और दिव्यलीलाविधान से अन्य दिव्योत्सव नित्यविहारों का परमाह्लादकारी वर्णन किया गया है, लीला का दिव्य विधान भावात्मक सखी सेवा समर्पण सुख, लोकोत्तर अनिवर्चनीय लीला विलास चित्रण के निम्न उदाहरण परम द्रष्टव्य हैं—

कुसुम शृंगार कुंज में, दर्शन श्यामाश्याम।
शोभा सुमन अतुलनीय; 'शरण' लता द्रुम श्याम।।

---

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)
2. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।

चम्पा चमेली मोगरा, जुहि केवड़ा गुलाब।
कदम्ब मालती कुन्द कली, 'शरण्' वकुल प्रभाव।।
सकल शृङ्गार पुष्पमय, मुकुट चन्द्रिका आदि।
कुंज विहार युगलवर, 'शरण' स्वरूप अनादि।।[1]
फदस्व-कदली वट-पीपल, तमाल जम्बू आम।
निम्ब-अर्जुन पीलु वरूण, 'शरण' कुंज वन धाम।।
तुलसी कानन परम शुभ, विल चिंचणी कुंज।
बदरी वन अति कमनीय, 'शरण' युगल सखि पुंज।।[2]
सरस फुवारे झरत जल, नाना रूप अनूप।
परम मनोरम सुगन्धित, 'शरण' युगल अनुरूप।।
कुसुमहार धारण किये, संदर ऋतु अनुसार।
राजत कुसुम कुंज में, 'शरण' युगल हिय धार।।
चन्दन चर्चित चारुतम, सुरभित श्रीवपुधार।
चन्दन भूषण रुचिरतम, 'शरण' युगल सरकार।।[3]

रथयात्रा महोत्सव के सानुरूप अत्यन्त दिव्य रूप से आयोजित निकुंज महल लीला के इस रथयात्रा विहार की दिव्य रहस्यानुभूति अवधारण्य है, रसरूप परमानन्द परब्रह्म परमेश्वर सर्वेश्वर श्रीकृष्ण ही चराचर जगत् के जीवन रूपी रथ के नियन्ता वे रासविहारी सर्वेश्वर श्रीकृष्ण परम प्रियतमा निकुंजेश्वरी श्रीराधा प्रिया के साथ रथ पर अतिशय सुशोभित हो रहे हैं। सख समूह रथ संचालन सेवा में तन्मयता पूर्वक दिव्य दर्शन की यह चारु चमत्कृति भी परममुग्धकारी है—

तिय मन मोहक कनक रथ, युगल विराजित आज।
द्रुतगति धावत निंज वन, 'शरण' सखी समाज।
सुसज्जित मुक्ता मणिमय, चलवत सख समाज।
घरघर घर घर धुनि करत, 'शरण' सुसखि समाज।।

निकुंज दिव्य महल का वर्षाविहार रसार्णव भी लोकोत्तर दिव्यानुभूतिकारक सखीसौख्य से परिपूर्ण, कलात्मक तथा चित्रांकित प्रकृति-संश्लिष्ट होने से उल्लेखीय है। समस्त प्रसंग सरस पद-भीजत कब देखौं इन नैंना में निहित पूर्वाचार्य श्रीश्रीभट्टदेवाचार्य की युगलशतक आदिवाणी के भावनात्मक अभिलाषा से ओत-प्रोत है।

---

1. राधा माधव रस विलास (पुष्प शृंगार महोत्सव)
2. राधा माधव रस विलास (वन विहार महोत्सव)
3. राधा माधव रस विलास (अक्षय तृतीया चन्दन महोत्सव)

भीजत श्यामाश्यामवर, तरुवर, जन बीच।
विलसत आनन्द असीमतम, 'शरण' नयन निज मीच।।
श्यामल नव नीरद घटा, बरषत मंद सुमंद।
मधुर मधुर फुहार परत, 'शरण' मुदित युगचन्द।।
भीजत श्यामाश्यामवर, निभृत निकुंज विहार।
सखी छत्र धारण किये, 'शरण' युगल अनुसार।।[1]

रसरूप परमामन्दस्वरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण की पराभक्ति आश्रय से, निकुंज रसात्मक सखी भक्ति के परमरसिकों का परमलक्ष्य जीवनमुक्ति-भुक्ति या मोक्ष नहीं, स्वर्गादि ऐश्वर्यएकात्म्य तादात्म्य का अभीष्ट तथा सारूप्य सायुज्य-सान्निध्य- सामीप्य मोक्ष की सिद्धि उन्हें त्याज्य है, रसरूप परमानन्द स्वरूप युगल की निकुंज लीला का सखीसेवा समर्पण से प्राप्त अनवरत अपरिमेय अनन्त सुख ही रसिकों का परम लक्ष्य है जो निकुंज स्वामिनी परमाराध्या श्रीराधिकाजी की कृपा से साध्य है, उपर्युक्त प्रसंग में उल्लिखित निभृत निकुंज में युगलचरणों के ऐकान्तिक एकाधिकृत सखी सेवा के परमसौभाग्य की संतृप्ति से निकुंजोपासनात्मक भक्ति के असीमतम रसानन्द का परमेष्ट साधित हो गया है।

श्रावण माह में झूला-हिंडोरा से निकुंञ्ज मन्दिरों की लोकोत्तर छटा दर्शनीय हो जाता है, व्रजवृन्दावन के झूलों-हिण्डोलों के महोत्सव विश्वविख्यात हैं, यहाँ के देवालयों-देवविग्रहों की फूल सज्जा तथा लता-कुंजों की सरस-झाँकियों में सेवाभावित-पुष्पित कनक हिंडोलों के नयनाभिराम दृश्य दिव्यानन्ददायक होते हैं। अप्राकृत-प्रकृति-संश्लिष्ट वैभव से परिपूर्ण श्रीधामवृन्दावन के निकुंज महल में, युगल रसविधान में सुरम्य श्रावण से उत्प्रेरित-उल्लसित हो सखियाँ झूला-हिंडोला महोत्सव विहार के दिव्य आयोजन में तल्लीन हैं, मणियों-रत्नों से सुसज्जित हिंडोला में युगल विराजमान हैं, राग-मल्हार अनुराग-सुवाद्य संगीतमय नृत्य एवं गुणानुवाद से सम्पूरित प्रियाप्रियतम का लाडलडावन, दिव्य लोकोत्तर रसानन्ददायक सखी सौख्य से झूला झुलावन, रसोत्कर्ष परमोल्लास के नव नव उत्साह से रसिकेश्वर परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण का प्रियाजी को झोंटा देकर झुलावन-रिझावन, अपरिमेय अनन्तानन्त लोकोत्तर परमानन्द की दिव्यानुभूति से दर्शनीय अनवरत स्मरणीय और हृदय में अवधारणीय है, रसेश्वर श्रीकृष्ण द्वारा रसेश्वरी परमाह्लादिनी के इस आह्लाद से सखियाँ भावातिरक से आत्मविभोर है, श्रावण की प्रकृति-संश्लिष्ट-चित्रांकन से लोकोत्तर, उद्दीपनकारी विधान प्रियाप्रियतम एव सखियों के हावभावानुभाव की सूक्ष्माभिव्यंजना युगल-परिहास की प्रेमात्मक-मधुरभावात्मक वक्रोक्ति, तथा

---

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)

वृत्यानुप्रास वैभव-वर्ण्य- वक्रोक्तिपूणिचारु-चमत्कृति से श्रावणी वातावरणयुक्त युगल के झूलन विहार अत्यन्त मुग्धकारी है, प्रसंग में विशेषोक्ति-कव्यालंकार से समलंकृत प्रियाजी द्वारा वेणु-छिपावन-झुलावन का दिव्यानन्ददायक परिहास अनवरत रूप से मननीय-स्मरणीय तथा हृदय में अवधारणीय हो गया है—

श्रावण वृन्दावन रुचिर, झूला अति आनन्द।
राधाकृष्ण निकुंजवर, झूलत 'शरण' सुमन्द।
स्वर्णिम झूला अप्रतिम, जटित मुक्ता प्रवाल
हीरक पन्ना पुखराज, मणिमय 'शरण' विशाल।।
रसिकलांडिली झूलत, झुलावत नवल किशोर।
श्रीवृन्दावन कुंज में, सहचरि 'शरण' विभोर।।
मेरे मन में बस गये, झूलत युगल किशोर।
यह आनन्द असीम है, 'शरण' नृत्य रत मोर।।
चम चम चमकत चारुतम, चपला-चित्र विवित्र।
चंचल चातक चतुर है, 'शरण' स्वाति प्रिय मित्र।।
झूलत वंश चुर गई, श्रीहरि अति अकुलाय।
खोजत खोजत पागई, 'शरण' प्रिया कटिमाय।।

राग-अनुराग-मधुर-शृंगार-भोग-नृत्य-कीर्तन-संगीत के सखी सेवा विधान से समन्वित सभी रसोत्सव विहार परिपूर्ण हैं, सखियाँ पवित्र एकादशी को केशर रंगे सूत की सुकोमल कौशेय पवित्र माला तथा श्रावणी पूर्णिमा के शुभयोग में राखी धारण सम्बन्धित सेवानुराग के लोकोत्तर सुखानुभव से हर्षित है।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव

भाद्रपद कृष्णाष्टमी को परमाचार्य निकुंज रसोपासनानिरत, आचार्यवर **श्रीराधामाधवरसविलास** की अनवरत सखी सुखात्मक निष्काम भावना से उमंगित है, आज इस शुभयोग में अपने परमाराध्य निकुंजविहारी रसरूप परमानन्द लीलाविहारी पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण श्रीराधामाधव के जन्मोत्सव विहार का विशिष्ट-निकुंजभावपरक सेवाविधान आयोजित करने की उत्कृष्ट अभिलाषा के अन्तभूर्त आनन्दतिरेक से परमोल्लसित हो, उनके अनादि वैदिक रसो वै स: श्रुति प्रतिपादित हृदय अवधार्य परमानन्द स्वरूप नित्यनिकुंजविहारी युगल स्वरूप के चिन्तन में तल्लीन हैं। लीलावतारी-पूर्णब्रह्म-पुरुषोत्तम-रसरूप-परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण हैं, वे ही सकलसृष्टि-विधायक-जगजन्मादिहेतु-निखिल-ब्रह्माण्डनायक-सर्वनियन्ता-सर्वशक्तिमान्-सर्वव्यापक-सच्चिदानन्द-सर्वेश्वर हैं, उनका रसरूप-षोडशकलायुक्त-कोटिकामदर्पहारी-अनन्तानन्त सोन्दय्र-माधुर्य-लावण्य- सौकुमार्य-सौशील्य से परिपूर्ण सद्गुणालंकृत-आनन्दित-नित्यकिशोर है उनका अनन्तानन्त-

अपरिमेय-रसार्णव-करूणार्णव रूप सदा सर्वदा चिन्तनीय अनवरत स्मरणीय और हृदय-अवधारणीय है, शिवब्रह्मा-इन्द्रादि महादेवों, नारद- सनकादि- व्यास-शुकदेव महर्षियों द्वारा उनका अनादिवैदिक-श्रुति- प्रतिपादित-सनातन स्वरूप परमगेय है, ऐसे रसरूप परमानन्द स्वरूप लीलावतारी परब्रह्म श्रीकृष्ण भक्तिहितकारी हैं, शरणागत प्रेमीभक्तों, पराभक्ति-आश्रित-रसिकों द्वारा अभिलषित परमानन्ददायी नित्यलीलाविहारकी लीलाओं के रसास्वादन का परम सौभाग्य प्रदान करने हेतु उन्होंने ब्रजमण्डल में नन्द-यशोदा गृह में अवतार लिया है।

श्रीवृन्दावन-निकुंज महलों में, निकुंज-भावातिरेक से उल्लसित, सखी सेवा में संलग्न-सन्नद्ध-मन में, श्रीकृष्ण जन्मोत्सव-रसोत्सव विहार लीला की मानसी अवधारणा से उनका संसिक्त-सुखानुभूति-संपूरित हृदय, लीलारस की तन्मयावस्था श्रीनन्द निकेतन के आँगनमें रसरूप लीलावतारी श्रीकृष्ण की जन्माष्टमी-लीला के मानसी ध्यान एव दर्शन की सुखानुभूति में निमग्न हैं। गोपी-गोप मण्डल, सकल ब्रजमण्डल, वृन्दावन सहित समस्त ब्रजमण्डल परम पुलकित भाव से नन्द-यशोदा को बधाई दे रहे हैं, मिष्ठान-मेवे से सजे थाल, दूध-दही-घृत की मंगलाचारी-न्यौछावर की बौछार के अम्बार से दधिकादों, व्रजधरा हरिद्रा-दूर्वा मिश्रित दूधदही घृत कीच से आप्लावित है, डफ-ढोल-मंजीर-ढोलक वाद्यों से गन्धव-किन्नर-भाट बधाई गान गा रहे हैं। **नन्द के आनन्द भयो जय कह्नैयालाल लाल की** का परमानन्ददायी मंगल बधाई का स्वर बधाई हो बधाई हो से व्रज में निनादित हो रहा है। वन्दनवार से नन्दगाँव के सभी गृह सुशोभित हैं, व्रजगोपियाँ कान्ह की बधाई में अत्यन्त हर्षित हैं, दूध-दधि-माखन-मेवा-मलाई के थाल लीं हैं तथा ग्रामीण गोपियाँ परम्परानुसार टोपी-बाल-पोशाक-सुटोपी की भेंट समर्पित कर रही हैं-ऐसे-अपरिमेय आनन्द का यह कृष्ण जन्मोत्सव अनवरत स्मरणीय चिन्तनीय तथा हृदय में अवधारणीय है—

निज मानस में अति उल्लसित्त, लै लै बधाई थाल।
आवत पुलकित मुदित है, 'शरण' सकल ब्रजबाल।।
नन्द के आनन्द भयो, जय कन्हैया लाल।
गावत आवत व्रजवासी, 'शरा' समर्पित माल।।
दूध-दही-घृत-कीच मचि, होत मंगलाचार।
दधि-हरिद्रा-दूर्वांकुर, 'शरण' सकल प्रसार।।
डफ-ढोल मंजीर ढोलक, बजात भाट अपार।
आनन्द सरस असीम है, 'शरण' नन्द सरकार।।
कैसी अद्‌भुत वेला है, बहत सुधारस धार।।
समस्त ब्रजमण्डल धरा, 'शरण' उल्लास अपार।।
घर-घर वन्दनवार शुभ, कीर्तन कृष्ण नाम।

सब ब्रजभूमि सारावोर, 'शरण' सश्रद्ध प्रणाम।।
जय जय बधाइ बधाई, उचरत ढाढिन ढाढ।
वाद्य बजावत गावत हैं, 'शरण' बढ़ी यह बाढ।।
कान्ह बधाई सरसाई, हरषाई व्रजगोपी।
दूध मलाई सुखदाई, लाई 'शरण' सुटोपी।।[1]

श्रीराधाष्टमी महोत्सव

श्रीराधाष्टमी महोत्सव विहार लीला के वृन्दावनस्थ दिव्य महल में मानसी ध्यान में उपासनीय हैं, अनवरत-चिन्तनीय-स्मरणीय तथा हृदय में अवधारणीय निकुंज स्वामिनी परमाह्लादिनी-वृन्दावनेश्वरी प्रियाजी श्रीराधाजी के अनिवर्चनीय अचिन्त्य परमानन्ददायी रसरूप के सुखानुभूति सौख्य से तन्मय चिन्तन क्रम में श्रीराधा चरणों का, अनादि-वैदिक-श्रुति प्रतिपादित **रसो वै स:** स्वरूप का प्रतिपादन मुखरित है, श्रीराधाजी रसरूप परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण की इष्ट-आराध्या अन्तर्भूता आद्याशक्ति हैं, उन्हीं के अनुरूप अनन्तानन्त नित्यनूतनवयस में नित्यनवकिशोरी श्यामा माधुर्य-सौन्दर्यादि अपरिमेय कारूण्य रूप के दिव्य गुणों से समलंकृत है, वे रसरूप श्रीकृष्ण की रस-अधिष्ठात्री-परमाह्लादिनी वामाँगिनी हैं, श्रीराधाजी की कृपावांछा से प्रतिपल संतुष्ट होने से श्रीकृष्ण उन्हीं के प्रमाधीन हैं, श्रीराधाजी श्रीकृष्ण की हृदयेश्वरी-परमेश्वरी-रसेश्वरी-सर्वेश्वरी--निकुंज महलों में श्रीराधा यूथेश्वरी-निकुंजेश्वरी-वृन्दावनेश्वरी-श्रीप्रियाजी अनन्त सखियों- चहचरियों द्वारा प्रतिपल अनवरत परिसेवित हैं, रसिक श्रीधामवास तथा निकुंज सखी सौख्य की निष्काम सुखानुभूति हेतु अनन्य निष्ठा से श्रीराधाचरणों की ही कृपाकांक्षा करते हैं। भाद्र शुक्ल शुभ अष्टमी को श्रीराधा का प्रेमसरोवर मध्य प्राकट्य हुआ तथा उनका निजधाम वरसाना में वृषभानु-नृप के गृह-आँगन में लीलावतरण होने से वृषभानुनन्दिनी हैं, आजमंगलमयी वेला में वरसाना में उनके दिव्य जन्मोत्सव की नित्यविहार लीला का लोकोत्तर आयोजन है। जय-जय राधे नामोच्चार से दिव्यरससुधावर्षण हो रहा है, दधिकीच से, व्रजधरा अनन्तातन्त रस में आप्लावित है, मागध-गुणिजन, ऋषि-मुनिजन-रसिक-यतीश्वर मन्त्रोच्चारण एवं मंगलकीर्तन की सुखानुभूति से पुलकित है, ब्रह्मादि सुरवृन्द राधादर्शन के परम सौभाग्य से हर्षित है—

प्रेम सरोवर दिव्य छवि, वरसाना अति पास।
श्री राधा प्राकट्य कंज, राधा 'शरण' विभास।।
श्रीवृषभानु प्रमुदित मन, राधा अंक निधाय।

---

1. श्री राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)

जन्म महोत्सव बरसाना, 'शरण' सकल हरषाय।।
वज्र वसुधा उल्लास है, जय जय राधे नाद।
दिव्य सुधा रस अभिवर्षण, वितरण 'शरण' प्रसाद।।
हरिद्रा-दधि-दधिकादौं, दरश सुधामय दृश्य।
व्रजवासी अति उल्लसित, 'शरण' परस्पर स्पृश्य।।
मागध गुणिजन प्रफुल्लित, बधाई पावत नाच।
वितरत वैभव बरसाना, 'शरण' वृषभानु आज।।
ब्रह्मादिक सुरवृन्द सब, राधा दर्शन पाय।
व्रज बरसाना आय के, 'शरण' सुभाग सराय।।
ऋषिवर-मुनिजन-धीरजन, वैदिक मंत्र प्रघोष।
गायक पुलकित कीर्तन, "शरण" करें हिय पोष।।[1]

अनन्तानन्त-अपरिमेय सौन्दर्य-माधुर्याधिष्ठान अनन्त सद्गुणों से समलंकृत, परम विचक्षण – अलबेली-अनूठी नित्यकिशोरी नित्यविहारिणी श्रीश्यामा- रसरूप- परमानन्द स्वरूप-परात्पर परब्रह्म परमेश्वर-सर्वेश्वर-रसेश्वर लीलावतारी सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण की परमाह्लादिनी-आद्या-शक्ति-हृदयेश्वरी-निकुंजस्वामिनी परम प्रिया रस-अधिष्ठात्री श्रीराधाजी तथा नित्यकिशोर-नित्यविहारी लीलावतारी पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तम रसरूप परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण तथा श्रीधाम वृन्दावन में वलयाकार से अनवरत प्रवाहित रवितनया यमभगिनी श्रीकृष्ण स्वकीया पुण्यसलिला, दिव्य प्रकृति-सश्लिष्ट-लीलापरिवेश से लीला सम्पूर्ण लतापतादि आवेष्टित परम विलक्षण, अलबेली अनूठी रसरूप परमानन्दस्वरूप परब्रह्म लीलावतारी श्रीकृष्ण की रसविस्तारिणी रसविधायिनी महारानी श्रीयमुनाजी श्रुतिप्रतिपादित रसरूप परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण की पराभक्ति के प्रमुख ये तीन विधायक हैं—सखी परिकर इनके सुदर्शनों के लिए अनवरतरुपेण सतृष्ण है—

अलबेली श्रीराधिका, अलबेलो श्रीकृष्ण।
अलबेली यमुना बहत, 'शरण' सुदर्शन तृष्ण।।

पर इनमें श्रीराधाजी का स्थान सर्वोपरि है, राधा राधा नामोच्चारण मात्र से जन्म-मरण के बन्धन मिट जाते हैं तथा राधा नाम सुनते ही रसरूप परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण धावित होकर पराभक्ति-आश्रित रसिक भक्त के हृदय में अनन्तानन्त कालपर्यन्त दृढ़ता से विराजमान हो जाते हैं, जिनके चिन्तन-मनन-कीर्तन की तन्मयता से अपरिमेय अनवरत आनन्द रूप श्रीकृष्ण माधव का अनन्त परमाश्रय सुख प्राप्त होता है, जो कि पराभक्ति का चरमलक्ष्य है—

---

1. श्री राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)

राधा राधा कहत ही, भवबाधा मिट जाय।
धावत माधव हिय बसत, 'शरण' हृदय सरसाय।।

अतः उपर्युक्त वैदुष्य पूर्ण चिन्तन, निकुंज रसात्मक-सखीभाव सम्पूरित, श्रीराधामाधव दम्पती सौख्य संवलित, परमप्रिया-परमाह्लादिनी श्रीराधा-चरणाश्रित-परमानुरागपूर्ण पराभक्ति का हृदय अवधार्य समुपदिष्ट श्रीनिम्बार्क निकुंज वैशिष्ट्य, **श्रीराधामाधवरसविलास**-भक्तिरसात्मक रसामृतसिन्धु के प्रणेता अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपदविभूषित श्री श्रीजी महाराज के श्रीमुख से प्रतिपादित उनकी परमोच्च श्रीराधाभक्ति का परिचायक प्रसंग है।

साँझी महोत्सव

श्री महावाणी जी परम्परानुगत साँझी लीला परम दिव्य और रहस्यात्मक है, निकुंजस्थ दिव्य महल के प्रांगण में, साझ वेला में, शयन से पूर्व परस्पर पुष्प शृंगार हेतु सुवासित चम्पा-चमेली-मालती-मोगरा पुष्पों का, सखियों के सहयोग से संचय करते हैं, निकुंज महल को रंगोली से सुसज्जित करते हैं, किशनगढ़ चित्रकला में पर रसिक नागरीदासजी के साँझी पदों का दिव्य चित्रांकन सुख्यात रहा है। यहाँ इस ग्रन्थ में रसोत्सव लीलाविहार का दिव्य चित्रण हुआ है।।

विजया-दशमी महोत्सव

विजया दशमी महोत्सव में शमी पूजन लीलाविहार का वर्णन है जहाँ निकुंजविहारी श्रीराधाकृष्ण की विजय-गोपाल रूप में वन्दना की है—**युगल कृपा शुभ विजय है, विजय युगल हिय ध्यान। युगल उपासना विजय ध्रुव 'शरण' विजय हिय ज्ञान।।** विजय का वृत्यानुप्रास चित्तकर्षक यमकाभास अलंकार का अनुपम उदाहरण है।

शरद्पूर्णिमा महोत्सव

परमधाम श्रीवृन्दावन में अवस्थित निकुंज महल में आश्विन शुक्ला शरद्-पूर्णिमा के शुभयोग में, सखी भावानुराग-उत्कट-उल्लास से समायोजित निकुंज महारास महोत्सव के अनादि-वैदिक-श्रुति प्रतिपादित युगल विहार का, यह सुन्दर निकुंज सखीभाव से रसासिक्त, मानसी चिन्तन-दर्शन, व्रजरस निकुंजरस-उभयात्मक भावना से ओत-प्रोत, निम्बार्कीय वैशिष्ट्य पूर्ण हृदय में अनवरत अवधारणीय है, वृन्दावन भाव में, निकुंज महारास सुवाद्य सुराग संवलित सखी समूह समन्वित रसेश राधारमण का, निकुंज के प्रशस्त प्रांगण का शारदीय लास्य ही अन्यप्रकारेण व्रजभाव को गापीजनवल्लभ नन्दनन्दन व्रजेश गोविन्दगोपाल के, श्रीमद्भागवतोक्त रसविहारी के, गोपीविलास के सुख हेतु इक गोपी-इक कृष्ण का मण्डलाकारी-लास्य, रसरूप परमानन्दस्वरूप भगवान् श्रीरमेश के रसविस्तत

स्वरूप से, सुबाध-सुरागबद्ध-दिव्य रसानृत्य, दिव्य योगमाया वेणु स्वर से रसोल्लसित, रसरूप परमानन्द स्वरूपश्रीकृष्णचरणार्पित दिव्यभावपूर्ण गोपीमण्डल मध्य, दिव्य प्रकृति-संश्लिष्ट लोकोत्तर छवि आवेष्टित-यमुनापुलिन पर, रासविहारी गोपीजनवल्लभ का, लीला-रसाभिलसित दिव्य लोकोत्तर लास्य, सुवाद्य-सुराग समन्वित सुनृत्य युगल रासविहारी का ही रास है जहाँ गोपीश्वर शिव भी सखीरूप में युगल श्रीचरणकमलों में विलुण्ठित होते हैं—

वृन्दावन यमुना पुलिन, प्रफुल्ल लतिका वृन्द।
श्रेष्ठतम महारास रस, 'शरण' लास्य व्रजचन्द।।
गोपीवल्लभ कृष्णचन्द्र, मुरलीधर घनश्याम।
वेणु बजावत पूर्णिमा, 'शरण' निशा वन धाम।।
वंशी रव सुन गोपिका, मण्डल अनन्त कोटि।
श्रीहरि संग नृत्य निरत, 'शरण' प्रणत शिव लोटि।।
मण्डलाकार रास में, राधामाधव मध्य।
इक गोपी इक कृष्ण है, 'शरण' युगल-आराध्य।।[1]

श्रीवृन्दावन भाव सम्पूरित निकुंजस्थ दिव्य महल के प्रांगण में सखी संयोजित शारदीय विशिष्ट राकेश-चन्द्रिका में निकुंज महारास लास्य, रस-विस्तारिणी श्रीयमुना महारानी के दिव्य भाव से वृन्दावन लतावेष्टित पादपकमल पुष्पित सुवासित दिव्य लोकोत्तर धवल प्रकाशमान वातावरण में, निकुंजविहारी श्यामाश्याम का, सखी व्यूहाँकित कोटिकदर्पहारी विमोहन से संयुक्त दिव्य महारास दर्शनीय अनवरत स्मरणीय तथा हृदय में अराधनीय है—

महारास रस दिव्यतम, सखी मध्य गोविन्द।
शारदीय शुभ पूर्णिमा, 'शरण' शुभ्र अरविन्द।।
वृन्दावन नव लतावलि, पादप कुसुमित चारु।
विकसित सुमन सुगन्धयुक्त, चहुँदिशि 'शरण' सुखारु।।
वीणा मृदंग तुरिय-स्वर, गुंजित मधुर अपार।।
मन भावन शारद दिवस, श्रीवन 'शरण' निहार।।
शरदोत्फुल्ल मल्लिका, राकेश पर शोभित।
आश्रित राधा श्रीप्रभु, 'शरण' व्रजालि मोहित।।
महारास रस दरश कर, अनंग अति बेहाल।
कोटि-कंदर्प विमोहन, कृष्ण 'शरण' रस पाल।।[2]

---

1. श्री राधा माधव रस विलास से।
2. श्री राधा माधव रस विलास से।

अ.भा. निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री श्रीजी महाराज की मूर्द्धन्य गुरुवाणी में निहित निम्बार्कीय रसोपासनात्मक चिन्तन सर्वोपरीय भाव से समादरणीय है। समस्त प्रसंग प्रकृति संश्लिष्ट सुरम्य वातावरण से चित्रांकित है, सखी सौख्य अध्यात्म से आवेष्ठित तथा संस्कृतनिष्ठ विषयानुकूल भाषा सौन्दर्य से परिपूर्ण होने से काव्यकलात्मक है।

दीपावली महोत्सव

कार्तिक कृष्ण अमावस्या के शुभ लग्न में राधिकोत्थानपन एवं सुलक्ष्मी पूजन के निकुंज लीलाभाव से, युगलकिशोर प्रियाप्रियतम श्रीराधामाधव विलाससुख समर्पित, निकुंज भवन में सेवा रसोल्लसित सखियों द्वारा दिव्य मंगल दीपोत्सव-समायोजत, निकुंज द्वारा एवं भव्य दिव्य प्रांगण दीपावली के दिव्यतम झलमल झलमल-झलमलित दीप-ज्योति संयोजित निस्सीम परमानन्ददायक सौन्दर्य-माधुर्य मण्डित समुज्ज्वल प्रकाश से आलोकित अपरिमेय आनन्द से सुशोभित हैं, ऐसा निकुंजस्थ दिव्य दीपोत्सव समरूप परम वैशिष्ट्य से विभूषित हरिरूप गोवर्धन तथा गिरिराज उपत्यिका सित समस्त ब्रजमण्डल का दर्शनानन्द वर्णनातीत है। झलमल-झलमल-झलमलित विद्युतवत् दीपमालीय प्रकाश का यह चित्रांकित दृश्य, वर्ण्य-वृत्यानुप्रासिक चारु चमत्कृतिपूर्ण-वक्रोक्ति समलंकृत होने से रससिद्ध कवि शिरोमणि रसाचार्यजी की काव्यकला का उत्कृष्ट उद्धरण उल्लेख्य है—

प्रदीप माला दिव्यतम, शोभित निकुंज द्वार।
झलमल झलमल झलमलत, 'शरण' दीप अनुसार।।
शुभ लक्ष्मी अर्च दिवस, परमानन्द असीम।
सर्वत्र सुखदमाधुरी, 'शरण' प्रभा-निस्सीम।।
कनक दीप छवि झलमलत, व्रज मण्डल गिरिराज।
व्रजजन अति आनन्दमय, 'शरण' अचल अधिराज।।[1]

अन्नकूट महोत्सव

दीपमालिका संलग्न, व्रज संस्कृति वैशिष्ट्य का पौराणिक लीलाख्यान सम्मत, गोवर्धन पूजन एवं अन्नकूट महोत्सव का आनन्दप्रदायक दिव्य माहात्म्य है, कनिष्ठिका अंगुली के नख पर श्रीहरिरूप गोवर्धन धारण का प्रसंग, गोविन्द गोपाल गिरिधर रूपेण लीलापुरुषोत्तम का श्रीकृष्ण का सप्तदिवसपर्यन्त इन्द्रदर्पहारी व्रजमण्डल रक्षाणार्थ अपरिमेय परम स्वरूप के प्रति, व्रजवासी गोप समाज द्वारा अर्चन-पूजन सहित निष्ठापूर्वक समर्पित, अष्टकालिक सेवानुसार विपुल सामग्री का मिष्ठान्न-शाकीय-

---

1. राधा माधव रस विलास।

मेवा विपुलाहार सम्पूरित छप्पनभोग-छत्तीसों व्यंजन वाला वर्णनातीत दिव्य अननकूट महोत्सवगोवर्धन धारण लीला भावना के अनुरूप निकुंजस्थ श्रीयुगल के प्रति वन्दन अर्चन पूर्वक सेवा समर्पित सखियों द्वारा समायोजित इस महोत्सव का, निकुंज-लीलाभाव समन्वित श्रीराधामाधव रसविलास सुख में वर्णित् यह प्रसंग दिव्य लोकोत्तर परमानन्ददायी अति चित्तकर्षक है—

व्रज वसुधा रस मधुरिमा, गोवर्धन गिरिराज।
अन्नकूट उत्सव विपुल, 'शरण' सनातन काज।।
कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा, उत्सव श्रीगिरिराज।
अन्नकूट दर्शन लसत, 'शरण' रसिक समाज।।
विविध पकवान-मिष्ठान्न, गोवर्धन हरिरपू।
विधिवत भोग महोत्सव, 'शरण' आनन्द रूप।।
श्रीगोवर्धन महोत्सव, अन्नकूट पिय भोग।
आरोगत श्रीयुगलवर, अर्पण 'शरण' सुयोग।।[1]

श्रीराधामाधव रस-विलास में सभी उत्सवों-महोत्सवों में साङ्गोपाङ्ग वर्णन परम हृदयाकर्षक है। व्रजरस, निकुञ्जरस, वृन्दावन, यमुना तथा युगलकिशोर वृन्दावनेश्वर श्रीराधाकृष्ण का परम मनोहारी स्वरूप चित्रण कितना अनुपम सरस बन पड़ा है जो सदा ही अवधेय है—

अलबेली श्रीराधिका, अलबेलो श्रीकृष्ण।
अलबेली यमुना बहत, 'शरण' सुदर्शन तृष्ण।।

इनमें श्रीराधाजी का स्थान सर्वोपरि है, राधा राधा नामोच्चारण मात्र से जन्म-मरण के बन्धन सदा-सर्वदा के लिए मिट जाते हैं, तथा राधा नाम सुनते ही रसरूप परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण धावित होकर पराभक्ति आश्रित रसिक भक्तों के हृदय में अनन्तानन्त काल पर्यन्त विरामान हो जाते हैं, जिनके चिन्तन-मनन-कीर्तन की अनवरत साधना से श्रीकृष्ण का अनन्तसुखदायी परमाश्रय प्राप्त हो जाता है जोकि रसिकों का परम लक्ष्य है। राधा नाम का चिन्तन-मनन-कीर्तन हृदय में अवधार्य है—

राधा राधा कहत ही, भवबाधाम जाय।
धावत माधव हिय वसत, 'शरण' हृदय सरसाय।।

श्रीराधा का परमाराधन उनकी पराभक्ति-परमाश्रय पूर्ण शरणागतिप्रपत्तिपरक नाम गुणात्मक स्मरण-भजन-कीर्तनासक्ति ही असीम परमानन्द की साधना है, श्रीराधाजी श्रीकृष्ण की इष्ट आराध्य है, श्रीकृष्ण हृदयेश्वरी श्रीराधा के प्रेमाधीन है।

---

1. राधा माधव रस विलास, प्रणेता : श्री श्री जी महाराज।

इसलिए **श्रीराधामाधवरसविलास** का प्रत्येक प्रसंग राधा नाम संकीर्तन से राधामय हो गया है—

कुंज कुंज प्रति कुंज में, कुंज वीथि में गुंज।
जय राधे जय राधिके, 'शरण' निनद खग पुंज।।
तरु लतिका अरू डाल पर, पत्र पुष्प पर नाम।
राधे राधे राधिके, पुनि पुनि 'शरण' प्रणाम।
राधा कृष्ण परम प्रिया, राधा अनुगत श्याम।
राधे राधे रटत हरि, 'शरण' चित्त अवधार।।
सकल शास्त्र का सार यह, श्रीराधा नित जाप।
गहो निरन्तर भक्त्रस, 'शरण' करै निष्पाप।।[1]

श्रीराधामाधवरसविलास श्रीराधा भक्ति प्रधान निकुंज का भक्ति रसामृतसिन्धु है। पृष्ठांकित वृन्दावनभाव तथा निकुंजरस शीर्षक की विशद् व्याख्यात्मक विषय विवेचन से श्री श्रीजी द्वारा स्वतः प्रमाणित-प्रतिपादित श्रीराधाजी परमधन ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है।

महाकाव्य का कथात्मक वर्णनात्मक कलेवर चाहे धार्मिक हो या भक्तिभावनात्मक-ध्यात्मिक हो या पौराणिक हो अथवा अन्य विषयक तथापि उसको लोकोपकारी लक्ष्य भी अपेक्षित है जो उसकी लौकिक लोकप्रियता तथा उपदेयता सिद्ध करता है। **श्रीराधामाधवरसविलास** के वस्तु कलेवर में आधुनिक-सामाजिक-राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय विविध ज्वलन्तकारी समस्याओं का गुरुवाणी से वैदुश्यपूर्ण समाधान हुआ है। ग्रन्थ का प्रेरणात्मक उद्‌बोधन इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। सर्वप्रथम हमारे देश निर्देशित दो पर वैदेशिक दूरदर्शन-आकाशवाणी आदि आधुनिक वैज्ञानिक-सम्प्रेरणात्मक माध्यमों से पाश्चात्यिक आचार-विचार सांस्कृतिक सुनियोजित आक्रमण हो रहा है, जिसे हम आधुनिकता के विमोहन से स्वीकारते जा रहे हैं, हमारा आध्यात्मिक सांस्कृतिक सनातनी जीवन परिवेश राष्ट्रीय और राजनैतिक परिवेश नितान्त भौतिकवादी बन गया है, अर्थ प्रधानता सारा जीवन भावनाहीन नीरस हो गया है, सर्वत्र व्याप्त भ्रष्टाचारिता आपाधापी, वर्गसंघर्ष, जातिगत-साम्प्रदायिक संघर्षों से देश संत्रस्थ हो गया है, सबै भूमि गोपाल की, वसुधैव-कुटुम्बकम्-जीवों और जीने दो—के जीवनदायी संस्कृति भौतिक चकाचौंध से श्रीहीन हो गई है। संसृति की बहुविध कलह और अशान्ति पुनः ईश्वरवादी आध्यात्मिकता से निर्मल हो सकती है—

---

1. श्री राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।

अहो स्वामिनी राध्के, कृपा करैं निज जान।
बहुविध पातक पुंज से, 'शरण' पतित उत्थान।।
संसृति घातक ताप है, राधा नाम विलाय।
यह शास्त्र सिद्धान्त है, 'शरण' व्यर्थ अकुलाय।।[1]

अकारण-करूणालय-सर्वनियामक-सर्वेश्वर परमाश्रित भाव का जीवन दर्शन की उपादेयता आधुनिक परिवेश में नितान्त अपेक्षित है—कलियुग केवल नामाधार-समुपदेष्ट्य है—

अकारण करूणासागर, कृपाधाम घनश्याम।
सर्वनियामक सर्वेश्वर, 'शरण' पूर्णतम काम।।
श्रीहरि कीर्तन सार है, यही परम अवलम्ब।
तनमय होकर नित करैं, 'शरण' प्रपन्न कदम्ब।।[2]

अत: भगवद्परक आध्यात्मिक जीवनसार है। **'सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:ख भाग्भवेत्।'** की पुरातन संस्कृति के प्रतिष्ठार्थ सर्वकल्याण उपदेष्टित हुआ है—

सभी की मंगल कामना, करैं सदा निज आत्म।
यही सनातन संस्कृति, 'शरण' मुदित परमात्म।।

भारतीय जीवन में पुन: शुद्ध आचरण-सरलता-सुदैन्य स्वभाव, परोपकार, निरहम् भगवदीय भावना उजागर होना परमावश्यकीय है—**शुद्ध आचरण सरलता, परम सुदैन्य स्वभाव, श्रीप्रभु पदाब्ज भावना, 'शरण' विलय भव ताप।।** का रहस्य है तथा **अति सरलता-सहिष्णुता, करूणा दयालु भाव। उत्तम नर पहचान है, 'शरण' विनम्र स्वभाव।।** से देव दुर्लभ समरसता पूर्ण संस्कृति का पुनरुत्थान होना चाहिए, जिसका एकमात्र उपाय आध्यात्मिक संस्कृति का पुनर्जागरण है—

भौतिक जीवन दु:खमय, अविरल चित्त अशान्त।
अध्यात्मपरता सुखप्रद, 'शरण' नशत भव ध्वान्त।।

आज हमने पाश्चात्य भौतिकवाद का भोगवादी चोला ओढ लिया—मन संकुचित है तन सौन्दर्य प्रसाधनों से विकसित सुन्दर तथापि क्रान्त। आज हमने वर्णाश्रम संस्कृति-सामाजिक कर्म संस्थापना को अमान्य कर दिया, फलत: हर जाति-सम्प्रदाय और वर्ग का आन्दोलन देश को आन्दोलित कर रहा है। विप्र-धर्म-क्षात्र-वैश्य और चतुर्थ वर्ण का पुरातन विचार वांछित सुधार रूप से संरक्षण हो। गो-गंगा और गायत्री-सिद्धान्त त्रय सर्वदा ही प्रपूज्य एवं नितान्त उपयोगी है। गोपालन

---

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)
2. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)

और कृषि केन्द्रित ग्राम सभ्यता पुनः वरदायी है—**गो सेवा सुख सम्पदा, सकल कष्टविनिवार**—में यही सिद्धान्त निर्देशित है। हमारे मन्दिरों कि रक्षा, गोधन रक्षा-शास्त्र-ज्ञान-कला का संरक्षण् अनादि वैदिक संस्कृति के सर्वनाश की कुत्सित आतंकवादी योजनाओं का तुरन्त समाधान आवश्यक है। **श्रीहरि मन्दिर रक्षार्थ, रक्षा गोधन-शास्त्र। वेद संस्कृति रक्षा हो 'शरण' मंत्र ब्रह्मास्त्र।** वर्तमान परिवेश में जगद्गुरु वाणी में हिन्दुत्व रक्षण का प्रबलतम उद्बोधन हुआ है। भारतमाता के प्रति वन्देमातरम् की राष्ट्रीयता आज के सन्दर्भ में नितान्त अपरिहार्य है, हम धर्म-सम्प्रदाय-वर्ग-भाषा-प्रान्त और दलगत राजनैतिक कुचक्रों में राष्ट्रधर्म का विस्मरण कर चुके हैं जो सर्वनाशी स्वात्मघाती योजना है,अतः पुनः भारत के बच्चे-बच्चे में राष्ट्रधर्म की उदात्त भावना उजागर होनी चाहिए। हमारा भूमि वैशिष्टय-सांस्कृतिक वैशिष्ट्य की सर्वविध सुरक्षा हो, ऐसी राष्ट्रीयता आधुनिक जीवन का प्रमुख धर्म देशोद्धार का परम मन्त्र है—

गंगा यमुना सरस्वती, सरयू क्षिप्रा पूज्य।
चन्द्रभाग गोदावरी, 'शरण' सदा सम्पूज्य।।
चारधाम अथ सप्तपुरी, द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग।
वृन्दावन मथुरापुरी, 'शरण' अयोध्या सङ्ग।।
सभी धर्मपुरियाँ प्रणाम, भारतवर्ष महान।
धर्माचार्य सन्तवर, 'शरण' श्रेष्ठ धीमान।।
वैदिक सनातन संस्कृति, गोमाता प्रतिपाल।
देव मन्दिर संरक्षण, 'शरण' सदैव निहाल।।[1]

आज ऐसी वैदिक संस्कृति का संरक्षण आधुनिक भारतीय राजनीतजि का अपरिहार्य धर्म है। मादक द्रव्य और नशीले पदार्थों का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भारतीय युवापीढ़ी कासर्वनाश कर रहा है—हमारा सामिष-पाश्चात्य आहार-विहार अति दुःखदायी बन गया है, जिसकी सचेतना जानते हुए आचार्य श्रीशाकाहारी संस्कृति का आहार-विहार उपदेष्टित करते हैं—

मादकता अति हानिकर,मादक द्रव्य निवार।
सुखद स्वास्थ्य प्रद आहार, 'शरण' सुस्वास्थ्य निहार।।
सात्विक पवित्र आहार, सात्विक जीवन स्वस्थ।
सात्विकता धारण सदा, 'शरण' अज्ञ अस्वस्थ।।
ऋतु अनुसारआहार का, ध्यान रहे परिपूर्ण।
सात्विक शुद्ध स्वरूप हो, 'शरण' अपेक्षित चूर्ण।।[1]

---

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।

वाणी का अत्यन्त व्यवहार आज जीवन में कटुता का विष घोल रहा है, अत: मधुर वाणी संयम सुशीलता-सरलता दैन्य का अवधारण इसका परिहार है—

वाणी में माधुर्य हो, कटुता का परिहार।
संयम सुशील सरलता, 'शरण' दैन्य अवधार।।

आज दूषित पर्यावरण से, अनियोजित औद्योगिक करण से हमारा वन्य जीवन, पशु धन, वन सम्पदा का विनाश हो रहा है जिसका कठोर दण्डात्मक विधान से शमन होना चाहिए—

पशु धन खगगन जीव मात्र, हिंसा महा अनर्थ।
इनकी रक्षा परम धर्म, 'शरण' दंडरु अधिकार।।

आध्यात्मिक प्रधान जीवनोपयोगी शिक्षा से अनिवार्यता में अनेक समस्याओं का निदान है, अत: ऐसी शिक्षा देश की आधुनिक अपरिहार्यता है, जिसके अभाव से युवा दिग्भ्रमित है—

शिक्षा नितान्त अनिवार्य, जिससे हो सद् बोध।
लौकिकता में कुशलता, 'शरण' परमार्थ बोध।।
यही शिक्षा आवश्यक, हो जीवन निर्वाह।
अध्यात्म ज्ञान बोधता, 'शरण' सुनिश्चय चाह।।[2]

भारतीय आयुर्वेदिक चिकित्सा मूल है, अखाद्य मादक द्रव्यों के सेवन से आज हम कई प्राणघाती व्याधियों से संत्रस्थ है, पञ्चगव्य, तुलसी-निम्ब सेवन की निरापद औषधियों के सेवन से प्राणघातक व्याधियों का निराकरण होना चाहिए—

अखाद्य मादक प्रतिषेध, सात्विक भोज्य पदार्थ।
पंचगव्य से नैरोग्य, 'शरण' प्रसेव्य हितार्थ।।
सकल रोगहर निम्ब है, आयुर्वेद सुघोष।
पंचामृत का पान हो, 'शरण' शरीर सुपोष।।
तुलसी समस्त व्याधिहर, संसृति ताप निवार।
इसके अर्चन अशन से, 'शरण' भवार्णव पार।।[3]

आज की सर्वोपरि त्रासदी पादप छेद से व्याप्त प्रदूषण की है, जलचर, नभचर, पशुधन के जीवन रक्षण की है, अत: प्रशासन का मुख्यतम धर्म इनकी प्रभावशाली रोकथाम प्रजा-प्रशासक का सम्मिलित धर्म है। प्रजा-प्रशासक-सब जन का संकल्प हो ऐसी देव मन्दिरों के संकल्पबद्ध रक्षण की चेतना जगद्गुरुत्व का धर्म है जिसके

---

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।
2. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।
3. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य)।

समाधानार्थ निर्भीकता पूर्वक युद्ध की कटिबद्धता की उद्घोष अत्यन्त प्रेरणादायी बन गया है—

पादप छेदन अहितकर, प्रजा प्रशासक धर्म।
जहाँ प्रदूषण व्याप्त है, 'शरण' निरोध सुकर्म।।
जलचर नभचररक्षणीय, पशुधन भी अनिवार्य।
गोधन हिंसा न कदापि, 'शरण' मुख्यतम कार्य।।
देव मन्दिर रक्षण हित, रहै सदा सन्नद्ध।
प्रजा प्रशासक सनतजन, 'शरण' संकल्प बद्ध।।
आवश्यकता हो जभी, युद्ध हेतु कटिबद्ध।
स्वदेश रक्षण भावना, 'शरण' रहे सन्नद्ध।।[1]

अत: ऐसे राष्ट्रीय चिन्तन संस्कृति संरक्षण के विचारों ने **श्रीराधामाधवरसविलास** में लोकोपकारिता के लोकप्रिय सर्वकल्याणकारी अमृत रसायन से यह ग्रन्थ जीवनप्रदायी रसार्णव से ओत-प्रोत हो गया है। अत: ऐसे भक्तिरसामृतसिन्धु के अमृतकणों से अपने जीवन में परमानन्द का रसास्वादन प्राप्त करना ही वस्तुत: इस रस ग्रन्थ की सर्वविध सर्वोच्च उपादेयता है।

(2) सर्वेश्वर सुधा-बिन्दु (श्रीराधा-सर्वेश्वर-शतक)

'सर्वेश्वर सुधाबिन्दु'—अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य-पीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज की अनुपम रचना है, जिसमें निम्बार्कीय रसोपासना का मूलतत्त्व **'बीज-बिन्दुवत्'** साररूप में प्रतिपादित है। माधुर्यभाव से परिपूर्ण कोमल-कन्त पदावली एव रागबद्ध गीति में यहाँ निम्बार्कीय-सहचरी-सेवा नित्यकेलि तत्त्व, युगल स्वरूप एवं उनके लीला-लीलाधाम आदि का सारगर्भित मार्मिक वर्णन हुआ है। ग्रन्थकार स्वयं रसिक भक्त-शिरोमणि, रसोपासना मर्मज्ञाचार्य हैं तथा आप प्रतिपत्न माधुर्यभाव समन्वित प्रिया-प्रियतम की सहचरी सेवा में निमग्न रहने वाले परम वीतरागी आचार्य होने से ग्रन्थ के प्रत्येक पद में अपने हृदय की उदात्त रसिक भावना कोमलकान्त सरस पदावली, सुमधुर सुसज्जित भाषा, ललित-लय एवं सुन्दर संगीत के साथ रसधारावत् प्रवाहित हुइ है। भावुक भक्तों एवं रसिकजनों के कल्याणार्थ आपने प्रस्तुत ग्रन्थ में निम्बार्कीय रसोपासना का जो सरस सारगर्भित् सांगोपांग एवं प्राचीन कीर्तन, परम्परानुरूप विश्लेषण किया है, वह वस्तुत: अत्यन्त महनीय उपादेय और स्तुत्य है। आपके द्वारा देववाणी में विरचित सभी ग्रन्थ विद्वान्ों के कण्ठहार हैं, पर प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी भाषी सामान्य भक्तों के लिए

---

1. राधा माधव रस विलास (महाकाव्य), प्रणेता : श्री राधा सर्वेश्वर शरण देवाचार्य।

भगवत्प्रसाद स्वरूप है अथवा यों कहिये कि सरस-सुमधुर-प्रसादपूर्ण-पाञ्जल हिन्दी भाषा की यह कोमल-पदावली पीयूषवर्षिणी मेघमाला से निसृत रसधारा है, जो पाषाण हृदय में भी अन्तर्गर्भा-सलिला प्रवाहित करने की क्षमता रखती है।

कलियुग के कुप्रभाव से आज के भौतिक-संघर्षवादी विश्व पर अनेक प्रकार के दु:ख-कलह एव विनाश से भरे काले-पीले रक्तिम मेघ आच्छादिन हैं, जिनमें प्रलय-विभीषिका का विषाक्त प्रलयंकारी सागर समाहित है, जो मूसलधारी विपुल वेग से बरसकर धरित्री को पुन: अपनी ही क्रोड में समेट लेना चाहता है। आज के भौतिकवादी साहित्य-साधक इस मेघाच्छादित वातावरण को उत्प्रेरित कर रहे हैं, जिनकी कुण्ठित एवं प्रेरित वाणी येन-केन प्रकारेण किसी राजनीति, मतवाद एव संकुचित सिद्धि से आबद्ध है। वे अपनी सर्जनाओं में 'वर्ग-संघर्ष', 'कामचार' एवं थोथी पाश्चात्य वैचारिक नवीनता उभारकर ऐसे ही प्रलयंकारी 'सागर' का आह्वान कर रहे हैं। यह सारा कलियुगी प्रपंच सर्वशक्तिमान् की अविद्यामाया का प्रसार है, पर जो ज्ञानी और भक्त थे वे इस मायिक संसार के नश्वर भौतिकवादी आनन्द से ऊपर उठकर भगवद्-भक्ति रसामृत के प्यासे होते हैं। **महात्मा कबीर** की भाँति वे निर्मल सात्विक बुद्धि से संसार को देखते हैं—

बगुली नीर बटोलिया सायर चढ्या कलंक।
और परब्रेरू पी गये हंस न बोवै चंच।।[1]

भगवद्भक्ति रसामृत की तृषा से आतुर चातक भक्त तो 'अगस्त्य मुनि' की भाँति 'सात समुद्रों' के प्यासे नहीं, वरन् वे तो 'स्वाति बून्द' के साधक हैं। अत: चातक सदृश अनन्य निष्ठावान् रसिक-भक्त, जिन्हें प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्ण की निकुञ्जकेलि-रसमाधुरी का रसकण अभिलषित है, उन्हीं के लिए यह भगवत्स्वरूप **'सर्वेश्वर सुधा-बिन्दु'** प्रस्तुत है। इसकी 'सुधा बिन्दु' उन रसिकों के लिए है, जिनकी भावना में 'युगल-केलि-रसकण' की गरिमा 'क्षीर सागर' से भी महान् है।

इस ग्रन्थ का नाम निम्बार्क-सम्प्रदाय की उपासना-परम्परा एवं ऐतिहासिक विश्रुति का परिचायक है। निम्बार्क-सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन है, जिसके पूर्ववर्ती प्रचलित नाम हंस, सनक-सनकादिक-सनतकुमार तथा श्रीनारद आदि भक्ति-सम्प्रदाय शास्त्रोक्त हैं। आद्याचार्य श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र द्वारा द्वैताद्वैत दर्शन का पूर्ववर्ती परम्परागत सम्प्रदाय में प्रवर्तन एवं प्रतिष्ठापन के पश्चात् उसका नाम 'श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय' प्रचलित हुआ। इस ऐतिह्य परम्परा एवं प्राचीनता के प्रमाण सनकादिक-सुसेव्य स्वरूप गुञ्जाफल सदृश-सूक्ष्म श्रीशालिग्राम विग्रह परमाराध्य 'श्रीसर्वेश्वर' भगवान् हैं। सनकादिकों ने महर्षि श्रीनारद को इन्हीं 'सर्वेश्वर' भगवान्

1. **कबीर ग्रन्थावली (बीजक) से।**

की सेवा प्रदान की तथा तदुपरान्त श्रीनारद ने अपने शिष्य आद्याचार्य श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र को, इसी प्राचीन आचार्य परम्परानुसार प्राप्त 'श्रीसर्वेश्वर भगवान्' की सेवा आज भी श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' महाराज को प्राप्त है। **'श्रीसर्वेश्वर'** शालिग्राम विग्रह अत्यन्त दिव्य है, जिनके अन्तर्गर्भ में अत्यन्त उज्जवल स्वणर्धाभावेष्टित 'युगलपद-प्रतीक' दो रेखायें अंकित हैं। जिनकी सेवा का अधिकार 'श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर' को ही है। 'श्रीसर्वेश्वर भगवान्' का दिव्य विग्रह अहर्निश सुसुगन्धित इत्र में रजत सिंहासन पर विराजमान किया जाता है और नित्य प्रात: **पुरुषसूक्त** के सरस्वर वेदपाठ सहित उनका गो-दुग्धाभिषक किया जाता है। तत्पश्चात् उनके दर्शनों की अनुपम झाँकी होती है—

सर्वेश्वर प्रभु पर मनोहर।
मुक्ता मणिमय स्वर्ण सिंहासन मुद्रित विराजत मण्डप वपु-धर।[1]

'भगवान् श्रीसर्वेश्वर' की महिमा सर्वोपरि है। निम्बार्क समप्रदाय में वे ही साक्षात् परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हैं। वे ही आदि, अनादि, अनन्त, असीम तत्त्व हैं, वे ही अखिलब्रह्माण्डनायक, सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान्, सुष्टि-विधायक-पालक-संहारक, सर्वसद्गुणालंकृत, सर्वान्तिर्यामी, परमात्मा, परमेश्वर, देवाधिदेव, परम विलक्षण एवं परात्पर हैं। उक्त ग्रन्थ में उनके हिन्दी विशेषणों से युक्त परम्परागत स्वरूप का सुन्दर विवेचन किया गया है—

जय नन्दननन्दन! जय सर्वेश्वर!!
श्रीसनकादिक परिसेवित हो ऋषिवर नारद समुपासित हो।
सकल सृष्टिपालक परमेश्वर! जय नन्दनन्दन जय सर्वेश्वर।।
श्रीनिम्बारक आराधित हो, गुंजाफल सम अभिरात हो।
सूक्ष्म रूप में हो निखिलेश्वर! जय नन्दनन्दन जय सर्वेश्वर।।
परम्परागत परिपूजित हो, शालिगराम रुचिर शोभित हो।

★ ★ ★

रे मन भज भज श्री सर्वेश्वर!
आनन्द सिन्धु रसधन पूरन ब्रह्म सनातन नित्य उजागर।
श्रुतिपुराण गावत निशिदिन ध्यावत ऋषि मुनि मन्त्र सुनाकर।।

★ ★ ★

सदा सुख बरसत श्री सर्वेश्वर!
निखिल भुवन मन मोहन सुन्दर परात्पर पूरन ब्रह्म सुरेश्वर।।[2]

---

1. सर्वेश्वर सुधाबिन्दु से समुद्धत।
2. सर्वेश्वर सुधा बिन्दु।

निम्बार्कीय भक्त हृदय ने ऐसे ही श्रीकृष्ण स्वरूप 'श्रीसर्वेश्वर' भगवान् को शरणागतवत्सल, करुणासागर, पतितपावन, भक्त-संकटहारी माना है और उन्हीं के प्रति शरणागति चाही है—

सकलनियन्ता करूणासागर, परम रसीलो मंगलकारी।
सर्वेश्वर पद प्रीति करो मन शुद्ध भाव नत शरणागत हो।।
विमल भगति चित दीन सदा बन, मम जीवनधन श्री सर्वेश्वर।
अनन्त कृपानिधि परम दयालु शरणागत नित्य कृपाकर।।[1]

निम्बार्क-सम्प्रदायमें "**रसो 'वै स:**" श्रुति के अनुसार श्रीकृष्ण के साक्षात् स्वरूप 'भगवान् सर्वेश्वर' रसरूप हैं। वे ही अखिल-सौन्दर्य-माधुर्य मण्डित आनन्दकन्द नन्दनन्दन श्रीकृष्ण स्वेच्छा से रसविलास हेतु युगल स्वरूप श्रीप्रिया-प्रियतम के दिव्य रूप में प्रकट हो, नित्यधाम श्रीवृन्दावन में अहर्निश निकुञ्ज-क्रीड़ारत होते हैं। श्रीराधासर्वेश्वर, पूर्ण परात्पर, अभिन्न, अनन्त, अद्वय, सौन्दर्य-माधुर्य-गुणों में परस्पर सर्वथा अनुरूप, सनातन और नित्य हैं। आद्याचार्य श्रीनिम्बार्कमहामुनीन्द्र ने दशश्लोकी ग्रन्थ में ऐसे ही परम-पावन दिव्यगुणालंकृत नित्यकिशोर-किशोरी युगलस्वरूप 'श्रीराधाकृष्ण' का स्वरूप निद्रेश करते हुए सहचरी भाव से उनकी निकुञ्ज सेवा करने का उपदेश दिया है—

स्वावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्मपरं वरेण्यं, ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्।
अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदां, विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखसहस्रै: परिसेवितां सदा, स्मरेम देवीं सकलेष्टाकामदाम्।।[2]

'नित्य नूतन वयस' में अहर्निश निकुञ्ज-क्रीड़ारत रस-स्वरूप 'श्रीराधाकृष्ण' एक ही रस के उभय स्वरूप हैं। वे एक ही उज्ज्वल रसवारिधि के गोर-श्याम उभय कल्लोलरूप कमल सदृश हैं, जो परस्पर स्वेच्छा से समालिंगित तथा समानभाव से विलसित सनातन युग्म हैं। निम्बार्कीय रसोपासक ऐसे ही ब्रजवृन्दावन केलिविहारी—विहारिणीजू श्रीराधामुकुन्द की सर्वदा आराधना करते हैं। श्रीऔदुम्बराचार्यजी ने ऐसे ही अनिर्वचनीय युगलतत्त्व की सुन्दर व्याख्या की है—

"कल्लोलकौ वस्तुत एकरूपकौ राधामुकुन्दौ सम्भावभावितौ।
यद्वत्सुसम्पृक्तनिजाकृतिध्रुवावाराधया यौ व्रजवासिनौ सदा।।"

श्रीहरिव्यासदेव कृत 'महावाणी' में निम्बार्कीय रसोपासना तत्त्व का सांगोपांग विवेचन हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ '**सर्वेश्वर सुधाबिन्दु**' का रस विवेचन अलौकिक है।

---

1. सर्वेश्वर सुधा बिन्दु।
2. वेदान्त दश श्लोकी से समुद्धत।

सम्पूर्ण ग्रन्थ में परम्परागत परम रसब्रह्म युगलस्वरूप 'श्रीराधासर्वेश्वर' का अनिर्वचनीय स्वरूप प्रतिपादित हुआ है—

राधामाधव! ब्रजविपिनेश्वर! जय नन्दनन्दन! जय सर्वेश्वर।
विमल युगल वपु ललित बने हो, भक्तन हित यह रूप धरे हो।।
श्रीवृन्दावन कुञ्जमधुप हो नवल केलिरस विलसत नित हो।
रसिकेश्वर! हे श्रीरासेश्वर! जय नन्दनन्दन! जय सर्वेश्वर।।
युगल रूप वपु सतत विराजत, ललित छबीले नवकुञ्जेश्वर।
श्रीवन्दावन नित्य धाम की क्रीड़त महितल सखीजनेश्वर।।[1]

आद्याचार्य श्री निम्बार्क महामुनीन्द्र ने सखी भाव से 'युगल स्वरूप' श्रीराधाकृष्ण की निकुञ्ज-सेवा को सर्वोपरि अन्तरंग उपासना बताया है। 'सहचरी' जीवात्मा की अलौकिक अवस्था का नाम है। यह रसिकोपासक का परम भाव है, जिसमें वह अहर्निश निमग्न हो 'प्रिया-प्रियतम' के केलिकुञ्ज की सेवा करता है। ऐसे परम भावुक भक्तों के लिए ही उनके परमाराध्य 'श्रीराधामाधव' नित्य केलिधाम श्रीवृन्दापवन में निकुञ्ज क्रीड़ारत होते हैं। **'सर्वेश्वर सुधा बिन्दु'** का आस्वादन करने वाले भावुक भक्तों को निश्चय ही कुञ्ज केलिरस श्रीराधाकृष्ण की 'निकुञ्ज केलि रसामृत बिन्दु' की अनुपम उपलब्धि होगी। निकुञ्ज क्रीड़ारत नित्य विहारी-विहारिणी जी की अनुपम झाँकी के दर्शन कर सहचरी भक्त के नेत्रों को अलौकिक आनन्दानुभूति होगी और उसका मन-मधुकर युगल चरणारविन्द काअनुरागी बन निरन्तर वहीं वास करने लगेगा—

श्रीवन विहरत श्रीसर्वेश्वर।
नित्य किशोरी स्वामिनी राधा, सखीजन संग सुशोभित सुन्दर।।
वृन्दावन नव चिन्मय अवनी विथिन विहरत मुदित मनोहर।
शरण सदा राधासर्वेश्वर रसिक निहारत नवल युगलवर।।

★ ★ ★

श्रीसर्वेश्वर रसिक छबीलो।
कुञ्ज सखी सह विहरत श्रीवन, परम प्रिया को परम रसीलो।
शरण सदा राधासर्वेश्वर, प्रेम सुधा रस नित बरसीलो।।[2]

सखी भक्तों के लिए 'नित्य विहारी विहारिणी-जू' की यह नित्य रस लीला नित्य नूतन, अहर्निश और विविध रूपा है। अनेक अगणित भावों और नव-नव उत्साहों से उनका विकास होता है। **'सर्वेश्वर सुधा बिन्दु'** का नित्य विहार लीला वर्णन अनूठा

---

1. सर्वेश्वर सुधा बिन्दु।
2. सर्वेश्वर सुधा बिन्दु।

है। वेणुवादन, रास, कन्दुक लीला विहार, यमुना-केलि, होरी, फाग, बसन्त, पावस आदि रसलीला के जितने भी परम्परागत प्रसङ्ग हैं, ग्रन्थ में मार्मिक ढंग से चित्रित हुए हैं। कृष्ण-आह्लादिनी वृन्दावन स्वामिनी यूथेश्वरी सखीजन सर्वस्व श्रीराधिकाजी को गलबाँही दिये रसिक शिरोमणि आनन्द व सघन रूप माधव का वेणु विलास द्रष्टव्य है—

नवकेलि रस विलसत माधव।
अतिकरूणामयी स्वामिनी श्यामा, संग सखीजन शोभित अभिनव।
रसिक शिरोमनि रसघन माधव धुनित अधरधर मुरलिमधुरख।[1]

'महारास' जहाँ एक ही रसरूप युगल स्वरूप श्रीराधाकृष्ण के रस विलास का चरमोत्कर्ष अभिव्यक्त होता है, रासलीलापरिकर, लीला-लीलामय और लीलाधाम में एक ही रस की अनुभूति कर चराचर विश्व रसमय हो जाता है। वैदिक ऋचाओं में ऋषि-मुनियों ने जिस अनिर्वचनीय महारास तत्त्व को 'नेति-नेति' कहकर गाया है, उसी 'श्रीराधासर्वेश्वर' महारास की अलभ्य 'सुधाबिन्दु' का रस ग्रहणीय है-

आज युगलवर वंशीवट तर, करत रासरस केलि सखीरी।
श्रीवृन्दावन रसिक हृदय धन, चिनमय रसधनललित लसीरी।।
रवितनया जल विमल सुभग शुचि, बहत मनोहर दरस भलीरी।
विधु नभ राजत लता प्रफुल्लित, सरद सुहावनि सुखद अलीरी।।
मञ्जुल मुरली मधुर सरस रव, बीन-मृदङ्ग करताल धुनीरी।
अलिकुल गुञ्जन सखञ्जनपुञ्जन, निरतन जोरी मुदित बनीरी।।
श्यामाश्याम मुखाम्बुज शोभा, लखि अगनित रति बिलज भयीरी।
शरण सदा राधासर्वेश्वर, यह छवि अनुपम हृदय बसीरी।।[2]

जलकेलि, वसन्त होरी, पावस लीला के नित्य विहार पद ग्रन्थ में देखते ही बनते हैं, पर नित्य विलासत प्रिया-प्रियतम के दिव्य स्वरूप की सर्वाधिक सुन्दर झाँकी पावस लीला पद में प्रकट हुई है। पावस की चपलचपलायुक्त श्यामल घटा से आच्छादित परम-पावन अतिकमनीय श्रीवृन्दावनास्थित सुरम्य केलिकुञ्ज, जहाँ कोकिल-मयूर-दादुर की सुमधुर रसवाणी से रसोत्प्रेरित हो, कोकिकाम-कलानिधि, रसिकेश्वर, सौन्दर्य-माधुर्य-मण्डित श्रीप्रिया-प्रियतम की नयनाभिराम जोड़ी रतिरत है तथा दिव्यमेघावली की मन्दर-मन्दर नवनव रसयुक्त जलकणिकाओं से रससिक्त हो रही है।

---

1. सर्वेश्वर सुधा बिन्दु (राधा सर्वेश्वर शतक)।
2. सर्वेश्वर सुधा बिन्दु (राधा सर्वेश्वर शतक)।

केलिरत श्यामश्याम के यही दिव्य-दर्शन निकुञ्ज रस का **परमानन्द** है। अहर्निश निकुञ्ज-केलि-क्रीड़ा के विधान में दिव्य-भाव समन्वित सहचरी के नेत्र कुञ्जरन्ध्रों से इसी दिव्यदर्शन के चिराभिलाषी हैं, धन्य है यह छवि—

छाई श्याम घटा अति प्यारी।
श्रीवृन्दावन पावन धरणी वरषत् सरसत सुन्दर वारी।।
युगलकिशोर रतिरस भजत उमगत सुखरस परम अपारी।
कोकिल कूजन मोरमधुर धुनि सुनि मनमोद महारी।।
दादु घोर करत अति सुन्दर वेणु बजावत कुञ्ज बिहारी।
शरण सदा 'राधासर्वेश्वर' चपला चमकत पुनि-पुनि प्यारी।।[1]

निम्बार्क भगवान् के दश-श्लोकी में **'सखी सहस्त्रै: परिसेवितां सदा, स्मरेम देवीं सकलेष्टाकामदाम्"** कहकर श्रीराधिका प्रधान सहचरी भक्ति का निर्देश किया है। श्रीराधिकाजी निम्बार्कियों की 'सर्वेश्वरी' हैं। 'महावाणीजी' में परमाराध्या श्रीराधाजी के स्वरूप का सुन्दर विवेचन हुआ है। श्रीराधाजी परब्रह्म श्रीकृष्ण की परमाह्लादिनी शक्ति है, कृष्ण प्रतिपल राधारूप में रमण करते हैं। श्रीकृष्ण के अनुरूप श्रीराधिकाजी भी अनन्त सौन्दर्य-माधुर्य मण्डित दिव्यगुणालंकृत परमसुन्दरी है। परमदिव्य रस का नाम ही 'राधा' है। राधा बिना, कृष्ण आधे हैं। वही रासेश्वरी, वृन्दावनेश्वरी, निकुञ्ज रस विस्तारिणी, नित्यविहारिणी प्रियाजी हैं। सहचरी भक्त को स्वामिनी श्रीराधा कृपा से ही निकुञ्ज-सेवा सुलभ होती है। अत: 'श्रीराधाजी' ही निम्बार्कीय भक्तों की परमाराध्या इष्टदेवी हैं। इस ग्रन्थ में श्रीराधाजी के इसी दिव्य स्वरूप का प्रतिपादन हुआ है—

राधा राधा गावो रस राधा राधा राधा बोलो नित राधा।
रसिकनि राधा मोहनि राधा सोहनि राधा मेटत बाधा।।
पुलकनि राधा झलकनि राधा विहसनि राधा प्रेम अगाधा।
सरसनि राधा बरसनि राधा हरषनि राधा सबसुख साधा।।
बिलसनि राधा वरदनि राधा विमुदनि राधा कृष्ण आराधा।
शरण सदा 'राधासर्वेश्वर' राधा राधा रसदा राधा।।[2]

'लीलामय' की भाँति 'लीलाधाम' श्रीवृन्दावन भी परम दिव्य है, वहीं नित्यविहार विहारिणीजू का केलिकुञ्ज है। रसिकों की वही 'योगपीठ' है जो गोलोक से महनीय और परम पावन है, जिसके एक रजगकण में अनेक तीर्थों का समागम है। उद्धव जैस परमज्ञानी भक्तों ने भी **'ब्रज की लता पता मोहि कीजै'** कहकर वृन्दावनवास की

---

1. सर्वेश्वर सुधा बिन्दु।
2. सर्वेश्वर सुधा बिन्दु पद सं. 38।

अभिलाषा व्यक्त की है। **'रे मन श्रीवृन्दावन विपिन विहार'** की यही रसिकाचार्य-भावना श्रीधाम के प्रति अत्यन्त निष्ठा के ग्रन्थ में अवलोकनीय है—

रे मन चल वृन्दावन धाम।
जहाँ निरन्तर बहत रसधारा, जन बाधा नहिं व्यापत काम।।
युगलनाम रस पीवो प्रतिपल, पावो अभिलाष परम अभिराम।।[1]

'नमामि नित्यं श्रीनिम्बार्कम्', 'निम्बारक आधार हमारे' आदि पदों में आचार्यश्री निम्बार्कमहामुनीन्द्र का ऐतिहासिक स्तवन एवं श्रद्धामय स्मरण किया गया है। अन्य स्थलों पर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज एवं श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी के परम पावन यशस्वी व्यक्तित्व का स्तवन हुआ है।

ग्रन्थ में विविध पर्वों-उत्सवों व अष्टयाम सेवाओं की झाँकियों का चित्रण भी अनूठा बन पड़ा है। ग्रन्थ में वर्णित 'भगवान् के छप्पन भोग' का वर्णन क्रम अनूठा है, जिसमें विविध भाषा-शब्दों के माध्यम से नाम परिगणनात्मक शैली में अगणित व्यञ्जनों का वर्णन देखते हुए बनता है।

लड्डू-जलेबी-मठरी-इमरती
पेठा सुमीठा रबड़ी रसीली।
गुलाबजामुन-अनुप-तस्मै,
श्रीभोग-सेवा वृष भानुजा के।।
केला-अनार-कलराज रसाल लीची,
अंगूर सेव बदरी ककड़ी पपीता।
चीकू चकोतर सुनाक सुपाक-जम्बू,
पावो सुभोज्य फल हैं वृषभानुजा श्री।।

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य साधनात्मक तो है ही, पर साथ ही उसमें उच्चकोटि की काव्यात्मकता भी अभिव्यक्त हुई है। गीति, राग, लय, पदविन्यास, कोमलकान्त पदावली, मधुर-रस, मनोरम प्रभृति-पर्यावरण, अलंकार-अनुप्रास से युक्त संस्कृतनिष्ठ कोमल हिन्दी भाषा आदि काव्यगत विशेषताओं से परिपूर्ण यह **'सर्वेश्वर सुधा बिन्दु'** 'गागर में सागर' की भाँति महनीय ग्रन्थ है, जो हिन्दी के भक्ति साहित्य में अपना अक्षुण्ण योगदान देता है।

(3) विवेक-वल्ली

आचार्यश्री द्वारा विरचित 'विवेकवल्ली' मानव की अन्तरात्मा में सुषुप्त उज्ज्वलतम अन्तरज्ञान को प्रेरित कर उसमें सत्यासत्य की निर्णायात्मक ईश्वर प्रदत्त

---

1. सर्वेश्वर सुधा बिन्दु (राधा सर्वेश्वर शतक)

प्रतिभा को जगाती है। यह मानव मात्र के उभय लोकात्मक जीवन को 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के उच्चतम आदर्श में प्रतिष्ठित करने वाली सत्शिक्षा है। आचार्यश्री के वचनामृत से सिंचित इस विवेकवल्ली' से निर्झरित रसात्मक जीवनदायिनी सत् शिक्षा से मानव मन में सात्विक एवं सदाचारपूर्ण नित्यात्मक गुणों का संचरण होगा, जिससे उसका पुष्पित-सुरभित एवं फलित जीवन निश्चय ही सन्मान्य भी हो जायेगा—

सत्शिक्षा जीवन सुभग, उज्ज्वल अन्तरज्ञान।
राधासर्वेश्वरशरण, उभय लोक सन्मान।।[1]

अति दानवी वैज्ञानिक बुद्धि की जन्मदात्री आज की असत् शिक्षा ने, अनेक कुण्ठाओं से ग्रस्त अर्थ-पैशाचिक मानव-सृष्टि की सर्जना की है, जिससे मानव का जीवन अत्यन्त कलहपूर्ण, नीरस, भावनाशून्य तथा आदर्शविहीन होकरअति-नारकीय बन गया है। परिणामतः सृष्टि प्रलय के कगार पर खड़ी है, ऐसी विषम-स्थिति में भवसागर के विविध ताप-पाप-पुंजों की उत्ताल तरंगों से प्रताड़ित, क्षणभंगुरीय भौतिक सुखों के चाकचक्य से दिग्भ्रमित, मायाजनित मृगतृष्णा के जल-भंवर में फँसे किंकर्त्तव्यविमूढ़ मानव के जीवन को गन्तव्य की ओर प्रेरित करने वाले इस **'विवेकवल्ली ग्रन्थ'** द्वारा प्रज्जवलित आकाशदीप का प्रकाश आज के मानव को आध्यात्मिकता से पुष्ट, सर्वाङ्गपूर्ण सुखद जीवन से सुपथ को उद्घाटित करने वाली सुदृष्टि प्रदान करता है—

उज्ज्वल दृष्टि सुपथ जल, मार्ग-भ्रष्ट न होय।
राधासर्वेश्वरशरण, पापपुंज सब धोय।।[2]

नवनीत-सदृश सुकोमलता, शुचिता एवं परम वैष्णवी साधुता से आप्लावित, विश्वजनीय-परपीड़ा-परिताप की उदात्त विद्ग्धता से आलोड़ित, आचार्यश्रीके करुणार्णव-हृदय से निसृत, 'विवेकवल्ली' रूपी इन उपदेशामृत-कलश से अखिल-सृष्टि के परित्राणार्थ, सर्वजनहिताय, अनेकानेक शाश्वत एवं युग-सापेक्ष्य विवेक, पाण्डित्यपूर्ण एवं काव्यकलात्मक शैली में उद्घाटित हुये हैं।

आज की अगणित महाविनाश्कारी त्रासदियाँ विश्व के महामनीषी युग-चिन्तकों के समक्ष विचारणीय चुनौतियाँ हैं। स्वचालित दैत्याकार-मशीनों पर आधारित विश्वव्यापी औद्योगीकरण से वैज्ञानकों ने पृथ्वी का क्रूरतापूर्वक असीमित दोहन किया है, जिससे उत्पन्न प्राणघाती प्रदूषित पर्यावरण ने पंचभूतात्मक सृष्टि के अस्तित्व पर प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया है। आचार्यश्री ने प्राचीन संस्कृति-सम्मत सामाजिक समता तथा वर्णाश्रमधर्मिता का समर्थन किया है तथा वे दूसरी ओर

1. विवेक वल्ली से उद्धृत।
2. विवेक वल्ली।

जल-थल-आकाश-वायु में परिव्याप्त प्रदूषणों के प्रति गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुये मानवमात्र में विवेकजन्य संचेतना को सचेष्ट करने का स्तुत्य प्रयास कर रहे हैं—

नाना वाहन-धूम से, वायुप्रदूषित पूर्ण।
राधासर्वेश्वरशरण, परमनिवारण तूर्ण।।
कोलाहल करन अज्ञता, वृथा ही वार्तालाप।
राधासर्वेश्वरशरण, कृष्ण नाम कर जाप।।
नगर-ग्राम का दूषित जल, संगम गंगाकूल।
राधासर्वेश्वरशरण, अवरोधन अनुकूल।।[1]

वन एवं वन्य जीव संरक्षण, पशु-पक्षी एवं पादप संवर्धन, गंगोदम-यमुनोदक शोधन, गोरक्षा, संस्कृति-संरक्षण आदि रचनात्मक कार्य आज की अपरिहार्य अनिवार्यताएँ हैं—

पशु-पक्षी सेवा करो, मत काटो बनबाग।
राधासर्वेश्वरशरण, इनमें हो अनुराग।।
द्रुमवल्ली छाया करैं, दलफल पुष्प प्रदान।
राधासर्वेश्वरशरण, पर उपकार महान्।।[2]

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उत्पन्न खाद्याभाव के समाधानार्थ हरित-क्रान्ति युग सापेक्ष्य है, पर कृत्रिम उपायों से धरती की सहज उर्वराशक्ति का निरन्तर ह्रास हो रहा है, तथा कृत्रिमताओं से उत्पन्न अन्न-जल-सब्जियाँ-फल आदि प्रदूषणयुक्त होने से अति रोगकारी हैं। आचार्यश्री ने इसका सापेक्ष-प्रतिवाद उजागर किया है—

विदूषित जल सम्पोषित, साग करै अति हानि।
राधासर्वेश्वरशरण, परिहर सेवन ज्ञानि।।
प्रचलित कृत्रिम खाद में, नाना रोग विकार।
राधासर्वेश्वरशरण, फसल प्रयोग प्रहार।।
कृत्रिम विधि परिपक्व फल, रोगद परम अखाद्य।
राधासर्वेश्वरशरण, वैज्ञानिक प्रतिपाद्य।।[3]

इसी सन्दर्भ में अन्नादि निरामिषाहारों की क्षतिपूर्ति हेतु अण्ड़ा-मछली-मांस आदि का वृहद् उत्पादन करते हुये सामिषाहारों के प्रति स्वभाव और सुरुचि के वर्द्धनार्थ प्रचार-प्रसार भले ही स्वावलम्बन की ओर अग्रेषित करता हो, पर इनके कुप्रभाव से उत्पन्न अनेकानेक शारीरिक व मानसिक व्याधियाँ तथा उत्तेजनात्मक मानवीय व्यवहार

---

1. विवेक वल्ली।
2. विवेक वल्ली से समुद्धत।
3. विवेक वल्ली से समुद्धत।

से होने वाले पैशाचिक अपराध मानव जीवन को निरन्तर अशान्त ओर नारकीय बना रहे हैं। इसी कारण आचार्यश्री ने इनका प्रबल विरोध किया है—

अण्ड़ा-मछली-मद्यपान, तजो आमिषाहार।
राधासर्वेश्वरशरण, मुख उज्ज्वल संसार।।[1]

मानव जीवन को देवतुल्य दिव्य बनाने वाले परम्परागत आदर्शों, रीति-नीति परक लोकविश्वासों, धार्मिक-सामाजिक-पारिवारिक संस्कारों तथा सांस्कृतिक मान्यताओं को विखण्डित करने वाला सांस्कृतिक प्रदूषण, जो चलचित्र, दूरदर्शन, वीडियो, उपन्यास आदि माध्यमों से सेक्स-रोमांस के अश्लील-प्रसंगों तथा मारधाड़ के हिंसात्मक प्रदर्शनों से नई सन्तति में उच्छृखलता-अनुशासनहीनता, हिंसक-क्रूरता, अनाचार-बलात्कार, मद्यपान-आतंकवाद आदि के महानाशकारी कुसंस्कारों का प्रबल प्रसारण हो रहा है। इस विडम्बना से आज संस्कृति और धर्म के संरक्षक आचार्यों एवं महामनीषियों के हृदय संतप्त हैं। सर्वाच्छादित सामाजिक-सांस्कृतिक-चारित्रिक प्रदूषणों के समाधानार्थ आचार्यश्री परम्परागत सत् शास्त्रों पर आधारित धार्मिक-नैतिक-सार्वभौमिक तत्त्वों से समन्वित सत्शिक्षा-व्यवस्था का विवेक जागृत किया है—

सद्ग्रन्थों का ज्ञान हो, असद्ग्रन्थ परित्याग।
राधासर्वेश्वरशरण, उत्तम जन बड़भाग।।
सुरभारती भाषा का, अनुशीलन परिज्ञान।
राधासर्वेश्वरशरण, निज कर्त्तव्य महान।
जीवन शिक्षा मूल है, शिक्षा सर्वाधार।
राधासर्वेश्वरशरण, शिक्षा करो संचार।।
शिक्षा उत्तम वही है, जिससे हो सद्बोध।
राधासर्वेश्वरशरण, पावन गुण अक्रोध।।[2]

मादक द्रव्यों का व्यापक-व्यसन आधुनिक युग की महाविनाशकारी त्रासदी है। विश्वव्यापी षड्यंत्रों-हत्याओं, राजनैतिक-आर्थिक कुचक्रों तथा आतंकवादी महाताण्डवों की सूत्रधारिणी, सर्वविध शासन-तन्त्रों की विश्व-सामग्री, यातायात, दुघर्टनाओं की मूलाधार मदिरा महारानी का आज झोंपडं-पट्टी से राजमहलों तक एकछत्र राज्य है। हीरोइन, स्मैक, ब्राऊनसुगर जैसे प्राणघाती नशीले पदार्थों की अन्तर्राष्ट्रीय तस्करी प्रत्येक राष्ट्र की चिन्ता का विषय बन गई है। भारतीय समाज में भी अब मद्यपान, कुलीनता का पर्याय, सामाजिक अहम् एवं परम ऐश्वर्ययुक्त श्रेष्ठता

---

1. विवेक वल्ली।
2. विवेक वल्ली से।

का प्रतीक बन गया है। चाय-गुटका-जर्दादि का घर-घर प्रचलन फैशन और आतिथ्य का प्रमुख आधार बन चुका है। नशा-निरोधक सरकारी नीति में घोर विरोधाभास-चिन्तनीय है। एक ओर सरकार मुक्त हस्त से उत्पादकों को लाइसेन्स एवं अर्थ सहायता प्रदान कर रही है, तो दूसरी ओर उत्पादों पर 'स्वास्थ्य के लिए हानिकर है' आदि अक्षरांकित 'लेबल' लगाकर जनहित संरक्षण का दावा कर रही है। कैंसर जैसी असाध्य-प्राणघातक-व्याधि का जनक गुटका-जर्दा आज भगवन्नामों, मुग्धारी देवचित्रों से सुसज्जित आवरणों से अबोध बालकों के भी मुँह लग गया है। आचार्यश्री ने अपने प्रखर विवेक-वाणी से नशा-निषेध का प्रबल उद्घोष किया है—

सम्प्रति प्रचलित चाय से, विविध रोग संचार।
राधासर्वेश्वरशरण, उसका त्यगा प्रचार।।
गुटका एक अखाद्य है, तज दो महानुभाव।
राधासर्वेश्वरशरण, अर्बुद (कैंसर) रोग प्रभाव।।
मादक द्रव्य असेव्य हैं, व्याधिवर्द्धक निंद्य।
राधासर्वेश्वरशरण, जीवन करते भिंद्य।।[1]

विश्व की महाशक्तियाँ आणविक हथियारों के व्यापार-प्रसार हेतु विश्व-राजनीति में, धर्म-भाषा-क्षेत्र सीमादि के कल्पित विवाद खड़े कर येन-केन-प्रकारेण राष्ट्रों में परस्पर शीतयुद्ध का चक्रव्यूह रचती रहती हैं। लोकतन्त्र के यमराज सैनिक तानाशाह, अन्तर्राष्ट्रीय कुख्यात तस्कर एवं गुप्तचर संघटन धार्मिक उन्माद और आर्थिक प्रलोभनों से युवाशक्ति को दिग्भ्रमित कर विकासमान-शान्तिप्रिय राष्ट्रों में विस्फोटक तेड़फोड़-साम्प्रदायिक हिंसा और अलगाववाद-आतंकवाद का महाताण्डव करवा रहे हैं। पूँजीवादी देशों द्वारा संगृहीत रसायनिक आणविक विस्फोटकों तथा कम्प्यूटर संचालित अति संहारक अस्त्र-शस्त्रों का विपुल भण्डार आदि निष्क्रिय और विनिष्ट नहीं किया गया तो बिना विश्वयुद्ध के ही इनके रख-रखाव और परीक्षणों से उत्पन्न प्रदूषित पर्यावरण से पंचमहाभूत सृष्टि कुछ ही वर्षों में समाप्त हो जायेगी।

युग के महान् चिन्तक आचार्यश्री ने विश्वशान्ति-सौहार्द की पुनर्स्थापना के सन्दर्भ में शस्त्रीकरण का घोर-विरोध किया है। उन्होंने विश्वशान्ति के लिए अहिंसा-दया-करुण, विश्वबन्धुत्व, सहिष्णुता सह-अस्तित्व, स्वच्छ-राजनीति एवं राजनेताओं के पवित्र आचरण पर बल देते हुये भारतीय-संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्तों का प्रबल प्रतिपादन किया है। आपने राजनीति में धर्म के सार्वभौमिक आचरण की अपरिहार्य अनिवार्यता निर्देशित की है। आपकी मान्यतानुसार धर्मरहित

---

1. विवेक वल्ली से।

राजनीति वारांगना है। शासन की रीति-नीति और शासक के आचरण में धर्म ही उसका प्राण है, जिसकी अनुपस्थिति में मानव-कल्याण कोरी कल्पना है। आचार्यश्री द्वारा उपदेष्टित युग-सन्दर्भ के ऐसे विवेक अत्यन्त सटीक और सार्थक हैं—

परस्पर सौहार्द हो, नहीं करो संघर्ष।
राधासर्वेश्वरशरण, पुनर्मिलन संतर्ष।।
केवल अपनी मत कहो, सुनो और की बात।
राधासर्वेश्वरशरण, सरल भाव प्रणिपात।।
धर्मरहित जो राजनीति, वारांगना अधिरूप।
राधासर्वेश्वरशरण, धर्मविहित हो रूप।।
स्वार्थ रहित शासन करै, वही प्रशासक शुद्ध
राधासर्वेश्वरशरण, नहिं हो देश विरुद्ध।।
प्रजानुरंजन धर्मरत, सत्य-दया शुभ कर्म।
राधासर्वेश्वरशरण, राजा-शासक धर्म।।[1]

आज के हमारे राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में व्याप्त अराजकता, भ्रष्टाचार, कर्त्तव्य हीनता, अन्याय और पक्षपात आदि के समाधानार्थ आचार्यश्री ने देशवासियों में राष्ट्र-प्रेम की उदात्त-भावना, लोकार्पण एवं सामाजिक सेवार्पण का सद्भाव, स्वार्थरहित-देशहित कर्त्तव्यनिष्ठा तथा सदाचारिता का विवेक सरल और युक्ति-युक्त ढंग से अभिव्यंजित किया है—

सरल सत्य सेवाव्रती, अतिशय शान्त स्वभाव।
राधासर्वेश्वरशरण, परिवारक प्रियभाव।।
शिशु शिक्षा सावधान, सहज नेह के साथ।
राधासर्वेश्वरशरण, बालक परम सनाथ।।
स्वार्थ रहित श्रद्धा निरत, सेवा शासन ज्ञान।
राधासर्वेश्वरशरण, मंत्री कर्म महान्।।
देश निष्ठ निस्वार्थ हो, रक्षण सेवा ध्यान।
राधासर्वेश्वरशरण, आरक्षी पहचान।।[2]

सामाजिक सन्दर्भ में आचार्य प्रवर ने 'हिन्दू संस्कृति' के वर्णश्रमधर्म-सम्मत, वर्ग-संघर्ष रहित कर्त्तव्यपरायणता, समन्वयात्मक सामाजिक समरसता, आध्यात्म-पुष्ट आश्रम-चतुष्टय-जीवनचर्या का प्रतिपादन किया है—

विप्रसुधीवर प्रखर प्रभाव, सकल विश्व में व्याप्त।

---

1. विवेक वल्ली।
2. विवेक वल्ली।

राधासर्वेश्वरशरण, परमात्म विद्या प्राप्त।।
क्षत्रिय वीर परम्परा, सुन्दरतम आदर्श।
राधासर्वेश्वरशरण, करते धर्म विमर्श।।
वैश्व-श्रेष्ठ दानी धनी, करते पर उपकार।
राधासर्वेश्वरशरण, पावत सुयश अपार।।
ब्रह्मचर्य गृहस्थाश्रम, अथ वानप्रस्थ संन्यास।
राधासर्वेश्वरशरण, आश्रम चार प्रकास।।[1]

'तीर्थधाम-विवेक' तथा **'भारत-महिमा विवेक'** का अभीष्ट पौराणिक धार्मिकता तथा राष्ट्रीयता का प्रतिपादन है, जो आज के सन्दर्भ में भारत का प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक वैशिष्ट्यपूर्ण दर्शन कराता है। सम्पूर्ण दोहों में **'गोवध-निषेध'** को आचार्यश्री ने अपरिहार्य राष्ट्र-धर्म माना है। गोरक्षा-प्रसंग न केवल धार्मिक है, वरन् यह भारत की कृषि प्रधान आर्थिक व्यवस्था तथा संस्कृति का मूलाधार है। सन्दर्भित् उद्घोष और विवेक सटीक है—

गोहिंसा अवरोध हो, गोमाता सम्मान।
राधासर्वेश्वरशरण, घर अन्तर सद्भाव।।
गोधन हिंसितचर्म के, पादत्राण निवार।
राधासर्वेश्वरशरण, गोरक्षा व्रत धार।।[2]

उक्त ग्रन्थ का **'आयुर्वेद-विवेक'** अनुभूत, व्यापक, सारभूत, देशज, सहज-सुलभ और निरापद होने से आचार्यश्री का ज्ञानगर्भित कल्याणकारी प्रसाद है—

तुलसी-सोंठ-सिता-मिरच, सरस क्वाथ अनुपान।
राधासर्वेश्वरशरण, शीत शमन ध्रुव मान।।
निम्बतरु दल परिसेवन, सर्वरोग परिहार।
राधासर्वेश्वरशरण, करणीय चमत्कार।।[3]

पाश्चात्य-अन्धानुकरणों, दूरदर्शन-चलचित्र के असंगत-अश्लील प्रसारणों तथा अनैतिकतापूर्ण साहित्य से उत्पन्न सांस्कृतिक प्रदूषण एवं नैतिकता, आध्यात्मिकता रहित भौतिकवादी शिक्षा से भारतीय संस्कृति सम्मत-स्वस्थ-व्यक्ति निर्माण विशृंखलित हो गया है। **'मनुज धर्म विवेक'** में इसीलिए हमारा परम्परागत 'संस्कारित व्यक्ति निर्माण' आचार्यश्री का अभीष्ट है। मनुष्य के लिए प्रवृत्तिपरक व्यवहार का परिष्कार कर उसमें अध्यात्मक-समन्वित देवतुल्य संतोचित उच्चादर्शों

---

1. विवेक वल्ली।
2. विवेक वल्ली।
3. विवेक वल्ली।

की स्थापना हमारी संस्कृति का परमलक्ष्य रहा है। आचार्यश्री ने इसलिए 'मनुजधर्म' प्रासंगिकता में सत्वगुणमयी सदाचारिता, अहिंसा, दया-करुणापरक उदारता, परोपकारी-सेवा समर्पण, दानशीलता-ईश्वर-परायणता, संतोचित निरहंमता तथा संयमित आचार-विचार-वाणी आदि गुणात्मक संवेदनाओं का विवेक जागृत किया है—

सदाचार सच्चरित्रता, दृढ़ता से अवधार।
राधासर्वेश्वरशरण, मनुज रूप संचार।।
दया मनुज का धर्म है, करुणा पर उपकार।
राधासर्वेश्वरशरण, आगत जन सत्कार।।
धन जन यौवन रूप बल, विद्या का अभिमान।
राधासर्वेश्वरशरण, तज दे नर गुणवान।।
मितभाषी मृदुभाषी का, जीवन सुखमय जान।
राधासर्वेश्वरशरण, आदर धीर समान।।
आत्मप्रशंसा घातक है, होय स्वयं की हानि।
राधासर्वेश्वरशरण, रहो परम अमानि।।[1]

'साधक धर्म विवेक' के प्रसंग में आपने गुरुदीक्षा, वैराग्य सत्संग, नामस्मरण, देवदर्शन, तीर्थाटन, सन्तसेवा आदि का निर्देशन किया है। मन-साधना को मूलाधार बताते हुए आपने 'मनसाधक' को उत्तम योगी माना है—

उत्तम योगी वही है, करता मन अवरोध।
राधासर्वेश्वरशरण, प्रभु दृढ़मति अक्रोध।।[2]

संत का आदर्श रूप प्रतिपादन भी अनूठा एवं सारगर्भित है—

दैत्य तितिक्षा-शुद्ध-मन, दया हृदय हरि ध्यान।
राधासर्वेश्वरशरण, सन्तरूप सम्मान।।[3]

धर्म आचरण का विषय है; व्यवहार और चरित्र में धर्म की दृढ़तापूर्वक पालना से ही धर्मरक्षित होता है, अन्यथा अनाचरित धर्म शीघ्र नष्ट हो जाता है। इसी दृष्टि से आचार्यश्री ने 'वैष्णवाचार, **वैष्णव-विवेक'** तथा **'निज सम्प्रदाय-विवेक'** के प्रसंगों में सरल-सारगर्भित-सर्वग्राही-निर्देशनक किया है। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के **'निकुञ्ज-रस-तत्त्व'** का प्रसंग अत्यन्त तात्विक, सरस और उनके अनुरूप उनकी परमाह्लादिनी स्वामिनी श्रीराधा, युगल की निकुञ्जकेलि-लीला, लीलाधाम श्रीवृन्दावन,

---

1. विवेक वल्ली।
2. विवेक वल्ली।
3. विवेक वल्ली।

सहचरी स्वरूप का भावपूर्ण प्रतिपादन दर्शनीय है। श्रीराधिकाजी के प्रति सहचरीपरक परम-अनुरक्ति विलक्षण है—

हे श्रीराधे स्वामिनी, राधामोहन श्याम।
राधासर्वेश्वरशरण, कृपा करो रसधाम।।[1]

सनातन धर्म के परम्परागत शिव, गणेश, सूर्य, श्रीराम, नृसिंह, हनुमान, भगवती श्रीजानकीजी तथा वैष्णवी दैवी, सरस्वती, गंगा, यमुना आदि 'भगवत् तत्त्वों' के प्रति आचार्यश्री की उत्कट भक्ति-भावना व्यक्त हुई है। आचार्यश्री की उदारता एवं व्यापक वैष्णवता का परिचायक यह भक्तिप्रसंग साम्प्रदायक सौहार्द, तात्विक-एकता एवं उपासनात्मक समन्वय को व्यापक रूप से जागृत करने वाला है।

इस प्रकार उभय लोकात्मक ज्ञानगर्भित विविध प्रसंगों से ग्रथित यह चरित्रनिर्माणकारी तथा युगसापेक्ष्य प्रेरणादायी सुपाठ्य महनीय रचना '**विवेकवल्ली**', संत-भक्त-परम्परानुसार रीति-नीति-उक्ति-परक तथा संक्षिप्त-सारभूत-सर्वग्राही उपदेशात्मक वाणी के सर्वथानुकूल दोहे छन्द में निबद्ध हैं। इसकी भाषा संस्कृतनिष्ठ, सरल-सरस-परिमार्जित एवं प्रसादपूर्ण है, जिसमें सटीक, सार्थक, सानुप्रासिक, प्रवाहपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक शब्दावली तथा उपमा-रूपक-उत्प्रेक्षा-दृष्टान्त-उदाहरण-वक्रोक्ति आदि अलंकार सहज-संतोचित तथा युक्ति-युक्त ढंग से प्रयुक्त हुये हैं। उक्ति-वैचित्र्य तथा विशद्-विषय विवेचन से पूर्ण आचार्यश्री का यह युगसापेक्ष्य लोकग्राह्य उपदेशात्मक वचनामृत श्रीपरशुरामवृन्द द्वारा विरचित दोहावली के समान हिन्दी के भक्ति जगत् में अत्यन्त उपयोगी और समादरणीय सिद्ध होगा।

(4) भारत-कल्पतरु

'भारत-कल्पतरु' अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज कृत अनूठी सरचना है। रससिद्ध कवि की सुकोमल-सुललित एवं प्रसादपूर्ण वाणी में अभिव्यक्त, अध्यात्मपरक-विमल-भारतीयता तथा सर्वतोमुखी-प्रबल-राष्ट्रीयता के प्रति समर्पित, उत्कट-स्वर सुमनस-पाठक को स्वदेश-प्रेम, सदाचार, सहिष्णुता, अहिंसा, विश्व-बन्धुत्व, दया-करूणा-परोपकार, शुचिता की सद्भावना में आप्लावित कर देता है।

ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध महिमामयी धर्मप्राण भारत भूमि के पावन एवं अति विलीक्षण-गरिमामय प्राकृतिक-सांस्कृतिक-सामाजिक एवं चारित्रिक परिवेश की गीति पदात्मक अभिव्यक्ति से ओत-प्रोत है। सरस भाव और संस्कृतनिष्ठ-

---

1. विवेक वल्ली।

परिमार्जित-सरल-भाषा का अद्भुत सामंजस्य, संगीत-संगति-चित्रांकनता, वर्ण्य-वस्तु-शिल्पावेष्टित बहुज्ञता तथा विषय-वैविध्यपूर्ण उत्कृष्ट काव्यकला आद्योपान्त दर्शनीय है।

भगवतक्रीड़ा स्थली, ऋषि-मुनि-मनीषी की तपोभूमि, वीर प्रसविनी, सुरम्य-सुललित-विपुलसम्पदायुक्त-शस्यश्यामला भारत माता विश्ववंद्य तीर्थभूमि है, यथा, द्रष्टव्य है—

भारत तीरथ रूप महा है।
देववृन्द मुनि पुनि पुनि भारत वसुन्धरा पर जन्म चहा है।
अतिशय सुन्दर विविध तीर्थ जहँ अतिपावन यह दरशष रहा है।।
शरण सदा राधासर्वेश्वर असीम, अनूप सुखा वहाँ है।[1]

भारतमाता के ऐसे दिव्य-स्वरूप के अनुपम प्रारकृतिक परिवेश की अलौकिक-अद्वितीय छटा के स्रष्टाकवि के कलात्मक-पुञ्जभाव भी वन्दनीय हैं—

नमन करो श्रीभारतमाता।
दिव्य हिमालय अभिनव अनुपम, छवि दरशन कर मन हरषाता।
रत्नाकर श्रीमहोदधि सागर, भारतमाता जय जय गाता।
गंगा-यमुना-कृष्णा-सरयू, सरस्वती जल शुभफल दाता।
वन-उपवन-श्री-सरस माधुरी, ललित लता तरु हृदय सुहाता।
तड़ित प्रभायुत श्यामल जलधर, मंजुल मधुर-सलिल वरषाता।।
नलिन सुशोभित विविध सरोवर, सुभग दरश हित मन अकुलाता।
अतुलित वैभव पावन महिमा, गावत गुणिजन हिय सरसाता।।
कनक रहत मणि माणिक हीरा, आभा अतिशय भव विख्याता।
शरण सदा राधासर्वेश्वर, वन्दन करते शंकर धाता।।[2]

ऐसी भारतमाता की क्रोड़ में जन्म लेना धन्य है, जहाँ का वैदिक ज्ञानार्जन, सांस्कृतिक-आध्यात्मिक-वैभवपूर्ण तीर्थों का दर्श, विलक्षण-प्रकृति-भ्रमण, जहाँ की ललित-कला, स्थापत्य-शिल्प, संगीत-नृत्य-विद्या, भारतीय आयुर्वेद-विज्ञान तथा प्राचीन-संस्कृति-समन्वित जनजीवन व सदाचारपूर्ण आतिथ्य, असंख्य-विदेशियों के लिए आज भी भारत-दर्शन की सतत-लालसा के प्रबल प्रेरक तत्त्व हैं—

विदेशवासी भारत आते।
विविध राष्ट्र से नर-नारी, दरश हेतु वे आतुर पाते।।

---

1. भारत कल्पतरु से समुद्धृत।
2. भारत कल्पतरु।

अतुलित वैभव ललित कला लख, भारत की नित महिमा गाते।
शरण सदा राधासर्वेश्वर, पुनरपि आने की कह जाते।।[1]

'भारत-वांछा कल्पतरु' है, जिसकी छाया शरणागत सुखद-शीतल है। प्राचीन 'विश्वनीड़' भारत द्वारा प्रतिपादित विश्व-बन्धुत्व, सहिष्णुता-समन्वयता- समता, अहिंसा, सर्वात्मप्रेम-दर्शन आदि की भावना का पुनर्जागरण ही आज सृष्टि को आणविक-सर्वनाश से बचा सकता है, इसी सत्य का उद्घाटन कवि का अभीष्ट है। भारत भूमि का दर्शन-परसन ही जिसका एकमात्र उपाय है।

'भारत-कल्पतरु' के कवि महान् युगद्रष्टा हैं, शीर्षस्थ धर्माचार्य, चिन्तक-साधक और उपदेष्टामनीषी के व्रतानुरूप ही आपने यहाँ सर्वनाशी-समसामयिक आणविक-संत्रासदियों से आक्रान्त मानवता के परित्राणार्थ ओजस्वी उद्बोधन किये हैं। प्रलयंकारी-आणविक-शास्त्रीकरण, मृत्युदायी प्रदूषण, महाविध्वंसकारी-असन्तुलित-प्रकृति-दोहन, सर्वात्मघाती सकल-वन्य-सम्पदा- संहारण आदि महासंकटों के प्रति की गई आपकी आकुल-वर्जनाएँ विश्वशान्ति, सुख-समृद्धि की शुभचिन्तनाओं की परिचायक हैं—

अति घातक संहारक अणुबम आदि अस्त्र।
राधासर्वेश्वरशरण, विनिषेध हों सब शस्त्र।।
सुन्दर वन तरु सम्पदा सब विधि रक्षण हेतु।
राधासर्वेश्वरशरण, राजधर्म यह सेतु।।
विहग मृगादि विविध जीव रक्षा हित अनिवार्य।
राधासर्वेश्वरशरण, सर्वकार यह कार्य।।
गंगादिक सरित शुचि रक्षण हित यह कार्य।
राधासर्वेश्वरशरण, अनुशासक अनिवार्य।।

राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में व्याप्त तस्करता, आतंकवाद, अलगाववाद, युद्धलिप्सा, भ्रष्टाचार, अनाचार, मद्यपान-नशाव्यसन आदि अनेकानेक समसामयिक समस्याओं के समाधानार्थ राष्ट्र नायकों शासकों के प्रति उपदेष्टा कवि ने प्रेरणात्मक-दायित्व-दिशादर्शन भी किया है—

तस्करता का त्याग कर, हिंसा नित्य निवार।
राधासर्वेश्वरशरण, भ्रष्टाचार विसार।।
मद्यादि सेवन अवैध, चलचित्रों का त्याग।
राधासर्वेश्वरशरण, हो दुष्कर्म विराग।।

---

1. भारत कल्पतरु।

भारतवर्ष अखण्डता, रक्षाहित अरपन।
राधासर्वेश्वरशरण, उज्ज्वल मुख दरपन।।
संघटन करके रहो, सभी दृष्टि से आज।
राधासर्वेश्वरशरण, सुधरेंगे सब काज।।[1]

मौलिक चिन्तन, प्रेरणादायी-सद्‌गुणावेष्टित-चरित्र उन्नायक-साहित्य के अभाव एवं पाश्चात्य-अन्धानुकरण से ग्रस्त आज हमारा भारतीय जनजीवन अनेक विपदाओं से पीड़ित है। अपनी विश्वविश्रुत संस्कृति-सभ्यता, जीवन पद्धति, रीति-रिवाज, खानपान, रहन-सहन की स्वस्थ परम्पराओं, देशानुकूल प्रकृति-सम्मत जीवनचर्याओं, सादा जीवन-उच्चविचार के सुखदायी, व्यावहारिक सिद्धान्तों, कल्याणकारी-निरापद आयुर्वेद-ज्ञान, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, परोपकार आदि शाश्वत-सत्यों के परित्याग से आज हमारा तन-मन-धन, व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन कलुषित और दु:खी है। अत: सर्वजनहिताय की संतोचित भावना से परिपूर्ण कवि-हृदय ने इन्हीं विस्मृतियों का पुन:स्मरण कराया है। दोहा-छन्द और सरल भाषा में की गई अभिव्यञ्जनायें कितनी सार्थक और उपादेय हैं, अवलोकनीय है—

सकल रोगहर निम्ब है आयुर्वेद प्रमान।
राधासर्वेश्वरशरण, महिमा परम महान्।।
पञ्चगव्य सेवन करो गोमय घृत गोमूत्र।
राधासर्वेश्वरशरण, दधि-पय अनुपम सूत्र।।
श्रीतुलसी भवरोहगर अतुलित महिमा जान।
राधासर्वेश्वरशरण, प्रभु प्रसाद सनमान।।
आमिष भोजन अभक्ष्य है वह अनर्थ का मूल।
राधासर्वेश्वरशरण, तज दो मत कर भूल।।[2]

'भारत-कल्पतरु' में ग्रंथित ऋतु-श्रुतिपेशल, सार्थक-सूक्ति-दोहावली में **'गागर में सागरवत्'** गुरु-ज्ञान-गुणादि मण्डित, सदाचार-विमल-चारित्र्य की सम्मोहिनी-संहिता है। यह ग्रन्थ भक्ति-भाव, राष्ट्रप्रेम और सूक्ति-सन्देशों का त्रिवेणी-संगम है। 'भारत-कल्पतरु' ही सर्वसुखद, सुभग-शीतल, विश्व-मन-विमोहक-छाया, कलिमल हारिणी और सर्वरस-विस्तारिणी है। समसामयिक, सर्वकल्याणकारी, मंगलदायक-जन-मन प्रबोधक, रसपीयूषवार्षिणी, 'भारत-कल्पतरु' शुभ-नामांकित यह सारगर्भित गुरुवाणी श्रीमुख-वचनों की पावन प्रस्तुति है, जिसके कलात्म-कलेवर में निहित भावाभिभूत प्रेरणादायी शुभ-सन्देश स्तुत्य,

---

1. भारत कल्पतरु।
2. भारत कल्पतरु।

समादरणीय, ग्रहणीय और वन्दनीय है। उक्त रचना हिन्दी-साहित्य की राष्ट्रीय-काव्य निधि का समुज्ज्वल रत्न सिद्धि होगा।

(5) श्रीराधासर्वेश्वर-मंजरी

भारतीय शास्त्रों में शब्द को ब्रह्म कहा गया है, क्योंकि—शब्द और अर्थ काव्य का शरीर एवं रस आत्मा माना गया है। "रासो वै स:" इस उपनिषद् वचन के अनुसार रस ही ब्रह्म है और वह रस ब्रह्म शब्द होने से शब्द को भी ब्रह्म कहा गया है।

रसोपासना में नित्य निरन्तर निरत परम पूज्य अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणादेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज द्वारा अपनी सारस्वत समाराधना के अन्तर्गत सुरभारती (संस्कृत) तथा हिन्दी भाषा में जो विविध सरस ग्रन्थों का सर्जन हुआ है, उनमें प्रस्तुत दिव्यरसभावामृतमयी 'श्रीराधासर्वेश्वर मञ्जरी' आपश्री की एक अनुपम कृति है। इसका गहन अध्ययन करने से श्रीमद्भागवत का एक दिव्य प्रसङ्ग स्फुरित हो आता है। भगवान् श्रीशंकर जगदम्बा पार्वती से कहते हैं—

सत्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं यदीर्यते तत्र पुमानपावृत:।
सत्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो ह्यधोक्षजो मे नमसा विधीयते।।[1]

महापुरुषों के तपश्चर्या एवं उपासना से जो अन्त:करण विशुद्ध (निर्मल) हो जाता है, उसको वसुदेव कहते हैं, क्योंकि उस पवित्र वसुदेव संज्ञक अन्त:करण में ही भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट होकर बिना आवरण के दर्शन प्रदान करते हैं। भगवान् वसुदेव के यहाँ एक भक्त के परम-पावन निर्मल हृदय में प्रकट होने से उनको वासुदेव कहते हैं। अस्तु।

'राधासर्वेश्वर मञ्जरी' के दिव्य सरस सजीव प्रसंगों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि परम पूज्य आचार्यश्री 'श्री राधासर्वेश्वर मञ्जरी' ग्रन्थ लेखन के समय सरसभाव साम्राज्य में ऐसे निमग्न हो गये हैं कि अपने परम निर्मल अन्त:करण में श्रीराधामाधव की दिव्यरसमाधुरी का जैसा दर्शन और अनुभव उन्हें हुआ, उसी को उन्होंने यहाँ व्यक्त किया है।

प्रिया-प्रियतम की सरस रूपमाधुरी एवं अनेकों लीला-प्रसंगों के सजीव भावमय सरस शब्दचित्र अंकित किये गये हैं, उनका वास्तविक वर्णन करने के लिए शब्दों का चयन करना अस्मादादि के शक्ति का विषय नहीं है। फिर भी अपने हृदय के भक्तिभाव सुमन समर्पित करने की यह चेष्टा मात्र है।

---

1. श्रीमद्भागवत, भाग-4, स्कन्ध 3/28

श्रीवृन्दावनधाम संवलित श्रीराधामाधव के दिव्य रसमय लीला-प्रसंगों के अतिरिक्त भारत के अनेक महिमामय विषयों का भी अतिसुन्दर चित्रण 'श्रीराधासर्वेश्वर मञ्जरी' में हुआ है, वे मननीय हैं। यथा—श्री वृन्दावन धाम की महिमा का वर्णन पठनीय हैं—

सब तज चल श्रीव्रजवृन्दावन।
परम ललित अति सरस मनोहर, शोभित, मुक्ता-मणिमय कांचन।।
राधा मोहन केलि-कुंज वन, वृन्दा-वृन्द-दल सुरभित रसधन।
ठोर-ठोर प्रिय सुभग सरोवर, बिच-बिच विलसत पंकज कलियत।।
प्रिया लालश्री विहरत कुंजन, चारु-चमर-वर सेवित सखिजन।
शरण सदा राधासर्वेश्वर, यह वृन्दावन युगल रसिक धन।।[1]

लघु-ग्रन्थ में गागर में सागर भरने का सा प्रयास करते हुए धर्म-प्रधान भारत का ही शब्दचित्र प्रस्तुत किया गया है, ऐसा प्रतीत होता है। हरिद्वार तथा भगवती पतित-पावनी भागीरथी (गंगा) का वर्णन—'जय जय गंगे शरण तिहारी' तथा इसी के साथ भारत के चारों कुम्भों का वर्णन दर्शनीय है। यथा—

जय जय गंगे! शरण तिहारी।
दिव्य हिमालय कल-कल ध्वनि युत, प्रवहनि अविरल सुन्दर वारी।।
भगवच्चरण नलिन युगलश्री, पावन-उद्भव-मंगलकारी।।
कोटि-कोटि जन-ताप वारिणी, भारतवसुधा रस-संचारी।।
कृपादृष्टि शुभ मोक्ष दायिनी, सुर-मुनि वन्दित कल्मषहारी।
शरण सदा राधासर्वेश्वर, श्रीगंगातट दरश विहारी।।"

प्रयाग कुम्भ का सरस मनोहर चित्रांकन कमनीय है—

प्रयाग कुम्भ शुभ सरस मनोहर।
सरस्वती-श्रीगंगा-यमुना, त्रिवेणी-संगम परम पुण्य कर।।
महाकुम्भ पर विविध सनत जन, अगणित्त भावुक आते बहुतर।
सकल तीर्थ भी तीर्थराज में, पुलकित आवत भक्ति भाव भर।।
वेणी माधव - भरद्वाज मुनि, अक्षयवट के दर्शन सुन्दर।
शरण सदा राधासर्वेश्वर, संगम-मर्जन सकल तापहर।।[2]

इत्यादि शास्त्रीय संगीत के नियमों को ध्यान में रखते हुए जो पदों का सर्जन हुआ, वह संगठित-शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान्‌ों के लीए 'श्रीराधासर्वेश्वर-मंजरी' एक अभिनव संगीत-निधि के रूप में मानी जा रही है।

---

1. राधा सर्वेश्वर मंजरी।
2. राधा सर्वेश्वर मञ्जरी।

'राधासर्वेश्वर मंजरी' लघु काव्य, प्रसाद गुण मण्डित भाषा-शैली, सरस-भाव-गाम्भीर्य, संस्कृतनिष्ठ पदावली, भक्ति रस निरूपण की अमिट छाप सहृदय पाठक तथा श्रोता पर अवश्य पड़ेगी। भक्ति-सरोवर में सराबोर-अवगाहन कराने में यह कृति बेजोड़ है। यथा-काव्य से उद्धरण दर्शनीय है—

भज श्रीराधा भज श्री सर्वेश्वर।
जय जय जय हो जय रसिकेश्वर।।
तन्मय होकर इनको ध्यावो, निज मानस हरि रस बरसावो।
बोलो भाव भर श्री रासेश्वर।।
निश्चय जीवन परम सफल है, नाम लेत ही मन निर्मल है।
सतत निहारो श्री विपिनेश्वर।।
पुलकित होकर जय जय राधे, मधुर कण्ठ से बोलो राधे।
प्रमुदित आवत श्री कुञ्जेश्वर।।
अपने तन को प्रभु-सेवा में, चंचल-मन को हरि-चिन्तन में।
तुरत लगादो भजो व्रजेश्वर।।
श्री वृन्दावन नव कुंजन-वन, विहरत राधा सेवित सखिजन।
शरण सदा राधासर्वेश्वर।[1]

वर्तमान युगीन दुर्व्यसनों से बचने के लिए श्री 'श्रीजी' महाराज ने सरल, प्रसाद गुण मण्डित भाषा में सहज भावाभिव्यक्ति 'दोहा' छन्द में एवं प्रकारेण प्रस्तुत की है—

सतरंज-चौपड़-तास के, खेल अनेक विकार।
समय व्यर्थ में नष्ट हो, 'शरण' कलह संचार।।
सुलफा-गाँजा-अफीम-विष, मद्य-मांस परित्याग।
अण्ड़ा-मछली हेय सब, 'शरण' कथन पर जाग।।
जर्दा-बीड़ी-सिगरेट-तम्बाकू घातक सिद्ध।
धूम्रपान वर्जित सदा, 'शरण' शास्त्र प्रसिद्ध।।
गुटका आदि अखाद्य हैं, विविध पेय को छोड़।
कैन्सर अदिक राग सब, प्रकट 'शरण' मन मोड़।।

भाषा-शैली, भाव-गम्भीर्य, अलंकार-योजना एवं छन्द-विधान आदि की दृष्टि से **'राधासर्वेश्वर मंजरी'** काव्य शास्त्रीय खराद पर खरी उतरती है। श्री 'श्रीजी' महाराज द्वारा विरचित उक्त हिन्दी लघु काव्य युगानुकूल अनुपम कृति है, जो हिन्दी की भक्ति-साहित्य-निधि में देदीप्यमान बहुमूल्य-रत्नवत् है।

---

1. राधा सर्वेश्वर मंजरी।

(6) भारत-वीर-गौरव

अनन्तश्री-विभूषित निम्बार्क-पीठाधीश्वर वर्तमान आचार्यवर्य **श्री 'श्रीजी' महाराज** द्वारा प्रणीत **'भारत-वीर-गैरव'** हिन्दी-साहित्य की वीर-कव्य-परम्परा में अपना अनूठा स्थान रखता है। इस काव्य में भारत-माता की अनुपम महिमा व भारत के वीरों का बेजोड़ शौर्य वर्णित है। भारतवर्ष की अनुपम महिमा है। इसके माहात्म्य का सुविस्तृत परिवर्णन श्रुति-स्मृति-सूत्र-तन्त्र पूराणादि सम्पूर्ण शास्त्रों में विद्यमान है। विधि-शिव-पुरन्दर-गन्धर्व-किन्नरादि सुर-वृन्दों द्वारा इस भारत की पावन-वसुधा सर्वदा अभिवन्दित रही है। समस्त ऋषि-म्नि-साधु-सन्तजन-धर्माचार्यवर्य इस पवित्र धरित्री का सर्वदा मङ्गल-गान करके परम सौभाग्य का अनुभव करते रहे हैं। गंगा-यमुना-कृष्णा-कावेरी-गण्डकी-सरयू-क्षिप्रा-गोदावरी-चन्द्रभागा-पार्वती-वेत्रवती-चर्मणवती-सरस्वती-नन्दा-प्राची- साभ्रमती आदि विविध पुण्यसलिलाओं के कल-कल निनाद से यह भारत-देश परमगुंजायमान एवं अतिशय सुरम्य है। यहाँ पर चारों धाम, सप्तपुरियाँ, द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग एवं श्रीभगवद्धाम श्रीवृन्दावन, ब्रजमण्डल एवं कोटि-कोटि यावन्मात्र तीर्थस्थल सुशोभित हैं। पुष्कर, प्रयाग, काशी, अयोध्या का दिव्यतम स्वरूप सभी को परमानन्द प्रदान करता है। वस्तुत: ऐसी अतिशय सुपावन सुरम्य भारत-वसुधा का वर्णन, दर्शनीय है—

जय हो भारत वर्ष की, जिसका सुयश अपार।
निगमागमादि शास्त्र में, वर्णन 'शरण' निहार।।
ऋषि-मुनि-योगी-सन्तजन, धर्माचार्य महान्।
भारत-महिमा अनवरत, 'शरण' करत शुभ गान।।
दिव्य हिमालय धवलिमा, शोभित भारत-वर्ष।
जिसकी पावन अवनि पर, 'शरण' तीर्थ उत्कर्ष।।
तीर्थ रूप हैं यह भारत, चारों धाम महान्।
गंगा-यमुना-गण्डकी, 'शरण' प्रचुर सम्मान।।
ऋषि-मुनि-साधु-सन्तजन, वैष्णव करत निवास।
भारत-वसुधा नमन हो, 'शरण' यही अभिलाष।।
भारत परम अजेय है, भारत प्रबल महान्।
भारत आध्यात्म धाम है, भारत 'शरण' सन्मान।।[1]

श्रीमद्भागवत के इस वचन से भारतवर्ष के स्वरूप का दर्शन स्पष्ट है—

कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात् क्षणायुषां भारतभूजयो वरम्।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विन: सन्यस्य संयान्त्यमयं पदं हरे:।।

---

1. भारत-वीर-गौरव।

उत्तमोत्तम स्वर्गलोकादिक तो क्या—जहाँ पर सतत रहने वाले सुरवृन्दों के एक-एक कल्प का आयुर्मान है, किन्तु जिस अनुपम लोक से इस भवार्णव में आते हैं, इस प्रकार ब्रह्मलोक आदिक दिव्य लोकों की विशेषता से अधिक भारतवर्ष की पवित्र वसुधा धाम पर स्वल्पायु में भी रहने या यहाँ जन्म प्राप्त करना परम श्रेष्ठतम है। क्योंकि श्रेष्ठ-पुरुष द्वारा पल मात्र में ही पंचभूतात्मक प्राकृत शरीर से किये जाने वाले सत्कर्म सर्वेश्वर श्रीहरि को समर्पित कर उनके सर्वोच्च दिव्यतम मंगलमय सान्निध्य प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है।

वस्तुतः इस प्रकार भारत का स्वरूप, उसका लोकोत्तर माहात्म्य अनिर्वचनीय है। ऐसे ही इस भारत की वीर-वसुधा पर अगणित वीर-वीरांगनाओं ने प्रकट होकर इसकी विविध संकटकालिक स्थिति में इसकी सर्वात्मना समग्ररूप से सुरक्षार्थ मनसा, वाचा, कर्मणा सेवा-सम्पादित करते हुए आवश्यकता पड़ने पर अपने आपको भी सहर्ष सगौरव समर्पित किया है—

देश-संस्कृति संरक्षण, श्रीशिवाजी वीर।
असंख्य शत्रुदल संहरण, किया 'शरण' कर तीर।।
राणा-साँगा का समर, विश्व प्रसिद्ध विराट्।
अर्पित जीवन देश को, 'शरण' विभव सब ठाठ।।
श्रीयुत भामाशाह ने, भारत किया प्रकाश।
समस्त वैभव तज दिया, 'शरण' तजा तन श्वास।।
महाराणा प्रताप तप, अतुल अमिट अपार।
घोर समर तत्पर रहे, 'शरण' वीर अवतार।।
मरु राठौड़ दुर्गादास, नीति निपुण बलवान्।
हिन्दू-संस्कृति रक्षा हित, 'शरण' शरण भगवान्।।
लक्ष्मीबाई रानी ने, झाँसी का इतिहास।
उज्ज्वल कितना कर दिया, शरण हृदय में वास।।[1]

जब-जब भी भारत पर आसुरी शक्तियों का प्रबल झंझावात उपस्थित हुआ, तब-तब यहाँ के उत्तमोत्तम वीर श्रेष्ठों ने उनका परिहार, उनका विनाश किया है। सतयुग-त्रेता-द्वापर-कलियुग इन प्रत्येक युगों में आसुरी शक्तियों ने भारत पर उत्पात मचाया है, जिसके परिशमनार्थ सर्वनियन्ता सर्वेश्वर स्वयं राम, कृष्ण रूप में किंवा अपने नित्य दिव्य पार्षदों द्वारा इस भूतल पर उन्हें भेजकर संकट का निवारण कराया है। श्रीमद्भगवद्गीता के इन दिव्य वचनों से स्पष्ट है—

---

1. भारत-वीर-गौरव।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्त्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।[1]

यथार्थ में वे परम कृपामय प्रभु अपने इस दृढ़-संकल्प के अनुसार स्वयं अथवा अपने पार्षदों द्वारा अपने स्वकीय वचन द्वारा निर्दिष्ट कार्यों को सम्पादित करते हैं।

भारत के उत्तरांचल में कारगिल के हिमाच्छादित क्षेत्र में विपरीत शत्रु ने भारत की निर्धारित नियन्त्रण रेखा में प्रवेश कर उस पर अपना आधिपत्य करते हुए सामरिक शस्त्रास्त्रों से युद्ध प्रारम्भ कर दिया, जिसके फलस्वरूप हमारी भारतीय सेना के श्रेष्ठतम वीर योद्धाओं के समक्ष भीषण संकट उपस्थित हो गया है। किन्तु यहाँ के वीरवरेण्य योद्धाओं ने अद्भुत शक्ति-सम्पन्न वीरों ने अपने प्रबल अस्त्रों का प्रयोग कर शत्रु को परास्त किया है और अपने क्षेत्र को उनके आधिपत्य से मुक्त रखा है। इस भीषण समर में अनेक भारत के विभिन्न प्रान्तों के, मुख्यतः राजस्थान के वीरों ने युद्धकाल में अपने प्राणों की आहुति दे कर वीरगति प्राप्त की है। ऐसे वीरों के गौरवपूर्ण वृत्त अवगत कर पूरे देश ने महान् गौरव का अनुभव किया। वस्तुतः उन्हीं की पवित्र-स्मृति में यह 'भारत-वीर-गौरव' ग्रन्थ रचित है।

इस काव्य की भाषा सरल, सरस, प्रसाद गुणमण्डित, सहज-अलंकारों से समलंकृत, वीररस संवलित भावों से पूर्णतः परिप्लावित है। यथा-उद्धरण दर्शनीय है-

कारगिल निज क्षेत्र में, सीमा-रेखा देख।
तद्उलंघन है अहितकर, 'शरण' विधान-सुलेख।।
अटल अटल है सीमा पर, विहारी शंख निनाद।
परम संयमी शुभ्रतम, 'शरण' कृष्ण नित याद।।
नियन्त्रण-रेखा में घुसे, पाक सैनिक अज्ञ।
गोलाबारी बम डाले, 'शरण' हैं हत प्रज्ञ।।
भारत अद्भुत वीरों ने, लिया बुद्धि से काम।
प्रत्युत्तर में अस्त्र चले, 'शरण' पाक बेकाम।।
राजस्थान की वीर-भू, वीर-प्रसविनी सिद्ध।
जिसके प्रबल-प्रताप से, 'शरण' स्वदेश प्रसिद्ध।।[2]

भारत माता के सच्चे सपूत धर्मवीर, दयावीर, दानवीर, कर्मवीर एवं रणबाँकुरे बाँकड़ली मूँछो वाले यशस्वी युद्धवीरों द्वारा ही यह पावन भारत-वसुधा उपयोग योग्य

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता।
2. भारत वीर गौरव।

है। जो काव्य के उद्धरण से सुस्पष्ट है—"वीर भोग्या वसुन्धरा", कथित उक्त चरितार्थ।

अद्‌भुत-साहस धीरता, अद्‌भुत पावन कार्य।
अद्‌भुत-शौर्य-सम्पन्नता, 'शरण' यही अनिवार्य।।[1]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है, कि अनन्त श्रीविभूषित निम्बार्कपीठाधीश्वर वर्तमान जगद्‌गुरु **श्री 'श्रीजी' महाराज द्वारा विरचित 'भारत-वीर-गौरव'** काव्य हिन्दी साहित्य की वीर-कव्य-परम्परा में अपना अनूठा स्थान निर्धारित करता है। अर्वाचीन-साहित्य प्रणयन में वीररस संवलित यह रचना अनूठा प्रयास है; जो तत्कालीन कारगिल-युद्ध की विषम-परिस्थितिंयों के लिए समसामयिक उद्‌बोधनात्मक वीर-काव्य है।

(7) छात्र-विवेक-दर्शन

अनन्तश्रीविभूषित जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज, निम्बार्कतीर्थ—सलेमाबाद (राजस्थान) ने **'छात्र-विवेक-दर्शन'** की रचना कर छात्र जगत् का व्यवहार दर्शन भी संस्थापित किया है। अपने समीप अन्तेवासियों की सुदीर्घ परम्परा का अधुनातम आचार-विचार तथा अपने शिक्षालयों की यात्राओं में परिदर्शित् छात्र-जगत् की क्रिया-प्रक्रियाओं, हाव-भावों, रहन-सहन, जीवनचर्या, मानसिकताओं, मन, शरीर, वाणी के गुणावगुणों का इस शैक्षिक रचना में गूढ़ार्थपरक सरल, सशक्त प्रसाद एवं चमत्कृति पूर्ण काव्यमयी रचना में स्पष्ट होता है। भगवती माँ सरस्वती-गंगा की रसधारा मानों कलयुगी प्रभावों से विचलित, विखण्डित और अर्द्धतृप्त विद्यार्थियों का संतर्पण करने हेतु ही प्रकट हुई हो।

चाहे आयुर्वेद सम्मत दिनचर्या हो, चाहे भागवत धर्म परक जीवनशैली हो अथवा सामाजिक परिवेश के अनुकूल विद्या संस्कारों की संस्थापन हो, आचार्यश्री ने अपनी इस अमृतमयी रचना में अपने हृदय के सात्त्विक रस को निचोड़ कर सारस्वत चरणामृत प्रसाद के रूप में, सारस्वत राजस पंचपात्र में विद्यार्थी-जगत् को पान कराया है। छात्रों के लिए माननीय—1. पीठस्थ छात्रों के लिए, 2. सर्वाङ्गीण छात्र जगत् के लिए, 3. अभिभावकों के लिए, 4. शिक्षकों के लिए, 5. समाज के लिए। इस प्रकार पंचपात्र में—पंचामृत रूपी अमृत कलश को लोक कल्याणार्थ के लिए अवतरित किया है।

सरलतम भाषा में ग्रथित, पूर्णतया स्वाभविक, छात्रों की जीवनशैली, संस्कृत-संस्कृति, धर्म और शिक्षा को सदाचार के राजसिंहासन पर स्थापित करने

---

1. भारत वीर गौरव।

वाला यह काव्य अनुपम है, अभिनन्दनीय है। प्राथमिक एवं माध्यमिक तथा वरिष्ठ पाठ्यक्रमों के अनुपोषण हितार्थ इस रचना का सार्वजनिक महत्त्व हैं। शिक्षा प्रद-रचनाओं के लिए, ब्रह्मसूत्र, योगसूत्र की भाँति शिक्षा-सूत्रों के रूप में मार्गदर्शक बनेगी, इसी विश्वास के साथ 233 पद्यों तथा अष्टपदी से अभिमण्डित यह छात्र-मंजूषा छात्रों के चरित्र, ज्ञान, आचरण, विवेक, कर्म तथा सुपरिणाम को सुरक्षित रखने का सहस्त्रार्चिकप्रकाशलोक है, जिन दिशाओं का दिग्दर्शन बड़े-बड़े ग्रन्थों में भी छात्रों को सहज सुलभ नहीं होता, उनका समागम इस दिव्य शारदा-वीणा से छात्र-जीवन निर्झरित अर्थात् संदर्शित हो रहा है।

श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के पूर्ववर्ती आचार्यों ने दार्शनिक एवं शिक्षामय साहित्य संरचना की जो परम्परा स्थापित की थी उसे वर्तमान आचार्य श्री ने अपनी अनुशीलन और अनुभवपूर्ण काव्य गुणगरिमा की वल्लरी से मकरन्दायित किया है। वासन्तिक किया है और इस युक्ति को पूर्णत: चरितार्थ किया है—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा: कवीश्वरा:।
नास्ति तेषां यश:काये पांचभौतिकमिदं भयम्।।

वर्तमान जगद्‌गुरु कवि श्री राधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य : काव्य वैशिष्ट्य

(क) भावपक्षीय विशेषताएँ

1. निम्बार्कीय अभिमतानुकूल काव्य-प्रणयन

निम्बार्कसम्प्रदाय में वृन्दावननिकुञ्जबिहारी प्रियाप्रियतम युगलकिशोर श्रीश्यामाश्याम की नित्य-नूतन लीलाविहार-रसोपासना की प्रधानता है।

आद्याचार्य सुदर्शनचक्रावतार अनन्त श्री विभूषित भगवन्निम्बार्काचार्य ने स्वरचित वेदान्त-दशश्लोकी में युगलोपासना का संकेत किया है, जो दर्शनीय है—

स्वभावातोऽपास्त समस्तदोषम्
अशेष-कल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यम्,
ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्।।
अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा,
विराजमानामनुरूप-सौभगाम्।
सखीसहस्रै: परिसेवितां सदा,
स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।।[1]

---

1. वेदान्तकामधेनु दशश्लोकी से समुद्धत

इस निम्बार्कीय अभिमत को दृष्टिगत रखते हुए ही वर्तमान आचार्यवर्य श्री 'श्रीजी' महाराज ने 'श्रीराधामाधवशतकम्', 'श्रीयुगलस्तवविंशतिः', 'निकुञ्जसौरभम्', 'युगलगीतिशतकम्', 'श्रीराधाशतकम्', 'श्रीसर्वेश्वर सुधा-बिन्दु' (श्रीराधासर्वेश्वर-शतक) ... आदि काव्यों का प्रणयन किया है। कवि ने श्रीराधामाधव की युगल-रसोपासना करते हुए स्व-लेखनी से प्रसूत किया है—

वृन्दावने कुञ्ज-निकुञ्ज-पुञ्जे,
भृंगैर्विहंगैरभिगुंज्यमाने।
नानालतापादपपुष्परम्ये,
राधामुकुन्दं रुचिरं स्मरामि।।1।।

सखी-समूहैः परिसेव्यमानम्,
ध्येयं सदाधामसुनिष्ठभक्तैः।
रसानुरक्तैः रसिकैः रसज्ञै-
स्तद्भावये श्रीयुगलं निकुञ्जे।।2।।[1]

2. ज्ञान, भक्ति एवं उपासना की त्रिवेणी

वर्तमान आचार्यवर्य द्वारा विरचित साहित्य में ज्ञान, भक्ति एवं उपासना की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। महाराजश्री ने स्वरचित रचनाओं में निम्बार्कीय-उपासना-तत्त्वों को दृष्टि में रखते हुए भक्तिपूर्ण स्तोत्रों का प्रणयन किया है।

'श्रीस्तवरत्नाञ्जलिः', 'श्रीजानकीवल्लभस्तवः', 'श्रीयुगलस्तवविंशतिः', 'श्रीराधामाधवशतकम्' ... आदि आपश्री के भक्तिपरक स्तवन हैं, जिनसे पाठक के हृत्सागर में ज्ञान, भक्ति एवं उपासना का सरस निर्झर झरने लगता है।

3. भारतीय-संस्कृति एवं उच्चादर्शों की स्थापना पर बल

रचनाकार आचार्यवर्य जगद्गुरु श्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्यजी महाराज ने स्व-रचित राष्ट्रीयता से ओतप्रोत काव्यों में भारतीय-संस्कृति एवं भारतीय उच्चादर्शों की स्थापना पर बल दिया है। 'भारत कल्पतरु' एवं 'भारत-भारती वैभवम्' आदि काव्य आचार्यश्री द्वारा रचित राष्ट्रीयता से ओतप्रोत काव्य हैं।

'भारत-भारती-वैभवम्' काव्य में गकार-त्रयी (गीतागङ्गागावश्च) को राष्ट्र की आत्मा स्वीकारते हुए आपश्री ने भावात्मक-एकता की प्रेरणा प्रदान की है। संस्कृत एवं संस्कृति के प्रति प्रणेता का विशेषात्मानुराग है। गीर्वाण-वाणी (संस्कृत) का वैभव परिवर्णित करते हुए कवि ने लिखा है—

---

1. श्रीनिकुञ्जसौरभम्, श्लोक सं. 1 एवं 2

मुकुन्दगीतां सुरवृन्दसेविताम्,
बुधैरुपास्यां कविचित्त-संस्थितम्।
पुरातनामप्यथ नित्यनूतनाम्,
भजे सदाऽहं हृदि देवभारतीम्।।
परम्परा संस्कृतिबोधकारिणी-
मनन्तविज्ञानविवेकदायिनीम्।
रसावहां गौरववृद्धिशालिनीम्,
भजे सदाऽहं हृदि देव-भारतीम्।।[1]

4. समन्वयात्मक-दृष्टिकोण

वर्तमान आचार्य श्रीचरणों ने युगलकिशोर श्रीराधामाधव विषयक काव्यों का प्रणयन तो प्रचुर रूपेण किया है, परन्तु आपश्री ने समन्वयात्मक-दृष्टिकोण अपनाते हुए 'श्रीजानकीवल्लभस्तवः', 'श्रीहनुमन्महाष्टकम्', 'श्रीराममहिमाष्टकम्' आदि स्तोत्रों का प्रणयन भी किया है, जो आचार्यश्री के समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचायक है। 'श्रीराममहिमाष्टकम्' में मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का महिमापूर्ण वर्णन हुआ है। श्रीराममहिमा पद्य-प्रसून दर्शनीय है—

परिपूर्णतमः श्रुतिशास्त्रपरो,
निखिलागमचर्चित-चारु यथा।
मम रामवरः सुरवृन्दनुतो,
जयतीह सदा शरणार्तिहरः।।[2]

5. राष्ट्रीयता की प्रबल भावना

आचार्यश्री द्वारा विरचित 'भारत-भारती-वैभवम्', 'भारत कल्पतरु' आदि काव्यों में राष्ट्रीयता की भावना मुखरित हुई है। 'भारत-भारती वैभवम्' में तो प्रणेता का भारत एवं भारती के प्रति अनन्यानुराग सम्यक् प्रकारेण अभिव्यक्त हुआ है। भारत का वैभव गान कवि ने इस प्रकार लेखनी-प्रसूत किया है—

गङ्गा कलिन्दतनया-सरयू-त्रिवेणी-
गोदावरी प्रभृति दिव्य-तरंगिणीभिः।
नानागिरीन्द्र-हिमशैलवरैः सुरम्यम्,
वन्दे सदा रुचिर-भारतवर्ष-देशम्।।

---

1. भारत-भारती वैभवम्; श्लोक सं. 47 एवं 419
2. श्रीस्तवरत्नाञ्जलिः के राममहिमाष्टकम् से समुद्धृत, श्लोक सं. 2

क्रीडन्ति यत्र लघु बालक-बालिकाश्च,
गायन्ति गायकवराश्चतुराः सुगीतम्।

नृत्यन्ति नृत्यकुशलाः खलु नर्तकाश्च,
वन्दे च तं रुचिर-भारतवर्षदेशम्।।[1]

6. बहुमुखी प्रतिभा-सम्प्रन्न प्रणेता

वर्तमान आचार्यश्री श्री 'श्रीजी' महाराज बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। आपश्री एक प्रतिभा सम्पन्न प्रणेता, कुशल उपदेशक, मर्मज्ञ संगीतज्ञ एवं सहज समाजसुधारक हैं। आपश्री संस्कृत एवं हिन्दी के विद्वत्प्रकाण्ड तथा सहृदय कवि हैं। आपश्री ने संस्कृत तथा हिन्दी भाषा में विविध मौलिक रचनाओं का समानाधिकार से सृजन किया है। 'भारत-भारती वैभवम्', 'भारत कल्पतरु', 'सर्वेश्वर सुधा-बिन्दु' राधामाधवरसविलास आदि आपकी प्रतिभा-सम्पन्न कवित्व-शक्ति के द्योतक हैं।

'उपदेश-दर्शन'—आपश्री द्वारा दिये गये विविध विषयक प्रवचनात्मक सुदपदेशों का गद्यात्मक संकलन है, जिसमें शताधिक प्रवचन संकलित हैं, जिनसे भावुक भक्तवृन्द एवं धर्मप्राण जनताजनार्दन लाभान्वित हुआ है। यह कार्य आपके सफलोपदेशकत्व को सिद्ध करता है। आपश्री 'हिन्दी-संस्कृत के विद्वत्प्रकाण्ड' प्रतिभासम्पन्न-प्रणेता, कुशलोपदेशक, सहज समाज-सुधारक, तेजस्वी धर्माचार्य एवं वीतराग सन्त शिरोमणि हैं। इस प्रकार आपश्री एक बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न, प्रत्युत्पन्नमति व्यक्तित्व के धनी हैं।

7. गेयता एवं संगीतात्मकता

वर्तमान निम्बार्कपीठाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज संगीतशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। आपश्री ने विविध राग-रागनियों तथा संगीत-स्वरों को दृष्टिगत रखते हुए विविध-पदों का प्रणयन किया है। आप द्वारा प्रणीत 'श्रीसर्वेश्वर सुधाबिन्दु' (श्रीराधासर्वेश्वरशतक) गेयात्मकता, संगीतात्मकता एवं लयात्मकता का परिचायक गेय काव्य है। यथा–उद्धरण द्रष्टव्य है—

छाई श्याम घटा अति प्यारी।
श्रीवृन्दावन पावन धरणी, वरषत सरसत सुन्दर वारी।।
युगलकिशोर रति रस भीजत, उमगत सुखरस परम अपारी।
कोकिल कूजत मोर मधुर धुनि, सुनि मनमोद महारी।।
दादुर घोर करत अति सुन्दर, वेणु बजावत कुञ्जविहारी।
शरण सदा 'राधा सर्वेश्वर' चपला चमकत पुनि पुनि प्यारी।।[2]

---

1. भारत-भारती-वैभवम्, श्लोक सं. 10 एवं 18
2. श्रीसर्वेश्वर सुधाबिन्दु से समुद्धत

आचार्य श्री द्वारा प्रणीत संस्कृत पदावली में भी संगीतात्मकता, गेयता एवं नाद-सौन्दर्य दृग्गोचर होता है—

वन्दे नितरां भारतवसुधाम्।
दिव्य-हिमालय-गङ्गा-यमुना-सरयू-कृष्णा शोभित सरसाम्।।
मुनिजनदेवैरनिशं पूज्यां, जलधितरंगैरञ्चित-सीमाम्।
भगवल्लीला-धामामयी तां, नानातीर्थैरभिरमणीयाम्।।
अध्यात्मधरित्रीं गौरवपूर्णां, शान्तिवहां श्रीवरदां सुखदाम्।
सस्यश्यामलां कलितामलां, कोटि-कोटि जनसेवितमुदिताम्।।[1]

8. रस-निरुपण

अनन्तश्रीविभूषित निम्बार्कपीठस्थ वर्तमान आचार्यश्री ने स्वरचित साहित्य में भक्ति, शृंगार, करुण, शान्त, वात्सल्य ... आदि सभी रसों का पुट दिया है, किन्तु आपश्री द्वारा विरचित काव्यों में रसराज शृंगार का निरूपण प्रचुररूपेण हुआ है। आप द्वारा रचित श्रीराधामाधव विषयक काव्यों में प्रधानतः संयोग शृंगार वर्णित हुआ है, जिससे रसिक श्रोता एवं सहृदय पाठक विगलित वेद्यान्तर-स्पर्श-शून्य ब्रह्मानन्द सहोदर 'रस' की अनुभूति करके परमानन्द की प्राप्ति करते हैं।

आचार्यश्री द्वारा सृजित साहित्य में वृन्दावन कुञ्ज-निकुञ्जबिहारी नूतन प्रियाप्रियतम युगलकिशोर श्रीश्यामाश्याम की नित्यनवीन शृंगारिक लीलाविहार की रसोपासना छवि दर्शनीय है—

कालिन्द्याः पुलिने निकुञ्जभवने लीलाविभासावनौ,
गच्छन्तं ललितं सुमानसहरं, वेदैर्बुधैर्वन्दितम्।
वृन्दारण्यनिकुञ्जधामरसिकैर्गेयं रसप्याऽऽयितैः,
राधामाधवपादपद्मयुगलं वन्दे सदा श्रद्धया।।[2]

लावण्य-कारुण्य-वरेण्यरूपः,
सौन्दर्यमाधुर्यगुणैक-धाम।
सौगन्धसौशील्यमहापयोधिः,
सार्द्धं हरिः श्रीप्रियया प्रयाति।।[3]

---

1. भारत-भारती वैभवात् समुद्धृतम्
2. युगलगीतिशतकम्, श्लोक सं. 31
3. निकुञ्जसौरभम्, श्लोक सं. 28

इस प्रकार उद्धरणों से सुस्पष्ट होता है कि आचार्यश्री ने भक्तिभावों से परिप्लावित मर्यादित शृंगार को स्वलेखनी से सृजित साहित्य में चर्चित किया है, जो निम्बार्कसम्प्रदाय की युगलरसोपासना के सिद्धान्तानुकूल एवं समीचीन है।

9. स्वान्त: सुखानुभूति

प्रात: वन्दनीय पूज्यपाद आचार्यश्री ने निम्बार्काचार्यपीठ की परमपुनीत प्राचीन-परम्पराओं को गौरवान्वित करते हुए विविध स्तवनों का प्रणयन किया है। ये स्तोत्र-साहित्य-सुमन यद्यपि 'स्वान्त: सुखाय' होते हैं, तथापि आपश्री चरणाश्रित समस्त भावुक-भक्त-परिकर के लिए श्रीपरमानन्दकारी एवं सुमंगलमय होते हैं, क्योंकि 'स्व' शब्द का अर्थ आत्मा एवं आत्मीय है। अत: महापुरुषों को 'स्वान्त: सुखाय' आत्मीयजनों (भावुक-भक्त-परिकर) के लिए भी स्वान्त: सुखाय होना सहज स्वाभाविक है। स्वान्त: सुखानुभूति का संकेत रचयिता आचार्यवर्य ने सम्यक् प्रकारेण दिया है—

अहो वृन्दारण्यं युगलललितं भक्तिरसदम्,
प्रपत्रार्तिं हर्तुं त्वरितमभितोऽनुग्रहपरम्।
सखीनां संगीतैरमितरुचिरं चिद्घनभिदम्,
भजे नित्यं स्वान्ते रसिकजनहार्दाऽमृतरसम्।।[1]

(ख) कलापक्षीय विशेषताएँ

1. भाषा-शैली

भाषा भावाभिव्यक्ति का सहज एवं सर्वश्रेष्ठ साधन है। काव्य के क्षेत्र में भाषा का महत्त्व अप्रतिम है, क्योंकि काव्य का सम्पूर्ण कथ्य भाषा के माध्यम से ही अभिव्यक्त होता है। काव्य-प्राणों का शरीर मनोभाषा है और उसकी गति को छन्द कहा जा सकता है। भाषा भावों की वाहिका एवं प्रकाशिका है। एतदर्थ काव्य की भाषा सहज, सरल, व्याकरणसम्मत, काव्यगुण समलंकृत, काव्यदोषों से विमुक्त एवं कोमलकान्त कमनीय पदावली से युक्त होनी चाहिए। अनन्त-श्रीसमलंकृत निम्बार्कपीठस्थ वर्तमान आचार्यवर्य की भाषा शैली माधुर्यप्रसादादि गुणमण्डित, अनुप्रासादि अलङ्कारों से अलंकृत, वैदर्भी व कोमलावृत्ति से विभूषित तथा कोमलकान्त कमनीय पदावली से विन्यासित है। इनकी भाषा-शैली से सम्बन्धित उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

राधामुकुन्दं सततं भजामि, वृन्दावनस्थं रसकेलिलोलम्।
सुशोभितं मोहनकुञ्जमध्ये, रस-स्वरूपं रसिकाऽऽलिसेव्यम्।।[2]

---

1. युगलगीतिशतकम्, श्लोक सं. प्रथम
2. निकुञ्जसौरभम्, श्लोक सं. 18

यथा वा:

राधामधव झूलत श्रीवन।
कनक रचित नवरतन जटित मणि-काल सुमंडित मंजुल झूलत।।
विविध कुसुम कलि रचित मनोहर चारु चलत गज त्रिविध समीरन।
नवघन चंचल श्यम-घटा प्रिय, रिमझिम वरसत दामिनि दरकन।।
पुलकित रुचित वन सहचरि परिकर युगल झुलावत निजनिज करन।
शरण सदा 'राधा सर्वेश्वर' युगल कृपा बिन दुर्लभ दरसन।।[1]

इस पद में आचार्यवर्य ने कोमलकान्त कमनीय पदों को चुन-चुन कर गुम्फित किया है, जिस प्रकार एक कुशल जौहरी चुनचुन कर कमनीय मोतियों को मौक्तिक माला में पिरोता है। यह उद्धरण उनकी भाषागत विशेषताओं एवं सम्यक् कोमलकान्त कमनीय पदविन्यास के गुण को उद्‌घाटित करने में कोर-कसर नहीं छोड़ता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वर्तमान श्री 'श्रीजी' महाराज की भाषा शैली काव्यशास्त्र की खराद (निकष) पर खरी उतरती हैं।

2. अलङ्कार-योजना

आचार्य दण्डी ने अलङ्कारों की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'काव्यादर्श' में लिखा है – ''काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते।'' अर्थात् काव्य के शोभा संवर्धक गुणों को अलङ्कार कहते हैं। अलङ्कार का सामान्य अर्थ है – आभूषण। जिस प्रकार कटक-कुण्डलादि आभूषण धारण करने पर कामिनी का सौन्दर्य अप्रतिम हो जाता है, उसी प्रकार उपमानुप्रासादि अलङ्कारों से समलंकृत होने पर कविता-कामिनी का सौन्दर्य अद्वितीय कमनीयता से मण्डित हो जाता है। निम्बार्कपीठस्थ वर्तमान आचार्यवर्य ने स्व-रचित साहित्य में अनुप्रास, उपमा, रूपक, श्लेष, वक्रोक्ति, व्यतिरेक, पुनरुक्ति-प्रकाश आदि प्रमुख अलङ्कारों का प्रयोग किया है। अनुप्रासालङ्कार के प्रयोग के तो आचार्यवर्य सिद्धहस्त हैं। इस अलङ्कार नियोजन में आपश्री ने मनमोहक एवं कमनीय-छटा का दिग्दर्शन कराया है, यथा—

तरनि तनूजा तट परिलसितम्।
राधासर्वेश्वर शरणस्य सकलसखीजन-सेवितसरसम्।।

एवं

राधा राधा गावो रस राधा राधा राधा बोलो नित राधा।
रसकनि राधा मोहिनी राधा, सोहनि राधा मेटत बाधा।[2]

---

1. श्री सर्वेश्वरसुधा बिन्दु से समुद्धत
2. श्रीसर्वेश्वर सुधा बिन्दु से समुद्धत

यथा वा—

अनन्त-कोटि-निर्जरैर्विनम्रभाव-वन्दिताम्।
निकुञ्ज-पुञ्ज भूवने कदम्ब-कुञ्जराजिताम्।
प्रफुल्ल-कुन्द-मल्लिकाप्रसूनहारभूषिता
नमस्करोमि राधिकां सखीकदम्ब-सेविताम्।।[1]

इस प्रकार आचार्यश्री ने स्व-रचित साहित्य में श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, वक्रोक्ति, व्यतिरेक ... आदि अलङ्कारों का नियोजन भी सम्यक् प्रकारेण किया है, जो काव्यशास्त्रीय दृष्टि से समीचीन है।

3. छन्द-विधान

अनन्तश्रीसमलंकृत निम्बार्कपीठाधीश्वर वर्तमान आचार्यश्री 'श्रीजी' महाराज ने स्वविरचित संस्कृत पद्यों को आर्या, अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित, उपेन्द्रवज्रा, भुजंगप्रयात, रथोद्धता, वियोगिनी, मालिनी, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता एवं शार्दूलविक्रीडितम् आदि सभी प्रमुख वृत्तों में निबद्ध किया है। 'युगलगीतिशतकम्' संस्कृत गीतिकाव्य में आचार्यश्री ने उक्त सभी छन्दों का प्रयोग एक साथ किया है, जो इनकी छन्दशास्त्र निष्णातता एवं मर्मज्ञता का परिचायक है। हिन्दी में आपश्री ने 'दोहा' छन्द में 'विवेकवल्ली' लघुकाय काव्य का प्रणयन किया है। आपश्री के द्वारा विविध वृत्तों (छन्दों) में निबद्ध पद्य साहित्य छन्दःशास्त्र की खराद पर पूर्णरूपेण खरा उतरता है। शिखरिणी वृत्त में निबद्ध पद्य दर्शनीय हैं—

भजेऽहंकालिन्दीं, विमल सलिलोल्लोलललिताम्।
वरेण्यां श्यामाङ्गी, स्वजनकलुषौघक्षयकरीम्।

इस पद्य पर 'वृत्तरत्नाकर' में वर्णित शिखरिणी का यह लक्षण – 'रसैःरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।' (अर्थात् जिस छन्द में 6 एवं 11 वर्णों पर यति होती है तथा क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु एवं गुरु कुल 17 वर्ण होते हैं।) पूर्णतः घटित हो रहा है, इससे सुस्पष्ट होता है कि आचार्य श्री द्वारा विविध छन्दों के निबद्ध पद्य छन्दशास्त्र की खराद पर खरे उतरते हैं।

4. गुण, रीति एवं वृत्ति निरुपण

अनन्तश्रीविभूषित निम्बार्कपीठाधीश्वर वर्तमान जगद्गुरु श्री 'श्रीजी' महाराज द्वारा प्रणीत साहित्य माधुर्य व प्रसाद गुणों से मण्डित वैदर्भी रीति से विभूषित एवं

---

1. युगलगीति-शतकम् श्लोक सं. 32

कोमला, उपनागरिका वृत्तियों से समलंकृत है। आचार्यश्री का अधोद्धृत पद माधुर्यगुण, वैदर्भी-रीति एवं कोमला-वृत्ति से समलंकृत है—

श्रीवनविहार प्रात: सुखदाई।
राधा मोहनलाल युगलवर, विहरत वृन्दावन मनभाई।।
नाना कुसुम सुगन्धित काला, निज कोमल कर सखी धराई।
कुञ्ज निकुञ्ज गहन अति सुन्दर, भ्रमर रुचिर गुंजार सुनाई।।
रविजा तीर भीर सखि जन की, जा विच विहरत युगल सुहाई।
शरण सदा 'राधासर्वेश्वर' यह वन लीला रसमय छाई।।[1]

आचार्यश्री द्वारा विरचित संस्कृत रचनाएँ भी माधुर्य व प्रसाद गुण से मण्डित हैं, यथा उद्धरण अवलोकनीय है—

निकुञ्ज-कुञ्ज कुञ्जेषु, कोकिला कीर-कीर्तिताम्।
सहचरी-समाराध्यां, श्रीराधां चारु भावये।।
कदम्ब-पुष्पहारेण, कमनीयां शुभाऽऽननाम्।
कौशेय-वसनां दिव्यां, श्रीराधां भावये प्रियाम्।।[2]



1. श्रीसर्वेश्वर सुधा बिन्दु से समुद्धृत
2. श्रीराधाशतकम्, श्लोक सं. 5 व 6

उपसंहार

निम्बार्क सम्प्रदाय की प्राचीनता के विषय में विस्तार से विचार करते हुए उसे सभी वैष्णव सम्प्रदायों से प्राचीन सिद्ध किया गया है। इस कथन की पुष्टि श्रीलोकमान्य तिलक के गीता सहस्य एवं डॉ. राजवली पाण्डेय द्वारा सम्पादित हिन्दी भारत के वृहद् इतिहास से भी होती है।[1] श्रीनिम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैत दर्शन का सूत्रपात किया और श्री राधाकृष्ण की रागानुगा भक्ति का प्रवर्तन किया जो आगे चलकर प्राय: सभी वैष्णव सम्प्रदायों द्वारा गृहीत हुई।

निम्बार्क दर्शन के प्रवर्तक सुदर्शन चक्रावतार भगवन्निम्बार्काचार्य हैं। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो द्वैताद्वैत दर्शन प्रणाली अन्य सभी दर्शनों से अधिक व्यापक होने के कारण ब्रह्म, जीव, प्रकृति, माया, सृष्टि एवं प्रलय, चेतन तथा अचेतन तत्वों की संतोषप्रद व्याख्या प्रस्तुत करने में अधिक उपयुक्त हैं। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि 'एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतो मुखम्' एकत्वेन अभेद रूप से पृथकत्वेन भेद रूप से अनेक महर्षि विश्व रूप से मेरी उपासना करते हैं। 'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि:' जीव मेरे से अभिन्न है। शब्द से भिन्न भी है। यही भेदाभेद है। श्रीशंकराचार्य जी ने अभेद पक्ष का प्रमुख माना है और माध्वाचार्य ने भेद पक्ष को श्रीनिम्बार्काचार्य का भेदाभेद दोनों की विचारधारा की अपूर्णता को पूरा करने वाला है। इसी कारण उसे ब्रह्मज्ञान रूपी गंगा कहा गया है।[2] जिससे संसार सागर को तर कर मोक्ष का लाभ होता है।

श्रीनिम्बार्काचार्य ने 'अंगेतुवामेवृषभानुजा मुदां' 'कहकर श्रीराधाकृष्ण के उपास्य रूप की स्थिति बहुत स्पष्ट कर दी है। श्रीराधा जी को अनुरूप सौभगा एवं कृष्ण की स्वकीया मानकर उनका स्वरूप कृष्ण के समान ही माना है। जहाँ युगल उपासना पर प्रश्न उपस्थित होता है, उन्होंने भगवान् की माधुर्य एवं प्रेमशक्ति-रूपा की उपासना पर बल दिया था क्योंकि वे भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने की शक्ति राधा में ही मानते थे। आगे चलकर श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीकृष्ण के बाल भाव की उपासना को प्रधान करके अपने सम्प्रदाय को कृष्ण परक कर दिया एवं राधावल्लभ सम्प्रदाय ने राधा की उत्कृष्टता मान कर उसे राधा परक बनाया। गंभीर विचार दृष्टि से उपासना

---

1. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, डॉ. राजवली पाण्डेय, पृष्ठ 543।
2. सुदर्शन प्रकाश 2, किरण 1, पृ. 43।

तत्व की श्रेष्ठता इनके अनुरूप सौभगा भाव में ही प्रतिपादित होती है। श्रीहरिव्यासदेव्राचार्य जी ने इस भाव को बड़ी उत्कृष्टता एवं विस्तार से विकसित किया है—

प्यारी जू प्यारे की जीवन, प्यारो प्यारी प्रान अधार।
प्यारी प्यारे की उरमाला, प्यारो प्यारी के उर हार।
प्यारी प्यारे रंग महल में, रंग भरे दोउ करत बिहार।।[1]

इस सम्प्रदाय की उपासना पद्धति पर विचार करते हुए यह स्पष्ट किया गया है, कि भगवान् को भेजने के लिये कान्ता भाव की उपासना ही सर्वश्रेष्ठ है। सहचरी भाव की उपासना में स्वसुखित्व एवं तत्सुख-सुखित्व का तादात्म्य हो जाता है इस कारण सहचरियों की सेव्य एवं प्रेय के आनन्द में ही 'स्व-सुखित्व' समाविष्ट देख पड़ता है। प्रेम के गाम्भीर्य की यह चरम कसौटी है, कि प्रेमी अपने प्रिय के लिये अपना सर्वस्व अर्पण करदे। उपास्य के सुख को ही अपना सुख माने। गोपी भाव में यह गाम्भीर्य कहा। यही कारण है कि अष्ट-छापके कवियों की उपासना सखा भाव की होते हुए भी वहाँ रसिकता पूर्ण सहचरी भावको भी अपनाया था। डॉ. दीनदयाल गुप्त ने स्वामी हरिदास ज्री का इन्न कवियों पर स्पष्ट प्रभाव स्वीकार किया है। वे कहते हैं 'राधावल्लभीय सम्प्रदाय' में राधाकृष्ण के प्रेम शृंङ्गार की संयोगलीला के ध्यान पर विशेष बल दिया गया है। इस प्रकार की भक्ति को उस सम्प्रदाय में परम माधुरी भाव कहा गया है। अष्टछापी भक्तों के समकालीन श्रीस्वामी हरिदास जी ने राधा कृष्ण की युगल लीलाओं की उपासना सखी भाव से करने का उपदेश दिया था। इन दोनों सम्प्रदायों की छाया वल्लभ सम्प्रदाय पर भी पड़ी जिसके फलस्वरूप अष्टछापी काव्य में हमें सखी भाव से की गई युगल भक्ति के पद भी एक बड़ी संख्या में मिलते हैं। इस प्रकार के पद समान भाव से आठों कवियों के उपलब्ध हैं।[2] श्री श्रीभट्ट जी के काव्य में सम्भवत: व्रजलीला भाव का समावेश होने से उनकी निकुञ्ज लीला परक उपासना पर भक्तों का ध्यान नहीं गया और हरिव्यासदेव जी का संत रूप ही भक्तों को अधिक भाया, उनके महावाणी व अति गोप्य से भी गोप्य रखने के प्रतिबन्ध के कारण निम्बार्क सम्प्रदायान्तर्गत निकुञ्ज भाव की ख्याति अन्य भक्ति सम्प्रदायों में न हो सकी अन्यथा श्रीभट्ट जी एवं हरिव्यासदेव जी रसिक भावना के क्षेत्र में सभी रसिकों के पूर्ववर्ती थे। हरिव्यासदेव जी की इस अनुरक्ति की विवृत्ति को ब्रजभाषा का शृंङ्गार कहा जाता है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने हित चौरासी से युगल शतक और महावाणी के निकुंज भाव पर कुछ पद्यांशों की तुलना करते हुए उन्हें परवर्ती कालीन रचना सिद्ध करने का

1. महावाणी, पृ. 26, पद संख्या 8।
2. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डॉ. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 643, 44।

प्रयास किया है।[1] जो सर्वतोभावेन अग्राह्य है। इस प्रकार के पद्यांशों की समता तो समान भावावली की रचनाओं में प्राकृतिक रूप से ही मिलती है फिर कौन भाव किसने पूर्व में ग्रहण किया और किसने पीछे से यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। यह निश्चित हैं कि श्री भट्ट जी की काव्य रचना के प्रसार के बहुत पीछे हितहरिवंशजी का आविर्भाव हुआ था। रसोपासना में हितहरिवंश जी को अगुणी सिद्ध करने के प्रयास में स्नातक जी ने स्वामी हरिदास जी को भी उनसे प्रभावित एवं उसका अनुकरण कर्ता कहा है।[2] यद्यपि स्वामी जी हरिवंश जी में आयु से 22 वर्ष बड़े थे और जिस समय तक हित हरिवंश जी ने वृन्दावन में सं. 1590 ई. 31 वर्ष की आयु में, पदार्पण नहीं किया था उस समय तक उनका रसिकाचार्यों में स्थान बन चुका था उनकी आयु उस समय 53 वर्ष की थी इस बात की साक्षी स्वयं श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय के ही प्रसिद्ध कवि श्रीध्रुवदास 'श्रीस्वामी हरिदास जू गायो नित्य विहार' कहते हुए दे रहे हैं।[3] अत: निकुञ्जोपासना प्रवर्तन का श्रेय निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यों को ही जाता है।

श्रीनिम्बार्काचार्य कृत 'दश श्लोकी' के आधार पर सर्व प्रथम श्रीराधाकृष्ण की रागानुगा भक्ति का उन्नयन हुआ इस उपासना प्रणाली के सिद्ध किया जा चुका है। श्री श्रीभट्ट जी ने भी इस भावना को दृढ़ किया एवं श्रीहरिव्यासदेव जी और स्वामी हरिदास जी दोनों अनन्य रसिकाचार्य हुए। कालान्तर में हरिव्यासी एवं हरिदासी इस प्रकार की दो विभिन्न शाखाएँ हो गईं जो लगभग 400 वर्ष से निरन्तर माधुर्य भक्ति की उपासना प्रणाली एवं मधुर भक्ति रस पूर्ण काव्य का स्रोत प्रवाहित करती आ रही है। श्रीरूपरसिकदेव परशुरामदेव, वृन्दावनदेव, आनन्दधन, नागरीदास, रसिक गोविन्द तथा श्रीविहारिनिदेव, रसिकदेव, ललितकिशोरदेव एवं भगवत रसिक, वर्तमान आचार्यवर्य श्री राधा सर्वेश्वर शरण देवाचार्य प्रभृति कवियों ने ब्रजभाषा एवं हिन्दी के माधुर्य भाव के भंडार को अपनी अमूल्य निधियों से भरा है। प्रेम लक्षणा भक्ति का प्रभाव अन्य रसिक सम्प्रदायों पर भी पड़ा। जिनमें चैतन्य, राधावल्लभ एवं रामभक्ति की रसिक शाखा प्रमुख हैं। इनमें से रामभक्ति का क्षेत्र पूर्व भारत में था। वहाँ के रसिक वृन्दावन के निम्बार्की सन्तों से मधुर भाव की शिक्षा दीक्षा लेने के लिये प्राय: आया करते थे। रसिक प्रकाश भक्तमाल[4] में ऐसे कई राम भक्तों के नाम दिये गये हैं जिन्होंने इस परम्परा के भक्ति सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये वृन्दावन की

---

1. राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य, पृष्ठ 563।
2. राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य, पृष्ठ 585।
3. ध्रुवदास भक्त नामावली, पृष्ठ 18।
4. रसिक प्रकाश भक्तमाल, श्रीजीयाराम युगल प्रिया, पृष्ठ 116।

यात्रा की थी। मोहन रसिक ऐसे ही भक्त थे। उन्होंने भगवत रसिक जी से रास ध्यान सीखा था।[1] इसी प्रकार मौनी जानकीदास जी भी निम्बार्क कवियों के साथ रह कर शृंङ्गारी साधना करते थे।

निम्बार्क सम्प्रदाय में विधि निषेध मर्यादा का उन साधनों के लिये विधान है जिनकी बुद्धि अपरिपक्व है। जिन साधकों की साधना रसिक कोटि पर जा पहुँचती है उनके लिये इसका कोई प्रतिबन्ध नहीं है। श्रीहरिव्यास देवाचार्य द्वारा रचित महावाणी में विधि-निषेध का वर्जन किया है क्योंकि वह श्रीराधा कृष्ण की सार्वकालिक अनन्य रसिकोपासना में बाधक है। यहाँ तो कर्म का त्याग भी भक्ति का आवश्यक अंग माना गया है। 'विधि निषेध के जे जे धर्म, तिनको त्यागि रहे निष्कर्म।[2]' उपासना क्षेत्र में इसी प्रकार स्वामी हरिदास जी के विषय में विधि-निषेध को उपासना से दूर करने की बात लोक प्रसिद्ध है।[3] इस प्रकार रुढ़ियों के त्याग का प्रचलन निम्बार्क सम्प्रदाय में बहुत पहले से रहा है। श्री केशव काश्मीरी जी का समय 14वीं शती का उत्तरार्द्ध सिद्ध किया गया है। उनका काजी के यन्त्र को हटकर धर्म परिवर्तित हिन्दुओं को पुन: उनकी चोटी लगा हिन्दू बनाने वाली भक्तमाल कार की स्थापना[4] का यदि वैज्ञानिक रीति से विश्लेषण करें तो आज के युग में यही अर्थ निकलेगा कि यवनों द्वारा हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन के अत्याचारों के विरुद्ध उन्होंने साहस एवं निर्भीकता से शुद्धि आंदोलन चलाया था। इसी प्रकार विक्रम की 16वीं शताब्दी में होने वाले हरिव्यासदेव जी ने बलि से प्रसन्न होने वाली देवी को दीक्षित करने का यही अर्थ होगा कि उन परम भावुक अनन्य हृदय दयामूर्ति महात्मा को निरीह पशुओं को अकारण मारे जाने के कारण हार्दिक क्लेश पहुँचा था। मांस, मदिरा का प्रयोग अवैष्णवीय एवं अधार्मिक वृत्ति है, जिसकी समाप्ति उनके प्रवर्तन कर्त्ताओं को वंशीभूत करने से ही सम्भव हो सकती है। देवी की दीक्षा का तात्पर्य मांसाहारी जन समुदाय की कुप्रवृत्तियों के निरोध की व्यवस्था करना था। श्रीहरिव्यासदेव जी ने वहीं किया।[5] पुरानी बात जाने दीजिये रुढ़ित्याग की प्रवृत्ति इस सम्प्रदाय में परम्परागत है। अभी कुछ वर्ष पहले ही की

---

1. राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय, भगवती शरण सिंह, पृष्ठ 137।
2. महावाणी, हरिव्यासदेव जी कृत, पृष्ठ 187।
3. सेवाहू तें दूर किय विधि निषेध जंजार, ध्रुवदास भक्तनामावली, पृष्ठ 88।
4. कासमीर की छाप पाप तापन जुग मंडन।
   दृढ़ हरि भक्ति कुठार प्रान धर्म विटप विहंडन।।
   मथुरा मध्य मलेच्छ वाद करि वेखट जीते।
   काजी अजित अनेक देखि परचे भे भीते।।
   —भक्तमाल, नाभादास कृत, छ. सं. 90।
5. श्रीहरिव्यास तेज हरि भजन ते, देवी को दीक्षा दई।।

घटना है कि वृन्दावन के प्रसिद्ध निम्बार्की पण्डित श्रीकिशोरदास जी ने एक श्वपच की अनुकूल धर्म परायणता का अनुभव कर उसे यज्ञोपदीत एवं युगल कंठी देकर दीक्षा प्रदान की थी यह बात बहुत पुरानी नहीं है। इस प्रकार लोक परायणता एवं लोक मंगल भावना की परम्परा, धार्मिक कार्यों में साहस और निर्भीकता पूर्ण व्यवहार, रूढ़िवाद का खण्डन यहाँ सदैव से चला आ रहा है। वर्तमान आचार्यवर्य श्री राधा सर्वेश्वर शरण देवाचार्य जी समन्वयवादी आचार्य एवं सहृदय भक्त कवि हैं।

ब्रजयात्रा और रासलीलानुकरण का प्रादुर्भाव निम्बार्क सम्प्रदाय की देन है। श्रीमद्भागवत, पद्मपुराण आदि ग्रन्थों में ब्रज के वन उपवनों का वर्णन है जहाँ के कण-कण में श्री राधा कृष्ण की मधुर लीलाओं की संस्मृति ब्रजभाषा काव्य के माध्यम से अभी तक सजल है। निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यों में श्रीस्वभूरामदेव जी की परम्परा में श्रीनागा जी महाराज अत्यन्त प्रसिद्ध संत हुए जिनका ब्रज परिक्रमा करना नित्य नियम था। भक्तमालकार श्रीनाभादास जी ने उनका इसी रूप में वर्णन किया है और प्रियादास जी ने अपनी टीका में अत्यन्त विस्तार से यह चरित्र अंकित किया है। यही चतुरानागा श्रीवल्लभाचार्य जी के समकालीन थे। वल्लभ सम्प्रदाय की वार्ताओं में उनके सम्बन्ध में कई घटनाओं का उल्लेख है। वल्लभ सम्प्रदाय में इसी कारण नागाजी को पूज्य भाव से देखा जाता है और ब्रजयात्रा की नियमित प्रथा है। निम्बार्क सम्प्रदाय के काठिया बाबा 'ब्रजविदेही' महान्त कहलाते हैं। वे भी प्रतिवर्ष सैकड़ों भक्त प्रेमियों सहित ब्रजयात्रा करते हैं।[1]

रासलीलानुकरण का प्रवर्तन उद्धव घमण्डदेव जी के द्वारा हुआ था। ये श्रीहरिव्यास देव जी के शिष्य थे। उनकी सर्व प्रमुख एवं प्रमुख रास स्थली करहला ग्राम में है। सभी प्रमुख निम्बार्क स्थलों पर बने हुए रास मण्डल इस परम्परा की प्राचीनता के प्रतीक हैं। भक्तमालकार ने रास लीलानुकरण का श्रेय श्रीनारायण भट्ट को दिया है परन्तु इनका समय उद्धव घमण्डदेव से पीछे है। इस प्रकार निम्बार्क सम्प्रदाय व्रज के सभी सम्प्रदायों में सबसे प्राचीन एवं प्रभावशाली रहा है। इसे सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं।[2] निम्बार्क सम्प्रदाय के आज भी ब्रज में सबसे अधिक केन्द्र हैं। गांव-गांव और नगर-नगर सभी की उत्सव प्रणालियों, तीर्थयात्रा, परिक्रमा, कुम्भ व्रत प्रणाली में इसका प्रभाव सबसे अधिक है। एकादशी व्रत की 'कपालवेध' विषयक निर्णय प्रणाली इस सम्प्रदाय की एक अन्य अपूर्व देन है।

श्रीभट्ट जी ब्रजवाणी के सर्व प्रथम अमर गायक हैं। उनका युगल शतक इसी कारण 'आदि-वाणी' नाम से सम्बोधित किया जाता है। इनका समय 15वीं शताब्दी के

---

1. इण्डियन माधूज, जी.एस. घुरे, पृष्ठ 176।
2. भागवत सम्प्रदाय, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ 31।

उत्तरार्द्ध से 16वीं शती का पूर्वार्द्ध तक निश्चित है। डॉ. सत्येन्द्र ने 16वीं शती में उनकी विद्यमानता स्वीकार की है।[1] अतः युगल-शतक की परम पवित्र परिष्कृत एवं ललित भाषा ब्रजकाव्य का प्रथम रूप है जिसे श्रीहरिव्यासदेव, स्वामी हरिदास,. रूपरसिक देव, वृदावनदेव, घनानन्द, ललित किशोरी, भगवत् रसिक एवं नागरीदास प्रभृति कवियों ने अपनी पीयूष वर्षिणी सरसता एवं मृदुलता से सर्वथा हृदयग्राही रूप दिया। श्रीभट्ट जी से वाणी ग्रन्थ रचना का सूत्रपात हुआ। जिसे हरिव्यासदेव जी ने अत्यन्त उत्कर्ष प्रदान किया। केलिमाल, लीलाविशंति, परशुराम सागर, गीतामृत गंगा, रसिकदेव जी, ललित किशोरीजी एवं भागवत रसिक जी की वाणी में मधुर भावों की अभिव्यक्ति अपनी तरह की अनूठी है। इन कवियों ने ब्रजभाषा शब्दकोष को व्यापक बनाया, भाषा में कोमलता, सरसता, मार्दव, माधुर्य गुणों का अभूतपूर्व समावेश करते हुए उसकी वृत्ति को सर्वथा स्वाभाविक बनाये रखा। इन कवियों के कमनीय काव्यों के द्वारा ब्रज माधुरी का सर्वस्व प्रस्तुत किया गया है तथा भगवान कृष्ण चन्द्र के विमल यश के गायन द्वारा उसे सर्वथा कृतकृत्य बनाया है।[2]

निम्बार्क कवियों ने ब्रजभाषा के अनुकूल पड़ने वाले संगीत संकलित अनेक प्रकार के पदों का प्रयोग किया है जिनमें ताल, लय, ध्वनि विषयक संकेत भी उन्होंने किये हैं। छप्पय, दोहा, विविध प्रकार के कवित्त, सवैये, चर्चरी, झूलना, कुण्डलियाँ चौपाई, पद्धरि, अरिल्ल, विष्णुपद, मांझ, निसानी, प्लवंग, बटवे, महावरवे आदि अनेक मात्रिक, अर्द्ध मात्रिक एवं वाणिक छन्दों को उन्होंने अपनाया है। भाषा की मधुरता के कारण भावों की अभिव्यक्ति सुन्दर बन पड़ी है और दोनों के कारण छंद योजना बड़ी ही सहेतुक प्रतीत होती है। इन कवियों ने ब्रजभाषा और ब्रज संस्कृति को भलीभाँति पहचान करके उनके साहित्य को अत्यन्त सुन्दर बनाने का प्रयास किया है।

काव्य वैभव और भाषा की समृद्धि की चर्चा के अन्तर्गत निम्बार्क कवियों द्वारा प्रयुक्त राजस्थानी, मराठी, अवधी, पंजाबी, गुजराती, बुन्देली, रेखता, उद्व, खड़ी बोली आदि उपभाषाओं में रचित निम्बार्क कवियों के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं और उन सब परिस्थितियों का भी निर्देश किया गया है जिनके कारण इन कवियों ने इनका अपने काव्य में प्रयोग किया गया था। उपभाषाओं के प्रयोग से हिन्दी भाषा का शब्दकोष व्यापक बना, उसकी अभिव्यंजना-शक्ति की अभिवृद्धि हुई, नूतनता आई एवं कोतुहल समन्वित वर्णन वैचित्र्य का समावेश हुआ। इन सभी उपादानों के कारण भाषा समृद्धि एवं काव्य वैभव का विस्तार भी हुआ। परशुरामदेव, वृन्दावनदेव

---

1. कन्हैयालाल पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, निम्बार्क सम्प्रदाय के कवि डॉ. सत्येन्द्र।
2. हिन्दी का बृहद इतिहास, डॉ. राजवली पाण्डेय, पृष्ठ 545।

आनन्दधन, रसिक गोविन्द, वर्तमान आचार्य श्री राधा सर्वेश्वर शरण देवाचार्य कवियों का नाम इस दिशा में अग्रणी है।

श्रीराधाकृष्ण का निकुंज लीला परक नित्य विहार वर्णन निम्बार्क कवियों का प्रमुख वर्ण्य विषय हैं। अतः संयोग श्रृङ्गार में सहायक ऋतु वर्णन, बारहमासी उत्सव वर्णन, विहार वर्णन, वर्षा, झूला आदि एवं उपासना दृष्टिपरक, यमुना वर्णन, रास वर्णन, दर्शन सिद्धान्त वर्णन आदि अभिनव विषयों का इनके काव्य में समावेश हुआ है। राधाकृष्ण के युगल सौन्दर्य के न जाने कितने सुन्दर वर्णन इन कवियों ने प्रस्तुत किया हैं। श्री राधा की सुकुमारता, उनके माधुर्य, शोभा कान्ति के कितने अभूतपूर्व चित्र इन्होंने अंकित किये हैं। श्यामसुन्दर की माधुरी चितवन, उनके अंग प्रत्यंगों की अनन्त शोभा, उत्फुल्लता सरलता परन्तु मदभरी सुन्दरता की कितनी झांकियाँ इन्होंने प्रस्तुत की हैं। माधुर्य भाव विनिवेशित श्रीश्यामा श्याम की वेशभूषा, हावभाव क्रीड़ा विनोद आदि असंख्य नवीन विषय-निम्बार्कीय उपासना पद्धति से हिन्दी काव्य जगत् को उपलब्ध हुए हैं। और उसके कवियों द्वारा उनकी ममतामयी अभिव्यन्जना ने निम्बार्क कवियों को अद्‌भुत आकर्षण एवं अनित्यता प्रदान की है। अभी लगभग 25 वर्ष पूर्व बाबा माधवदास जी लिखित 'निकंज प्रेम माधुरी' भाषा विषय और काव्य सौन्दर्य सभी दृष्टियों से अत्यन्त उत्कृष्ट रचना है।

महाकवि बिहारी निम्बार्क सम्प्रदाय के कवि माने जाते हैं। उन्होंने राधाकृष्णस के माधुर्य भाव को लेकर अपनी सतसई की रचना की और इस प्रकार मधुर भाव परिवेष्टित सतसई रचना की परम्परा इस सम्प्रदाय से प्रारम्भ हुई। बिहारी से पूर्व प्राकृत अपभ्रंश भाषाओं में श्रृङ्गार रस पूर्ण सतसई रचना करने की परम्परा चली आती है परन्तु बिहारी सतसई (हिन्दी) में नीति, भक्ति एवं शृंगार की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। बिहारी ने मधुर भाव संवलित सतसई शैली की परम्परा प्रारम्भ की जो अभी तक निरन्तर चली आ रही है। बिहारी के काव्य की कमनीयता की देश विदेशों में आज भी प्रसिद्धि है।

भक्ति रस की शान्त, दास्य, साख्य वात्सल्य और माधुर्य पंचरसों में विवृत्ति हुई है। साधक अपनी इच्छानुसार इनमें से कोई भाव ग्रहण कर सकते हैं। दास्य, सख्य, माधुर्य किसी भाव की भक्ति अपना सकते हैं। श्रीहरिव्यासदेव जी ने सिद्धान्त रत्नांज्जलि में पांचों रसों का संक्षिप्त परन्तु स्पष्ट एवं सर्वथा सुन्दर विवेचन किया है। उन्होंने अन्य रसों से माधुर्य भाव की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। अतः इस सम्प्रदाय के वाणी ग्रन्थों में इस भाव का प्राधान्य है। स्वामी हरिदास जी की उपासना प्रणाली को स्पष्ट करते समय कान्ताभाव की उपासना की श्रेष्ठता पर प्रकाश डाला गया है। मरुमन्दाकिनी भक्तिमती मीराँ भी निम्बार्क-सम्प्रदाय में दीक्षित मानी जाती है, जिन्होंने कान्ताभाव की उपासना-भक्ति का विशद् प्रख्यापन किया है। लौकिक विषयों से

मुक्ति पाने के लिये लौकिक विषयों को लोक से हटाकर परमात्मा से अनुरक्ति का माध्यम सर्वश्रेष्ठ है। इस परिपाटी में भक्तजन लौकिक भावों को लोक के आलाम्बनों से पृथक करके परमात्मा की ओर लगाते हैं। ईससे भाव परिष्कृत हो जाता है, उसमें केवल विभाव बदलता है। परमब्रह्म परमात्मा स्वरूप श्रीकृष्ण के साथ गोपियों का कान्ताभाव है यह नहीं माना जा सकता क्योंकि श्रीकृष्ण स्वयं सब रसों के मूल रस हैं।[1] और उनके साथ प्रेम करने से वेषमिक दोष नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद् भगवद्गीता में कहा है, कि यदि अत्यन्त दुराचारी भी अनन्यता पूर्वक मेरा किसी भावना से भजन करता है तो उसकी अधार्मिकता का निवारण हो जायेगा।[2] इस प्रकार दिव्य प्रेम से लौकिक काम को दूर करने वाली प्रेम लक्षणा भक्ति अन्य सभी भक्ति भावों से श्रेयस्कर है क्योंकि यह जीवात्मा की वासना पंक से ऊंचा उठाकर प्राणी के दिव्य प्रेम के लोक का मार्म प्रदर्शित करती है। सहचरी भाव इस रस से भी ऊपर है क्योंकि उसमें तत्सुख में (राधा कृष्ण के आनन्द में) सहचरी के स्वसुख की स्थिति रहती है। युगल किशोर की नित्य विहार लीला का दर्शन ही उनका भोजन है। वही उनके जीवन का अभिधेय है, रस है, जिसका पान कर वे जीवित रहती हैं। आराध्य के लिये ही उनका सर्वस्व है। इस प्रकार की भावना परम पवित्र एवं अत्यन्त श्लाघनीय है। निम्बार्क कवियों की उपासना की स्थिति वही है। इस प्रकार व्यापक दृष्टि से आत्मत्याग और बलिदान के द्वारा दूसरों के प्रेम भाव दर्शन में अपनी आत्मा की प्रसन्नता मानना यह लोक-संग्रह का महाभाव निम्बार्क कवियों ने अपने काव्य में प्रयुक्त कर भक्ति रस को पूर्णता तक पहुँचा दिया है।

जितने संसार के कर्म-धर्म हैं उनका मुख्य उद्देश्य मुक्ति प्राप्ति ही होता है। श्रीहरिव्यासदेव जी ने सिद्धान्त रत्नाञ्जलि में 'सिद्धान्तेतु भक्तिरेव मुक्ति' कहते हुए भक्ति को ही मुक्ति माना है। सम्भवत: भक्ति की श्रेष्ठता के विषय में इससे गम्भीर कोई बात किसी साम्प्रदायिक आचार्य ने नहीं कहीं।

इस प्रकार निम्बार्क सम्प्रदाय द्वारा साधना, सिद्धान्त, काव्य, साहित्य भक्ति मत सभी दिशाओं में भारी योगदान हुआ है। राजस्थान में निम्बार्क सन्त कवियों की परम्परा श्री परशुराम देवाचार्य जी से प्रारम्भ होती है। परशुराम-द्वारे के परम्परा-आचार्य एवं विविध कवियों ने हिन्दी की भक्ति-साहित्य निधि को अमूल्य प्रणयन-रत्नों से परिपूर्ण किया है। वर्तमान आचार्य वर्य एक सहृदय कवि है। उनके काव्य में निम्बार्क रसोपासना का मूल तत्त्व 'बीज-बिन्दुवत्' साररूप में प्रतिपादित है। माधुर्य भाव से परिपूर्ण कोमलकान्त पदावली एवं रागबद्ध गीति में निम्बार्कीय सहचरी-सेवा,

---

1. उज्वलनीय मणि, निर्णय सागर प्रेस, पृष्ठ 11, 12।
2. श्रीमद् भगवद्गीता, अध्याय 9, श्लोक संख्या 30, 31।

नित्यकेलि तत्त्व, युगल-स्वरूप एवं उनके लीला-लीलाधाम आदि का सारगर्भित मार्मिक वर्णन हुआ है। केलिरत श्यामाश्याम के यही दिव्यदर्शन निकुंज रस का परमानन्द है, अहर्निश निकुंज-क्रीड़ा के विधान में दिव्य भाव समन्वित सहचरी के नेत्र कुंजरन्ध्रों से इसी दिव्य-दर्शन के चिरभिलाषी हैं धन्य है, यह छवि—

छाई श्याम घटा अति प्यारी।
श्री वृन्दावन पावन धरणी, बरषत सरसत सुन्दर वारी।।
युगल किशोर रति रस भीजत, उमगत सुख रस परम अपारी।
कोकिल कूजत मोर मधुर धुनि, सुनि सहचरि मन मोद महारी।।
दादुर घोर करत अति सुन्दर, वेणु बजावत कुंज बिहारी।
शरण सदा 'राधासर्वेश्वर' चपला चमकत पुनि पुनि प्यारी।।



सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. अणभाष्य, वल्लभाचार्य – प्रकाशक ब्रजवासी दास एण्ड कं. बनारस।
2. अर्थ पंचक निर्णय – (लाड़िली शरण ब्रह्मचारी)
3. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय – डॉ. दीनदयालु गुप्त।
4. अष्टादश सिद्धान्त के पद (स्वामी हरिदास)
5. अष्टाध्यायी – वैयाकरण पाणिनि।
6. अकबर नामा, भाग 1, एशियाटिक सोसायटी सं. 1912
7. आचार्य परम्परा परिचय – (पं. किशोर दास वेदान्त निधि)
8. आचार्य चरित – श्री नारायण देवाचार्य, हस्तलिखित।
9. आमेर के राजा पृथ्वीराज, पब्लिक लाइब्रेरी जयपुर।
10. इण्डियन साधूज – जी.एस. घुरे।
11. इम्पीरियल गजैटियर ऑफ इण्डिया – जिल्द संख्या 8।
12. उज्वल नील मणि, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
13. उत्तरी भारत की संत परम्परा, श्री परशुराम चतुर्वेदी।
14. ऋग्वेद – भाष्य।
15. ए ट्रीटाइज ऑफ म्यूजिक ऑफ हिन्दुस्तान, कैप्टेन विलार्ड।
16. एतरेय ब्राह्मण।
17. एन अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया – वी.एन. स्मिथ।
18. एन आउटलाइन ऑफ दी रिलीजियस लिटरेचर इन इण्डिया, जे.एन. फारुक्हर।
19. ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया – डा. ईश्वरी प्रसाद।
20. औदुम्बर संहिता – औदुम्बराचार्य।
21. कल्याण, वर्ष 12 अङ्क 4।
22. कविप्रिया – केशवदास।

23. किशनगढ़ राज्य के ऐतिहासिक सूत्र (हस्तलिखित) संग्राहक : निम्बार्क शोध मण्डल, वृन्दावन।
24. केलिमाल, स्वामी हरिदास, कुंज बिहारी पुस्तकालय, वृन्दावन।
25. गजैटियर आफ मथुरा (1911 ई.) – श्री डॉके ब्रॉकमैन।
26. गाथा सप्तशती।
27. गीता रहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र-लोकमान्य तिलक।
28. गुरु प्रणालिका, श्री सहचरि शरण।
29. गोपाल सहस्त्र नाम।
30. घनानन्द – श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।
31. चतुः सम्प्रदाय के श्री चौबे कुलकीराम, तप्पी चौबे, मथुरा की बहीं 1, 2, 3।
32. चित्रकला – रायकृष्ण दास।
33. जयसाहि सुजस प्रकाश – मण्डन कवि कृत।
34. जनरल ऑफ दी एशियाटिक सोसायटी ऑफ बङ्गाल, जिल्द 8।
35. जनरल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बङ्गाल, जिल्द 16।
36. जनरल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बङ्गाल, जिल्द 45।
37. जायसी ग्रन्थावली – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
38. जीरे किंग मुत्तखवतवारीख, अलबदायूनी कलकत्ता, 1945।
39. तत्वार्थ प्रकाशिका – केशवकाश्मीरि कृत।
40. धाम स्तोत्र-रत्नावली।
41. तुलसी ग्रन्थावलि – पंडित रामचन्द्र शुक्ल भाग 3।
42. थियेटर ऑफ हिन्दुस्तान, पार्ट 1, थर्ड एडीशन, एच.एव. विल्सन।
43. एनशियन्ट म्यूजिक आफ इण्डिया एलवर्ट कोल।
44. दिल्ली सल्तनत – डॉ. आशीर्वादीलाल।
45. हिस्ट्री ऑफ इण्डिंयन म्यूजिक, ओगन रस्क।
46. द्वैताद्वैत सिद्धान्त – पं. किशोर दास जी।
47. नम्र निवेदन और कुछ समीक्षा-बाबा कृष्णादास, कुसुमसरोवर, गोवर्द्धन।
48. नवरस – गुलाबराय।
49. नवभक्त माल – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

50. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष 57 अंक 4।
51. नागरी प्रचारिणी सभा काशी, वार्षिक विवरण खोज, सम्वत 1923।
52. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वार्षिक खोज विवरण, सं. 1902।
53. नागर समुच्चय – कविवर जयलाल, बम्बई।
54. नाम महात्म्य वाणी अंक, सम्पादकः दान बिहारी लाल शर्मा, वृन्दावन।
55. नारद भक्ति सूत्र।
56. नारायण भट्ट चरितावली-सम्पादक बाबा कृष्णदास।
57. निकुंज प्रेम माधुरी – बाबा माधवदास।
58. निजमत सिद्धान्त – महान्त श्री किशोरदास जी।
59. निजाम राज्य की पुरातत्व विभागीय रिपोर्ट सं. 1927-28।
60. नित्य विहार पदावली, रूप रसिक देव, हस्तलिखित।
61. निम्बार्क विक्रान्ति, औदुम्बराचार्य, रामचन्द्र दास वैष्णव।
62. निम्बार्क प्रभा-बाबा हसदास।
63. निम्बार्क-सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि – डॉ. नारायण दत्त शर्मा।
64. निम्बार्क सम्प्रदाय एवं श्री निम्बार्काचार्य पीठ परिचय – सम्पादक : पं. गोविन्द दास 'सन्त'।
65. निम्बार्क माधुरी – ब्रह्मचारी बिहारी शरण।
66. निम्बार्क केन्द्रों का विवरण – श्री वियोगो विश्वेश्वर, (टंकन प्रति)
67. पद प्रबोध प्रसंग माला – नागरीदास जी।
68. परशुराम सागर – श्रीपरशुराम देवाचार्य, हस्तलिखित।
69. परशुराम सागर, दोहा खण्ड, सम्पादकः वियोगी विश्वेश्वर।
70. पातंजलि महाभाष्य।
71. प्राचीन लेखमाला, निर्णय सागर प्रेम बम्बई।
72. प्रेम विनोद – छत्र कुंवरि हस्तलिखित।
73. पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल आदि।
74. पंच कालानुष्ठान, मीमांसाः सुन्दर भट्ट।
75. बयालीस लीला – श्री ध्रुवदास।

76. बिहारी दर्शन – लोकनाथ द्विवेदी, सिलाकारी।
77. बिहारी सतसई, लाला भगवानदीन।
78. बिहारिन देव जी की वाणी, हस्तलिखित टटिया स्थान वृन्दावन।
79. ब्रज का इतिहास, भाग 1-2, सम्पादक: कृष्णदत्त वाजपेयी।
80. ब्रजदासी भागवत, हस्तलिखित, परशुराम पीठ, सलेमाबाद।
81. ब्रज भारती आषाढ़, संवत् 1698।
82. ब्रज माधुरी सार – वियोगी हरि।
83. ब्रह्मसूत्र, भाग 1-2-3, प्रकाशक बाबा कल्याण दास वृन्दावन।
84. श्रीमद्भागवत महापुराण।
85. भक्तमाल नाभादास जी।
86. भक्तमाल रसबोधिनी टीका – प्रियादास।
87. भक्तवर व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी।
88. भक्तवर नागरीदास और उनके काव्य पर पड़ने वाले प्रभाव और प्रतिक्रियाओं का अध्ययन, टंकित प्रति, डा. फैयाज अली खां।
89. भारतीय दर्शन – डॉ. उमेश मिश्र।
90. भारतीय इतिहास की भूमिका – डॉ. राजबली पाण्डेय।
91. भारतीय संगीत का इतिहास – श्री उमेश जोशी।
92. भारतीय बङ्गला मासिक पत्रिका – अंक 5, 6, 8, 9, 10 एवं 11।
93. भारत का वृहद् इतिहास – श्री नेत्र पाण्डेय, भाग 1, 2, 3, 4, 5।
94. भारत का ब्रिटिश कालीन इतिहास – पी.ई. राबर्ट्स।
95. भारतेर साधना, मासिक पत्रिका, आग्रहायण मास, अङ्क 1।
96. भेदाभेद सिद्धांत, स्वामी संतदास, ब्रज विदेही वृन्दावन।
97. गौड़ियार तीन ठाकुर, सुन्दरानन्द विद्या विनोद।
98. मध्यकालीन भारत-डॉ. ईश्वरी प्रसाद।
99. महात्मा कबीर, हरिहर निवास द्विवेदी।
100. महाभारत, शान्ति पर्व।
101 महाराज जयसिंह का इतिहास, निम्बार्क शोध मण्डल संग्रहालय वृन्दावन।
102. महावाणी – हरिव्यास देव, ब्रह्मचारी बिहारी शरण।

103. मृगनयनी की भूमिका – श्री वृन्दावन लाल वर्मा।
104. मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान – डॉ. ग्रियसन।
105. मिश्रबन्धु विनोद, भाग 1, 2, 3।
106. मित्रशिक्षा, सुन्दरी कुंवरि, हस्तलिखित प्रति।
107. मूर्तिकला का इतिहास, एम.एम. असगर अली, काशी।
108. म्यूजिक आफ सदर्न इण्डिया, कैप्टेन डे.।
109. मेघदूत – कालिदास।
110. मैमोयर्स आफ मथुरा डिस्ट्रिक्ट, एफ.एस. ग्राउस।
111. मंत्र रहस्य षोडषी – श्री निम्बार्काचार्य।
112. युगल शतक – श्री भट्ट जी, सम्पादक: ब्रजवल्लभ शरण वेदान्ताचार्य।
113. हिन्दी रस गंगाधर – पं. पुरुषोत्तम चतुर्वेदी।
114. सेठ कन्हैयालाल पौद्दार-कृत रस मंजरी।
115. श्री परशुराम देवाचार्य चरितम् प्रणेता : पं. हरिनारायणशास्त्री (तेवड़ी वास्तव्य)
116. रससार – रसिक देव जी
117. रसिक गोविन्द और उनकी कविता – बटुकनाथ शर्मा और बलदेव उपाध्याय।
118. स्तुतिमंजरी-प्रणेता : पं. मोहन शास्त्री प्रभाकर (तेवड़ी वास्तव्य)
119. रसिक गोविन्द आनन्दघन – रसिक गोविन्द।
120. रहस्य सिद्धान्त ग्रन्थमाला – पं. किशोर दास।
121. रामभक्त साहित्य में मधुर उपासना – भुवनेश्वर मिश्र।
122. रामचरित मानस, बालकाण्ड – गोस्वामी तुलसीदास।
123. राजस्थानी भाषा और साहित्य – मोतीलाल मनेरिया।
124. राजस्थान का इतिहास – डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा।
125. राधावल्लभ सम्प्रदाय और साहित्य – डॉ. विजयेन्द्र स्नातक।
126. रासलीलानुकरण और नारायण भट्ट – बाबा कृष्णदास।
127. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय – डॉ. भगवती प्रसाद सिंह।
128. राग कल्द्रुम, प्रथम भाग।
129. राधा कृष्ण ग्रन्थावलि-कृष्ण दास।
130. रिलीजियस सैक्सट्स ऑफ दी हिन्दूज – एच.विल्सन।

131. रीति कालीन कवि और घनानन्द – डॉ. मनोहरलाल गौड़, टंकित प्रति।

132. Index of Sanskrit-Philosophy-Fitz Edward Hall.

133. The Vedant-Written by Gete.

134. Indian-Philosophy-Dr. Radhakrishanan.

135. History of Skt. Litt.-Mecdonell (Landon Edition, 1905)

136. Some Problems of Idestity in the Cultural History of ancient India.-M.M. Kuppuswami

काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थ

1. साहित्य दर्पण – आचार्य विश्वनाथ

2. काव्य प्रकाश – वाग्देवतावतार मम्मटाचार्य

3. रस गंगाधर – पण्डितराज जगन्नाथ

4. ध्वन्यालोक – श्रीमद् आनन्दवर्धनाचार्य

5. वक्रोक्ति काव्य जीवितम् – आचार्य कुन्तक

कोश-ग्रन्थ

1. संस्कृत-हिन्दी कोश – वामन शिवराम आप्टे (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1978)

2. आदर्श हिन्दी-संस्कृत कोश – रामस्वरूप शास्त्री (चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1980)





अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री ''श्रीजी'' महाराज

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधा-सर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज का जन्म विक्रम संवत 1986 वैशाख शुक्ल 1 शुक्रवार तदनुसार दिनांक 10 मई, 1929 को निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) में हुआ। अपकी माताश्री का नाम स्वर्णलता (सोनीबाई) एवं पिताश्री का नाम श्रीरामनाथजी शर्मा गौड़ इन्दोरिया था। आप जैसे नक्षत्रधारी महापुरुष के जन्म से यह विप्र वंश धन्य हुआ है। आपश्री 11 वर्ष की अल्पावस्था में वि.सं. 1997 आषाढ़ शुक्ल 2 रविवार (रथयात्रा) के शुभावसर पर अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीबालकृष्णशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज से वैष्णवी दीक्षा से दीक्षित होकर पीठ के उत्तराधिकारी नियुक्त हुए। वि.सं. 2000 में पूज्य गुरुदेव के गोलोकवास होने पर 14 वर्ष की अवस्था में ज्येष्ठ शुक्ल 2 शनिवार दिनांक 5 जून 1943 को आचार्यपीठ पर आसीन हुए। तदनन्तर 4 वर्ष तक श्रीधाम वृन्दावन में न्याय-व्याकरण-वेदान्त आदि शास्त्रों का अध्ययन किया। वज्रविदेही चतु:सम्प्रदाय श्रीमहन्त श्री धनञ्जयदासजी काठिया बाबा महाराज तर्क-तर्कतीर्थ जैसे महानुभावों का आपको संरक्षण प्राप्त हुआ। आपश्री के आचार्यत्वकाल में वैष्णव चतु:सम्प्रदायों के आचार्यों, श्रीमहन्तों, सन्त महात्माओं, समस्त शंकराचार्यों श्रीकरपात्रीजी महाराज, महामण्डलेश्वरों, देश के मूर्धन्य मनीषियों, राजा-महाराजाओं, राजनेताओं के साथ निकटतम घनिष्ठ सम्पर्क बढ़ा। श्री निम्बार्क सम्प्रदाय का चतुर्दिक् विस्तार हुआ। वि.सं. 2001 में आपश्री ने 15 वर्ष की अवस्था में कुरुक्षेत्र के विराट् साधु सम्मेलन में जगद्गुरु पुरीपीठाधीश्वर श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज के तत्त्वावधान में अध्यक्ष पद को अलंकृत किया।

आपश्री के कार्यकाल में तीनधाम सप्तपुरी की यात्रा सम्पन्न हुई। प्रयाग, हरिद्वार (वृन्दावन), उज्जैन, नासिक इन चारों स्थानों के कुम्भ पर्वों पर अनेकश: श्रीनिम्बार्कनगर में समायोजित धार्मिक अनुष्ठानों, धर्माचार्यों के सदुपदेशों, विविध सम्मेलनों द्वारा समग्र जन समुदाया को सन्मार्ग की ओर प्रेरित किया जाता है। इसी प्रकार सं. 2026 में वज्रयात्रा, 2031 में विराट् सनातन धर्म सम्मेलन, 2047 में श्रीमुरारी बापू की रामकथा, 2050 में स्वर्ण जयन्ती समारोह के अवसर पर अ.भा. विराट् सनातन धर्म सम्मेलन, 2061 में श्री भगवन्निम्बार्काचार्य 5100वां जयन्ती महोत्सव पर विराट् सनातनधर्म सम्मेलन, 2062 में युगसन्त श्रीमुरारीबापू द्वारा श्रीरामकथा, 2063 में श्रीरमेश भाई ओझा द्वारा श्रीमद्भागवत कथा आदि आयोजनों द्वारा जो धार्मिक चेतना जन-जन में स्फुरित करायी गयी वह सदा स्मरणीय है। प्रत्येक अधिकमास में आचार्यपीठ पर आयोजित होने वाले अष्टोत्तरशतभागवत, यज्ञानुष्ठान, प्रवचन श्रीरासलीलानुकरण आदि कार्यक्रम भी सदा प्रेरणाप्रद रहते हैं। आप द्वारा प्रतिदिन किया जाने वाला श्रीयुगलनाम-संकीर्तन भी श्रवणीय होता है। सन् 1966 में दिल्ली के विराट् गो-रक्षा सम्मेलन में आपश्री का सपरिकर पादार्पण हुआ था। इस अवसर पर स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज एवं अन्य धर्माचार्यों से जो महनीय विचार विमर्श हुआ वह परम ऐतिहासिक है।

आपश्री ने अपने आचार्यत्व काल में जितना देश-देशान्तरों में सम्प्रदाय का वर्चस्व बढ़ाया है उतना ही देवालयों के निर्माण, जीर्णोद्धार, शैक्षणिक संस्थाओं का निर्माण-संचालन, साहित्य प्रकाशन, नूतन ग्रन्थ रचना, गोशाला, मुद्रणालय आदि संस्थाओं द्वारा आचार्यपीठ का सर्वतोभावेन विकास किया है। आपश्री द्वारा रचित 37 ग्रन्थों में से भारत-कल्पतरु ग्रन्थ का विमोचन भारत के उपराष्ट्रपति श्रीशंकरदयालजी शर्मा ने दिल्ली में किया। इसी प्रकार आपके अन्य ग्रन्थों का मूर्द्धन्य राजनेताओं, शीर्षस्थ महापुरुषों, जगद्गुरुओं द्वारा विमोचन समारोह सम्पन्न हुये हैं। एवं आप द्वारा प्रणीत रचनाओं पर तीन-चार शोधप्रबन्ध भी प्रस्तुत हुए हैं जो मननीय हैं। अस्वस्थ अवस्था में भी आप निरन्तर क्रियाशील रहते है। आपश्री का संरक्षण पाकर और आपश्री के महान् व्यक्तित्व व कृतित्व से श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय किंवा सनातन धर्म जगत् विशेषत: उपकृत हुआ है। आपके मधुर दर्शन की एक झलक पाने और आपश्री के वचनामृत सुनने के लिए धार्मिक जन सदा समुत्सुक रहते हैं।